112891
मई
सरस्वती
१९६१

साइंटिफिक इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ **॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥**

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—डा० एस० सी० जैन, एम० डी० एम० आर० पी० (लन्दन), एम० आर० सी० पी० (एडिनबर्ग) फिजीशियन, मेडिकल कालेज, लखनऊ ता० १२जून १९५६ क्या कहते हैं :—

मुझे यह लिखते हुए हर्ष हो रहा है कि ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के एक विख्यात ज्योतिषी हस्तरेखा-विशारद और तांत्रिक हैं। लगभग सात वर्ष हुए जब श्री सिंह जी ने मेरे भविष्य जीवन के सम्बन्ध में अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं और वे सभी ही आश्चर्य रूप से सत्य सिद्ध हुईं। यहाँ तक कि मास और दिनों तक में उनकी बताई हुई, मेरे विवाह, समुद्र-यात्रा तथा कार्यलाभ की, तिथि आश्चर्य रूप से ठीक निकली।

ओ० आर० सि० एल का

कुमारेश

लीवर व पेट को पीड़ा की तरफ कड़ी निगाह रक्खें। नियमित 'कुमारेश' का सेवन भूख की कमी, बदहजमी, फूले हुए पेट और अजीर्ण जैसी बीमारियों से आपको दूर रक्खेगा।

ओ० आर० सि० एल० लिमिटेड, कुमारेश हाउस, सलकिया, हावड़ा।

ज़रा सा सनलाइट
मगर ढेरों धुलाई
–यह इस के अधिक झाग का कमाल है
आंखों देखे का विश्वास : शंकर कितना खुश है ! अपनी धुली हुई जगमगाती सफ़ेद क़मीज़ देख कर ! सीता ने केवल एक क़मीज़ ही नहीं धोई — कपड़ों, चादरों और तौलियों की यह सफ़ेद उजली ढेरी भी तो देखिये ! और लगा क्या ? ज़रा सा सनलाइट !
सनलाइट का बढ़िया भरपूर झाग, कपड़ों को कूटे पीटे बग़ैर, मैल के कण कण को बहा ले जाता है ! धो कर खुद देखिये — आज ही आज़माइये !
SUNLIGHT SOAP
SUNLIGHT SOAP
सनलाइट से कपड़े सफ़ेद और उजले धुलते हैं ।
S. 267-X52 H.
हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड ने बनाया

छोटे बच्चों के प्यारे कवि निरंकार देव सेवक द्वारा लिखित

कुछ अपूर्व प्रकाशन

श्री शंकरसहाय सक्सेना डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग, राजस्थान कहते हैं :—

"यह बालगीत बच्चों के लिए अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी हैं। लेखक ने इन्हें लिखकर हिन्दी में बाल-साहित्य को धनी बनाया है। यह पुस्तकें प्रत्येक घर में जहाँ बाल-बालिकायें हों, रहना ही चाहिए।"

रिमझिम—रिमझिम में निरंकारजी के वह अनमोल बालगीत संग्रहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। सभी कवितायें मीठी-मीठी और सुन्दर हैं।
मू० २·००

फूलों के गीत—बच्चे यदि बगिया में खिले नये नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। इन गीतों को पढ़कर एक बार वे मस्ती में झूम उठेंगे। उनके मन उत्साह, उमंगों से भर जायँगे।
मू० १·७५

दूध जलेबी—बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं।
मू० १·५०

पंचतन्त्री—पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वह कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता।
मू० ३·००

मुन्ना के गीत—बच्चों के सोने-जगने, खेलने-कूदने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बाल-गीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गये हैं।
मू० २·५०

धूप छाया—बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर और मीठे गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम-झूम उठते हैं।
मू० १·५०

माखनमिसरी—इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और मक्खन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। छोटी आयु के बच्चों को यह कवितायें बहुत प्यारी लगती हैं।
मू० २·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

पाँच अमूल्य ग्रन्थ

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २.५० नये पैसे।

१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २.५० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत
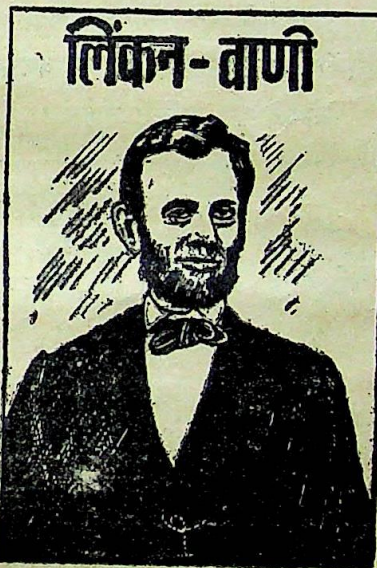
एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन

अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २.७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द, सचित्र प्रति का मूल्य ४.२५ नये पैसे।

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यष्टि की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३.५० नये पैसे।
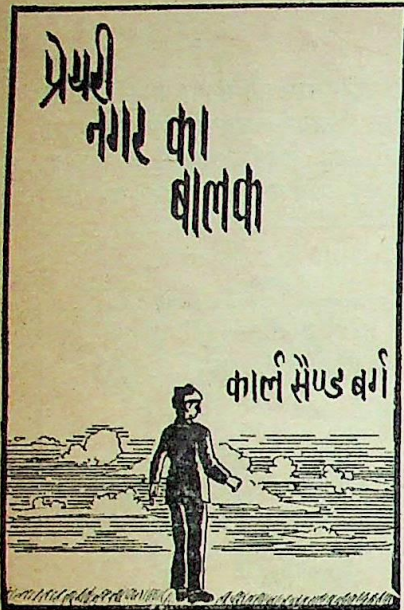
अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे
लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन।
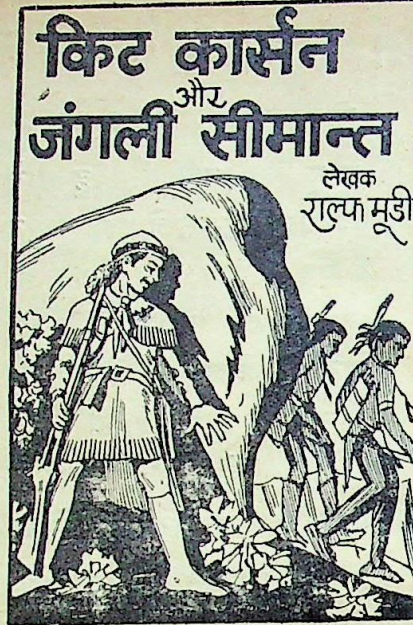
अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन।

अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम०
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे
लेखिका के बाल्यजीवन की स कहानी में उस समय के स जिक जीवन का दिग्दर्शन।
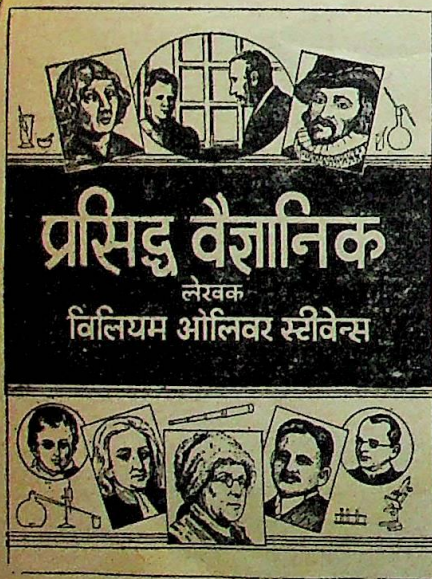
अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित।

अनु०—एम० पी० लखेरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी।
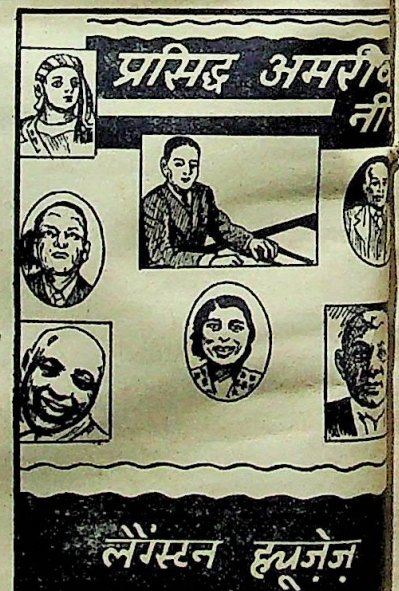
अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों जीवन-कथाएँ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

बच्चों के प्यारे कवि सोहनलाल द्विवेदी द्वारा रचित

ये अपूर्व प्रकाशन

बाल-भारती—स्वतंत्र भारत के बालक-बालिकाओं के लिए मनोरंजक और सरल कविताओं का आकर्षक संग्रह। कविताएँ इतनी सरल और नया उत्साह पैदा करनेवाली हैं कि हर बालक इन्हें याद करके भरी सभाओं में सुनाकर इनाम लूटें।
मू० १·२५

शिशु-भारती—यह सचित्र नयनाभिराम संस्करण बालक तथा बालिकाओं को अत्यन्त ही रोचक लगा है। सारे गीत सरस और शिक्षाप्रद हैं।
मू० १·००

दूध-बताशा—दिल को खुश कर देनेवाली बालोपयोगी सुन्दर कवितायें दो रंगों में छापी गई हैं। प्रत्येकक विता के साथ सुन्दर चित्र है। कविता-गीत मीठे तो हैं ही साथ ही मनोरंजन की सामग्री भी इन गीतों में काफी भरी पड़ी है।
मू० १·२५

झरना—बालोपयोगी कविताओं का अनुपम संग्रह, जिसे पढ़ते ही बच्चे उछल पड़ेंगे। यह पुस्तक इतनी बाल-प्रिय सिद्ध हुई कि इस संस्करण की थोड़ी ही प्रतियाँ बची हैं। समाप्त होने पर फिर पुस्तक के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।
मू० १·००

बच्चों के बापू—इस कविता-पुस्तक द्वारा बच्चों को देश के बड़े-बड़े नेताओं से परिचित कराया गया है। विशेषतः नेताओं के नेता गांधीजी की विनोदप्रियता, बच्चों से खिलवाड़ करके अलौकिक आनन्द अनुभव करते तिरंगे रंगीन बड़े-बड़े चित्र मन को मोह लेते हैं। यह पुस्तक आजाद देश के प्रत्येक बच्चे के पास होनी चाहिए। देश के नेताओं से परिचय करने का इससे सरल साधन अन्यत्र न मिलेगा।
मू० ·५०

हँसो-हँसाओ—बच्चों को खुश करनेवाली मजेदार कविताओं की नई पुस्तक अभी-अभी प्रकाशित हुई है। प्रत्येक पूरे पृष्ठ पर हँसानेवाले चित्र और कविताएँ हैं। नन्हें-नन्हें बालक इन कविताओं को सुनाकर माँ-बाप को प्रफुल्लित करते हैं।
मू० १·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

रंगीन चित्र १ : सादा १२

पण्डित मोतीलाल नेहरू

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ६२
पूर्ण संख्या ७३७

इलाहाबाद : मई १९६१ : ज्येष्ठ २०१८

खण्ड १
संख्या ५

सम्पादकीय

१९६१ की तीन जयंतियाँ——इसे संयोग ही कहना चाहिए कि सन् १८६१ में इस देश में तीन ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में भारतमाता का मस्तक ऊँचा किया, और इस वर्ष——अर्थात् १९६१ में——हम उनकी शताब्दिक जयंतियाँ मना रहे हैं। ये तीन महानुभाव थे पं० मोतीलाल नेहरू, कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ टागोर और महामना पंडित मदनमोहन मालवीय। पहिले दो महापुरुषों का जन्म मई मास में हुआ था, और महामना का दिसम्बर में। पं० मोतीलाल नेहरू की जयंती प्रायः सारे देश में मनायी जा रही है। कविकुलगुरु की जयंती देश ही में नहीं, संसार के अनेक देशों में मनायी जा रही है। यह जयंती एक दिन, एक सप्ताह या एक मास न मनायी जाकर पूरे वर्ष भर मनायी जायगी। यह वर्ष 'टागोर जयन्ती वर्ष' हो गया है। उनके नाम पर स्थान-स्थान में रंगशालाएँ स्थापित की जायँगी, उनके नाटकों का अभिनय होगा, उनके संगीत (रवीन्द्र संगीत) का प्रसारण किया जायगा। उनकी कृतियों को मूल में या अनुवाद द्वारा जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जायगा। इस वर्ष हम सुविधानुसार एक 'रवीन्द्र विशेषांक' निकालकर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करेंगे।

त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू——जब तक वे गांधीजी के प्रभाव में आकर स्वतंत्रता-संग्राम में नहीं कूदे, तब तक पंडित मोतीलाल नेहरू उत्तर भारत के सर्वश्रेष्ठ वकीलों में ही नहीं गिने जाते थे, प्रत्युत उच्चस्तरीय जीवन, राजसी ठाठ, अँगरेजियत और अपनी तेजस्विता और वाग्मिता के लिए सारे देश में विख्यात हो चुके थे। उनके राजसी ठाठ और अँगरेजियत के संबंध में जनता में कितनी ही अतिरंजित या कपोलकल्पित बातें फैल गयी थीं। हमें अभी भी ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो बड़े विश्वास के साथ बतलाते हैं कि मोतीलालजी के कपड़े धुलने के लिए पैरिस भेजे जाते थे! इन कपोलकल्पित कथाओं का फल यह अवश्य हुआ कि जनता पंडित मोतीलाल के रहन-सहन को राजा-महाराजाओं या नवाबों के रहन-सहन के बराबर ही समझती थी। उन दिनों इलाहाबाद में दो प्रमुख विभूतियाँ थीं। मालवीयजी और मोतीलाल जी। मालवीय जी 'भारतीभवन' मोहल्ले में रहते थे, और मोतीलालजी ने अपनी विशाल कोठी का नाम 'आनन्द भवन' रखा था। 'भारतीभवन' पूर्व का प्रतीक था, तो 'आनन्दभवन' पश्चिम का। लोगों की कल्पना थी कि मोतीलालजी प्रतिवर्ष लाखों रुपया कमाते थे, और इतने शाहखर्च थे कि सब का सब खर्च कर डालते

थे। और बातों में चाहे लोगों में मतभेद हो, किंतु उनकी बुद्धि की कुशाग्रता और तेजस्विता के बारे में सारी जनता एकमत थी। हमने "पुरुषसिंह" शब्द बहुत बार सुना है, किंतु पंडित मोतीलाल नेहरू हमें ऐसे व्यक्ति दीख पड़े जिन्हें बरबस 'पुरुषसिंह' कहने को जी चाहता था। और जब उन्होंने देश की पुकार सुनी, और जब उन्होंने समझा कि देश को पराधीनता से मुक्त करने का समय आ गया है तब उन्होंने गांधीजी के आह्वान पर केवल अपनी चोटी की वकालत ही नहीं छोड़ दी, प्रत्युत अपना विशाल 'आनंद भवन' भी कांग्रेस को दान कर दिया। उनका कोई काम छोटे स्तर का नहीं होता था। ठाठ किये तो राजसी, और जब त्याग किया तो वह भी उच्च और आदर्श। स्वतंत्रता-संग्राम में उनका जो योगदान था उसका वास्तविक मूल्यांकन गांधीजी ही कर सकते थे। उन्होंने अपना सर्वस्व उस यज्ञ में होम दिया——लाखों की वकालत, राजमहलों से प्रतिद्वंद्विता करनेवाला अपना राजभवन, स्वयं अपने को, और अपने सारे परिवार को उन्होंने उस यज्ञ में समर्पित कर दिया। उनके आदर्श त्याग से प्रभावित होकर ही जनता उन्हें 'त्यागमूर्ति' कहा करती थी। स्वतंत्र भारत का शासन आज भी पं० मोतीलाल के पुण्य प्रताप से ही चल रहा है। उनकी शताब्दि-जयंती पर 'सरस्वती' उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पण करती है।

क्यूबा का विद्रोह——क्यूबा अमरीका के पास (योरोप और अमरीका के बीच) एक द्वीपपुंज है। वास्तव में अटलांटिक समुद्र के इस भाग में बहुत से द्वीप हैं और इन सबका सामूहिक नाम "वेस्ट इंडीज़" है। वेस्ट इंडीज़ में कई द्वीपपुंज हैं और जिस द्वीपपुंज में क्यूबा पड़ता है उसका नाम "ऐंटिलीज़" है। क्यूबा को "ऐंटिलीज़ का मोती" कहते हैं क्योंकि यह अत्यंत सुंदर, हरा-भरा और उपजाऊ द्वीप है। मुख्य द्वीप का नाम क्यूबा है। यह पूर्व से पश्चिम तक लंबा चला गया है। इसकी लंबाई ७३० मील, और चौड़ाई कहीं केवल २५ मील और अधिकतम १६० मील है। इसके पूर्व में ऊँचे पहाड़ हैं जिनकी सबसे ऊँची चोटी ८००० फुट ऊँची है। इसमें छः प्रान्त या जिले हैं। पश्चिम में, अंतिम प्रान्त से पहिले, जो प्रान्त है उसका नाम हवाना है। यहीं, इसी नाम के नगर की राजधानी है। इसका क्षेत्रफल ४४,२१८ वर्ग मील है। सन् १९५७ में इसकी जनसंख्या ६४ लाख १० हजार के लगभग थी। अधिकांश निवासी (प्रायः ७३ प्रतिशत) स्पेन से आये हुए लोगों के गोरे वंशज हैं। इनमें कुछ स्पेनियों और यहाँके आदिम निवासियों की मिश्रित संतान भी हैं। यहाँकी भाषा 'स्पेनिश' और धर्म रोमन कैथलिक है। हवाना नगर की जनसंख्या प्रायः ८ लाख है। हवाना के मैदानी भाग में एक बहुत अच्छी जाति की तमाखू पैदा होती है जो "हवाना तमाखू" के नाम से सारे संसार में विख्यात है। क्यूबा का समुद्रतट प्रायः दो हजार मील लंबा है और इसमें अनेक प्राकृतिक बंदरगाह हैं। गन्ने की खेती यहाँका मुख्य उद्यम है और चीनी के कारखाने यहाँके मुख्य उद्योग हैं। क्यूबा से जो चीजें निर्यात होती हैं उनमें ८५ प्रतिशत चीनी ही होती है। संसार में जितनी चीनी क्यूबा विदेश भेजता है उतनी और कोई देश नहीं भेजता। देश में मिट्टी के तेल, लोहे, कोयले, ताँबे, सोने और चाँदी की भी खानें हैं। फलों की यहाँ बहुतायत है।

सन् १४९२ में कोलंबस भारत की खोज में स्पेन से चला। उसने सोचा कि चूँकि दुनिया गोल है, यदि वह समुद्र में पश्चिम की ओर चलता चला जायगा तो भारत पहुँच जायगा। योरप में भारत को "इंडीज़" (अँगरेजी में इंडिया) कहते हैं। जब अनेकों सप्ताह भूमि-विहीन समुद्र में चलने-चलते वह इन द्वीपों में पहुँचा तो उसने समझा कि मैं 'इंडीज़' पहुँच गया, और चूंकि ये द्वीप स्पेन से पश्चिम में हैं, उसने इन द्वीपों का नाम "वेस्ट इंडीज़" (पश्चिमी भारत) रख दिया। उसने इस द्वीप पर अधिकार कर लिया। सन् १५११ में स्पेन के राजा ने डियगो डि वेलास्क्यूज को वहाँका राज्यपाल नियुक्त किया, और इस द्वीप में बसने के लिए बहुत से स्पेनी भी भेजे। इन लोगों ने यहाँके मूल निवासियों को धीरे-धीरे जीत लिया, और सारे द्वीप पर अधिकार कर लिया। अधिकाधिक स्पेनी यहाँ आकर बसने लगे। जब दक्षिणी और उत्तरी अमरीका में गोरे लोग बस गये तब योरप और अमरीका के बीच यातायात बढ़ा, और रास्ते में पड़ने के कारण सारे जहाज क्यूबा होकर जाने लगे। इससे इसका महत्त्व बढ़ा।

स्पेनियों ने दक्षिण और मध्य अमरीका के बहुत से देशों पर अधिकार कर लिया था। उत्तरी अमरीका के कुछ भागों पर भी उसका अधिकार हो गया था। उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में दक्षिण और मध्य अमरीका के स्पेनी उपनिवेशों ने स्पेन की शोषक नीति से त्रस्त होकर विद्रोह कर दिया, और वे स्वतंत्र हो गये। किंतु क्यूबा पर स्पेनी अधिकार बना रहा। स्पेनियों का शासन बहुत कड़ा था और उनकी आर्थिक नीति से देश का भीषण शोषण हो रहा था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यहाँ के उपनिवेशवालों ने भी स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। वह दबा दिया गया। १८६८ से १८७८ तक वे लड़ते रहे, किंतु वे सफल न हुए। क्यूबा के बहुत से विद्रोही भागकर अमरीका (संयुक्तराज्य) चले गये थे। वहाँ उन्होंने 'क्यूबन रिवोल्यूशनरी पार्टी' के नाम से एक दल बनाया। इसका नेता जोसे मार्टी नाम का एक वीर पुरुष था। अमरीका में बैठकर उसने क्यूबा को स्वतंत्र करने की योजना बनायी, और क्यूबा के देशभक्तों को संगठित किया। अमरीका की इन लोगों के प्रति पूरी सहानुभूति थी। सन् १८९५ में इस दल ने क्यूबा में विद्रोह किया। मार्टी अपने स्वयंसेवक सिपाहियों के साथ क्यूबा जा पहुँचा पर एक युद्ध में वह मारा गया। विद्रोह जारी रहा, किंतु विद्रोही स्पेन की सेना को नहीं हरा सकते थे।

सन् १८९८ में हवाना के बंदरगाह में एक अमरीकन लड़ाकू जहाज लंगर डाले हुए खड़ा था। किसी ने उसमें बम विस्फोट करके उसे नष्ट कर दिया। अमरीका ने स्पेनी सरकार पर उसे नष्ट कर देने का आरोप लगाया और स्पेन के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। अमरीका की सेना के सामने स्पेनी सेना न ठहर सकी और शीघ्र ही सारे द्वीप पर अमरीकनों का अधिकार हो गया। अमरीकन जनरल उड ने चार वर्ष तक द्वीप का शासन किया, और इस बीच उसने क्यूबा निवासियों से संविधान बनाने को कहा। संविधान बन गया और उसके अनुसार चुनाव हुए तथा क्यूबा के लोगों ने अपनी सरकार बनायी। अमरीकन लोग क्यूबा का शासन उस सरकार को सौंपकर चले गये। उसी समय क्यूबा और अमरीका में एक संधि हुई जिसके अनुसार अमरीका को क्यूबा में बहुत से अधिकार मिल गये थे। बाद में बहुत से क्यूबा निवासियों को यह संधि पसंद न आयी, और १९३४ में इसे समाप्त कर दिया गया। किंतु क्यूबा की सरकार ने ग्वांटोमानो नामक बंदरगाह में अमरीकनों को अपना एक सैनिक जहाजी अड्डा बनाने का अधिकार दे दिया, और आज भी वहाँ यह महत्त्वपूर्ण अमरीकन सैनिक अड्डा मौजूद है।

संविधान के होते हुए भी क्यूबा में कई बार तानाशाही हो चुकी है। वहाँ राजनीतिक स्थिरता नहीं है। सन् १९४४ में क्यूबा में बैटिस्टा नामक व्यक्ति राष्ट्रपति चुने गये थे। एक सत्र के बाद वे अलग हो गये, किंतु फिर चुन लिये गये, और इस बार वे तानाशाह हो गये। प्रशासन में अत्याचार, अनियमितताएँ आदि बढ़ गयीं। जब विरोध हुआ तो बैटिस्टा वहाँका तानशाह बन बैठा। सन् १९५६ में फिडेल कैस्ट्रो नामक एक व्यक्ति ने बैटिस्टा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कैस्ट्रो दुर्गम पूर्वी पहाड़ों में छिपकर गुरिल्ला लड़ाई लड़ता रहा। बैटिस्टा का विरोध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों कैस्ट्रो की शक्ति बढ़ती गयी। कई वर्ष तक यह युद्ध चला और इसमें दोनों ओर से कई हजार क्यूबन मारे गये। सैंटाक्लारा की एक लड़ाई में ही तीन हजार से अधिक क्यूबन मरे थे। अंत में बैटिस्टा इतना अप्रिय हो गया कि उसे भागना पड़ा। कैस्ट्रो ने क्यूबा के शासन पर अधिकार कर लिया।

बैटिस्टा के साथ अमरीका की सहानुभूति थी। जब कैस्ट्रो के हाथ में शक्ति आयी तब उसने अमरीका के विरुद्ध कार्रवाई आरंभ कर दी। क्यूबा में अमरीकनों के बहुत से उद्योग और कारखाने थे। उसने उनको छीनकर उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया। उसने क्यूबा में अमरीकनों का रहना मुहाल कर दिया। कैस्ट्रो की नीति अमरीका-विरोधी है। यह तो ठीक तरह से नहीं मालूम कि वह स्वयं कम्यूनिस्ट है या नहीं, पर कम्यूनिस्टों से उसकी सहानुभूति प्रत्यक्ष है। उसने रूस से मैत्री कर ली और उसे रूस से नाना प्रकार की सहायता मिलने लगी।

दोनों अमरीकन महाद्वीपों के सब राज्यों ने मिलकर बहुत पहिले यह निश्चय किया था कि वे अमरीका के राजनीतिक मामलों में अमरीका के बाहर के लोगों को हस्तक्षेप नहीं करने देंगे। कैस्ट्रो ने एक ओर तो अमरीका-विरोधी नीति अपनायी, और दूसरी ओर उसने रूस से और रूस के साथी कम्यूनिस्ट देशों से मैत्री बढ़ायी। रूस बहुत दिनों से अमरीका के किसी भाग में पैर जमाने का प्रयत्न कर रहा था, किंतु उसे सफलता न मिलती थी। इसलिए कैस्ट्रो की मित्रता का उसने स्वागत किया और वह उसका सहायक बन गया। रूस से उसे सब प्रकार का सामान मिलने लगा और तरह-तरह की सहायता मिलने लगी। इस प्रकार क्यूबा में रूस और कम्यूनिस्टों के पैर जमने लगे।

क्यूबा का द्वीप अमरीका के फ्लोरिडा नामक स्थान से केवल १०० मील दूर है। अमरीका कभी यह सहन नहीं कर सकता कि उसका सबसे बड़ा विरोधी उससे १०० मील पर पैर जमा ले। अमरीका ही नहीं, अमरीका महाद्वीप के कई अन्य राज्य भी इसे पसंद नहीं करते। इसलिए अमरीका में, तथा उस महाद्वीप के कई अन्य राज्यों में, कैस्ट्रो का कड़ा विरोध होने लगा।

क्यूबा में भी बहुत से लोग कैस्ट्रो और कम्यूनिस्टों के विरोधी हैं। जिस प्रकार स्पेनियों के विरुद्ध १८७०-९५ में क्यूबा के देशभक्तों ने अमरीका में शरण लेकर स्पेन के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की थी, उसी प्रकार ये कैस्ट्रो-विरोधी क्यूबा-निवासी अमरीका में भाग आये हैं और वहाँ रहकर वे कैस्ट्रो के विरुद्ध युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। जिस प्रकार अमरीकन सरकार की सहानुभूति १८९० में स्पेन से लड़नेवालों के साथ थी, उसी प्रकार इस बार भी कैस्ट्रो के विरोधियों के साथ उनकी सहानुभूति है। तब भी अमरीका ने विद्रोहियों की सहायता की थी, और अब भी वह उनकी सहायता कर रहा है।

गत मास इन विद्रोहियों ने क्यूबा पर आक्रमण किया। स्पष्ट है कि बिना अमरीकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता के ये विद्रोही क्यूबा पर आक्रमण नहीं कर सकते थे। किंतु उन्हें कैस्ट्रो की सरकार को उलटने में सफलता नहीं मिली, और विद्रोह असफल रहा। इसी बीच कुछ दिनों तो ऐसा मालूम होने लगा कि रूस खुलकर कैस्ट्रो की, और अमरीका विद्रोहियों की सहायता करने लगेंगे। यदि ऐसा होता तो विश्वयुद्ध का खतरा हो जाता। किंतु विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया, और अमरीका ने विद्रोहियों की खुलकर सहायता न की। यदि अमरीका खुलकर सहायता करता तो विद्रोह इतना शीघ्र दबाया न जा सकता। जो भी हो, सम्प्रति यह संकट टल गया है। किंतु क्यूबा की स्थिति ऐसी है कि वहाँ रूस की मौजूदगी अमरीका कभी सहन नहीं कर सकता। इसलिए जब तक कैस्ट्रो की नीति कम्यूनिस्ट-पोषक है तब तक अटलांटिक के इस क्षेत्र में शांति नहीं हो सकती।

पंजाबी विश्वविद्यालय—पंजाब में इस समय दो विश्वविद्यालय हैं। पहिला पंजाब विश्वविद्यालय है जो अविभाजित पंजाब के पंजाब विश्वविद्यालय का भारतीय उत्तराधिकारी है। दूसरा विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र में है। वह संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हुआ है किंतु धीरे-धीरे उसमें भी अन्य विषय पढ़ाये जाने लगे हैं। पंजाब में "पंजाबी" विश्वविद्यालय की माँग बहुत दिनों से है। किसी समय पटियाला के महाराज पटियाला में उसे बनाने की बात सोच रहे थे। किन्तु इधर जब पंजाबी सूबे की माँग होने लगी तब शायद वहाँकी सरकार ने पंजाबी विश्वविद्यालय स्थापित करने की अपेक्षाकृत छोटी माँग को स्वीकार करना ठीक समझा, और उसकी योजना बनाने तथा सुझाव देने के लिए एक आयोग बना दिया। इस आयोग का प्रतिवेदन प्रकाशित हो गया है। उसने पंजाबीभाषी क्षेत्र के केन्द्रीय स्थान पटियाला में उसकी स्थापना करने की सिफारिश की है, तथा विश्वविद्यालय की रूपरेखा भी बना दी है। उसकी एक सिफारिश यह है कि इस पंजाबी विश्वविद्यालय को दूसरे पंजाबी कालिजों को मान्यता देने का अधिकार होना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि कालान्तर में पंजाबी क्षेत्र के स्नातक महाविद्यालय उससे संबद्ध हो जायँगे। इस विश्वविद्यालय का मुख्य ध्येय "पंजाबी भाषा और साहित्य का विकास" है। इसलिए इसमें पंजाबी भाषा के कोश, पंजाबी भाषा के विश्वकोश, दूसरी भाषाओं की पुस्तकों का पंजाबी में अनुवाद करने, पंजाबी भाषा की नयी और पुरानी पुस्तकों के प्रकाशन आदि के अलग-अलग विभाग स्थापित करने का सुझाव दिया गया है। कुछ लोगों का कहना है कि यह विश्वविद्यालय केवल पंजाबी भाषा पढ़ाने और उपर्युक्त कार्य करने में अपनी शक्ति लगावे। उनकी सम्मति है कि उसे अपनी शक्ति और धन का अपव्यय साधारण विश्वविद्यालयों की तरह सब विषयों को पढ़ाने में न करना चाहिए। किन्तु आयोग ने इसके विरुद्ध मत दिया है। उसका कहना है कि यदि विश्वविद्यालय में विभिन्न विषयों की शिक्षा पंजाबी के माध्यम से दी जायगी तो पंजाबी साहित्य में विभिन्न विषयों का साहित्य शीघ्र तैयार हो सकेगा और पंजाबी पारिभाषिक शब्दावली बनाने और चलाने में भी सुविधा होगी। उसकी सम्मति का आशय यह है कि यदि पंजाबी के माध्यम से उच्च शिक्षा दी जाने लगे तो पंजाबी में उच्च साहित्य सरलता से तैयार हो सकेगा, और विश्वविद्यालय रूपी प्रयोगशाला में पंजाबी भाषा के पारिभाषिक शब्द आसानी से और ठीक ढंग से ढल सकेंगे। और सबसे बड़ी बात यह होगी कि वे शब्द व्यवहार (शिक्षण) में और साहित्य में चलने लगेंगे। आयोग की यह सम्मति बड़ी महत्त्वपूर्ण है। हमारा अनुभव भी यही है कि जब तक विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम नहीं होती तब तक हिंदी में उच्च स्तर का साहित्य विकसित नहीं हो सकता। इस शिकायत को दूर करने के लिए कि हिंदी में उच्च स्तर की वैज्ञानिक पुस्तकें नहीं हैं, हिंदी में कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित की गयीं। किन्तु विश्वविद्यालयों में अँगरेजी माध्यम होने के कारण वे व्यर्थ हो गयीं क्योंकि जिन्होंने उन विषयों को अँगरेजी के माध्यम से पढ़ा है वे हिंदी के माध्यम से उन्हें समझ ही नहीं सकते। उदाहरण के लिए, हिंदी साहित्य-सम्मेलन ने स्वर्गीय श्री अवध उपाध्याय से उच्च गणित की एक बड़ी प्रामाणिक पुस्तक तैयार कराकर उसे प्रकाशित किया। किन्तु उसकी पाँच-छः प्रतियाँ भी शायद नहीं बिकीं। विश्वविद्यालयों में हिन्दी को माध्यम बनाये बिना हिंदी में उच्च पाठ्य या सामान्य पुस्तक प्रकाशित करना व्यर्थ है। वह उल्टी गंगा बहाने के समान अव्यावहारिक है। अतएव हम आयोग की सिफारिशों को बहुत उचित और व्यावहारिक समझते हैं। उसने कहा है कि आरंभ में पाँच वर्ष तक तो सभी विषयों की शिक्षा का माध्यम अँगरेजी हो, किन्तु उसके बाद पंजाबी भाषा के माध्यम से एक के बाद दूसरे विषय पढ़ाये जाने लगें। यह संक्रान्ति-काल—अँगरेजी माध्यम से पंजाबी माध्यम का—जितना कम हो उतना ही अच्छा है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब यह प्रस्तावित विश्वविद्यालय ऐसे अधिकारियों और प्राध्यापकों को नियुक्त करे जो अँगरेजीपरस्त न हों।

पंजाबी विश्वविद्यालय के आयोजक अपने विश्वविद्यालयों में पाँच वर्ष के बाद ही उस पंजाबी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का विचार कर रहे हैं जो भारतीय भाषाओं में प्रायः सबसे अधिक पिछड़ी हुई है। हिंदी अपेक्षाकृत अधिक उन्नत और समृद्ध है, किन्तु हमारे विश्वविद्यालयों और सरकारों में अँगरेजीपरस्तों का इतना अखंड साम्राज्य है कि शिक्षा का माध्यम तो दूर, वे हिंदी में अपने कार्यालय की सूचना निकालना भी अनुचित समझते हैं। सिनेट, कोर्ट, कार्यकारिणी, फैकल्टियों आदि की कारवाई वे अँगरेजी में ही करने में शान समझते हैं। हिंदी में बोलने में उनका कंठ अवरुद्ध हो जाता है। जब तक हमारे विश्वविद्यालयों पर अँगरेजीपरस्तों का अधिकार रहेगा तब तक उनमें हिंदी प्रवेश नहीं कर सकती—चाहे हिंदी समृद्ध हो या असमृद्ध। इस तथ्य को श्रीलंकावालों ने समझा। वहाँ कोई विश्वविद्यालय नहीं था। स्वतंत्रता के बाद जब उन्होंने वहाँ विश्वविद्यालय बनाया तब सिंहाली भाषा को माध्यम बनाना निश्चित्त किया। किन्तु वे जानते थे कि अँगरेजीदाँ विद्वान् को यदि उसका उपकुलपति बनाया गया तो वह सिंहाली में काम न करेगा। अतएव वहाँकी सरकार ने उसका कुलपति सिंहाली भाषा के एक ऐसे महान् विद्वान् को बनाया जो अँगरेजी से सर्वथा अपरिचित हैं। कितने ही प्राध्यापक भी ऐसे ही नियुक्त किये जो अँगरेजी माध्यम से पढ़ा ही नहीं सकते। अत्तएव वहाँ सब काम सिंहाली में होता है और जानकार लोगों का कहना है कि वह विश्वविद्यालय बहुत अच्छा चल रहा है। किन्तु हमारे यहाँ तो योग्यता और अक्ल अँगरेजी ज्ञान की तराजू पर तौली जाती है। जो अँगरेजी नहीं जानता वह

हमारे विश्वविद्यालयों की सीमा के पास भी नहीं फटकने पाता। यहाँ हिन्दी का न जानना गुण है। फिर भी हमारे भोले देशवासी इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि इस देश में हिंदी में न सरकारी काम होता है और न विश्वविद्यालयों में शिक्षा ही दी जाती है! हम आशा करते हैं कि पंजाबी के भक्त इस विषय में सतर्क रहेंगे और अपने पंजाबी विश्वविद्यालय की वह हालत न हो जाने देंगे जो हिंदी के तथाकथित राज्य उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों की है।

अंतरिक्ष में मनुष्य––मनुष्य की एक कामना––अंतरिक्ष में पहुँचने की––अंत में सफल हो गयी। वह सृष्टि का रहस्योद्घाटन करने के लिए अंतरिक्ष में उड़कर चन्द्रमा, मंगल, शुक्र आदि ग्रहों में पहुँचना चाहता है। उसे पृथ्वी ने जकड़ रखा है, किंतु उसमें उड़ने की, ऊपर जाने की, दुर्दान्त अभिलाषा है। 'नवीन' ने कहा था––

पंख नोच पटका मानव को किसी खिलाड़ी ने धरती पर,
पर होती रहती है उसके अंतर में पंखों की फर-फर।
निगड़बद्ध मानव के युग पद, पाशबद्ध मानव के युग भुज,
और सतत आक्रांत किये है उसे एक अभिशाप ताप रुज,
जिसे मेदिनी ने जकड़ा है, तुच्छ समझता जिसे प्रभंजन,
और नियति ने डाल दिये हैं जिसके रोम-रोम में बंधन,
उसी द्विपद को नील गगन ने भेजा है उड्डीन-निमंत्रण

× × ×

और नींद में भी तो उसने देखे उड़ने के ही सपने
औ' सन्तत विचरण में भी वह रहा खोजता डैने अपने!

और लाखों वर्षों बाद मनुष्य को वे 'डैने' मिल गये। मनुष्य की कल्पनातीत आकांक्षा सफल हुई। गत मास––१२ अप्रैल को––सोवियत सरकार ने यह महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि रूसी वैज्ञानिकों ने एक कृत्रिम उपग्रह में मनुष्य को बैठाकर उसे आकाश में छोड़ा। वह उपग्रह पृथ्वी की एक पूरी परिक्रमा करने के बाद रूस में उतार लिया गया। उस पहिले व्यक्ति का नाम, जिसने सर्वप्रथम अंतरिक्ष की यात्रा की, मेजर गगारिन है। उपग्रह का नाम वास्टॉक (पूर्व) रखा गया था, और उसने पृथ्वी की एक परिक्रमा अंडाकार वृत्त में ८९.१ मिनिट में की। वह पृथ्वी से कम से कम १७५ किलोमीटर (लगभग ११० मील) और अधिक से अधिक ३०२ किलोमीटर (प्रायः १९० मील) दूर––आकाश में––परिक्रमा कर रहा था। पृथ्वी से इतनी दूर अंतरिक्ष में, जब पृथ्वी की आकर्षण शक्ति प्रायः समाप्त हो जाती है और मनुष्य में भार (वजन) नहीं रह जाता, उस समय उसे कैसा मालूम होता है? इसका उत्तर मेजर गगारिन ही दे सकते हैं। अवश्य ही इतनी ऊँचाई पर हवा नहीं होती, और मेजर गगारिन को साँस लेने, साँस से निकली दूषित वायु को उस बंद कोठरी से निकालने, भारहीनता से होनेवाली असुविधाओं के परिहार और अंतरिक्ष में व्याप्त घातक किरणों से बचाने का रूसी वैज्ञानिकों ने पूरा प्रबंध किया होगा, तभी मेजर गगारिन इस भयंकर यात्रा से सकुशल लौट आये। यही नहीं, उनकी बंद कोठरी में कुछ ऐसा प्रबंध भी किया गया होगा कि वे बाहर देख सकें, क्योंकि उन्होंने इस बात का वर्णन किया है कि इतनी ऊँचाई, और इतनी दूरी से पृथ्वी कैसी मालूम होती है। उनका कहना है कि वहाँ से पृथ्वी की गोलाई स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। इस उपग्रह में रेडियो यंत्र लगे थे जिनके द्वारा मेजर गगारिन पृथ्वी से संदेश प्राप्त करते, और अपना समाचार भेजते थे।

इस आश्चर्यजनक उड़ान की दो महत्त्वपूर्ण बातें हमारा ध्यान विशेषरूप से खींचती हैं। एक तो यह कि इसमें पहिली बार मनुष्य सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में जाकर सकुशल लौट आया, और उसके शरीर या मस्तिष्क पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा, और दूसरी बात यह कि रूसी वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष संचार में इतनी उन्नति कर ली है कि वे इतने विशालकाय उपग्रहों या प्रक्ष्येपों को इच्छित स्थान पर, जब चाहें तब, उतार सकते हैं। याद रहे कि इस प्रक्ष्येप का वजन साढ़े चार टन था। यह आश्चर्यजनक बात भी उल्लेखनीय है कि रूस ने प्रक्ष्येपों को दागने की कला में इतनी उन्नति कर ली है कि वे इतने भारी प्रक्ष्येपों को आकाश में सैकड़ों मील दूर दाग सकते हैं।

रूस की यह ऐतिहासिक सफलता स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। मानव-इतिहास में यह वास्तव में अभूतपूर्व घटना है। मनुष्य का सहस्राब्दियों का स्वप्न पूरा हुआ। मेजर गगारिन की इस उड़ान-यात्रा ने मनुष्य की चंद्रलोक और मंगलग्रह आदि की यात्रा को अब कल्पनालोक से निकालकर संभावना के क्षेत्र में लाकर खड़ा कर दिया है। यह अंतर्ग्रहीय यात्रा की व्यावहारिक भूमिका है।

इस अभूतपूर्व सफलता का श्रेय रूस को मिला, और यह उचित भी था क्योंकि रूस ने इस क्षेत्र में बड़ी लगन से काम किया है और इन प्रयोगों में अपार धन व्यय किया है। मेजर गगारिन ने यह साहसिक यात्रा करके, जिसमें तनिक सी भूल होने पर उनकी जीवन लीला समाप्त हो जाती, जिस वीरता और साहस का परिचय दिया है उसके लिए उन्हें जो सम्मान दिया जाय वह कम है। किंतु इस सफलता का वास्तविक श्रेय उन वैज्ञानिकों को है जिन्होंने इस प्रक्ष्येप को बनाया, इतने भारी प्रक्ष्येप को दागने की सफल विधि का आविष्कार किया तथा प्रक्ष्येप को इच्छित स्थान पर उतारने की इतनी सफल और सटीक तरकीब निकाली। मानव जाति वास्तव में उन वैज्ञानिकों की आभारी है। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिन वैज्ञानिकों के अद्भुत मस्तिष्कों ने ये वास्तविक अर्थ में आश्चर्यजनक यंत्र बनाये वे अज्ञात हैं। उन्हें कोई नहीं जानता। किंतु उनके बनाये अंतरिक्ष यान में यात्रा करनेवाला व्यक्ति आज संसार में सर्वाधिक समादृत और प्रसिद्ध व्यक्ति है। इसका कारण समझ में नहीं आता कि जो रूसी सरकार अंतरिक्ष यात्री मेजर गगारिन का इतना प्रचार कर रही है, वह उन महान् वैज्ञानिकों के नाम तक क्यों नहीं लेती जिन्होंने वे अद्भुत यंत्र बनाये।

प्रक्षेपों का आविष्कार सबसे पहिले जर्मन वैज्ञानिकों ने किया। द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी ने बाल्टिक समुद्र के किनारे, पूर्वी जर्मनी के पीनमुंड नामक स्थान में प्रक्षेप अस्त्र बनाने की एक विशाल प्रयोगशाला बनायी थी जिसमें जर्मनी के चोटी के भौतिक विज्ञान और गणित के वे विशेषज्ञ, जिन्होंने अंतरिक्ष में जानेवाले प्रक्षेपों के बनाने का विचार किया था, एकत्र कर दिये गये थे। युद्ध समाप्त होने से पहिले उन्होंने वी--१ और वी--२ नामक प्रक्षेप तैयार भी कर लिए थे, और पहिली बार मनुष्य को अपने अस्त्र अंतरिक्ष तक भेजने में सफलता हुई थी। जब जर्मनी की हार होने लगी तब पूर्व से रूसी सेना, और पश्चिम से अमरीकन और अँगरेजी सेनाएँ बर्लिन की ओर बढ़ने लगीं। रूसियों, अमरीकनों और अँगरेजों को अपने गुप्तचरों से इन प्रक्षेपों के प्रयोग का समाचार मिल गया था। दोनों ही पक्ष उन वैज्ञानिकों को पकड़ना चाहते थे। चूँकि रूसी पूर्व से बढ़ रहे थे, उन्होंने पीनमुंड पर अधिकार कर लिया और सारी जर्मन प्रक्षेप प्रयोगशाला को तथा जर्मन वैज्ञानिकों को पकड़ कर वे रूस ले गये, और उन्होंने उस प्रयोगशाला को रूस के भीतरी भाग में स्टैलिनग्राड के पास क्यूस्तिन्यान नामक स्थान में स्थापित किया। पकड़े हुए जर्मन वैज्ञानिक भी वहीं भेज दिये गये। इस प्रकार जर्मनों ने प्रक्षेप संबंधी जो आविष्कार किये थे और जिन वैज्ञानिकों ने उनका आविष्कार किया था उनमें से ७५ प्रतिशत उनके हाथ लग गये। रूस ने जर्मन वैज्ञानिकों को पूरी सुविधाएँ दीं, उनके प्रयोगों पर करोड़ों ही नहीं, अरबों रूबल व्यय किये। रूसी वैज्ञानिक भी वहाँ काम करने लग गये थे। उन्होंने भी प्रक्षेप विद्या सीखी और उसमें उन्नति की। इस प्रकार जर्मनों के मूल्यवान् आविष्कार अनायास रूस के हाथ में पड़ गये और वह प्रक्षेपों की दौड़ में औरों से आगे हो गया। अमरीकनों ने भी प्रयत्न किया कि उन्हें भी उन आविष्कारों का पता लग जाय और प्रक्षेप-विशेषज्ञ जर्मन वैज्ञानिक उन्हें मिल जायँ। ब्रान नामक एक चोटी का वैज्ञानिक रूसियों से बचने के लिए पीनमुंड से भाग निकला था और अपने साथ प्रायः डेढ़ सौ कारीगरों को भी भगा ले गया था। उसने अमरीकनों को आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार अमरीकनों को दो-एक जर्मन विशेषज्ञ ही मिल पाये। प्रयोगशाला उनके हाथ न लगी।

रूस की प्रक्षेप संबंधी सफलता में जर्मन विशेषज्ञों और रूसी वैज्ञानिकों को कितना श्रेय है, इसका पता लगना असंभव है। जो भी हो, यदि इन आविष्कारों में अधिकतर मस्तिष्क जर्मनों का ही हो, तब भी यह तो मानना पड़ेगा कि यदि रूस सरकार इस विषय में इतनी रुचि न लेती, वैज्ञानिकों को पूरे और मनमाने साधन न देती, रुपये को पानी की तरह न बहाती, तथा इस विद्या का महत्त्व न समझती तो जर्मन वैज्ञानिकों का ज्ञान निरर्थक हो जाता। इस बीच रूसी वैज्ञानिक भी इस विद्या में पारंगत हो गये और आज उनके कारण जर्मन मस्तिष्क पर आधारित यह रूसी विज्ञान संसार में सबसे आगे है।

तवायफ संघ--कहा है कि कलियुग में संघशक्ति की बड़ी महिमा है। आज सब वर्ग ऊपर उठने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस देश में 'जातिवाद' को सब लोग कोसते हैं, किन्तु शायद ही कोई तथाकथित पिछड़ी जाति न हो जो अपने को उच्चवर्ण प्रमाणित करने का प्रयत्न न करती हो। हमारे एक शायर मित्र ने इस पर एक बार कहा था :

> **आज हर क़ौम है मसरूफ़ तरक़्क़ी की तरफ़**
> **जो भी पिछड़े हैं, वो मिल के सभा करते हैं,**
> **एक-जा हो के, बहम जोश मुहब्बत के साथ**
> **पास रिजोल्यूशन ये किया करते हैं :**
> **'हम थे बिरहमन', कोई कहता है, 'हम थे छत्री'**
> **"गुन, कर्म और स्वभाव अपना बजा करते हैं**
> **गिरे हम दौर-ए-जमाने से, जमाना गुजरा,**
> **अब तो हम फिक्र उठने की किया करते हैं।"**

इसलिए हमें यह समाचार पढ़कर कोई आश्चर्य नहीं हुआ कि गत मास दिल्ली में "आल-इंडिया तवायफ कान्फरेंस" का जलसा बड़ी धूमधाम से हुआ। आश्चर्य की बात तो यह थी कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के चौदह वर्ष बाद तक इन लोगों (या लुगाइयों) ने अपना संघ नहीं बनाया। "तवायफ" शब्द उन्हें प्रतिष्ठित नहीं मालूम हुआ; और इसलिए पाँच घंटे की गर्मागर्म बहस के बाद कान्फरेंस ने अपनी संस्था का नाम "आल-इंडिया डेरादार कलाकार संघ" रखा। बर्तनों में जो स्थान 'तसले' का है, शब्दों में वही स्थान 'कलाकार' शब्द का है। वह बड़ा पतितपावन है। वह बेचारा सब लोगों की आवश्यकता की पूर्ति करके समाज में उन्हें 'प्रतिष्ठा' प्रदान कर देता है। उसका सद्यः फल यह हुआ कि दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने, अपने सभापति श्री ब्रह्मप्रकाश की अध्यक्षता में, 'डेरादार' प्रतिनिधियों के सम्मान में कान्स्टिट्यूशन क्लब में एक "टी-पार्टी" दे डाली। इस प्रकार इन 'डेरादारियों' के संघ पर दिल्ली कांग्रेस कमेटी ने "प्रतिष्ठित" होने की मानों सील-मोहर लगा दी। दलित वर्ग का उद्धार कांग्रेस का एक मुख्य कर्तव्य है। अतएव उसने जो किया वह ठीक ही किया। दिल्ली में साहित्यिक सम्मेलन ही नहीं, कई प्रकार के अन्य सांस्कृतिक सम्मेलन भी होते रहते हैं, किंतु हमें याद नहीं पड़ता कि हमने कभी कोई ऐसा समाचार पढ़ा हो कि प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने उनके प्रतिनिधियों के सम्मान में कभी ऐसी चायपार्टी दी हो।

इस कान्फरेंस ने कई प्रस्ताव स्वीकार किये। जब सरदार पटेल सूचना-मंत्री थे, तब उन्होंने आज्ञा निकाल दी थी कि रेडियो में "तवायफों" को कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए न बुलाया जाय। इस कान्फरेंस ने भारत सरकार से प्रार्थना की है कि उनके ऊपर से यह रोक उठा ली जाय, और उन्हें आकाशवाणी के कार्यक्रमों में भाग

लेने की अनुमति दी जाय। उसने यह भी प्रस्ताव किया कि सरकार अपनी ओर से वैसे 'ओपेरा' स्थापित करे जैसे योरप में हैं, जिनमें संगीत-नाटकों का अभिनय किया जाता है। इन ओपेराओं में 'डेरादारियों' को रोजी कमाने का अवसर दिया जाय। यह युग "कोआपरेटिवों" का है। लोगों की धारणा है कि हमारी सरकार "कोआपरेटिवों" के नाम पर सब कुछ करने को तैयार है। इस कान्फरेंस ने यह भी प्रस्ताव किया कि सरकार उनकी संस्था को "औद्योगिक कोआपरेटिव" स्थापित करने में सहायता दे जिससे वे अपनी जीविका का दूसरा साधन खोज सकें। आजकल 'निबंधन' (रजिस्ट्रेशन) का भी फैशन है। श्री नंदा के साधु समाज ने प्रस्ताव किया था कि भारत में साधुओं का 'निबंधन' किया जाय। 'महाजनों' के दिखलाए हुए 'पंथ' का अनुसरण करते हुए इस संघ ने भी मुजरा और नाच करनेवाली कलाकारिनों के निबंधन करने का सुझाव दिया है। 'डेरादार कलाकारिनों' को आधुनिक ढंग की सभा-संस्थाओं के परिचालन का अनुभव नहीं है। इसलिए दिल्ली के सात समाजसेवियों की एक परामर्श समिति बनायी गयी है जो इस संघ का मार्गप्रदर्शन करेगी। 'डेरादारों' या तवायफों का मुख्य पेशा 'नाच-मुजरा' था। पिछले साठ-सत्तर वर्ष के समाज-सुधार सम्बन्धी प्रयत्नों ने उसे समाप्तप्राय कर दिया। जो कुछ बच रहा था, उसे सिनेमा और रेडियो ने नष्ट कर दिया। इधर जो कानून बने, उनसे इनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति और भी बिगड़ गयी। इनकी संख्या अब भी काफी है। समाजके हित के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें गंदे वातावरण से हटाकर उनका सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नयन किया जाय। संतोष की बात है कि इनकी समस्या की ओर लोगों का ध्यान जाने लगा है, और अब प्रतिष्ठित लोग भी इनकी समस्याओं में रुचि लेने लगे हैं। इसका प्रमाण यह है कि दिल्ली की इस तवायफ कान्फरेंस का उद्घाटन श्रीमती दुर्गाबाई ने किया, और हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्री अमृतलाल नगर ने इनकी समस्या पर "ये कोठेवालियाँ" नामक तथ्यपूर्ण पुस्तक लिखी है जो गत मास ही प्रकाशित हुई है। इससे स्पष्ट है कि अब लोग गंभीरतापूर्वक इनकी समस्याओं पर विचार करने लगे हैं, और ये स्वयं भी अपना सुधार करना चाहती हैं। इस स्थिति में सम्भव है कि इस वर्ग की एक बड़ी संख्या का सामाजिक उद्धार हो जाय।

केंद्रीय सरकार का एक अभिनंदनीय कार्य——राष्ट्रसंघ केवल राजनीतिक समस्याओं पर ही विचार नहीं करता, वह मनुष्य की सभी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करता है। इसके लिए उसने अनेक संस्थाएँ बनायी हैं। उनमें से एक संस्था का नाम है यूनाईटेड नेशन्स ऐडयूकेशनल, साइंटिफिक एण्ड कलचरल आर्गेनाइजेशन (राष्ट्रसंघ की शिक्षा, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संस्था)। अँगरेजी नाम के आदि अक्षरों को लेकर इस लम्बे नाम का संक्षिप्त नाम यूनेस्को (unesco) प्रचलित हो गया है। भारत भी इस संस्था का सदस्य है। भारत-सरकार को यह सलाह देने के लिए कि भारत यूनेस्को के साथ किस प्रकार सहयोग करे, सरकार ने "यूनेस्को के साथ सहयोग करने का भारतीय राष्ट्रीय आयोग" (इंडियन नेशनल कमीशन फॉर कोऑपरेशन विद दी यूनेस्को) बना दिया है। इस आयोग ने कुछ दिनों पहिले इस बात पर चिंता प्रकट की थी बहुत से व्यवसायी रुपया कमाने के लिए ऐसे सनसनीदार और कुरुचिपूर्ण चलचित्र (फिल्म), चित्र, गीत, पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें निकालते हैं जिनसे राष्ट्रों के "आधारभूत सांस्कृतिक मानदंडों में गिरावट आती है।" उसने सरकार को सलाह दी थी कि भारत में ऐसी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और चलचित्रों के आयात पर रोक लगानी चाहिए और ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि इस देश में वे तैयार न हो सकें। हम स्वयं लिख चुके हैं कि वे विदेश से आनेवाली कितनी ही पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ सांस्कृतिक दृष्टि से आपत्तिजनक हैं। उनका आयात रोकना चाहिए। उनकी खरीद में भारत के करोड़ों रुपये विदेश चले जाते हैं, और जब आवश्यक वस्तुओं के लिए हमें विदेशी मुद्रा की इतनी कमी है तब इन अवांछनीय पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को आने देना, और उनके लिए करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष विदेश जाने देना, अत्यंत आपत्तिजनक है। हमें यह जानकर संतोष हुआ कि इस आयोग की सिफारिश पर भारत-सरकार ने ३१ विदेशी पत्र-पत्रिकाओं का आयात रोक दिया है। किन्तु अभी कितनी ही पत्र-पत्रिकाएँ और भी हैं जिन पर रोक लगायी जानी चाहिए। पुस्तकों का आयात भी अभी अंधाधुंध हो रहा है, और अधिकांश पुस्तकें पाश्चात्य ढंग के अपराधों का परिचय देती हैं। उनका जो नैतिक कुप्रभाव पड़ता है, वह स्पष्ट है। साथ ही इन नैतिक विष की पुड़ियों के लिए हमारा करोड़ों रुपया विदेश चला जाता है, और इन पर मूल्यवान विदेशी मुद्रा व्यय कर देने के कारण हम ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें पर्याप्त संख्या में नहीं मँगा सकते। सरकार ने अवांछनीय साहित्य पर रोक लगाने का श्रीगणेश कर दिया है। इसके लिए हम उसे धन्यवाद देते हैं, किन्तु अभी इस दिशा में बहुत कुछ काम करने को शेष है। हम आशा करते हैं कि सरकार अवांछनीय पुस्तकों के आयात के सम्बन्ध में शीघ्र ही स्पष्ट नीति बनाएगी और उसका कड़ाई से पालन करेगी। अभी तक इस प्रकार के साहित्य को रोकने के लिए कोई विशेष अधिनियम (कानून) नहीं है। सरकार भारतीय दंड विधान, सी कस्टम्स ऐक्ट (समुद्रशुल्क अधिनियम) और इंडियन पोस्ट आफिस ऐक्ट, यंग पर्सन्स हार्मफुल पब्लिकेशन ऐक्ट (किशोरों के लिए हानिकारक प्रकाशन अधिनियम) का सहारा लेकर इन अवांछनीय प्रकाशनों पर रोक लगाती है। किन्तु अच्छा हो यदि अवांछनीय चलचित्रों, चित्रों,

पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के आयात और इस देश में प्रकाशन की रोक के लिए एक विशेष अधिनियम बनाया जाय। सरकार ने पत्र-पत्रिकाओं की रोक आरंभ कर दी है, किन्तु अवांछनीय पुस्तकों और चलचित्रों के विरुद्ध भी उसे शीघ्र कार्यवाही करनी चाहिए।

पं० दशरथप्रसाद द्विवेदी का स्वर्गवास—गत मास गोरखपुर में पं० दशरथप्रसाद द्विवेदी का स्वर्गवास हो गया। हिंदी जगत् में वे 'स्वदेश' नामक समाचार पत्र के सम्पादक और संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध थे। द्विवेदीजी ने जीवन का आरंभ बी० एन० डब्लू० (अब उत्तर पूर्वी) रेलवे की एक साधारण नौकरी से किया था, किन्तु महात्माजी के आह्वान पर उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र देकर देश-सेवा का व्रत ले लिया। अपने अंचल में जनजाग्रति के लिए राष्ट्रीय पत्र की आवश्यकता समझकर उन्होंने 'स्वदेश' नाम का समाचार-पत्र निकाला जिसने उस क्षेत्र में बड़ा काम किया। किन्तु पत्र निकालने के पहिले वे कानपुर के 'प्रताप' में रहे, और वहाँ उन्होंने राष्ट्रीय पत्रकारिता की नीति और विधि को स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में रहकर सीखा। गोरखपुर में जब हिंदी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष उनके पत्रकारिता के गुरु विद्यार्थी जी चुने गये, तब उन्होंने उसे सफल बनाने में बड़ा प्रयत्न किया था। वे गांधीजी के अनन्य भक्त थे और उनसे बराबर पत्र-व्यवहार किया करते थे। हिंदी से उन्हें प्रगाढ़ प्रेम था, किन्तु हिंदी और राष्ट्रीयता उनके लिए पर्यायवाची थीं। गोरखपुर तथा आस पास के क्षेत्रों में हिंदी के प्रचार और राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने में पिछली पीढ़ी के दो गोरखपुरियों का प्रमुख हाथ था। एक थे स्वर्गीय पं० गौरीशंकर मिश्र जो वकालत छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े थे और उस समय प्रान्तीय कांग्रेस समिति के मंत्री थे जब त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू उसके अध्यक्ष थे। दूसरे थे पं० दशरथ-प्रसाद द्विवेदी। उत्तर प्रदेश के सरयू के पार के जिलों में, जो उस समय पिछड़े हुए थे, राष्ट्रीय आंदोलन के उस आरंभिक काल में, इन दो महानुभावों ने राष्ट्रीय भावना का प्रचार किया। द्विवेदीजी शक्तिशाली लेखक थे और उनके पत्र ने हिंदी के प्रचार के साथ-साथ जनता में राजनीतिक चेतना भी उत्पन्न की। इधर कुछ दिनों से उनकी आँखों की ज्योति बहुत मंद हो गयी थी। उनके पास राजनीतिक नेताओं और साहित्यिकों के पत्रों का बहुत बड़ा संग्रह था। उनकी सहायता से, तथा स्वदेश के पुराने अंकों से, द्विवेदीजी के जीवन, तथा उस क्षेत्र के तत्कालीन राजनीतिक इतिहास का प्रचुर मसाला मिल सकता है। द्विवेदीजी के निधन से इस क्षेत्र की एक ऐतिहासिक कड़ी टूट गयी। हम उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

ताजमहल देखनेवालों पर कर लगाने का प्रस्ताव—समाचार-पत्रों से मालूम हुआ कि भारत-सरकार का पुरातत्व विभाग ताजमहल देखनेवालों पर प्रवेश शुल्क लगाने का विचार कर रहा है। हमारी सरकार को इस समय कर लगाने का "दौरा" आया हुआ है। केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों में इस समय जनता से अधिक से अधिक रुपया वसूल करने की होड़ लगी हुई है। "कल्याण-कारी" सरकार होने का दावा करनेवाली सरकारें जनता पर करों का बोझ लादती चली जाती हैं। इन करों का जो प्रभाव मध्यम और नीचे की श्रेणियों के लोगों पर पड़ रहा है, उसका अध्ययन आवश्यक है। इन करों के कारण जनता को पौष्टिक भोजन, स्वस्थ आवास और सांस्कृतिक मनोरंजन दुर्लभ हो गये हैं। ताजमहल में प्रवेश शुल्क लगाना कितने ही लोगों को सांस्कृतिक मनोरंजन और देश की गौरवशाली कला का परिचय प्राप्त करने से वंचित करना है। और यदि आज ताजमहल पर शुल्क लगाया गया तो निश्चय ही वह कल ऐतमादुद्दौला, फतेहपुर सीकरी, सिकंदरा, कुतुबमीनार, खजुराहो, साँची आदि पर भी लगाया जायगा। नगरों के धनी व्यक्तियों को तो वह शायद न अखरेगा, किंतु हजारों ग्रामीण और विद्यार्थी इस कर के डर से उसे देखने से वंचित रह जायँगे और ये ही वे लोग हैं जिन्हें भारत के गौरवशाली अतीत के दर्शनों से वास्तविक शिक्षा और प्रेरणा मिलती है। एक ओर तो सरकार 'सांस्कृतिक' उत्थान का ढोल पीटती है और दूसरी ओर इन स्थानों में जाने में बाधा उत्पन्न करती है। अवश्य ही इन स्थानों की देखरेख में व्यय होता है। किंतु यही तर्क सार्वजनिक पार्कों और उद्यानों के लिए भी दिया जा सकता है। यदि ताजमहल में प्रवेश शुल्क उचित है तो सार्वजनिक पार्कों में वह क्यों उचित नहीं है? उनकी देखरेख में भी रुपया लगता है। इन्हें भी प्रवेश शुल्क लगाना चाहिए। इस देश में पार्कों की शुद्ध हवा के लिए भी उसी प्रकार कर लगाया जा सकता है जिस प्रकार सांस्कृतिक महत्त्व के स्थानों में शिक्षा और प्रेरणा लेने के लिए जानेवालों पर उसे लगाने का प्रस्ताव है। पुरातत्व विभाग भारत के 'सांस्कृतिक' मंत्रालय के अन्तर्गत है। हमें आशा है कि पुरातत्व विभाग का यह प्रतिक्रियावादी प्रस्ताव, सांस्कृतिक मंत्रालय अस्वीकार कर देगा।

कश्मीर का शैव शास्त्र (२)

श्री बलजित्नाथ पण्डित

स्वातन्त्र्य सिद्धान्त—वेदान्त आदि शास्त्र अविद्या आदि काल्पनिक वस्तुओं की कल्पना करके उस कल्पना के आधार पर शास्त्रों का निर्माण और तत्त्व का व्याख्यान करते हैं। परन्तु शैव शास्त्र किसी वस्तु की कल्पना का आश्रय नहीं लेता। इस शास्त्र की व्याख्यान-शैली का पहला आधार तो संवेदन है। प्रत्येक जीव को यह संवेदन स्वतः ही होता रहता है कि "मैं हूँ।" यदि मूर्ख से भी मूर्ख से कहिए कि "तू नहीं है", तो भला क्या वह कभी इस बात को मान लेगा? नहीं, कभी नहीं, वह तो दृढ़तम विश्वास से कहेगा कि "मैं हूँ।" तो इस तरह से आत्मा स्वतःसिद्ध है। आत्मा की सिद्धि करनेवाला भी मूर्ख ही है और निषेध करनेवाला भी, क्योंकि जो सदा सिद्ध है, उसकी पुनः सिद्धि करने का क्या प्रयोजन; और जो सदा सिद्ध है उसका निषेध कैसे किया जाये।[१] तो आत्मा है। परन्तु अब प्रश्न यह हो सकता है कि आत्मा क्या है? वह शरीर है या बुद्धि है या प्राण है या और कुछ? यहाँ हमें युक्ति का आश्रय लेना पड़ता है। जाग्रत दशा में हमें प्रायः बुद्धि सहित शरीर के विषय में ही 'अहं' का संवेदन होता है। परन्तु युक्ति से सोचा जाये तो शरीर की अपेक्षा बुद्धि ही वास्तविक 'अहं' है। हम प्रायः कहते और समझते हैं कि 'नव यौवन में यह मेरा शरीर खूब हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर था, परन्तु अब क्षीण और असुन्दर हो गया है।' इस व्यवहार में हम शरीर को वस्त्र, मकान आदि की तरह अपनी एक वस्तु समझते हैं और 'अहं' को इससे भिन्न समझते हैं। इस युक्ति के विषय में यह शंका हो सकती है कि 'मेरा शरीर' ऐसा विचार 'राहु का सिर' इस प्रकार के विचार की तरह काल्पनिक, भेद को मानकर भी किया जा सकता है। अतः इतने से ही शरीर और आत्मा में भेद सिद्ध नहीं हो सकता। तो आप स्वप्न दशा के संवेदन का आश्रय लीजिए। उस दशा में भी 'अहं' का संवेदन होता रहता है, परन्तु शरीर उस संवेदन का आलम्बन नहीं होता। उसका आलम्बन तो अन्तःकरण ही होता है। तो शरीर के बिना भी 'अहं' वहाँ विद्यमान होता है। अतः आत्मा शरीर से उत्तीर्ण है। स्वप्न दशा में अन्तःकरण जागता रहता है और संवेदन का साधन भी बनता रहता है। परन्तु सुषुप्ति की दशा में अन्तःकरण खोया हुआ सा रहता है। उस दशा में अन्तःकरण की सहायता के और उसकी सत्ता के बिना भी 'अहं' का संवेदन तो होता ही रहता है। अतः अहं रूप आत्मा अन्तःकरण से भी उत्तीर्ण कोई सूक्ष्म वस्तु है। वही सूक्ष्म वस्तु स्वप्न में अन्तःकरण तक, और जाग्रत में शरीर तक व्याप्त होकर प्रकाशित होती रहती है।

सुषुप्ति में भी कभी कभी सुख आदि का धीमा सा आभास रहता है, जब जागकर कोई कहता है कि आज बड़े ही सुख की नींद आयी। परन्तु कभी कभी उसका कुछ भी आभास नहीं होता, केवल अभाव का आभास होता है, जब जागकर कोई कहता है कि आज ऐसी नींद पड़ गयी कि कुछ भी पता नहीं रहा। पहले प्रकार की सुषुप्ति में प्राण 'अहं' का आलम्बन बना रहता है और इस सुषुप्ति को संवेद्य सुषुप्ति कहते हैं। दूसरे प्रकार की सुषुप्ति में प्राण का भी लय हो जाता है। तब शरीर अन्तःकरण और प्राण से उत्तीर्ण कोई वस्तु अहं का आलम्बन बनी रहती है। उसी वस्तु को सुख आदि का या अभाव का संवेदन होता रहता है। वह वस्तु, प्रत्येक व्यावहारिक वस्तु से शून्य होती है। अतः उसे शैव शून्य ही कहते हैं। तो अपवेद्य सुषुप्ति में भी आत्मा तो है, चाहे उसे शून्य ही क्यों न कहा जाए। क्योंकि वह शून्य भी तो अपने आप का संवेदन 'अहं' के रूप में करता है। तभी तो जागने पर उस सौषुप्त संवेदन की स्मृति हुआ करती है।

गीत, नृत्य आदि विषयों के आस्वाद के क्षण में, काव्य-नाटक आदि के रस के आस्वाद के क्षण में, काम-सुख के आस्वाद के क्षण में अथवा हर्ष, शोक, क्रोध आदि के अति तीव्र आवेश के क्षण में एक ऐसा संवेदन होता है जिसमें सुषुप्ति

---

१. कर्तरि ज्ञातरि स्वात्मन्यादिसिद्धे महेश्वरे।
अजडात्मा निषेधं वा सिद्धिं वा विदधीत कः ॥२॥
(ई० प्र० १-१-१)

के शून्यरूप अहं का संकोच मिट जाता है और एक सर्वव्यापक से 'अहं' का प्रकाश होता रहता है।[2] उस संवेदन में दृश्यमान प्रपञ्च भी रहता है, शरीर भी रहता है, अन्तःकरण और प्राण भी रहते हैं और सबके होते हुए भी क्षण भर के लिए सभी का परस्पर भेद मिट-सा जाता है। एक अभिन्न और समरस वस्तु का उदय हो जाता है। जैसे समुद्र में मिलकर सभी जल समुद्र ही हो जाते हैं, इसी तरह से सब कुछ उस समरस वस्तु में मिलकर तदाकार जैसा हो जाता है। वह सर्वव्यापक समरस वस्तु ही उस दशा में 'अहं' के संवेदन का आलम्बन बनी रहती है। इस संवेदन का साधन बुद्धि नहीं होती। वैसे तो सुषुप्ति का संवेदन भी बुद्धि के द्वारा नहीं होता। यह चौथे प्रकार का संवेदन तुर्य संवेदन कहलाता है। इस संवेदन का आलम्बन जो वस्तु बनती रहती है, वही वस्तु स्वयं संवेदन की कर्त्री और साधन भी बनी रहती है। यहाँ कर्ता, करण और कर्म तीनों एक हो जाते हैं।

वह वस्तु उस दशा में स्वयमेव अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होती रहती है। उसे वाह्यकरणों या अन्तःकरणों की आवश्यकता नहीं रहती। उस वस्तु को साथ ही अपनी प्रकाशमानता की प्रतीति भी होती ही रहती है। प्रकाश की इस प्रतीति को विमर्श कहते हैं। 'प्रकाश' से यहाँ दीप आदि का जड़ प्रकाश नहीं समझना चाहिए।[3] यह प्रकाश चेतना का प्रकाश होता है। जो जो चेतन है, उसे-उसे अपना आप स्वयं आभासमान रहता है और साथ ही उस आभासमानता की प्रतीति भी उसे रहती ही है। यह आभास ही चेतना का प्रकाश है और प्रतीति ही उसका विमर्श है। प्रकाश कभी विमर्श के बिना नहीं रहता और विमर्श सदैव प्रकाशमान ही रहता है।[4] वस्तुतः विमर्श प्रकाश की आत्मा है और प्रकाश विमर्श की आत्मा है। दोनों समरस भाव में ओत-प्रोत हैं। दोनं परस्पर अभिन्न हैं। वस्तुतः वे दोनों एक ही वस हैं। उसीकी हम दो प्रकार से कल्पना करते हैं। ए प्रकार की कल्पना से उसे प्रकाश, और दूसरे प्रकार कं कल्पना से उसे विमर्श कहते हैं। प्रकाश एक स्थिर वस है। उसका कभी लय या उदय नहीं होता। उसमें सदै प्रतीति की हलचल रहा करती है। यह हलचल ही उसकं प्रकाशता है। यदि प्रकाश में प्रतीति की हलचल नहं होती, तो उसे प्रकाश कहते ही नहीं। यह विमर्श की हलच ही प्रकाश का चैतन्य है। प्रकाश चेतन है और विमर् चैतन्य। पर वस्तुतः चेतन और चैतन्य दोनों एक हैं। सम झाने के लिए यह भेद किया गया है। तो, प्रकाश औ विमर्श की समरसरूप कोई वस्तु तुर्य दशा में 'अहं' के रू में अपना संवेदन अपने आप करती रहती है। उसका संवेद स्वयं अपने आप ही अपनी ही महिमा से होता है। अत वह स्वतन्त्र है। सुषुप्ति में शून्य या प्राण का संवेदन भं उस स्वतन्त्र वस्तु की महिमा से ही होता है। सौषुप् संवेदन की साक्षी वही शुद्ध और सर्वोत्तीर्ण अहंरूप आत्म है। स्वप्न और जाग्रत में अन्तःकरण और शरीर आदि भं उस आत्मा के ही प्रकाश से प्रकाशमान होते रहते हैं औ उसीके विमर्श से विमृश्यमान भी होते रहते हैं। अत शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण, प्राण और शून्य सभी प्रकाश और विमर्शन में परतन्त्र हैं। केवल एक प्रकाशविमर्श क एकाकार समरस वस्तु ही स्वतन्त्र है। उस वस्तु को शै शास्त्र में शुद्ध संवित् कहते हैं। तो फिर यह संवित् ह वास्तविक अहं है। यही आत्मा है। शरीर आदि संवि के भीतर प्रतिबिम्बित होकर ही संवेदन के विषय बन हैं। समस्त विषयरूप प्रपञ्च का भी उसीकी महिम से संवेदन होता है। यदि संविद् रूप आत्मा की सत्ता न होती तो सारा प्रपञ्च अन्धा, बहरा और गूँगा होता, सर्वथा होता ही नहीं। साधारण जीवों के संवेदन के आध पर संविद्रूप आत्मा और उसकी स्वतन्त्रता इस प्रक से युक्ति के द्वारा सिद्ध हो जाती है।

योग की भूमिकाओं पर आरोहण करनेवाले सि जनों को ऐसा संवेदन होता रहता है कि 'यह समस्त प्रपञ्च मेरी अपनी कल्पना के आधार पर खड़ा है। मैंने आ आनन्द की मस्ती की लहरों में लहराते हुए इसकी कल्प की है और कर भी रहा हूँ। यह सब कुछ मेरा विलास

---

२. अतिक्रुद्धः प्रहृष्टो वा किं करोमीति वाऽऽमृशन्।
यावन्वा यत्पदं गच्छेत्तत्र स्पन्दः प्रतिष्ठितः॥
(स्पन्दकारिका २२)

३. आनन्दोऽत्र न वित्तमद्यवत्रैवांगनासंगवद्
दीपार्केन्दुकृतप्रभाप्रकरवन्नैव प्रकाशोदयः॥
(अनुत्तराष्टिका—३)

४. स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजडोपमः॥
(ई० प्र० १-५-११)

और मेरी क्रीडा है।[५] वस्तुतः यह क्रीडा भी मैं ही हूँ। क्रीडा मेरा स्वभाव है। मैं सदा से स्वभाववश सृष्टि स्थिति संहार की क्रीडा करता आया हूँ। इस क्रीडा में अपने ही विलास से एक होता हुआ भी अनेक रूपों में अवभासित होता रहता हूँ। किसी रूप में अपने वास्तविक स्वभाव को भूलता रहता हूँ और किसी रूप में उसे पुनः पहचानता रहता हूँ। इस तरह से मेरी यह दिव्य लीला चली है, चलती है और चलेगी सदा के लिए। मैं स्वयं अभेदमय शिवदशा से भेदमय जीव दशा पर अनन्तरूपों में उतरता ही रहता हूँ और अनन्त ही रूपों में इस जीव दशा से उस शिव दशा पर चढ़ता ही रहता हूँ। सृष्टि, स्थिति, संहार करने के लिए मुझे किसी भी उपादान कारण की अथवा निमित्त कारण की अपेक्षा नहीं।[६] मेरा यह विलास किसी भी साधन या निमित्त के अधीन नहीं। मैं इस विलास के उल्लासन में सर्वथा स्वतन्त्र हूँ। जैसे चाहता हूँ वैसे विलास करता हूँ।

स्पन्द---इस उत्कृष्ट भूमिका के योगियों के संवेदन के आधार पर शैव शास्त्र में निम्न प्रकार की युक्तियों द्वारा तत्त्व का व्याख्यान किया गया है---शुद्ध प्रकाश और शुद्ध विमर्श का समरस रूप शुद्ध संवित्तत्त्व परमार्थतया सत्य वस्तु है। यह जो कुछ भी दीखता है, वस्तुतः उसीके भीतर विद्यमान होता है। उस शुद्ध संवित्तत्त्व में क्लेश, कर्म, विपाक आदि की कोई भी हलचल नहीं होती है। अतः वह प्रशान्त समुद्र जैसा क्षोभ रहित होता है। परन्तु सर्वथा शान्त नहीं होता। सर्वथा शान्ति तो जड़ता या शून्यता होती है, जैसी कि शुद्ध आकाश में हुआ करती है। अतः शुद्ध संवित्तत्त्व आकाश की तरह शान्त, जड़ और शून्य नहीं। उसमें चेतना का स्पन्दन सतत गति से चलता रहता है। यह स्पन्दन स्थूल द्रव्य का जैसा चलनात्म स्पन्दन तो नहीं है। और न यह बुद्धि के सूक्ष्म स्पन्दन की जैसी कोई गति है। यह तो एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म हलचल सी कोई विशेषता होती है। इसका साक्षात्कार योगियों के संवेदन से हो सकता। किसी भाव के अत्यन्त तीव्र आवेश की दशा में साधारण जीव को भी चेतना के स्पन्दन का साक्षात्कार हो सकता है।[७] परन्तु वह स्पन्दन विद्युत् के प्रकाश की तरह क्षण भर ही चमकता है। उस क्षण में बुद्धि भी उस स्पन्दन के ही भीतर विलीन सी होकर पड़ी रहती है। अतः उस क्षण में उसके विषय में कुछ भी विचार नहीं किया जा सकता है। उस स्पन्दन के प्रकाश के क्षण के बीत जाने पर जब बुद्धि पुनः काम करने लग जाती है, तो वह स्पन्दन ही अदृश्य हो गया होता है। उसका एक अत्यन्त धीमा संस्कार-सा मनुष्य के व्यक्तित्व पर पड़ा रहता है। उसीके आधार पर मनुष्य कह सकता है कि वह आवेश का क्षण शान्त होता हुआ भी चेतना के स्पन्दन से युक्त होता है।

---

५. (क) मत्तो भानं त्वन्मयं मन्मयंच,
मत्तश्चैतत् साम्यमेवात्र भाति ।
(शिवजीवदशकम्--९)

(ख) भावानां न च सम्भवोऽस्ति सहजस्त्वद्भाविताभान्त्यमी,
निःसत्या अपि सत्यतामनुभवभ्रान्त्या भजन्तः क्षणम् ।
त्वत्संकल्पज एष विश्वमहिमा नास्त्यस्य जन्मान्यत-
स्तस्मात्त्वं विभवेन भासि भुवनेष्वेकोऽप्यनेकात्मकः ।।
(अनुत्तराष्टिका ५)

(ग) मय्येव भाति विश्वं दर्पण इव निर्मले घटादीनि ।
मत्तः प्रसरति सर्वं स्वप्नविचित्रत्वमिव सुप्तात् ।।
अहमेव विश्वरूपः करचरणादिस्वभाव इव देहः ।
सर्वस्मिन्नहमेव स्फुरामि भावेषु भास्वरूपमिव ।।
(परमार्थसार--४८, ४९)

६. (क) येनोत्कीर्णं विश्वचित्रं स्वभित्तौ,
नानावर्णैश्चित्रितं येन भक्त्या ।
अन्ते स्वस्मिन् नृत्यते येन हृत्वा,
सोऽहं साहिब्कौलकाराम शम्भुः ।।
(शिवजीवदशकम्--१)

(ख) निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते ।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ।।
(स्तवचिन्तामणिः--९)

७. (क) देखिए पीछे नं० २।

(ख) हृदये स्वविमर्शोऽसौ द्रावितारोषविश्वकः ।
भावग्रहादिपर्यन्तभावी सामान्यसंज्ञकः ।।
(भावग्रहो--विश्वात्मतास्वीकारः)
स्पन्दः स कथ्यते शास्त्रे स्वात्मन्युच्छलनात्मकः ।
किञ्चिच्चलनमेतावदनन्यस्फुरणं हि यत् ।
ऊर्मिरेषा विबोधाब्धेर्न संविदनया विना ।।
(तं० आ० ४--१८२, १८३, १८४)

(ग) इयं सा प्राणना शक्तिरान्तरोद्योगदोहदा ।
स्पन्दः स्फुरत्ता विश्रान्तिर्जीवो हृत् प्रतिभा मता ।
(तं० आ० --६--१३)

(घ) चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता ।।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।।
सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी ।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः ।।
(ई० प्र० १--५--१३, १४)

काव्य नाटक आदि के रस के परिपूर्ण आस्वाद के क्षण में मानव आकाशवत् शान्त नहीं होता, उसे एक दिव्य शान्ति का अनुभव होता तो है, पर उस शान्ति के भीतर चेतना का स्पन्दन तो अवश्य होता है। इसी कारण वह दशा सुषुप्ति की दशा से विलक्षण हुआ करती है। यह स्पन्द ही तो चमत्कार है। रस के आस्वाद में इसी कारण सहृदय लोगों ने चमत्कार की सत्ता को अत्यन्त आवश्यक माना है।[८] सुषुप्ति में केवल शान्ति का अनुभव होता है, चमत्कार का नहीं। तो युक्ति के आधार पर कहा जा सकता है कि शुद्ध संवित् के भीतर एक विशेषता रहती है, जिसे स्पन्द कहते हैं। इस स्पन्द का स्फुट साक्षात्कार तो योगियों को ही हो सकता है। साधारण जीवों को तो इसका क्षणमात्र तक ठहरनेवाला अत्यन्त अस्फुट संवेदन हो सकता है। इस स्पन्द की गति के दो प्रकार होते हैं—एक अन्तर्मुख और दूसरा बहिर्मुख। संवित् का अन्तर्मुख स्पन्दन ही प्रकाश है और उसका बहिर्मुख स्पन्दन ही विमर्श है। प्रकाश शान्ति है और विमर्श उसका चमत्कार।

पाँच शक्तियाँ—संवित् का स्पन्द यहीं पर ठहरता नहीं। आगे प्रकाश और विमर्श दोनों ही स्पन्द की महिमा से ज्ञान और क्रिया का रूप धारण करते हैं। यह तो कहा गया कि भावरूप और अभावरूप समस्त विश्व शुद्ध संवित् के भीतर सदैव विद्यमान रहता है।[९] वहाँ वह विश्व के रूप में विद्यमान नहीं रहता, अपितु शुद्ध संवित् ही के रूप में रहता है। वट के छोटे से छोटे बीज के भीतर सारे का सारा वट का वृक्ष अवश्य रहता है। परन्तु वहाँ वह वृक्ष के रूप में नहीं रहता, बल्कि बीज ही के रूप में रहता है। उसका नाम भी वहाँ वृक्ष नहीं होता, अपितु बीज ही होता है। इसी तरह से समस्त विश्व संवित् के भीतर संवित् ही के रूप में रहता है। विश्व का रूप और विश्व का नाम वहाँ संविद्रूपता में इस तरह से विलीन होकर रहते हैं कि उनका अस्फुट आभास भी नहीं होता। संवित् के स[...] की महिमा से उसके भीतर ही विश्व के नाम और रूप [...] पहले अस्फुट और पश्चात् स्फुट आभास भी होने [...] जाता है, परन्तु संवित् के साथ अभेद भाव से ही ऐसा ह[...] लग जाता है। नाम रूप के इस अस्फुट आभास की द[...] को ज्ञानशक्ति, और स्फुट आभास की दशा को क्रियाश[...] कहा जाता है। शुद्ध प्रकाश को आनन्दशक्ति और शु[...] विमर्श को इच्छाशक्ति कहते हैं। शुद्ध संवित् का ना[...] चित्‌शक्ति है। तो स्पन्द की महिमा से मानों चित्‌श[...] का प्ररोह होने लग जाता है। इस प्ररोह की प्रथम भूमि[...] के दो पल्लवों के समान ही मानों आनन्दशक्ति और इच्छ[...] शक्ति हैं। इसी प्ररोह की द्वितीय भूमिका के दो पल्ल[...] मानों ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति हैं। ज्ञान और क्रि[...] के सूक्ष्मतर रूप आनन्द और इच्छा हैं और दोनों का सूक्ष्मत[...] रूप चित् है। ये दो-दो पल्लव एक साथ नहीं उगते, अ[...] पहले चित् से आनन्द, और पुनः आनन्द से इच्छा। इच्छ[...] से आगे ज्ञान और ज्ञान से क्रिया। परन्तु ज्ञान और क्रि[...] में परस्पर जितनी समीपता रहती है, उतनी इच्छा औ[...] ज्ञान में नहीं रहती। इसी कारण इन दो-दो का अवि[...] घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। अतः आनन्द और इच्छ[...] को विकास की प्रथम भूमिका ऊपर कहा गया। यह भूमि[...] सर्वथा अभेद की भूमिका होती है। इस भूमिका में आन[...] इच्छा का प्रकाशन करता है और इच्छा आनन्द का विमर्श[...] करती है। आगे ज्ञान और क्रिया की भूमिका भेदाभे[...] की भूमिका होती है। इस भूमिका में संविद्रूप प्रमाता [...] भी प्रकाशन और विमर्शन होता है और साथ ही प्रमे[...] रूप विश्व का भी। परन्तु प्रमाता और प्रमेय में परस[...] अभेद भाव ही प्रतीत होता है। ज्ञान शक्ति की दशा [...] प्रमाता की प्रधानता रहती है और उसीके प्रकाश में प्रमे[...] का अस्फुट सा आभास होने लगता है। इस दशा को "अह[...] इदम्" विमर्श की दशा कहते हैं। आनन्द अ[...] इच्छा की दशा तो "अहं" केवल इस प्रकार के विम[...] की दशा होती है। वहाँ 'इदं' का नामोनिशाँ भी न[...] होता। वहाँ केवल एक प्रमाता का ही प्रकाशन औ[...] विमर्शन होता है। आगे क्रिया शक्ति की दशा में प्रमे[...] का स्फुट आभास हो जाता है और प्रमाता उसका विशे[...] सा बना रहता है। इस दशा में "इदम् अहम" ऐसा वि[...] होता है। ज्ञान शक्ति में 'अहं' उद्देश्य और 'इदं' उस[...]

---

८. रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
(साहित्यदर्पण ३य परिच्छेद में उद्धृत)

९. भावाभावावभासानां बाह्यतोपाधिरिष्यते।
नात्मा, सत्ता ततस्तेषामान्तराणां सतां सदा॥
. . . .
. . . .
चिन्मयत्वेऽवभासानामन्तरेव स्थितिः सदा।
मायया भासमानानां बाह्यत्वाद्बहिरप्यसौ॥
(ई० प्र० १-८-८२, ८४)

विधेय बना रहता है, परन्तु क्रिया शक्ति में 'इदं' ही उद्देश और 'अहं' उसका विधेय बनता है।

परमेश्वरता—स्पन्द की गति यहींपर विश्राम नहीं करती। उसकी महिमा से आगे प्रमेय प्रमाता से पृथक् प्रतीत होने लग जाता है। इस सर्वथा भेद की दशा में प्रमाता पुरुष या जीव बन जाता है और प्रमेय प्रकृति या प्रधान। इस दशा में प्रमाता प्रमाता ही है और प्रमेय प्रमेय ही है। 'अहं' और वस्तु है और 'इदं' और वस्तु है। इस भेद की दशा को माया कहते हैं और ऊपरवाले भेदाभेद की दशा को विद्या। परिपूर्ण अभेद की दशा शक्ति दशा कहलाती है। तो संवित्तत्त्व अपने स्पन्द की महिमा से अभेद से भेदाभेद पर, और वहाँसे भेद पर सदा उतरता ही रहता है और इधर से भेद से भेदाभेद पर, और वहाँसे अभेद पर सदैव चढ़ता ही रहता है। इस उतरने और चढ़ने की लीला का अभिनय करता हुआ भी अपनी शुद्ध अभिन्न और परिपूर्ण संविद्रूपता से कभी जरा भी च्युत नहीं होता। यही उसका परम स्वातन्त्र्य है। यही उसकी वास्तविक परिपूर्णता है। इसीको उसका परम ऐश्वर्य कहते हैं। इसी परम ऐश्वर्य के कारण उस शुद्ध और समरस तथा परिपूर्ण संवित्तत्त्व को परमेश्वर या परम शिव कहा जाता है। अब प्रश्न यह किया जा सकता है कि परमेश्वर ऐसा क्यों करता है? क्यों इन तीन दशाओं में उतरता और चढ़ता रहता है? क्यों न सदैव एक ही रूप में रहता है? इसका उत्तर शैव शास्त्र इस प्रकार से देता है—परमेश्वर वस्तुतः सदैव अपने एक ही रूप में रहता है, कभी भी उस रूप से तनिक भी च्युत नहीं होता। परन्तु ऐसा होता हुआ भी अपने स्वभाव से अभेद, भेदाभेद और भेद इन तीन दशाओं की कल्पना करता ही रहता है। जैसी वह कल्पना करता है वैसा सामने प्रकट हो जाता है। यह कल्पना-कुमारी ही तो उसकी परमेश्वरता है। यह स्पन्दात्मकता उसका स्वभाव है। स्वभाव के विषय में 'क्यों' के लिए कोई अवकाश ही नहीं। आग क्यों गरम है, क्यों दाहन, प्रकाशन, पाचन आदि कार्य करती है? ऐसे प्रश्न का उत्तर यही हो सकता है कि यह तो आग का स्वभाव है। यदि उसमें यह स्वभाव न रहे, तो वह आग ही नहीं। इसी तरह से यदि परमेश्वर में उपरोक्त तीन दशाओं में अवरोहण और आरोहण करने का तथा इन तीन दशाओं का अवभासन करने का स्वभाव नहीं होता, तब कुछ भी नहीं होता। वही अकेला होता। वह होता भी, या सर्वथा होता ही नहीं, इस बात का भी निश्चय कौन करता? यदि होता भी तो आकाशवत् शून्य और जड़ होता। उसका होना या न होना एक समान होता। तो वह यदि होता भी तो परमेश्वर नहीं होता। उसमें किसी भी प्रकार का कोई भी ऐश्वर्य नहीं होता।[१०] परन्तु वह है और परम-ईश्वर है। अतः अपने परम-ऐश्वर्य की महिमा से जैसा चाहता है, वैसा ज्ञान और क्रिया में प्रकट करता रहता है। उपरोक्त तीन भूमिकाओं का प्रकाशन और विमर्शन करता हुआ इन भूमिकाओं में असंख्य रूपों में उतरता हुआ और चढ़ता हुआ इस दिव्य नाटक का अभिनय करता रहता है। प्रत्येक जीव आरोहण अथवा अवरोहण की किसी अवान्तर भूमिका में ठहरा रहता है। इन तीन भूमिकाओं की अवान्तर भूमिकाएँ असंख्य होती हैं। इसी कारण उन असंख्य भूमिकाओं में विचरण करनेवाले जीवों में कोई भी किसी दूसरे के सर्वथा सदृश नहीं होता। परमेश्वर की कल्पना-कुमारी के वैभव का यह वैचित्र्य किसको आश्चर्य-चकित नहीं करता।

परिमित ईश्वरता—अग्नि की किसी महान् राशि से पृथक् पड़े हुए एक क्षुद्र अंगारे में भी परिमित मात्रा में वे सभी गुण होते हैं जो उस महान् राशि में हुआ करते हैं। इसी तरह से एक परिमित जीव भी सदैव स्पन्दमान रहता है। एक नवजात शिशु भी सदैव जानने और करने के लिए उत्सुक रहता है। दाएँ-बाएँ देखता-सुनता रहता है और हाथ-पैर हिलाता ही रहता है। प्रत्येक चेतन पदाथ में जानने और करने की इच्छा स्वभाव से ही सदा रहती है। प्रत्येक जीव बुद्धि द्वारा सदैव कल्पना करता ही रहता है। प्रत्येक जीव की अपनी इच्छा उसके ज्ञान और उसकी क्रिया में परिणत होती रहती है। तो इस ज्ञान सामर्थ्य और क्रिया सामर्थ्य को जीव का ऐश्वर्य समझिए। ये दो सामर्थ्य ही व्यवहार में चैतन्य कहलाते हैं। जिस वस्तु में ये दो सामर्थ्य न हों वही वस्तु तो जड़ कह-

---

१०—अस्थास्यदेकरूपेण वपुषा चेन्महेश्वरः।
महेश्वरत्वं संवित्त्वं तदत्यक्ष्यद् घटादिवत् ॥।
(तं० आ० ३—१०१)

लाती है। तो जिस व्यक्ति में ये दो सामर्थ्य जितनी मात्रा में विद्यमान हों, वह व्यक्ति उतनी मात्रा का ईश्वर है। अतएव इस तरह से प्रत्येक जीव किसी न किसी मात्रा में ईश्वर तो है ही। अतः ईश्वर की सिद्धि करने की कोई आवश्यकता ही नहीं, न ही ईश्वर का निषेध ही किया जा सकता है, क्योंकि निषेध करनेवाला तो स्वयं ईश्वर है। एक जीव अपने में ईश्वर है। जो चाहे अपने से करे। चाहे तो सोए, चाहे तो जागे, चाहे तो खाए, चाहे तो न खाए। चाहे तो एक तरह खाए, सोए, चाहे तो दूसरी तरह। चाहे तो इस तरह न खाए न सोए, चाहे तो उस तरह। तो "कर्तुम् अकर्तुम्" और "अन्यथा कर्तुम्" का सामर्थ्य प्रत्येक जीव में किसी न किसी मात्रा में अवश्य होता ही है।[११] भेद इतना ही है कि किसी में यह ऐश्वर्य थोड़ी मात्रा में होता है और किसी में अधिक मात्रा में। एक घर का स्वामी सारे घर का ईश्वर है। देश का शासक सारे देश का ईश्वर है। चक्रवर्ती राजा तो अनेक देशों का ईश्वर होता है। सारी पृथ्वी का शासक उससे भी बड़ा ईश्वर हो सकता है। इन्द्र आदि देवता उससे भी बड़े ईश्वर हैं। ब्रह्मा आदि पाँच कारण तो इन्द्र आदि से भी बड़े ईश्वर होते हैं, क्योंकि उनकी ईश्वरता समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक होती है। परमेश्वर की माया के समुद्र में बुलबुलों की तरह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तैरते रहते हैं। अतः परमेश्वर के ऐश्वर्य की कोई भी सीमा नहीं। ब्रह्मा आदि का ऐश्वर्य सीमित है, परन्तु परमेश्वर का सर्वथा असीम। इस अपरिमित और सबसे बड़ी ईश्वरता ही के कारण उसे परम ईश्वर कहा जाता है।

पंचकृत्य—परमेश्वर के ऐश्वर्य के पाँच अंग हैं। वे हैं सृष्टि, स्थिति, संहार, विधान और अनुग्रह। ये पाँच अंग उसकी दिव्य क्रीड़ा के पाँच सोपान हैं। वे सदैव अनन्त प्रकार के प्रमाताओं और प्रमेयों से युक्त ब्रह्माण्डों, भुवनों, शरीरों, इन्द्रियों आदि की सृष्टि करते ही रहते हैं। स्थिति भी अनेक ब्रह्माण्डों की प्रतिक्षण होती ही रहती है। कौन जानता है कि प्रतिक्षण कितने ब्रह्माण्डों का परमेश्वर में लय होता होगा। तो इस तरह से संहार भी सदैव चलता ही रहता है।[१२] परमेश्वर प्रतिक्षण अवरोहण की लीला का अभिनय करते हुए अनन्त रूपों में अपने स्वभाव का गोपन करते हुए असंख्य जीवों के रूप में प्रकट होते रहते हैं। यह उनके विधान का ऐश्वर्य है। प्रतिक्षण असंख्य साधक अपने शिवभाव का साक्षात्कार करते हुए अपने भूले हुए वास्तविक स्वभाव को पुनः पहचानते रहते हैं। इस एक ब्रह्माण्ड में तो अनन्त भुवन हैं। उनमें अनन्त प्रकार की सृष्टि है। कौन जानता है कि कितने भुवनों में इस समय सत्ययुग चल रहा हो और वहाँके जीव निर्बाधगति से स्वरूप को पहचान रहे हों। यही परमेश्वर के अनुग्रह का ऐश्वर्य है। तो उनका ऐश्वर्य पाँचों प्रकारों से सदैव ही कहीं न कहीं चलता ही रहता है। ऐश्वर्य के इन पाँच प्रकारों को परमेश्वर के पाँच कृत्य कहते हैं। इन पाँच भूमिकाओं में जिन रूपों में ठहरकर परमेश्वर इन पाँच कृत्यों का अभिनय करते हैं, उन रूपों को क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव नामक पाँच कारण कहा जाता है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ये पाँच कारण होते हैं। ब्रह्माण्ड तो अनन्त हैं अतः कारण पंचक भी अनन्त ही हैं।

[क्रमशः]

११—अतएव यथाभीष्टसमुल्लेखावभासनात्।
ज्ञानक्रिये स्फुटे एव सिद्धे सर्वस्य जीवतः॥
(इ० प्र० १—७—११)

१२—सदा सृष्टिविनोदाय सदा स्थितिसुखासिने।
सदा त्रिभुवनाहार-तृप्ताय भवते नमः॥
(शिवस्तोत्रावलि २०—९)

भूदेव मुखोपाध्याय और हिन्दी

श्री महादेव साहा

१८६० के जमाने से हिन्दी को सरकारी महकमे में स्थान दिलाने के लिए बंगालियों ने बड़ा काम किया है। इसकी पूरी कहानी अभी तक नहीं लिखी गयी है। इस दिशा में भूदेव मुखोपाध्याय के सफल प्रयत्न के बारे में हम कुछ लिखना चाहते हैं।

विश्वनाथ तर्कभूषण व्याकरण, स्मृति, ज्योतिष, काव्य, पुराण, तंत्र और दर्शनशास्त्र के बहुत बड़े पंडित हो गये हैं। तर्कभूषण नतिबपुर (थाना-खानाकुल, जिला हुगली) के रहनेवाले थे। कलकत्ते के ३७ नं० हरितकी बगान लेन में रहते समय उनके एकमात्र पुत्र भूदेव मुखोपाध्याय का जन्म हुआ (११ फागुन १७४८ शकाब्द=२२ फरवरी १८२७)। कलकत्ते के संस्कृत कालिज आदि में शिक्षा समाप्त कर वे १८३९ में हिन्दू कालिज के जूनियर स्कूल और १८४१ में सीनियर डिपार्टमेंट में भर्ती हुए। इनका विद्यार्थी जीवन काफी सफल रहा, कई पुरस्कार भी मिले। कवि मधुसूदनदत्त और मनीषी राजनारायण वसु इनके सहपाठियों में थे। १८४५ में इन्होंने कालिज की पढ़ाई समाप्त की। तत्कालीन प्रथा के अनुसार १६ साल की अवस्था में एकादशी कन्या एलोकेशी से इनका ब्याह हुआ।

कई गैर सरकारी स्कूलों में पढ़ाने के बाद वे २० दिसम्बर १८४८ में मशहूर कलकत्ता मदरसा में सेकेण्ड मास्टर नियुक्त हुए। हावड़ा, हुगली के भिन्न-भिन्न स्कूलों में मास्टरी करते हुए १३ मई (१८६९) को वे स्कूल-इन्सपेक्टर नियुक्त हुए। इसके बाद विभिन्न जगहों में काम करते हुए वे २३ जुलाई १८७७ में बिहार सर्किल के इन्सपेक्टर बने।

शिक्षा विभाग में काम करते हुए भूदेव ने दो पत्रिकाएँ निकाली थीं। वैशाख १२७१ बंगाब्द (=१८६५) में मासिक 'शिक्षा दर्पण ओ संवादसार।' यह करीब पाँच साल तक चला। ४ जुलाई १८५६ से 'एडूकेशन गेजेट ओ साप्ताहिक वार्त्तावह' निकाला। डबल्यू ओ' ब्रायेन स्मिथ इसके सम्पादक और कवि रंगलाल वन्द्योपाध्याय उनके सहकारी नियुक्त हुए। ४ जुलाई १८६८ से भूदेव ने इसका सम्पादन-भार अपने हाथों में लिया।

उपर्युक्त 'शिक्षा दर्पण' की अधिकांश रचनाएँ भूदेव की लिखी होती थीं। जातीय भावों से यह कितना ओत-प्रोत होता था, इसका परिचय नीचे के कुछ उद्धरणों से चलेगा :—

अँगरेजों के प्राधान्य का कारण विद्या भी नहीं है, बुद्धि भी नहीं है, धर्मशीलता भी नहीं है——इनकी प्रधानता का कारण यह है कि ये खंडित मनुष्य नहीं हैं, पूर्ण मनुष्य है....। ये भेड़ नहीं हैं। वे अपनी-अपनी बुद्धि और शक्ति पर निभर करके चलते हैं। इससे बुद्धि और शक्ति बढ़ती है। थून के सहारे खड़ा पेड़ हवा के झकोरे से गिर पड़ता है——जो पेड़ अपनी जड़ के बल पर बढ़ता है वह आँधी में भी नहीं गिरता। (आषाढ़, १२७१)

देश में बड़े आदमियों का होना अच्छा है, यह सत्य है किंतु सच्चे बड़े आदमियों के होने पर ही देश का मंगल होता है, नहीं तो उनसे अपकार के सिवा उपकार नहीं होता। (माघ, १२७१)

सहायता देने की प्रणाली बहुत अच्छी है। लेकिन यह याद रखकर काम करना चाहिए कि जो व्यक्ति किसी का सहायक होता है वह अधिक प्रबल होने के कारण कहीं प्रधान न हो जाय। जिसकी सहायता करने जाता है वही प्रधान और वह स्वयं गौण होता है। हमें लगता है कि सहायता पानेवाले स्कूलों में ऐसा नहीं होता। जिनका स्कूल है वे अप्रधान, और जो सहायता देते हैं वही प्रधान बन जाते हैं। यानी स्कूलों के मैनेजर बेकार हो जाते हैं और इन्सपेक्टर-गण ही सर्वेसर्वा बन जाते हैं। यह बात हमें अच्छी नहीं लगती है। (फाल्गुन, १२७१)

भाषा-भेद ही जाति (नेशन) भेद का असाधारण लक्षण है। जिनकी मातृभाषा एक प्रकार की है——किसी को किताब पढ़कर उसे सीखना नहीं पड़ता——सभी साधारणतः परस्पर की बातें समझते हैं, वही एक जाति के हैं। ....जाति के होने पर तेजस्विता, स्वाधीन बुद्धिमता आदि जो शुभ फल दिखाई देते हैं, वे हमारी मातृभाषा की उन्नति से ही दिखाई देंगे। मातृभाषा की उन्नति के बिना दूसरे जितने भी उत्कर्ष क्यों न हों, वे व्यक्तिगत अथवा सम्प्रदायगत होंगे——जातिगत कदापि नहीं होंगे। (फाल्गुन, १२७२)

जैसे ग्रीकों ने कभी भी अपना जातीय भाव नहीं छोड़ा रोमवालों ने भी जैसा नहीं किया और अँगरेजों ने भी जो नहीं किया और करने को तैयार नहीं—हमें वैसा ही करना चाहिए। साहबों से विद्या सीखने में कोई हानि नहीं है—बहुतेरे लाभ हैं—लेकिन साहबी किताब पढ़कर साहब बन जाने की चेष्टा नितान्त स्वार्थी, नीचाशय, आत्मगौरव-विहीन व्यक्ति का कार्य है। (चैत१२७३)

भूदेव हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए भी ऐतिहासिक काम कर गये हैं। बिहार तब बंगाल में था। भूदेव बिहार में बहुत दिनों तक इन्सपेक्टर रहे। उनके समय बिहार में स्कूलों की संख्या बढ़ी, कितने ही आदर्श स्कूल स्थापित हुए। हिन्दी पुस्तकें तैयार कराने में भी भूदेव का बड़ा हाथ था। ऐशले इडेन उन दिनों बंगाल के लेफ्टिनैंट गवर्नर थे। भूदेव ने उनसे सिफारिश करके अदालतों में हिन्दी को जगह दिलाई। २ सितम्बर १८८० (?) को बाँकीपुर से उन्होंने अपने मित्र पंडित रामगति न्यायरत्न को लिखा—

"इस प्रदेश से फारसी दफ्तर के उठा दिये जाने के हुक्म होने से मुसलमान और मुसलमान जैसे हिन्दू भी बहुत गोलमाल कर रहे हैं। बहुतेरे मुझे ही दोष दे रहे हैं और जो फारसी के पक्ष में नहीं हैं वे यत्परोनास्ति समादर दिखा रहे हैं। इसमें मेरा कितना हाथ है इसे मैं खुद ही नहीं बता सकता। लेकिन अगर कुछ है तो यह प्रशंसा की बात है, इसमें सन्देह नहीं। फारसी विदा हो, इसकी चेष्टा मैं बिहार आने के बाद से ही करता रहा हूँ। जातीय भाषा के (हिन्दी के) विद्यालय मेरे यहाँ आने के पहिले पूरी तरह अनादृत थे। मैंने उनका आदर किया है और इसीलिए मेरे यहाँ आने पर विद्यालयों की संख्या १०।१५ गुना बढ़ गयी है।......."

भूदेव के महान् कामों की बिहारवासियों ने कितनी प्रशंसा की इसके निदर्शनस्वरूप हम हिन्दी और भोजपुरी की दो कविताएँ दे रहे हैं। पूरबी गीत इस प्रकार है—

धन्य धन्य गवर्नमेन्ट परजा सुखदायी।
जामनी के दूर करी नागरी चलाई।।१।।
"भूवन देव" करि पुकार लाट ढिग जाई
परजा दुख दूर करहु जामनी† दुराई।।२।।
नाना विधि जात होत जामनी में गाई।
परजा मन हरख होत विद्या निज पाई।।३।।
धन्य बुद्धि धन्य विचार धन्य अन्तर भाई।
करि नेआव हिन्द बीच हिन्दुई* चलाई।।४।।
परजा नित सुजस गाव अम्बिका मनाई।
जब लों चन्द सूर्य रहे, राज रहे भाई।।५।।

—पंडित अम्बिकादत्त व्यास

भोजपुरी कविता इस प्रकार है—

हुकुम सरकारी भइल।
रे नर सिखो नगरिया।।टेक।।
जामनी जी से देहु दुराई
पढ़ि गुन काज कर नरहरिया।।१।।
ले पोथी नित पाठ करत अब।
जामनी ग्रंथ देहु पैसरिया।।२।।
जब ले नागरी आवत नाहीं।
कैथी अच्छर लिखउ कचहरिया।।३।।
धन्य "मंत्री" प्रजा हितकारी।
अम्बिका मनावत राज बिक्टोरिया।।४।।

ये छन्द 'भूदेव चरित' दूसरा भाग, पृ० १३०-३१ पर दिये गये हैं। जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने अपने Seven Grammars of the Bihari dialects and sub-dialects में भी दिये हैं।

'गुरुगणित शतक' के लेखक के अलावा 'साहिब सिंह की जीवनी' आदि में भी भूदेव के हिन्दी सम्बन्धी कामों की बड़ी सराहना की गयी है।

भूदेव ने अपने कई ग्रंथों में हिन्दी की उपयोगिता पर काफी लिखा है जिसकी चर्चा हम किसी दूसरे लेख में करेंगे।

---

†जामनी—फारसी या उर्दू (यावनी या यवनों की भाषा)—सम्पादक

*हिंदुई=हिंदी

भूमिका की समस्या

डाक्टर आत्मानंद मिश्र

कोई पुस्तक लिखिए, भूमिका का प्रश्न पहिले या पीछे अवश्य उठता है। अगर भूमिका न हुई तो पुस्तक अपूर्ण समझी जाती है। बिना दरवाजे के मकान और बिना विज्ञापन के दूकान की तरह उसमें घुसना या इसका चलना मुश्किल हो जाता है। कोई नया कपड़ा बनवाइए तो बिना काज-बटन लगे वह अधूरा ही रहता है। कोई नया कारखाना खोलिए, उद्घाटन भाषण बिना सब फीका लगता है। किसीसे विदा लीजिए तो यह कहना लाजमी हो जाता है कि "भाई! कहा-सुना माफ करना।" नहा-धोकर चंदन-टिकुली लगा लेने से कितनी पूर्णता आ जाती है। भद्र पुरुष के नाम के सामने श्री, पंडित, मौलाना चस्पा करना शिष्टाचार माना जाता है। इन्हींकी तरह पुस्तक के पहिले भूमिका का होना जरूरी होता है।

भूमिका का अर्थ 'अल्पार्थे कन्' के सिद्धान्त से छोटी सी भूमि होता है। फिर ठहरी वह भूमि ! अतएव उसमें दुनिया भर की बातें आ जाना स्वाभाविक है। पहिली बात जिसका भूमिका से पता लगता है वह यह है 'पुस्तक की भूमि का है?' लेखक किस जमीन पर खड़ा है? वह किन मुद्दों को लेकर मैदान में उतरा है? उसने डेढ़-दो सौ पन्नों में क्या बका-झका है? किस मत को प्रतिपादित किया है; किस कुरेदन के कारण बकवास की है? भूमिका में पुस्तक की डिजाइन और योजना की चर्चा होती है जिससे कम अक्लवालों को समझने में सहूलियत हो। भूमिका रेखागणित के एक साध्य के समान है जिसमें पहिले सामान्य प्रतिज्ञा दे दी जाती है और फिर उसकी उत्पत्ति तथा हल पूरी पुस्तक में बिखेर दिये जाते हैं। यदि भूमिका पढ़कर पाठक पुस्तक के अंत तक पहुँचे तो बरबस उसके मुँह से 'क्यू० ई० डी०' निकल पड़ेगा। भूमिका एक प्रकार का बीमा है जो भावी रिस्क को कवर करने के लिए किया जाता है। आलोचक छिद्रान्वेषक समझ ले कि लेखक अमुक विषय के तमुख पक्ष का पक्षी है, उसीपर कलम तोड़ेगा किसी अन्य पर कलम कुठार न चलाएगा। तो वे पुस्तक का मूल्यांकन उसी सीमित दृष्टिकोण से करें, आँखें फाड़कर किसी अन्य नज्जारे को देखने की अपेक्षा न करें। विशेषज्ञों की खोपड़ी में घुसी विशेषता पुस्तक में न मिलने पर वे चौंक पड़ते हैं, बर्राने लगते हैं, चिल्ल-पों मचाते हैं। ऐसी दुर्घटना से बचने के लिए यह बीमा किया जाता है।

भूमिका लेखक की ओर से पाठक को एक चिरिया-विनती है। दुनिया की हर चीज, हर विषय में पाठक की कुछ धारणा, कोई साहचर्य, किंचित् रागद्वेष पहले से ही रहता है। चाहे वह ठीक हो या गलत इससे सरोकार नहीं मगर पाठक उससे इतना चिपका रहता है जैसे भैंस के जोंक। इन धारणाओं के पैनेपन को कुण्ठित कर देना, राग-द्वेषों की कोरों को गुलिया देना, साहचर्य को ढुल-मुल कर देना, जोंकों को झकझोर देना ताकि वे पग-पग पर पुस्तक में व्यक्त विचारों से ठोकर न खायें, भिड़न्त न करें—यह काम भूमिका का होता है। वह पाठक को मनाने, सहलाने और पुचकारने का काम करती है। पुस्तक पढ़ने के लिए उसके दिमाग को दुरुस्त कर रास्ते पर लगाती है। पाठक पर धीरे से हाथ फेर कर उसकी नकेल पुस्तक की ओर डगरा लेती है।

यह तो हुआ भूमिका का प्रयोजन अब उसके प्रकार देखिए। भूमिका तीन प्रकार की होती है—छोटी, बड़ी और मझोली। छोटी भूमिका 'दो शब्द' कहलाती है। किन्तु दो शब्दों की आड़ में सैकड़ों और हजारों भी सुनाये जा सकते हैं। न जाने गणित के किस सिद्धान्त से दो बराबर दो हजार का समीकरण ठीक माना जाता है? बड़ी भूमिका 'आमुख', 'प्राक्कथन' और 'वक्तव्य' के रूप में आती है। 'आमुख' का 'आ' प्रत्यय पर्यन्त के अर्थ में प्रयोग होता है जैसे आजन्म, आमरण, आसमुद्र इत्यादि। अतएव जब लिख-लिखकर गले तक ठुस जाता है तब आमुख लिखा जाता है। प्राक्कथन घोषणा करता है कि पश्चात् कथन भी किया गया है जिसे बाँचने के लिए तैयार रहिए। पता नहीं वक्तव्य झाड़ने की आवश्यकता क्यों पड़ती है जब पुस्तक में उक्त, प्रोक्त, पुनर्युक्त सभी कुछ हो चुकती है। बड़ी भूमिका का विस्तार ससीम से असीम तक हो सकता है। दस-पन्द्रह से पचास-पचपन पृष्ठों तक इसकी साधारण मार होती है। मानों पुस्तक के साथ उसकी एक बच्ची, लघु कौमुदी लगी रहती है जो मूल की टीका-टिप्पणी, उसकी कुंजिका का काम करती है। बर्नाड शा और हरि-औध ऐसे प्रस्तावनात्मक व्यक्तियों की भूमिका सारी पृथ्वी

की परिक्रमा करा देती है जिसे पढ़ लेने पर फिर पुस्तक पढ़ना इतना आवश्यक नहीं रह जाता। मझोली भूमिका इन्हीं छोटी-बड़ी की सीमाओं के बीच कहीं खोती जान पड़ती है जिससे जितना नैकट्य स्थापित कर लेती है उसीके नाम से चल निकलती है। वह अपना स्वयम् का कोई नाम धराने में हिचकिचाती है। उपोद्घात एक उप-आघात सा लगता है। पुस्तक तो पाठक पर एक बड़ा आघात करती ही है, उसके पहिले एक छोटा आघात करके उसकी सहनशीलता की आजमाइश कर ली जाती है। मुख-बन्द का उद्देश्य आलोचकों का मुँह बन्द करने का रहता है। उसमें अक्लमंदों के लिए 'इशारा काफी अस्त' समझा जाता है और अन्य के लिए ज्ञान गाँठ का जाता है।

भूमिका खूब कलम छिड़ककर लिखी जाती है क्योंकि उसीपर पुस्तक का पूरा दारोमदार आ पड़ता है। शुरुआत एक माफीनामे से की जाती है जिसमें लेखक मुद्रित होकर प्रकाशित होने के लिए क्षमा-याचना करता है। उस विषय पर अनेक सुन्दर ग्रन्थ विद्यमान हैं फिर उसे अपनी कलम घिसने की क्या आवश्यकता आ पड़ी? चर्वित-चर्वण को फिर पगुरियाने की क्या जरूरत? प्राचीन पर कौन अर्वाचीन रोशनी फेंकी जा रही है? कौन नई बात, नया तरीका, नवीन प्रस्तुतीकरण अपनाया जा रहा है? किन मानों में यह ग्रन्थ इसी विषय के अन्य ग्रन्थों से भिन्न है? इत्यादि अनेक बिना पूछे प्रश्नों का उत्तर लेखक स्वतः दे डालता है—केवल आत्मरक्षार्थ। चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुता।

तदनन्तर लेखक अपने व्यक्तित्व के विराट् रूप का दिग्दर्शन कराके आप पर रोब गालिब करता है, आतंकित बनाता है। मैं कौन बला हूँ, कितना बड़ा अफलातून हूँ, कैसे-कैसे अनुभवों की गठरी बाँधे हूँ, क्यों लिखने का विशेषाधिकारी हूँ इत्यादि अनर्गल बातें लिख मारता है। कभी-कभी बहाना यह रहता है कि लेखक स्वयम् पुस्तक लिखने वाला न था किन्तु लोगों ने आग्रह किया, मित्रों ने सत्याग्रह किया, पाठकों ने आन्दोलन उठाया कि उसके प्रकाण्ड पाण्डित्य से संसार को वंचित न किया जावे। अतएव उनकी इच्छा पूर्त्यर्थ यह करना ही पड़ा। अहम् के बाद त्वम् आता है जो पुस्तक लिखने में सहायता करनेवालों की एक लम्बी फेहरिस्त होती है। उसमें ऐसे चोटी और एड़ी के आदमियों का नाम रक्खा जाता है मानों कि कोई ब्रेन-ट्रस्ट स्थापित हुआ हो जो पुस्तक लिखने का काम करता हो। येन-केन-प्रकारेण श्रीमतीजी का नाम भी घुसेड़ दिया जाता है जिससे उनका सुशिक्षित होना जगत् विदित हो सके और साथ में यह भी कि बिना उनके इशारे के घर में पत्ता नहीं हिलता। मित्रता दृढ़ करने के लिए मित्रों के नाम, और गुरुडम जमाने के लिए शिष्यों की नामावलि भी जोड़ दी जाती है। अगर इसमें कुछ भुला दिया जाता है तो वह है गुरुजनों का नाम जिनकी जूठन खायी है, ग्रन्थों की सारिणी जिनकी छुपे-लुके चोरी की गयी है तथा उस पाण्डुलिपि का उल्लेख जिस पर डाका डाला गया है। 'रसा अनंता भूमिका, इल्ला-बिल्ला कहि जाय'।

अंत में 'कहा-सुना माफ करना' की बारी आती है। निवेदन किया जाता है कि "यदि कोई भूल हो गयी हो तो उसे अभिज्ञ पाठक क्षमा करें।" क्यों क्षमा करें? अभिज्ञ पाठक अनभिज्ञ लेखक की पुस्तक ही क्यों पढ़ें? फिर इसमें 'यदि' मजेदार है। लेखक ने यह भी ठीक-ठीक जानने की कोशिश नहीं की कि भूलें हुई हैं अथवा नहीं, और तुर्रा यह कि भूलें बताकर लेखक को कृतज्ञ करें। क्या खूब, खुद पढ़ने के बाद पढ़ाते भी बैठो। गुरुरिस बनकर गलतियाँ जाँचो और टिकट लगाकर उनके पास भेजो भी। फीस भी गुरु के मत्थे रहे। यह कृतज्ञ बनने के लक्षण हैं कि कृतघ्न? यदि इतने कमजोर थे तो पुथन्ना क्यों लिख मारा? किसी उस्ताद का हुक्का भरना था। मगर विचार कितने ही गलत व्यक्त किये गये हों उनके लिए माफी बिरला ही माँगता है। माफी माँगी जाती है मुद्रण की त्रुटियों के लिए। इनकी जिम्मेदारी उनकी नहीं प्रेस के भूतों की रहती है न। उनके लिए तो हिन्दी के बड़े आचार्य का ही जवाब उचित है। एक पुस्तक की आलोचना सरस्वती में करते हुए उन्होंने लिखा "छापे की गलतियों को क्यों माफ किया जावे? क्या पुस्तक के लिए पैसा नहीं लेंगे?"

इन भूमिकाओं को पढ़ता कौन है? इन्हें पढ़नेवाले होते हैं या तो पढ़क्कर ज्वान जो मुखपृष्ठ से अंतिम पृष्ठ तक के प्रत्येक मुद्रित शब्द को चाट डालते हैं, या फिर समालोचक जिन्हें नुक्ताचीनी का मसाला जुटाना पड़ता है। मुद्रक और प्रकाशक को भी इसे भुगतना ही पड़ता है। साधारण पाठक तो पुस्तक पाते ही उसमें पिल पड़ता है। ऊमिका-भूमिका से उसको कुछ मतलब नहीं रहता।

फिर न जाने यह भूमिका लिखी किसके लिए जाती है ? किं करिष्यन्ति वक्तारः श्रोता यत्र न विद्यते ?

भूमिका लिखने और भूमिका बाँधने में बड़ा अन्तर है। लिखना तो प्रायः सभी कर लेते हैं किन्तु बाँधना बिरले के ही सामर्थ्य की बात है। उसके लिए तो व्यक्ति को चतुर-चूड़ामणि, कुशल सिद्धहस्त तथा किंचित् भविष्यदृष्टा होना चाहिए। वह ऐसा हो कि दूर की कौड़ी ला सके। आस्ताने यार पर मत्थे को इतना रगड़ सके कि मिट जाय लिक्खा हुआ तकदीर का। वह स्वयम् भूमिका नहीं लिखता। किसी दिग्गज, विषयी विद्वान्, विशेषज्ञ अथवा ख्याति-प्राप्त नाम को फाँसकर दो शब्द लिखा लेता है। पुस्तक प्रकाशित होने के पूर्व ही सम्मतियाँ बटोर लेता है और उन्हें यत्र-तत्र सर्वत्र बिखेर देता है। पुस्तक नहीं है, किन्तु उसकी भूमिका बँध चुकी है, उसका बाजार तैयार हो चुका है। शानदार उद्घाटन की प्रतीक्षा कीजिए।

पता नहीं यह भूमिका लिखने की प्रथा कब से चल पड़ी। 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वाऽपि तन्मुखम्' के अनुसार तो पुस्तक का आरम्भ आशीर्वचन, नमस्कार या वस्तुनिर्देश से होना चाहिए; भूमिका से नहीं। इसीलिए हमारे प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में भूमिका बाँधने का प्रयत्न नहीं किया गया है। नाटकों की भूमिका में तो नटी और सूत्रधार के रंगमंच पर आते ही नाटकीय मजा शुरू हो जाता है। वह भूमिका तो नाटकों का एक अभिन्न अंग ही कहलाती है। नाटक के फाटक पर संतरी बनकर नहीं डटती। मुझे तो उस कवि की उक्ति बड़ी पसंद आई जिसने यह पूछे जाने पर कि आपने अपने महाकाव्य के आरम्भ में भूमिका क्यों नहीं लिखी, उत्तर दिया, "कौन सी ऐसी बात है जिसे मैं एक हजार पृष्ठों में नहीं कह सका जिसके लिए भूमिका बाँधी जाय ?" यह हुई भूमिका की भूमिका; अतएव इसमें छोटी, बड़ी, मझोली का प्रश्न नहीं उठता और यह यहीं समाप्त की जा सकती है।

मंगलमय नव-वर्ष

(गत मास हिंदू नववत्सर मनाया गया)

श्री हृदय चौरसिया

वर्ष का नव चरण मंगलमय !
ज्योति का अवतरण मंगलमय !
यह किरण जो भेद कर आकाश
आ रही आकुल धरा के पास
छेड़ती आलोक का संगीत,
भर रही विश्वास, नव-उल्लास।
धरा के हरिताभ आँचल पर,
बिहँसता जागरण मंगलमय !
तोड़ती प्राचीर, हर प्रतिबन्ध,
मेटती सी भावनायें अन्ध;
खोलती खिड़कियाँ, वातायन,
फैलती नव-चेतना की गन्ध।
हरित तृण, मृदु मुकुल, पाटल पर,
रश्मि का आभरण मंगलमय !
ज्योति का अवतरण मंगलमय !
वर्ष का नव चरण मंगलमय !
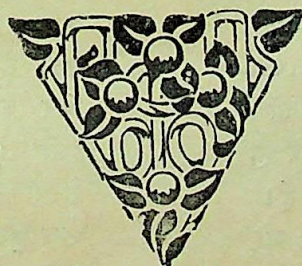
आत्मा की शक्तियाँ

(योगी अरविंद की सावित्री के चतुर्थ अध्याय का अनुवाद)

अनुवादक, श्री ब्योहार राजेन्द्र सिंह

जब आनत अषाढ़ ने पर्वत शिखरों पर से
वेगवती निज ऊर्ध्व सुयात्रा नित आरम्भी,
सम्मुख देखी पूर्ण चन्द्र सम उज्ज्वल आनन-
रमणी, जिसका मुख मण्डल घिर रहा मेघसम
कृष्ण-कुन्तलों से, चहुँदिशि से छाया छाई
अंग-अंग पर उसके मेहर सुन्दर सुखकर,
म्लायमान आलोक दीप्ति की समालीन थी।
असम कठोर रिक्त पृथ्वीतल पर विराजती
चरण कमल उसके थे विक्षत—
विषम शिला की तीक्ष्णधार से—
मानों जग के शिरोभाग पर परम सुकरुण
मूर्तरूप से विराजती हो, जीवनभर का
मर्म दाह था उसके कोमल कर स्पर्श में।
दूर दूर तक फैल रही थी दृष्टि मृदुलतर,
अन्तर की चेतना युक्त हो देख रही थी
जग की संशय-संकुल रूपावलियों को वह।
जितनी मिथ्या कायाएँ थीं, जितनी आकृति
सबके ही आभास देखती; उस अज्ञान शून्य में संतत
इस प्रपञ्च का सब प्रसार वह देख रही थी।
पृथ्वी का वेदना भार, वह नक्षत्रों का
वेगवान् प्रयास जीवन का, आविर्भाव रूढ़ जो होता
और उसीका तिरोभाव जो करुणामय है।
वरण किया इस अखिल विश्व को (दुख स्वरूप जो)
देह रूप से अपने, सप्त ताप मय जननी
के सुरक्तमय हृदयदेश से जो नित झरता,
सत्य क्षतों से जो बहता है, दारुण दुख की
सुषमा है जो, जग निवास के वचन परे है,
युग युगान्त की अश्रुधार से भरे नयन हैं।
उसका वक्षस्थल धरता है जगत आर्त्ति को,
द्वन्द्व सकल जो काल प्रवाहों में चलता है।
जितना दुर्भर क्लेश बहा करता है जग में,
व्यथित गीत उठता है उसके धीर कण्ठ से;
अन्तर नग्न गहन करुणा के तीव्र वेग से,
सुस्थिर दृष्टि क्षरण करती है शान्त किरण को।
मंथर मधुर मधुर छन्दों में करने लगी सुदिव्यवार्त्ता
"हे सावित्री! मैं आत्मा हूँ तेरे अन्तरतर की निर्मल
आयी हूँ मैं सहने दुःख भार सबके सँग।
अपने वक्षस्थल पर रख लूँगी सञ्चित कर
अपने सब सन्तानों की वह निखिल वेदना
जितना भी दुर्भाग्य जमा है इस नभ के तल।
क्रूर देवता की सेवक मैं, जिसके पदतल
रथ चक्रों के तले काँपती पृथ्वी विदलित
उन सबके अन्तर की आत्मा मैं ही तो हूँ।
मैं हूँ नारी जो सेवा का मंत्र, पशु सम
जो देता यंत्रणा हस्त है उसको पूजूँ।
उसी हृदय को अर्पित करती सेवा अपनी।
घृणा भरा है किन्तु दीप्त अनुराग हमारा।
मैं रानी हूँ सभी चाहते कृपा दृष्टि मम,
पुत्तलिका हूँ मैं जो संतत आदर-भूषित,
अन्न प्रदात्री पूज्य भवन-देवी हूँ मैं ही
सम अन्तर की अर्घ्य, व्यथातुर भी मैं ही हूँ;
मिट्टी में से ऊर्ध्व उठ रही व्यर्थ प्रार्थना
करती मेरा हृदय दीर्ण है जीव-यंत्रणा,
मैं ही उसके अन्तर तर का पुरुष सुचिन्मय।
पिष्ट मांसपेशी है, क्लिष्ट हृदय है मेरा,
उच्च कण्ठ भी स्वर्ग श्रवण में प्रविश न पाता,
फिर फिर आता व्यर्थ-काम वह अपने ही में
इसी मांसपेशी में आता लौट हृदय वह।
करती दीर्ण हृदय को मेरे दुःख वेदना,
दग्ध कुटीरों में दीनों को देख रही हूँ।
खण्डित शिशु देहों पर कशाघात को देखूँ,
सुनती हूँ रमणीय दीन की चीत्कारों को

रूस के सुप्रसिद्ध उड़ाकू यूरी गैगरिन जिन्होंने १२ अप्रैल को अन्तरिक्ष का प्रथम सफल अभियान करके सारे संसार को आश्चर्यचकित कर दिया।

श्रीमती वेलेन्टीन गैगरिन अपने पति का अंतरिक्ष अवरोहण संवाद रेडियो से सुन रही हैं।
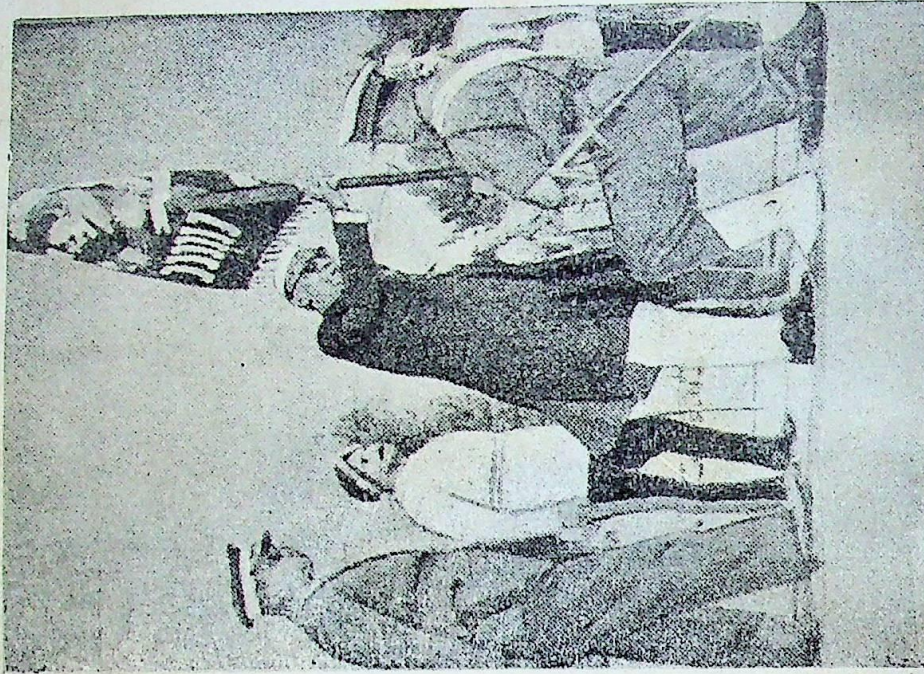
डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी, रानीखेत में कुमायूँ रेजिमेण्ट की चौथी बटालियन के कैप्टेन डी० पी० एस०, रघुवंशी को बटालियन के लिए नया फौजी झंडा दे रहे हैं।

बलात्कार जब करती हूँ उस नग्न देह पर,
जब जनता की मत्त हिंस्र उल्लास क्रोड़ में
देती फेंक, खींच लेती हूँ उसी समय में,
जब देखूँ असहाय और असमर्थ जनों की
रक्षा कर पाती न, तभी मैं दुःखित होती,
चाहे रक्षा हो, हत्या हो, भुज अक्षय है
विधि ने दिया प्रेम मुझको है, शक्ति न दी है।
कर्म-क्लान्त युग-बद्ध और अंकुश कषाय वह
जर्जर पशु की अंशभूत मैं, श्रम-भारों में,
अंशी हूँ मैं वन्य जन्तुओं की जो त्रासित,
संकुल जीवन में जब दीर्घ शिकार अनिश्चित
फिरता है भटकता हुआ आहार खोजता,
लुकता छिपता आश्रय का आवास ढूँढ़ता,
भूख प्यास में भ्रमता शंका दुख से काँपे,
तीक्ष्ण दन्त नख युक्त ग्रास करता जब उसको।
सरल मनुज जब जीवन यापन करे सहज तर,
उसकी भी हूँ अंश, तुच्छ अति सुख सोकर जो,
क्षुद्र व्यथा या विघ्न राशि जितनी है जग में,
जितनी उच्छृंखल सेनाएँ दुर्भाग्यों की,
पृथ्वी की वेदना कष्ट जो अन्तहीन हैं,
उपशम जिनका नहीं, नहीं है आशा कोई
अनवाञ्छित अफुरन्त देह के क्लेश भार जो,
दैन्यों का सुप्रहार, नियति के घात सभी जो,
सबका सब ही दाय ग्रहण करती हूँ संतत।"

विवशता : अन्तरिच्छा

श्री गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

भोला मन, सरल हृदय, कुटिल पंथ,
भोले दृग, आस्था से अँजे नहीं,
साधक जो तीर तनिक सधे नहीं,
लक्ष्य बेध-हित ये कर मँजे नहीं।

निश्छल ये भाव-सुमन पटल झरे,
भीगे ये गन्धशेष वस्त्र छले;
दर्पशेष कर्मव्रती अन्तस्तल,
खिसक रही मिट्टी यह पाँव तले!

संशय का साँप फूल में न छुपे,
भूलों की कुटिल गन्ध बने नहीं;
सम्बल हो हृद्-इच्छा ही अशेष,
धूप-छाँह धूलों से छने नहीं।

तिमिर-भूमि-अंक उगे ज्योति-सुमन,
बन्ध्या का बन्ध्यापन सलिल धुले;
अनरीते तरकस में हो उछाह,
बन्द राह साहस से स्वयं खुले!

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (३)

पण्डित ब्रजमोहन व्यास

सौभाग्य से जब मदनमोहन कालेज में पढ़ रहे थे उस समय वहाँ महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य-जी संस्कृत के प्रधानाध्यापक थे। वे ही मदनमोहन के गुरुदेव थे। भट्टाचार्य महोदय एक कर्त्तव्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ और महान् आत्मा के व्यक्ति थे। लगभग चौबीस वर्ष हुए, संवत् १९९२ में महामना मालवीय ने अपने गुरुदेव की एक छोटी-सी जीवनी लिखी थी। उस जीवनी में महामना जी लिखते हैं:—

"मध्य प्रदेश में सागर के विद्यालय में, सन् १८७२ ई० के प्रारम्भ में, वे संस्कृताध्यापक के पद पर नियुक्त हुए।...उसी समय प्रयाग में म्योर सेंट्रल कालेज के नाम से सरकारी कालेज स्थापित किया गया।...काशीस्थ सरकारी संस्कृत कालेज में आप अँगरेजी भाषा के अध्यापक होकर करीब ढाई बरस तक रहे। यह पद उन दिनों अँगरेजों के लिए सुरक्षित था, परन्तु पण्डितजी ने कुछ दिनों के लिए इसको सुशोभित किया था। आप ही ऐसे भारतीय विद्वान् थे जो इस पद पर पहिले-पहल नियुक्त किये गये थे। पीछे जब टीबो साहब, जो जर्मन थे, उस पद के लिए स्थायी रूप से नियुक्त होकर आये तब वे प्रयाग कालेज के अपने पुराने पद पर लौट आये।....

"वे बड़े ही न्यायनिष्ठ थे और किसीके साथ तनिक भी पक्षपात नहीं करते थे। प्रयोजन पड़ने पर बड़े स्पष्ट वक्ता थे। इस कारण कभी-कभी अफसर लोग उनसे चिढ़ जाते थे, तो भी उनकी न्याय-परायणता के कारण उनका सदा सम्मान करते थे।......

"हिन्दी के भी वे बड़े ही प्रेमी थे और हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये सदा उत्साह दिखाते थे। उस समय हिन्दी भाषा में कोई अच्छी मासिक पत्रिका नहीं थी। इस अभाव को दूर करने के लिए उन्होंने बहुत चेष्टा की थी, और जब प्रयाग के इंडियन प्रेस ने सरस्वती नाम की पत्रिका निकाली तब उनको बड़ा सन्तोष हुआ। वे काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के सदस्य और शुभेच्छु थे।..

"वे सब प्रान्तों के छात्रों का समान भाव से आदर करते थे और जो छात्र अन्य प्रान्तों से पढ़ने के लिए आते थे उनपर तो और भी अधिक कृपा करते थे। .....सरकारी नौकर होने के कारण वे सार्वजनिक कामों में योगदान नहीं कर सकते थे तथापि लोगों को यथोचित उत्साह बराबर देते रहते थे और देश के कामों में सहानुभूति भी रखते थे....वे देश की बनी हुई वस्तुओं के व्यवहार के विषय में बड़े कट्टर थे......प्रयाग में 'हिन्दू समाज' उन्हींके उपदेश और प्रोत्साहन से स्थापित हुआ था। अँगरेजी राज्य के समय में हिन्दू समाज के संगठन का
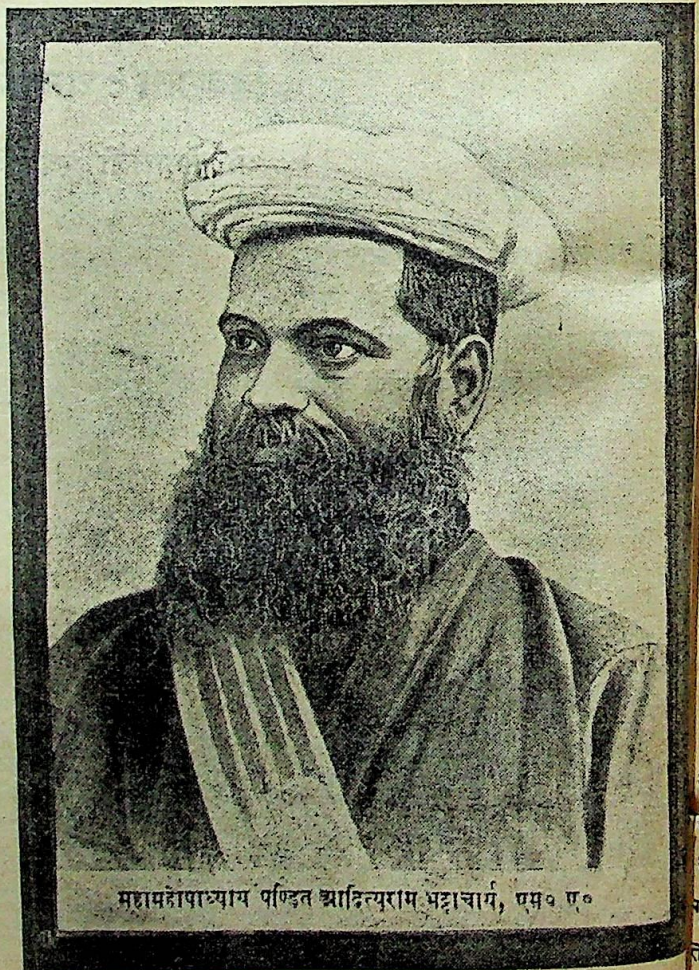
महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य, एम० ए०

यह पहिला प्रयत्न था। ....पण्डितजी के उपदेश और प्रोत्साहन से मैं उसका सदस्य हो गया था। मैं उस समय म्योर सेंट्रल कालेज का छात्र था। पण्डितजी मुझपर बहुत स्नेह रखते थे। उनके सम्पर्क से मुझमें देश-भक्ति का भाव दृढ़ होता गया।......

"हिन्दू लड़कों का स्वधर्म में छात्रावस्था से ही प्रेम बना रहे और वे दूसरों के बहकाने से न बहकें, इस अभिप्राय से जब १८९८ ई० में श्रीमती एनीबेसेंट, बाबू गोविन्ददास, डाक्टर भगवानदास, बाबू उपेन्द्रनाथ बसु तथा अन्य सज्जनों ने सेंट्रल हिन्दू कालेज खोला तब पण्डितजी ने—उसके एक बड़े समर्थक के रूप में—उत्साह-पूर्वक उसमें सहयोग किया था.....फिर जब काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा उठी तब फिर पण्डितजी का उत्साह दूना हो गया। यद्यपि इस समय उनकी अवस्था अधिक हो गयी थी तथापि उस कार्य में उन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया। विश्वविद्यालय के स्थापित हो जाने पर उसमें प्रो-वाइस-चांसलर का उच्च पद ग्रहण कर वे फिर काशी गये और सन् १९१६ से १९१८ ई० तक बड़े परिश्रम और उत्साह से उस पद का काम करते रहे। एक नवीन आदर्श विश्वविद्यालय की संस्थापना और उसका संगठन करने के लिए वृद्धावस्था में पण्डितजी को बहुत परिश्रम करना पड़ा। इसका यह परिणाम हुआ कि उनके नेत्रों की ज्योति जाती रही और शरीर भी टूट गया। अतएव ७१ वर्ष की अवस्था में वे अपने प्रयाग के मकान में लौट आये।.....और तीन वर्ष बाद उनका शरीर भी छूट गया।....१८ अक्टूबर सन् १९२१ ई० (कार्तिक कृष्ण द्वितीया संवत् १९७८) को अरुणोदय के समय वे उसी भवन में परब्रह्म में लीन हो गये।

"पण्डितजी बाल्यावस्था से ही बलिष्ठ, तेजस्वी और उद्यमशील थे। छात्रावस्था से प्रौढ़ावस्था तक बराबर व्यायाम करते रहे।.....गृहस्थी में रहकर भी वे ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उनके ओजपूर्ण नेत्र उनके नाम को सार्थक करते थे। वे सत्यभाषी और स्पष्ट वक्ता थे। घुमा-फिराकर बातें करना नहीं जानते थे।... वे परमार्थ-साधन में नियमपूर्वक लगे रहते थे। अपने जीवन की नित्यचर्या में वे यह बात दिखला गये हैं कि अपनी गृहस्थी का काम और पारमार्थिक काम, इन सभी की तरफ ध्यान रखकर और इनका सामंजस्य कर मनुष्य को किस तरह कर्मशील होना चाहिए। वस्तुतः वे एक गृहस्थ योगी थे।

"पण्डितजी के शरीर में जब तक बल रहा तब तक वे नित्य सायंकाल त्रिवेणी तट को जाते थे। सूर्य की उपासना भी विशेषरूप से करते थे। रात्रि में तीन बजे उठकर, पूजन आदि करके, सूर्योदय के समय, सूर्य के अष्टोत्तर शत-नाम का पाठ कर उनको साष्टांग प्रणाम करते थे।....

"पण्डितजी का वासस्थान भी बड़ा उत्तम था। उनका मकान प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में, गंगातट पर, प्राचीन दशाश्वमेधजी से लगा हुआ है। इसे उन्होंने १८७९ ई० में खरीदा था। जिस समय यहाँ पहिले कोई मकान नहीं था उस समय झोपड़ी बनाकर एक बड़े विद्वान् महापुरुष रहते थे। उनका नाम शिवशर्मा था। वे बालब्रह्मचारी विरक्त महात्मा नैपाल देश के थे। उन्हींके नाम पर पण्डित-जी ने अपने व्यय से एक संस्कृत पाठशाला स्थापित करायी है जिसका प्रबन्ध काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय करता है। वे हिन्दुओं की प्राचीन सम्पत्ति और धर्म के प्राण-स्वरूप शास्त्रों का सुरक्षण अत्यावश्यक समझते थे। इस काल में इसका अनादर होने से इसके मलिन हो जाने की भी उन्हें बड़ी आशंका थी। अतएव संस्कृत विद्या द्वारा उपार्जित अपनी स्थावर-जंगम सब सम्पत्ति इसीके पोषण के लिए अर्पित कर गये हैं। वह काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के हाथ में सुरक्षित है और वहाँके प्रबन्ध से, उस धन के अधिकांश द्वारा, अपने गंगातट के मकान में पाठशाला के चलाने की व्यवस्था वे अपनी मृत्यु के पहिले ही कर गये हैं।"*

मातः! फिर पं० वेणीमाधव भट्टाचार्य और पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के समान गृहस्थ, तपस्वी, त्यागी, भगवतभक्त, देशभक्त, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति के प्रेमी, धर्म में दृढ़ पुरुषों को जन्म दो।"

उन महात्माओं का भक्त और स्नेहभाजन
मदनमोहन मालवीय

---

*"विश्वविद्यालय ने उसके संचालन के लिए एक न्यास समिति बनाई है। (लेखक उस समिति का एक न्यासधारी है और आजकल पाठशाला का मंत्री और प्रबन्धक है) ....पण्डितजी के ज्येष्ठ भ्राता पं० वेणी-माधवजी भी एक बड़े चरित्रवान् पुरुष थे। बाल्यकाल ही से ये बड़े सदाचारी और नैष्ठिक हिन्दू थे।......

पं० आदित्यरामजी के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से लिखने का यह तात्पर्य है कि ऐसे पवित्रात्मा अध्यापक के संसर्ग में आने से बालक मदन का सम्पूर्ण जीवन शुद्धतर हो गया। यदि भट्टाचार्य महोदय सरीखे अध्यापक एवं उपकुलपति हमारे विश्वविद्यालयों में हों तो उनमें जो आजकल कलुषित वातावरण हो रहा है वह न होने पावे।

मदनमोहन आदित्यरामजी **से** संस्कृत पढ़ते थे। **यों** तो **उस** कक्षा में बहुत से संस्कृत के विद्यार्थी थे और पण्डितजी बड़ी लगन से सबको समान रूप से पढ़ाते थे, परन्तु छात्र मदनमोहन उनसे संस्कृत पढ़कर खिल उठा। पण्डितजी के पढ़ाने की शैली बड़ी मनमोहिनी थी। वे श्लोकों को उन्हीं छन्दों की ध्वनि में गाकर पढ़ाते थे। भवभूति कहते हैं :—

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्ति करोत्यपहन्ति वा।
भवति च तयोर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बोद् ग्राहे मणिर्न मृदाञ्चयः॥

उत्तररामचरित।

(अध्यापक प्रत्येक छात्र को चाहे वह बुद्धिमान् हो अथवा मूर्ख, समान रूप से विद्या प्रदान करता है। **न** तो किसी विद्यार्थी में विशेष रूप से शक्ति देता है और न किसी की शक्ति का अपहरण ही करता है, फिर भी उसके पढ़ाने का फल छात्रों में भिन्न-भिन्न होता है। सूर्य समान रूप से पृथ्वी पर प्रकाश डालता है; मणि उसके प्रकाश पड़ने पर लपलपा उठता है परन्तु मिट्टी का ढेर निष्प्रभ रह जाता है।) मदनमोहन मणि थे, उनसे पढ़कर लपलपा उठे। 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपातः' होनहार का पक्षपात सभी करते हैं। आदित्यरामजी उन्हें पुत्र के समान मानने लगे। मदनमोहन को महामना बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। एक प्रकार से पण्डितजी उनके पथ-प्रदर्शक थे। जीवन की लोक-यात्रा कठिन नहीं होती। पथ-प्रदर्शक दुर्लभ होता है। भारवि कहते हैं :—

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः॥

किरातार्जुनीय

(भावार्थ—लोक-व्यवहार कठिन होने पर भी उस तड़ाग के अवगाहन की भाँति सुखसाध्य है, जिसमें घाट बना दिया गया है। दुर्लभ तो वह व्यक्ति है जो घाट बना देता है, जो यह बता देता है कि मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है।)

आदित्यरामजी के लिए मालवीयजी के हृदय में असीम श्रद्धा थी। मालवीयजी उनका केवल आदर ही नहीं करते थे, उन्हें देवतुल्य समझते थे। एक दिन की बात है। नित्य-नियम के अनुसार पं० आदित्यरामजी प्रातःकाल दशाश्वमेध के सामने गंगातट से लौट रहे थे। उसी समय मालवीयजी महाराज तट की ओर जा रहे थे। दोनों की उस स्वच्छ बालुकामय मैदान में भेंट हो गयी। मालवीयजी महाराज ने रेत पर लेटकर आदित्यरामजी को साष्टांग प्रणाम किया। क्षण भर के लिए इस चित्र को अपने मानस-पटल पर खींचिए। मन्दाकिनी की पवित्र रेत पर सूर्य-समप्रभ तपस्वी आदित्यरामजी खड़े हैं, सामने पगड़ी, डुपट्टा इत्यादि सम्पूर्ण वस्त्र पहिने, **मालवीयजी** बालू पर लेटकर पण्डितजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं और थोड़ी दूर पर पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी (इस समय सरस्वती के सम्पादक) 'शशिदिवाकरयोः' चन्द्र और सूर्य के अपूर्व सम्मिलन के दृश्य को देख रहे हैं। यह चतुर्वेदीजी का सौभाग्य था। उस समय उस बालू के मैदान **की** ऐसी शोभा हुई जैसे :—

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा-
वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघंटा-
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥

माघ——शिशुपालवध।

[एक ओर आदित्य उदय हो रहे हैं, (आदित्यराम जी खड़े हैं), दूसरी ओर चन्द्रदेव अस्त हो रहे हैं (चन्द्रमा के समान शुभ्र मालवीयजी रेत पर लेटे हैं], इस प्रकार वह रैवतक पर्वत (बालू का मैदान) उस श्वेत हाथी के समान शोभायमान हुआ जिसके दोनों ओर चमकते घंटे लटक रहे हैं।

मदनमोहन का कालिज का जीवन बड़ा व्यस्त था। पढ़ने-लिखने का जो भार था वह तो था ही, सभा सोसाइटियों का इतना भार उन्होंने अपने सिर पर ले लिया था कि उससे न केवल उनके अध्ययन में बाधा पड़ती थी बल्कि स्वास्थ्य पर भी। आखिर मेहनत की कोई हद होती है पर मदनमोहन ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की। १८८० में पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य की प्रेरणा से प्रयाग में 'हिन्दू समाज' की स्थापना हुई। मदनमोहन उसके प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में थे। इसका कार्य जोरों से चल ही रहा था कि सन् १८८४ में मदनमोहन ने 'म

हिन्दू समाज' नाम की एक सभा स्थापित की। यह हिन्दू समाज से तगड़ी थी। दशहरे के अवसर पर यमुना किनारे महाराज बनारस की विशाल कोठी में बड़ी धूम-धाम से मध्य हिन्दू समाज का उत्सव हुआ। पं० लक्ष्मीनारायण व्यास (लेखक के पितामह) के प्रस्ताव करने पर बराँव के राजा, परमवैष्णव, श्री महावीरप्रसादनारायणसिंहजी ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। उन्हीं दिनों कालाकाँकर के राजा, स्वर्गीय राजा रामपालसिंह नये-नये विलायत से लौटे थे। वे इस जलसे में पेश-पेश रहते थे और सभापति के काम में बीच-बीच में उठकर बाधा डालते थे। कोई भी व्याख्यान दे रहा हो, वे उठकर स्वयं बोलने लगते थे। राजा रामपालसिंह बड़े प्रभावशाली और रोबीले आदमी थे। यद्यपि इस प्रकार के उनके व्यवहार से सभी असन्तुष्ट थे तथापि किसीकी उनसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। आखिर मदनमोहन से न रहा गया। अब जब राजा साहब इस प्रकार बाधा डालते तो मदनमोहन तुरन्त उठकर उनके कान में कुछ कहने लग जाते थे। वे उन्हें बोलने से रोकते थे। बात यह है कि मदनमोहन, ठाठ-बाट और राजा के नाम से दहलनेवाले तो थे नहीं। 'ठाकुर' के शब्दों में मदनमोहन का स्वभाव था :—

बैर प्रीत करिबे की मन में न राखै संक
राजा राव देखिकै न छाती धाक-धा करी।
आपने उमंग के निबाहिबे की चाह जिन्हें
एक सों दिखात तिन्हें बाघ और बाकरी।
'ठाकुर' कहत मैं विचार कई बार देख्यो
यही मरदानन की टेक बात आकरी।
गही तौन गही, बात छाँड़ी तौन छाँड़ दई,
करी तौन करी, बात ना करी सो ना करी॥

राजा साहब को, इस प्रकार उन्हें रोकने का साहस करना खलता था पर कर ही क्या सकते थे। गलती उन्हीं की थी। केवल मुसकुरा देते थे।

अधिवेशन बड़े ठाठ-बाट से समाप्त हुआ। उन दिनों राजा साहब 'हिन्दुस्तान' नाम का एक पत्र निकालते थे। उसमें उन्होंने अधिवेशन की प्रशंसा तो की पर यह भी लिखा कि—"उसमें दो एक लौंडे ऐसे ढीठ थे कि बड़े-बड़े राजा-रईसों और बावदूकों (वक्ताओं) को व्याख्यान देते समय उनके कान में सलाह देने की धृष्टता करते थे।" राजा साहब का मदनमोहन की ओर इंगित था, यह स्पष्ट है। परन्तु राजा रामपाल सिंह बड़े गुणग्राही थे। थोड़े ही समय बाद उन्होंने मदनमोहन को अपने पत्र 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बना दिया। इसकी चर्चा, प्रसंग आने पर करूँगा।
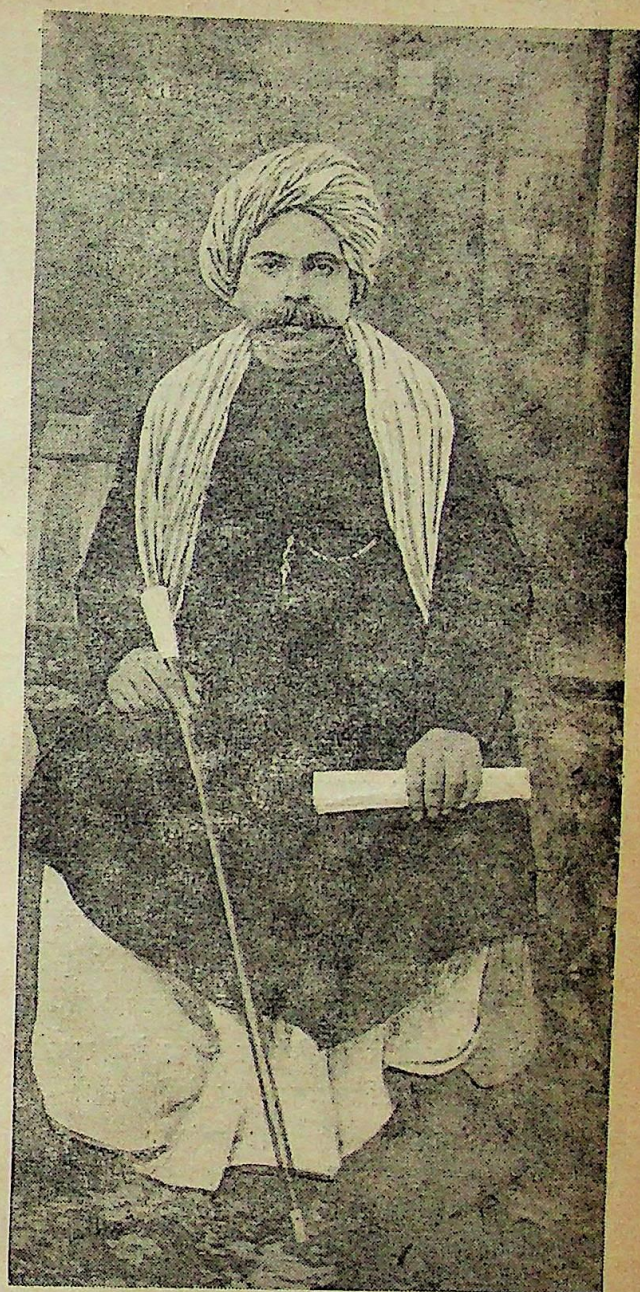
पंडित शिवराम पांडे प्रयाग के लब्धप्रतिष्ठ वैद्य
और मदनमोहन के चिकित्सक

इस प्रकार सन् १८९१ तक प्रतिवर्ष मध्य हिन्दू समाज के अधिवेशन होते रहे। मध्य हिन्दू समाज

के साथ-साथ उन्होंने कालिज में एक 'लिटररी इंस्टिट्यूट' भी स्थापित किया। इसका बड़ा विशद उद्देश्य था। भारतीय साहित्य की जानकारी, उसकी समालोचना, अन्य देशों के भी साहित्य का अध्ययन, राष्ट्रीय साहित्य की ओर रुचि पैदा करना इत्यादि। इसके अतिरिक्त मदनमोहन ने कालिज में एक 'डिबेटिंग सोसाइटी' स्थापित की। इसमें आये दिन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विषयों पर व्याख्यान और वाद-विवाद होता रहता था। इन सबमें प्रेरणा मदनमोहन की रहती थी। मदनमोहन को बोलने का रोग था। यह रोग इनके परिवार में न्यूनाधिक प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को हमेशा से रहा है। मदनमोहन में इसका आधिक्य था। परिणाम यह हुआ कि वे रक्त-पित्त के रोग से ग्रस्त हो गये। मदनमोहन को सर्वदा से आयुर्वेद में निष्ठा थी। अतः उन्होंने प्रयाग के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० शिवराम पांडे की चिकित्सा आरम्भ कर दी। शिवराम जी ने जो इसका विशद वर्णन किया है। उसे उन्हींके शब्दों में लिखते हैं।

"मुझे खूब स्मरण है कि इस बार मैंने बहुत दिनों तक मालवीयजी की दवा की थी, मगर किसी प्रकार उनका रोग दूर ही न होता था। मगर मदनमोहन का विश्वास मेरे ऊपर अटल था। उनके घरवाले उनसे नाराज होते थे। कहते थे 'शिवराम की दवा मत करो। वे तुम्हारा बहुत-सा रुपया खर्च कराते हैं और तुमको ठगते हैं।' उनको मदनमोहन का उत्तर विलक्षण था। वे लोगों से यही कहते थे कि मेरे ही कुपथ्य से मेरा रोग नहीं छूट रहा है। शिवरामजी की चिकित्सा में और उनकी आदमियत में कोई कमी नहीं है।

"मगर घरवाले चिन्तित थे...मैं भी परेशान था। मेरी दवा में रोग दूर करने की शक्ति जरूर थी मगर पत्थ्यहीन को पत्थ्य से रहने के लिए विवश करने की ताकत उसमें न थी। मैंने मालवीयजी के घरवालों से कहा कि इनकी बोलने की आदत बड़ी चढ़ी-बढ़ी है। जब तक यह आदत न छूटेगी तब तक मुँह से खून का जाना बन्द न होगा। मगर मदनमोहन को बोलने का नशा था। चेष्टा करने पर भी वे बोलना नहीं छोड़ सकते थे।

"मदनमोहन के बड़े भाई, पण्डित लक्ष्मीनारायण को मेरी सलाह जँच गयी। फिर क्या था, वे छड़ी लेकर मदनमोहन के साथ रहने लगे। एक दिन ऐसा हुआ कि मालवीयजी से एक बड़े सम्मानित व्यक्ति मिले। उस अवसर पर मैं भी मदनमोहन के पास उपस्थित था। उस प्रतिष्ठित व्यक्ति से और मालवीयजी से बातें होने लगीं। प्रहरी पण्डित लक्ष्मीनारायण भी छड़ी लिये मौजूद थे। जब उन्होंने देखा कि बात-चीत का ताँता अब पत्थ्य से रहने की सीमा का उल्लंघन कर रहा है तब उन्होंने इस तरफ मदनमोहन का ध्यान आकर्षित किया। मदनमोहन तो लीन थे। उन्हें पत्थ्यापत्थ्य की कोई परवाह न थी। लाचार होकर लक्ष्मीनारायण जी को कहना पड़ा--'बस भाई!' उस समय मदनमोहन को बहुत बुरा लगा। वे झुँझला गये। वह यह कहते हुए वहाँ से चल दिए--'हमें ऐसी दवा की जरूरत नहीं", मगर पण्डित लक्ष्मीनारायण पर उनकी झुँझलाहट का कुछ भी असर न पड़ा। उन्होंने छड़ी लेकर मदनमोहन का साथ न छोड़ा।"

शिवरामजी की औषधि का पत्थ्य था बड़े भाई की छड़ी। उस पत्थ्य के मिलने से मदनमोहन का रोग छूट गया।

कालिज में मदनमोहन के कुछ ऐसे सहपाठी थे जो उनके बड़े भक्त थे। एक पण्डित हरिराम पांडे और दूसरे पण्डित श्रीकृष्ण जोशी। इन दोनों महान् व्यक्तियों से मदनमोहन की गाढ़ मैत्री थी। मदनमोहन का सद्भाव तो सभी से था, परन्तु किसीको अपना अन्तरंग मित्र वे बहुत ठोंक-बजाकर बनाते थे। अँगरेजी की एक कहावत है "A person is known by his associates." मनुष्य की पहिचान उसके मित्रों से होती है। लक्ष्मी ही को देखिए। अपने साथियों ही के कारण ये संसार में बदनाम हो गयीं और उनमें बहुत से दुर्गुण आ गये। बाणभट्ट कहते हैं:—

"इयं हि सुभट्खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी-लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दु-शकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलतां, काल-कूटान्मोहनशक्तिं, मदिराया मदं, कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वेवोद्गता।"

कादम्बरी—शुकनासोपदेश।

भावार्थ—(उज्जयिनी के महाराज तारापीड़ के महामात्य शुकनास युवराज चन्द्रापीड़ को राज्याभिषेक

कालेज के तीन सहपाठी पंडित हरिरामजी पांडे, पंडित मदनमोहन मालवीय तथा पंडित श्रीकृष्ण जोशी

के समय उपदेश देते हैं। यह विस्तृत उपदेश संस्कृत-साहित्य-सागर का अनुपम रत्न है) शुकनास कहते हैं—"तनिक इस लक्ष्मी की ओर ध्यान दीजिए। यह लक्ष्मी बड़े-बड़े योद्धाओं के रणभूमि रूपी कमल-वन की भ्रमरी है। जब यह मायके (सागर) में थी तो इसका साथ बहुत बुरे लोगों का था। उन सबकी बुराई अपने में लेकर यह संसार में आयी है। पारिजात वृक्ष से सौंदर्य, अर्धचन्द्र से घोर कुटिलता, उच्चैश्रवा घोड़े से चंचलता, कालकूट महाविष से व्यामोह, मदिरा से उन्मत्तता और कौस्तुभमणि से भयंकर कठोरता, इन सब से अपने साथियों का परिचय देती हुई, उन्हें अपने साथ लेकर यह लक्ष्मी, समुद्र से निकली है। इस लक्ष्मी से सदा सजग रहना।"

मदनमोहन बाल्यावस्था से ही लक्ष्मी के डाँड़े नहीं गये। सदा भले लोगों से मैत्री की और उनके सहयोग एवं अपने पौरुष से बड़े-बड़े काम कर डाले।

एक बार जब मदनमोहन कालिज में पढ़ते थे, लार्ड रिपन प्रयाग में आये। लार्ड रिपन एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और भले लोग थे। भारत के हितेच्छु थे। उनके लिए भारतीयों के हृदय में आदर था और इसी कारण अँगरेज उनसे चिढ़ते थे। जब मदनमोहन को पता चला कि लार्ड रिपन प्रयाग आ रहे हैं तो उन्होंने धूम-धाम से उनके स्वागत का आयोजन किया। कालिज के तत्कालीन प्रिन्सिपल, हैरिसन साहेब, यद्यपि बड़े भले थे तथापि जीती मक्खी नहीं निगल सकते थे। उन्होंने स्पष्ट आज्ञा दे दी कि स्वागत न होगा। परन्तु मदनमोहन तो स्वागत करने की ठान चुके थे। फिर "अतिशयिताखिल मानुषं द्विजवरं रोद्धुं हि कः शक्यते" मानवता के गुणों से सम्पन्न इस द्विजश्रेष्ठ को कौन रोक सकता था? अगले दिन बड़ी धूम-धाम से जुलूस निकला। लार्ड रिपन का स्वागत किया गया और उन्हें मानपत्र भी दिया गया। विरोधी लोग स्तम्भित रह गये और तब हैरिसन साहब को पता चला कि

'वीर्यावधूतस्म तदा विवेद
प्रकर्षमाधारवशं गुणानाम्॥ —भारवि किरातार्जुनीय

(शक्ति के क्षीण होने पर तब उन्होंने जाना कि मनुष्यों में गुणों का उत्कर्ष उनके व्यक्तित्व पर आधारित होता है।)

—क्रमशः

आचार्य कवि गोविन्द गिल्ला भाई

श्री मालारविन्दम् चतुर्वेदी

मुसलमानों के शासक रूप में इस देश में आने के साथ भारतीय साहित्य के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना यह घटी कि साहित्य की अभिव्यक्ति का अधिकार अब देश की अनेक प्रान्तीय भाषाओं को मिल गया। इससे पूर्व का समूचा भारतीय साहित्य संस्कृत, प्राकृत, अथवा अपभ्रंश में ही मिलता है। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् से देश में साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम की दुहरी परंपरा चल पड़ती है। आशय यह कि एक ओर तो प्रान्तीय भाषाओं में रचनाएँ होती हैं और दूसरी ओर इसके साथ ही अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिन्दी में भी रचनाएँ होती हैं, यद्यपि कुछ विद्वानों ने हिन्दी को भी एक प्रान्तीय भाषा मान लिया है और उसका इतिहास लिखते समय तथाकथित हिन्दीभाषी प्रान्तों तक ही अपनी दृष्टि सीमित रखी है। परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी भाषा एवं साहित्य की अखिल भारतीय परम्परा का वास्तविक स्वरूप अब तक हमारे सामने नहीं आ सका है। कुछ समय से तथाकथित अहिन्दीभाषी प्रान्तों में हिन्दी विषयक शोध कार्य प्रारम्भ हुआ है जिससे बंगाल, हैदराबाद, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब आदि प्रदेशों की बड़ी ही समृद्ध हिन्दी काव्य परम्पराएँ हमारे सामने आयी हैं। हिन्दी के किसी भी इतिहास में इन सभी परम्पराओं का समवेत उल्लेख नहीं मिलता। परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी को अपने उस स्वयंसिद्ध राष्ट्रीय गौरव से वंचित किया जाता है जिसे वह कई शताब्दियों से साधिकार प्राप्त करती आ रही है। विगत कुछ वर्षों से अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में जो कुछ हिन्दी विषयक शोध कार्य प्रारम्भ हुआ है, उसमें बड़ौदा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की शोध योजना विशेष महत्त्व की है, तथा अनेक कारणों से अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों में अनुकरणीय है। इस योजना को प्रवर्तित हुए अभी केवल दो वर्ष और कुछ ही मास व्यतीत हुए हैं, परंतु इस बीच में ही इतनी अधिक सामग्री प्राप्त हुई है कि इस योजना के प्रवर्तक महोदय आचार्य श्री कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह तथा अन्य विद्वान् हिन्दी साहित्य के इतिहास को पुनः राष्ट्रीय भूमिका पर लिखे जाने की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं,

प्रस्तुत लेख में हम जिस अहिन्दीभाषी महाकवि का परिचय प्राप्त करने जा रहे हैं उसके लिए यही उचित होगा कि गुजरात के हिन्दी साहित्य को ही पृष्ठभूमि के रूप में रखा जाय, क्योंकि कुछ दृष्टियों से गुजरात की हिन्दी काव्य-परम्परा अन्य स्थानों की हिन्दी काव्य-परम्पराओं से भिन्न है। हिन्दी साहित्य के आदि काल से लेकर आज तक गुजरात में हिन्दी काव्य की परम्परा गुजराती काव्य के समानान्तर ही मिलती है। अब तक की शोध में लगभग ४०० ऐसे कवि गुजरात में मिलते हैं जिन्होंने गुजराती के साथ-साथ या स्वतंत्र रूप से हिन्दी में काव्य रचना की है। कुछ चार-छः कवियों को छोड़कर उक्त समस्त कवि हिन्दी जगत् में अज्ञात हैं। गुजरात के इस समूचे हिन्दी साहित्य को काल क्रम से विभाजित न कर, यदि विषयानुक्रम से उसका वर्गीकरण करें तो प्रथमतः इसे हम दो भागों में बाँट सकते हैं.....

१—धर्मसापेक्ष साहित्य।

२—धर्मनिरपेक्ष साहित्य।

धर्मसापेक्ष साहित्य को पुनः संत, सूफी, जैन, वैष्णव, स्वामीनारायणी आदि काव्य-धाराओं में बाँटा जा सकता है, तथा धर्म निरपेक्ष साहित्य को चारण तथा चारणेतर काव्यधारा के रूप से विभाजित कर सकते हैं। उक्त सभी काव्यधाराओं में अनेक उच्चकोटि के कवि भी हैं जिनकी तुलना हिन्दी के अनेक महाकवियों से की जा सकती है।

गुजरात में कुछ ऐसे भी काव्य लिखे गये हैं जो उक्त विभाजन सिद्धान्त से अबाधित रहते हैं तथा उपरि-प्रस्थापित किसी भी कोटि में समाविष्ट नहीं किये जा सकते। उदाहरणार्थ अनेक जैन कवियों ने अनेक बारहमासा, ब्याहलो, रास, कक्कावारी या ककहरा, संख्यामूलक मुक्तक जैसे पच्चीसी, बावनी, बत्तीसी आदि काव्य रूपों में रचना की है जिनमें धार्मिकता के अभाव के कारण उन्हें धर्मसापेक्ष काव्य नहीं कह सकते हैं, और अन्य किसी प्रयोजन के अभाव के कारण उन्हें धर्मनिरपेक्ष काव्य भी नहीं कह सकते। इसी प्रकार श्री महेरामणसिंह कृत "प्रवीण सागर" १८वीं शताब्दी में रचित एक विचित्र प्रबन्ध काव्य, न चारणी काव्य कहा जा सकता है और न चारणेतर।

प्रस्तुत कवि श्री गोविन्द गिल्ला भाई को विशुद्ध रूप से धर्मनिरपेक्ष चारणेतर काव्यधारा का प्रमुख प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है, यद्यपि गुजरात के कुछ कवि और विद्वान् अब भी इन्हें चारण मानते हैं क्योंकि इनके पूर्वज सिहोर के राजवंश से सम्बन्धित थे तथा उसके दरबार में खवासी का काम करते थे। परिणामस्वरूप ये और इनके वंशज खवास कहलाते थे। काठियावाड़ में चौहानवंशी राजपूतों की एक विशेष शाखा है जो अब भी खवास शब्द का प्रयोग अपने नाम के साथ अल्ल या अटक के रूप में करती है राजस्थान तथा उत्तर भारत में खवासी का काम केवल नाई ही करते हैं, परंतु काठियावाड़ में ऐसी बात नहीं है। हमारे कवि ने भी इस शब्द का प्रयोग अपने नाम के साथ इसी अर्थ में किया है।

श्री गोविन्द गिल्ला भाई को धर्मनिरपेक्ष चारणेतर कवि कहने का आशय यह है कि इन्होंने हिन्दी काव्य-रचना किसी धर्म या सम्प्रदाय के सिद्धान्त या मत के प्रचारार्थ नहीं की थी और न जीवकोपार्जनार्थ किसी राजा या राव की प्रशंसा में कुछ लिखा है। यद्यपि ये भाव

नगर के राजा तथा सौराष्ट्र के अन्य कई ठाकुरों से निकट से सम्बन्धित थे फिर भी इन्होंने उनकी प्रशंसा में एक पंक्ति भी नहीं लिखी है। आचार्य श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी ने जिन रीतिकालीन कवियों को रीति-बद्ध कवि माना है उनके विषय में सामान्यतया यह सत्य है कि वे किसी न किसी राजा या सामन्त के आश्रित रहे थे। श्री गोविन्द गिल्ला भाई रीतिबद्ध कवि अवश्य थे परन्तु किसीके आश्रित नहीं। हिन्दी साहित्य के रीति काल की परिसीमा में गुजरात के हिन्दी कवियों में ऐसे कवियों का बाहुल्य है जिन्होंने किसी धार्मिक मत या राज्य के आश्रित होकर ही काव्य-रचना की है। परन्तु श्री गोविन्द गिल्ला भाई गुजरात के उन गिने-चुने कवियों में से हैं जिनका काव्य केवल कवि प्रतिभा-प्रेरित व स्वान्तःसुखाय था। राष्ट्रीय एकता की सूत्रधारिणी हिन्दी ही इस कवि की प्रेरणा-मूर्ति थी जिसके सहज सौन्दर्य ने इनको अपनी ओर आकृष्ट किया तथा काव्य रचना में प्रवृत्त किया। जोधपुर निवासी मुंशी देवीप्रसादजी ने अपनी पुस्तक कवि रत्न-माला (भाषा कवि चरित) में कवि का दिनांक १३, दिसम्बर १९०३ ई० का एक पत्र उद्धृत किया है जिससे ज्ञात होता है कि यह कवि किस प्रकार भाषा काव्य रचना में प्रवृत्त हुआ था। कवि लिखता है कि "मेरे घराने किंवा पूर्वजों में कोई कवि नहीं हुआ है क्योंकि हमारा यह खास काम-धंधा नहीं है। हम जाति के चौहान राजपूत हैं। मदरसा छोड़े पीछे हमको निरंतर विद्वानों का संग रहा। उनके संग में कविता का शौक चाव हुआ तो भाषा काव्य किंवा साहित्य के ग्रंथ सीखने लगे। जब भाषा का कुछ ज्ञान हुआ और कविता बनाने की इच्छा हुई तो पिंगल शास्त्र के ग्रंथ सीखने लगे और कविता करने लगे ... सारे दिन काव्य-चर्चा होती रहती है। हमारी उमर हमने काव्य चर्चा में गुमायी है और कुछ काम नहीं किया है।" इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि किसी असाहित्यिक प्रयोजन को लेकर हिन्दी काव्य-क्षेत्र में नहीं आया था वरन् स्वयं भारत-भारती-हिन्दी ही उसकी काव्य साधना के मूल में कारण रूप थी। कवि का सम्पूर्ण जीवन इसी सत्य की प्रबल पुष्टि करता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है गुजरात के हिन्दी कवियों का नामोल्लेख भी हिन्दी साहित्य के इतिहासों में नहीं मिलता। लेकिन श्री गोविन्द गिल्ला भाई एक ऐसे कवि हैं जिन्हें हिन्दी जगत् उनके प्रारम्भिक जीवन ही से जानता है। आचार्य श्री रामचंद्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य के इतिहास" में, तथा मिश्रबंधुओं ने अपने "मिश्र-बन्धु-विनोद" में इनका परिचय दिया है तथा सरस्वती, माधुरी आदि पत्रिकाओं में भी इनके विषय में लेख प्रकाशित हो चुके हैं। वे अपने समय की प्रायः समस्त साहित्यिक संस्थाओं के सक्रिय सदस्य थे। काशी-कवि-समाज, काशी-कवि-मंडल, पटना-कवि-समाज आदि संस्थाओं की ओर से काव्य समस्याएँ इनके पास भेजी जाती थीं तथा ये उनकी पूर्ति करके भेजते थे। उक्त संस्थाओं की ओर से प्रकाशित होनेवाले मुख-पत्रों तथा समस्या-पूर्ति-संग्रहों में इनकी कविता नियमित रूप से प्रकाशित होती थी। इसलिए इन्हें अपने जीवन-काल में ही ख्याति मिलने लगी थी। साथ ही इन्होंने प्राचीन हिन्दी-साहित्य की हस्त-लिखित पुस्तकों का ऐसा सुन्दर संग्रह किया था कि जिसके कारण हिन्दी के सभी शोधक विद्वान् इनसे परिचित थे। राष्ट्रीय जागृति एवं हिन्दी के नवोत्थान के युग, "भारतेन्दु युग" के इस गुर्जर-प्रतिनिधि कवि का पुनर्मूल्यांकन इसलिए और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के आसन पर प्रतिष्ठित करनेवाले महर्षि दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल आदि गुर्जर प्रदेश के महापुरुषों की ही देन हैं।

श्री गोविन्द गिल्ला भाई जाति से तो चौहानवंशी राजपूत थे परंतु लोक में ये, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, खवास नाम से ही प्रसिद्ध थे। इन्होंने अपनी प्रकाशित पुस्तक गोविन्द-ग्रंथमाला प्रथम भाग के उपोद्घात में अपने वंश का परिचय देते हुए लिखा है कि "हमारे मूल पुरूखा जाति के चहुवान राजपूत मारवाड़ में जोधपूर ते अग्नि कौन में ३० कोश पर पीपलाद गाँव में रहते थे। वहाँ कुछ कुटुम्ब में परस्पर कलह होने से दो भाई रिसाइ के द्वारिका तरफ यात्रा करने को चले आये, और द्वारिकानाथ का दर्शन करके काठियावाड़ में फिरते-घूमते उंडसरवैयाबाड़ में आये, तब वहाँ छोटे-छोटे जमीनदार जूनागढ़ के प्राचीन राववंशी सरवैया ठाकुर थे। उस समय लूटपाट और लड़ाइयाँ बहुत चलती थीं। इसलिए सरवैया ठाकुर ने यह दो भाई को बहुत सन्मान करके रख लिये। उनमें से एक भाई लड़ाई में काम आ गए और दूसरा हीरा जी नाम का रहा। सो उदास होके अपने देश तरफ जाने को तैयार हुए परन्तु सरवैया ठाकुर ने बहुत आग्रह से एक कारडिया राजपूत की कन्या साथ लग्न करवाय के अपनी पास रख लिए। उनको संतति जो भई वही हमारा कुटुम्ब है।" कवि ने आगे बताया है कि सरवैया के ठाकुर अपनी कन्याओं को सिहोर के राजघराने में दिया करते थे। भावनगर के संस्था-पक श्री भावसिंहजी की पौत्रवधू ने, जो सरवैया की ही थी, कवि के पूर्वज-परिवार को सिहोर में बुलवा लिया। सिहोर में निवास करनेवाले अपने पूर्वजों की वंशावलि कवि ने इस प्रकार दी है :—

श्री गिल्लाजी हमारे कवि के पिता थे तथा कवि की माता का नाम श्रीमती लविगा बाई था। वि० सं० १९०५

की श्रावण सुदि ११ के दिन सिहोर में इस कवि का जन्म हुआ था। श्री गोविन्द गिल्ला भाई के नथुजी, कानजी, लक्ष्मणजी नाम के तीन भाई थे तथा गंगा गोमती नाम की दो बहिनें थीं। इनके पिताजी गिल्ला भाई सीहोर के किले में चलनेवाले दरबारी रसोड़े (रसोईघर) में प्रधान प्रबंधक के रूप में काम करते थे। काठियावाड़ की रियासतों में इस प्रकार के रसोड़ों की एक विशिष्ट परम्परा जो बहुत प्राचीन समय से यहाँ चली आ रही थी। इन रसोड़ों में राज्य में आये हुए सभी विद्वान्, कवि, भाट, चारण, तथा अन्य गुणीजन आतिथ्य-स्वरूप भोजन तथा यथायोग्य पुरस्कार प्राप्त करते थे। भावनगर के महाराज श्री वखतसिंहजी तथा इनके युवराज श्री विजयसिंहजी ने अपने राज्य-काल में इस रसोड़ा परम्परा के साथ-साथ दशहरा उत्सव मनाने का नियम बनाया था। परिणामस्वरूप गुजरात एवं राजस्थान से ही नहीं, वरन् मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि के अनेक भागों से प्रतिष्ठित विद्वान् तथा कवि इस ओर आने लगे। इस परम्परा का अंत कच्छ की उस प्रसिद्ध व्रज-भाषा-पाठशाला के अंत से हुआ जो गत तीन शताब्दियों से इस क्षेत्र में व्रज-भाषा-काव्य के पठन-पाठन का कार्य कर रही थी और जिसे कांग्रेसी राज्य ने बंद कर दिया।

उक्त सरकारी रसोड़े के प्रधान प्रबंधक श्री गिल्लाजी खवास अपने पुत्र की शिक्षा का कुछ विशेष प्रबंध न कर सके। साथ ही वि० सं० १७७९ के पश्चात् से सिहोर का नागरिक महत्त्व, भावनगर के बसाये जाने के कारण, शनैः-शनैः घटने लगा था। परिणामस्वरूप हमारे कवि के समय में सिहोर एक कस्बा मात्र रह गया था। इसलिए वहाँ अध्ययन की कुछ अच्छी व्यवस्था नहीं थी। वि० सं० १९१२-१३ में सर्वप्रथम हमारे कवि को "परमा भगत" नाम के एक वृद्ध राजपूत से अक्षर ज्ञान मिला। इसी बीच में दरबार की ओर से सिहोर में "सरकारी गुजराती निशाल" (पाठशाला) की स्थापना हुई जिसमें इन्होंने भावनगर के एक श्रीमाली ब्राह्मण श्री शिवशंकर गोविन्दराम के पास गुजराती की सात कक्षा तक की पढ़ाई की। वि० सं० १९१९ के आस-पास जैसे ही इनकी नियमित विद्यालय की शिक्षा पूरी हुई वैसे ही सिहोर के परमार करशनदासजी की कन्या "जान बाई" के साथ इनका विवाह कर दिया गया। इसके पश्चात् इनके पाँच पुत्र तथा चार पुत्रियों का जन्म हुआ, परंतु आज इनके वंश में केवल इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जयसिंह के कनिष्ठ पुत्र श्री राघवजी विद्यमान् हैं जो आजकल बंबई में व्यवसाय करते हैं।

श्री गोविन्द गिल्ला भाई के पारिवारिक जीवन के इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात् जब हम इनकी जीविका के विषय में विचार करते हैं तो यह जान कर बड़ा आश्चर्य होता है कि इन्होंने साहित्य-सेवा के अतिरिक्त कभी कुछ किया ही नहीं। मौलिक रचना करने के साथ-साथ प्राचीन कृतियों का संपादन, भूमिका तथा टीका आदि लिखने से जो कुछ अर्थ प्राप्ति होती थी उसीसे अपने परिवार को चलाते थे। इनकी लिखी डायरियों का अध्ययन करने से इतना स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के पूर्वार्ध में इन्हें कभी अर्थाभाव का अनुभव नहीं हुआ, परंतु उत्तरार्ध में अवश्य कुछ आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। इस बीच में इनकी कई संततियों का स्वर्ग-वास भी हुआ था। साथ ही ऐसे उल्लेख भी अनेक स्थानों पर मिलते हैं जब कवि को अपनी कुछ जमीन तथा घर भी बेचने पड़े थे। वि० सं० १९५९ में इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जयसिंह की मृत्यु काशी में विषपान के कारण हुई थी। इस दुखद घटना के साथ ही कवि के जीवन में आर्थिक कठिनाइयाँ भी आने लगती हैं। परंतु निराशा हमें इनके जीवन में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। जिस उत्साह के साथ इन्होंने साहित्य सेवा का कार्य प्रारम्भ किया था उसी उत्साह के साथ अंत तक करते रहे। दुर्व्यसनों से सदा दूर रहने के कारण तथा सदा संयमी एवं सात्विक जीवन बिताने के कारण इन्हें काफी दीर्घ आयु प्राप्त हुई थी। वि० सं० १९८१ में ७८ वर्ष की आयु में इनका स्वर्गवास हुआ।

इस प्रकार संक्षिप्त रूप से पारिवारिक एवं आर्थिक जीवन की झाँकी प्राप्त कर लेने के बाद जब हम श्री गोविन्द गिल्ला भाई के साहित्यिक जीवन का अध्ययन प्रारम्भ करते हैं तो इनके कृतित्व की चतुर्मुखी धारा हमारे सामने आती है। आशय यह कि इनके कृतित्व का विकास निम्न-लिखित चार रूपों में होता है।

१—कवि रूप में।
२—आचार्य रूप में।
३—संशोधक एवं संग्रहकर्त्ता के रूप में।
४—सम्पादक, अनुवादक एवं टीकाकार के रूप में।

इन चार रूपों में इनके कृतित्व का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि हम इनके साहित्यिक जीवन के मूल स्रोत का पता लगाएँ कि जाति से राजपूत एवं कर्म से खवास होने तथा परिवार में साहित्यिक संस्कारों के अभाव में भी यह व्यक्ति किसे प्रकार इतना सफल साहित्यकार हो सका।

श्री गोविन्द गिल्लाभाई के इस वैविध्यपूर्ण काव्य-कृतित्व का मूल उत्स, हमें खोजने पर, तत्कालीन गुजरात की हिन्दी काव्यपरम्परा में मिल जाता है। स्वर्गीय श्री डाह्या भाई पीताम्बरदास देरासरी ने अपनी पुस्तक "गुजरातीओए हिन्दी साहित्य मां आपेलो फाळो" में इस परम्परा का चित्रण इन शब्दों में किया है। "गुजरातमांना हिन्दीना प्रचार तरफ स्हेज दृष्टिपात करीए, तो जणाय छे के पोणो सो वर्ष पूर्वे नी जनसमाज नी केळवणी नी स्थिति तपासतां ते काळ ना आपणां "बहुश्रुत" माणसो खसूस करी नें वृजभाषा नो अभ्यास करतां, श्री वल्लभाचार्य ना नवरत्नो पैकी महाकवि नंददासजी नी 'मानमंजरी' अने 'अनेकार्थमंजरी' थी आरम्भ करी ने, 'सुन्दरशृंगार,' 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'छंद शृंगार', 'भाषाभूषण', 'बिहारीसतसई', 'वृंदसतसई', अने जसुराम

'राजनीति' वगेरे ग्रंथो शीखता वयोवृद्ध थतां सुन्दरविलास, तुलसीकृत रामायण, योगवाशिष्ठ वगेरे वाँचतां।" इसी के साथ-साथ जब हम काठियावाड़ में प्रचलित रसोड़ा परम्परा, दशहराउत्सव, एवं कच्छ की वृजभाषा पाठशाला को, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, समवेत रूप में देखते हैं, तो हमारे कवि के काव्य-कृतित्व का मूल स्रोत स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रसंग की चर्चा करते हुए एक स्थान पर स्वयं कवि ने लिखा है कि "परम्परा नी रीति प्रमाणे महाराजा श्री जसवंतसिंह जी (भावनगर के) नी बखत मां पण चालतुं होवा थी ते समय सिहोर ना रसोडा ना ऊपरी कवि गोविन्द भाई ना पूज्य पिता श्री गीला भाई हता। ते थी जे जे सारा माट चारणो कविओ आवे ते सर्वे रसोडे जमवा आवता हता। ते बबे त्रणत्रण दिन रहेता। ते थी गोविन्द भाई ने तेमना सहवास थी कविता पर अने इतिहास वातो सांभलवा पर विशेष रुचि थई हती। अने ते पेहेलां तेमना पाडोस मां एक लौ. का. गच्छ ना श्वेतांबरी जैन साधु पानाचंदजी करीने घणाज सारा विद्वान् रहेता हता। तेमने त्यां निरंतर जवूं आववुं थवा थी तेमना प्रसंग थी पण गोविन्द भाई ने विद्या नो रंग लाग्यो हतो. ते थी शामल भट्ट आदिक कवियों नी बनावेल वार्ताओ तथा उपन्यास, नाटकों आदिक नित्य नवां नवां पुस्तको वांचवा मांड्या। तेथी ते मां विशेष रुचि थवा थी शामल भट्ट ना जेवी अेक वार्ता रचवा माड़ी, ने थोडी घणी रची," इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार एवं किस परिस्थिति में इस कवि ने अपने विलक्षण व्यक्तित्व के निर्माण का श्रीगणेश किया था।

इस प्रकार श्रीगोविन्द भाई पर "विद्या नो रंग लाग्यो।" तभी से हमें उनके व्यक्तित्व में उक्त चारों प्रकार के कृतित्व के अंकुर मिलने लगते हैं। जैन साधु श्री पानाचंदजी को एक प्रकार से हम इनका प्रथम काव्य गुरु मान सकते हैं। पानाचंदजी के पास इन्होंने कुछ काव्य शास्त्र एवं पिंगल शास्त्र का विधिपूर्वक अध्ययन किया था। परंतु ऐसा लगता है कि ये श्री पानाचंदजी से बहुत कुछ प्राप्त न कर सके थे। क्योंकि इन्होंने श्री पानाचंदजी का उल्लेख अपनी किसी भी रचना में नहीं किया है। साथ ही जिस रूप में इन्होंने श्री पानाचंदजी का उल्लेख अपनी डायरी में किया है उससे भी यही सिद्ध होता है। ज्ञानार्जन के लिए भी कवि को सब कुछ अपने आप ही करना पड़ा था। सबसे बड़ी कठिनाई जो उस समय कवि के सामने थी, वह थी पुस्तकों की। न तो इनके पास इतना धन था कि उस समय पुस्तकें खरीदते और न उस समय पुस्तकें प्राप्त ही हो सकती थीं क्योंकि तब तक मुद्रण का प्रचार नहीं हुआ था। इसलिए इन्हें आरम्भ में इधर-उधर से पुस्तकें माँग कर अपना काम चलाना पड़ता था। भावनगर के देसाई श्री छगनलाल संतोषराम तथा केसरीसिहजी भूपतसिहजी आदि व्यक्तियों से इन्हें कुछ अच्छी पुस्तकें प्राप्त हो गयी थीं। आरम्भ की इन कठिनाइयों ने कवि को स्वावलंबी अवश्य बना दिया। इनमें हमें जो शोधक प्रवृत्ति मिलती है उसका भी बीज वपन इसी समय हो गया। हिन्दी के अनेक अलभ्य हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह जो इन्होंने किया था, उसके मूल में भी यही संग्रह वृत्ति है। स्वयं अपने शिक्षक होने के कारण अंत में ये हमें एक टीकाकार, समीक्षक तथा अनुवादक के रूप में भी मिलते हैं। सारांश यह कि इनके कृतित्व के उक्त चारों रूपों का मूल कारण तत्कालीन गुजरात में हिन्दी की व्यापक स्थिति एवं शताब्दियों से चली आती उसकी समृद्ध काव्य-परम्परा थी, जिन्होंने इन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया तथा अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा के कारण ये अपने व्यक्तित्व को एक स्पष्ट स्वरूप दे सके।

कवि रूप में जब हम इनका अध्ययन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इन्होंने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में रचना करना आरम्भ किया था। आगे चलकर इन्होंने केवल हिन्दी में ही काव्य सृजन किया परन्तु यह एक समस्या बनी रहती है कि प्रथम इन्होंने किस भाषा में रचना प्रारम्भ की, क्योंकि इनकी प्रथम प्रकाशित होनेवाली रचनाएँ दो हैं एक "विश्वदर्पण" गुजराती में और दूसरी "लक्षण बत्तीसी" हिन्दी में। इन दोनों रचनाओं का प्रकाशन वि० सं० १९२५ में भावनगर से हुआ था। इससे पहिले श्री पानाचंदजी के सहवास में शामल भट्ट के आख्यान काव्यों की अनुकृति में दोहा चौपाई में एक आख्यान काव्य की रचना की थी, परन्तु इसके विषय में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है। अतः निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनकी प्रथम रचना किस भाषा में थी। परन्तु शामल भट्ट की अनुकृति पर लिखी होने के कारण तथा कवि की मातृभाषा गुजराती होने के कारण स्वाभाविक यही लगता है कि विद्यार्थी जीवन में लिखी आख्यानात्मक काव्यरचना गुजराती में ही होगी। जो भी हो, "विश्व दर्पण" के अतिरिक्त गुजराती में इन्होंने "कुधारा पर सुधारा नी चढाई" तथा "व्यभिचार निषेध बावनी" नाम की और दो मौलिक काव्य रचनाएँ की थीं, जिनका प्रकाशन वि० सं० १९२९ में निर्णय सागर प्रेस से हुआ था। परन्तु गुजराती की इनकी सभी रचनाएँ आज अप्राप्य हैं।

हिन्दी में इन्होंने २९ मौलिक ग्रंथों की रचना की है जिनकी नामावली काल-क्रम में हम यहाँ देते हैं—१ लक्षण बत्तीसी, २ विवेक विलास, ३ विष्णु विनय पच्चीसी, ४ परब्रह्म पच्चीसी, ५ प्रबोध पच्चीसी, ६ शिखनख चंद्रिका, ७ राधा रूप मंजरी, ८ भूषण मंजरी, ९ श्रृंगार षोडशी, १० भक्ति कल्पद्रुम, ११ प्रवीण सागर की बारह लहरें, १२ श्री राधा मुख षोडशी, १३ पयोधर पच्चीसी, १४ नैन मंजरी, १५ छवि सरोजिनी १६ प्रेम पच्चीसी, १७ वक्रोक्ति विनोद सटीक, १८ गोविन्द ज्ञान बावनी, १९ पावस पयोनिधि, २० श्रृंगार सरोजिनी, २१ षटऋतु वर्णन, २२ प्रारब्ध पचासा, २३ श्लेषचंद्रिका सटीक, २४ रत्नावली रहस्य, २५ बोध बत्तीसी, २६ शब्द विभूषण, २७ अन्योक्ति अरविन्द, २८ अलंकार अंबुधि, २९ समस्या पूर्ति प्रदीप। इन कृतियों में प्रथम सोलह कृतियाँ भक्ति कल्पद्रुम को छोड़

कर प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रवीण सागर की बारह लहरें प्रवीण सागर के साथ अहमदाबाद से प्रकाशित हुई हैं, तथा शेष चौदह कृतियाँ वि० सं० १९६७ में राजकोट से गोविन्द ग्रंथमाला, प्रथम भाग, नाम से प्रकाशित हुई हैं। कवि की योजना शेष सभी ग्रंथों को गोविन्द ग्रंथमाला, द्वितीय भाग, नाम से प्रकाशित करने की थी। परन्तु वह योजना सफल न हो सकी।

इन रचनाओं को नामावली से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इनकी रुचि रीतिकालीन कवियों की भाँति ही शृंगार में अधिक थी। साथ ही इन्होंने भक्ति, नीति वैराग्य विषयक रचनाएँ भी की हैं। शेष रचनाएँ रस अलंकार सम्बन्धी हैं। इन सभी रचनाओं की सम्यक समीक्षा यहाँ सम्भव न होने से कुछ छंद उद्धृत कर हम कवि के कवित्व एवं भाषा पर उसके अधिकार का परिचय कराकर संतोष करेंगे।

नैन मंजरी में से नैन-शिव रूपक देखिए—

ओपत अपार महा बरुनी बिमल जटा,
पलक सो पीलखाल सोहे सुतराम हैं,
सुभ्रता सुहाय तनु छार सुखदायी महा,
भगुवे बसन सु तो लालिमा ललाम हैं।
कालकूट काजर कों चाह तें धरत सदा,
तारक भसम गोला ओपे अभिराम हैं।
गोविंद कहत ऐसे ईच्छन उमेश्वर को,
जोरि जुग हाथ हम करत प्रनाम हैं।

छवि सरोजिनी से देखिए एक स्मृति अलंकार का उदारण—

नायका नवीन एक नैन ते निरखि नैक,
राजत ललाम बाँकी कंचन सी कंखियाँ।
लोचन बिसाल बाँके ओपत अपार ताकी
चंचलता पेख पैठीं जल माँहि झखियाँ।
गोविंद कहत ताकी तिरछी चितौन अरु,
मंद मुसक्यानन में चित्त मो करखियाँ।
वा दिन से सोई छवि उर बसि, सो न टरें,
रंग भरी मूरति अनंग भरी अँखियाँ॥

श्री गोविन्द गिल्ला भाई के जब आचार्यत्व की ओर हम दृष्टिपात करते हैं तो इनकी विशेषता यह प्रतीत होती है कि रसवादी होते हुए भी इनकी रुचि अलंकार शास्त्र में अधिक थी, इसलिए एतद्-सम्बन्धी रचनाएँ अधिकांश में अलंकारों पर ही हैं। इन्होंने कुछ रचनाएँ कुछ विशेष अलंकारों पर स्वतन्त्र रूप से लिखी हैं, जैसे श्लेष चंद्रिका, वक्रोक्ति विनोद आदि। इन ग्रंथों में एक-एक अलंकार के अनेकानेक भेद-प्रभेद किये हैं जिनमें कुछ मौलिक भी हैं, और अनेक उदाहरण भी दिए हैं जो शास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने श्लेष चंद्रिका एवं वक्रोक्ति विनोद आदि ग्रंथों पर तत्कालीन व्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली में टीका भी लिखी है। इस प्रकार की अनेक बातें इनके साहित्य में मिलती हैं जिनके आधार पर इनमें आचार्यत्व की पूर्ण क्षमता सिद्ध की जा सकती है।

आज के इस अनुसंधानप्रिय युग में इस कवि की शोधक वृत्ति आचार्यत्व की अपेक्षा अधिक महत्त्व की है। आज हम इनकी शोधों तथा संग्रहीत साहित्य का उतना लाभ नहीं उठा सकते जितना कि इनके समकालीन हिन्दी के शोधक विद्वान् उठा सकते थे, क्योंकि आज इनका प्राचीन हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह लुप्त हो चुका है। फिर भी इनकी प्राप्त डायरियों में किये गये प्राचीन साहित्य सम्बन्धी उल्लेख तथा पुस्तकों एवं कवियों की सुरक्षित नामावली आज के हिन्दी साहित्य के शोधकों के लिए बड़े महत्त्व की है। उदाहरणार्थ सरदार ग्वाल आदि प्राचीन कवियों के ग्रंथों की प्रामाणिक नामावली के विषय में भी हिन्दी के विद्वानों में मतभेद है। ऐसी स्थिति में इनकी डायरी के तद्विषयक उल्लेख ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। सरदार कवि कृत "सूर के कूटपदों की टीका के विषय में एक ऐसा उल्लेख मिलता है कि इनके संग्रहालय में एक प्रति उसकी थी। साथ ही एक ऐसी प्रति का उल्लेख भी मिलता है जिसमें सूर के १००० पद पर सरदार कवि की टीका थी। इसी प्रकार के और भी अनेक शोध सूत्र इनके साहित्य में हमें मिल सकते हैं। इनके साहित्य के साथ प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की सूची को किसी प्रकार अप्रामाणिक मानने का कोई कारण भी नहीं है, क्योंकि यह सूची उन ग्रंथों की है जो इनके संग्रह में थे।

श्री गोविन्द गिल्ला भाई के कृतित्व का अंतिम रूप जो हमारे सामने आता है वह है संपादक, अनुवादक एवं टीकाकार का। जहाँ तक इनके संपादक रूप-का सम्बन्ध है, इनके द्वारा सम्पादित ये हिन्दी के ग्रंथ मिलते हैं प्रवीण सागर, शिवराज भूषण, शिवराज शतक, मति राम कृत रस राज, किशन कवि कृत किशन बावनी इन सभी ग्रंथों की कवि ने भूमिका भी लिखी है तथा गुजराती टीका लिखी है। इन गुजराती टीकाओं के अतिरिक्त इन्होंने कुछ अपनी अलंकार विषयक रचनाओं तथा कुछ अन्य रचनाओं पर हिन्दी में टीकाएँ भी लिखी हैं। संस्कृत की १३ पुस्तकों का अनुवाद इन्होंने गुजराती में किया है, परन्तु ये सभी अनुवाद अभी तक अप्रकाशित हैं, इन अनूदित पुस्तकों में कुछ कोष हैं, कुछ काव्य-शास्त्र के ग्रंथ हैं तथा कुछ मुक्तक काव्य ग्रंथ हैं। इन्होंने एक गुजराती और हिन्दी का तुलनात्मक व्याकरण तथा हिन्दी-गुजराती कोष लिखना प्रारम्भ किया था, परन्तु दोनों काम अधूरे ही रह गये।

गुजरात की समृद्ध हिन्दी काव्य-परम्परा में यद्यपि ऐसे कवि अनेक मिल सकते हैं, तथापि ऐसा बहुमुखी व्यक्तित्व कृतित्व दूसरा दृष्टिगोचर नहीं होता। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व का मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ। विद्वानों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए

इमन गीत

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

[पिछली बार जब हम प्रयाग गये तब निरालाजी कृपाकर हमसे मिलने आये। कुछ देर बाद वे बोले "मैंने 'सरस्वती' के लिए एक नयी शैली का गीत लिखा है," और साथ ही, यह गीत हमें दिया। उन्होंने बतलाया कि इसमें राग और गीत का सामंजस्य बैठाया गया है। 'सरस्वती' के पाठकों को निरालाजी की यह नवीन भेंट हम कृतज्ञता सहित प्रकाशित करते हैं। सम्पादक।]

इमन बजा, स-रि-ग-म-प-ध-नि-स
सजा सजा..........इमन बजा।

एक पहर बीती रजनी;
मृदंग की ध्वनि गिनी-गिनी;
सारंग आरोचित अवनी;
पग-नूपुर-गति गयी लजा--
.... इमन बजा।

स्वर सुकंठ, उच्छ्वास मुखर;
मुक्त भास, विश्वास प्रखर;
मूर्छन उतरी, चढ़ी नितर;
त्रिगुणरोह, अवरोह मजा--
.... इमन बजा।

सौर फाल्गुन २५

मेरे निवेदन का एक उत्तर

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

जनवरी १९६१ ई० में 'सरस्वती' ने मेरा एक लेख प्रकाशित किया था। उसका शीर्षक था 'हिंदी में सुधार के कुछ सुझाव।' उसके कुछ पैरे या अनुच्छेद थे :—

"इस समय हिंदी लिखने की अनेक विधियाँ हैं। कोई शब्द से विभक्ति को जोड़कर लिखते हैं, तो कोई विभक्ति को शब्द से अलग स्थान देने के पक्षपाती हैं। कोई लिखता है कि 'राम ने ही रावण को मारा', तो दूसरा इसी वाक्य को लिखेगा कि 'राम ही ने रावण को मारा।' कोई 'कि' के प्रयोग के बड़े प्रेमी देखायी देते हैं। कुछ संयोजक 'कि' के बाद कामा (,) लगाते हैं। इनके विषय में मैंने एक स्वतंत्र लेख लिखा था। उस लेख में मैंने पाठकों से यह अनुरोध किया था कि उनपर वे अपनी निष्पक्ष सम्मति दें। लेकिन उनपर सम्मति देने का इतना प्रश्न नहीं है, जितना है उनपर विवेकपूर्ण मनन करने का, और जो बात तय की जाए उसे हिंदी लिखने में अपनाने का।"

"मेरे कुछ और भी सुझाव हैं। उनके सम्बन्ध में पाठकों से मैं यही अनुरोध करूँगा कि वे इनपर ध्यानपूर्वक मनन करें, जो बात मन में ठीक जँचे उसीको दृढ़ता से वे निबाहें।"

मैंने आरंभ ही में लिखा था कि मेरे सुझावों का उद्देश्य है 'हिंदी को सरल और सुगम बनाना।' मैंने आठ सुझाव रखे थे :—(१) उर्दू के कुछ प्रचलित प्रयोगों का हम बहिष्कार न करें, (२) दूसरी भाषाओं के कुछ शब्दों को हम अवश्य ग्रहण करें क्योंकि किसी सजीव भाषा की यही मुख्य निशानी है, बशर्ते कि जो शब्द दूसरी भाषाओं से हिंदी में लिये जायँ वे हिंदी व्याकरण से अनुशासित हों, (३) पंचमाक्षरों के स्थान में अनुस्वार (४) सिर्फ भूतकालिक क्रियाओं में व्यंजन 'य्' का प्रयोग; (५) 'आ' के स्थान में 'ए' और 'या' के स्थान में 'ये' (६) "चाहिए" (७) संयुक्ताक्षरों का कम प्रयोग, और (८) तद्धित 'प्रत्ययों का प्रयोग'।

इस लेख में मैंने यह भी लिखा था कि "कुछ लोग 'नई दिल्ली' लिखते हैं और कुछ लोग 'नयी दिल्ली'। नया का 'स्त्री' वाचक रूप 'नयी' हुआ, न कि 'नई'। आगे चलकर मैंने लिखा था कि 'दिल्ली का प्रतिष्ठित पत्र 'हिन्दुस्तान' प्रकाशित होता है 'नई दिल्ली' से, पर 'आज' वाले लिखते हैं 'नयी दिल्ली'। 'नई' शब्द के आविष्कार के लिए 'हिन्दुस्तान' को जितनी बधायी दी जाए, वह थोड़ी होगी। लेकिन 'नया' का 'स्त्री' वाचक रूप 'नई' नहीं, वरन् 'नयी' है। तुलसीदास के जन्मस्थान की खोज में इन पत्रवालों को सम्भवत: 'नई' मिल गयी हो, क्योंकि उसकी खोज भी अभी 'नयी' है। 'या' के स्थान में हम 'ये' और 'यी' के प्रयोग के हामी हैं, चाहे वह शब्द भूतकालिक क्रिया का बोधक हो, चाहे वह विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया हो।"

मेरे इस लेख के जवाब में आदरणीय किशोरीदास बाजपेयी का एक लेख पहले 'नई दिल्ली' से प्रकाशित 'हिन्दुस्तान' में निकला। बाद में उन्होंने 'सरस्वती', 'स्वतंत्र भारत' आदि में अपने लेख भेजे। 'हिन्दुस्तान' में पूर्व प्रकाशित लेख में लेखक और 'सरस्वती'-संपादक पर जो छींटे कसे गये थे, वे काट-कूट कर परिवर्तित रूप में उनके लेख मुझे इन पत्र-पत्रिकाओं में मिले। मुझे नहीं मालूम है कि बाजपेयीजी या इन पत्र-पत्रिकाओं के संपादक इस काट-छाँट और परिवर्धन के लिए जिम्मेदार हैं। बाजपेयीजी के इन लेखों में इस काट-छाँट या परिवर्धन के लिए जो कोई भी जिम्मेदार हो, लेख तो है आदरणीय किशोरीदासजी का, और वह उन्हीं के नाम से विख्यात होगा। वही इस काट-छाँट के लिए उत्तरदायी ठहराए जाएँगे।

उन्होंने लखनऊ-दैनिक में प्रकाशित अपने लेख में यह लिखने की कृपा की है कि "स्वातंत्र्य प्राप्त करने पर हिन्दी संविधान में राजभाषा स्वीकृत हुई, तो सुविज्ञ अहिंदी-भाषी हिंदी भक्तों ने माँग उठायी (माँग की?) कि हिन्दी के शब्दों में एकरूपता आनी चाहिए और 'वर्तनी' भी निर्णीत होनी चाहिए। 'काशी नागरी-प्रचारिणी सभा' और 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाएँ चुप रहीं। काशी, प्रयाग, आगरा तथा लखनऊ विश्वविद्यालयों के हिन्दी-विभाग भी चुप रहे। मैंने इधर ध्यान दिया और हिन्दी की प्रकृति, व्याकरण, भाषा-विज्ञान, तर्क तथा व्यवहार के आधार पर हिन्दी के शब्दों में एकरूपता लाने का प्रयास किया। 'वर्तनी' में तब एक-रूपता स्वतः आ गयी।"

इस लेख में आगे चलकर बाजपेयीजी यों लिखते हैं—"ऐसी सभी बातों पर पूर्ण विचार करके पचासों धाराओं और सहस्रशः शब्दों की व्यवस्था की गयी है। यह सब देखने-समझने की चीज है।"

ऊपर के अंशों को पढ़ने से किसी पाठक को यदि यह भ्रम हो जाए कि बाजपेयीजी अपना डंका खुद ही बजाते हैं और यदि तुलसीदास की इस चौपायी को—"आपन मुख निज आपन करनी। भाँति अनेक बार बहुबरनी।" उन्हें वह सुनाने लगे तो कम से कम मुझे आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ेगा। बाजपेयीजी का यह कहना भारी भूल है कि किसीने इस ओर ध्यान नहीं दिया, और यदि किसीने ध्यान दिया तो वह केवल आदरणीय किशोरीदास ही थे। मेरा उनसे विनम्र निवेदन है कि वह अपने आपको सर्वज्ञ न समझें। इसीमें उनकी शोभा है

प्रार्थना करना मेरा काम है; उसको अंगीकार करने या न करने का उनको पूरा अधिकार है।

उनके लेखों में एक दो बातों को देखकर मुझे कुछ दुःख हुआ। कहाँ धुरंधर विद्वान् होने का यह दावा और कहाँ राजसी सम्मान न पाने की उनकी यह हीन मनोवृति! दोनों भावों का एक साथ ही किसी लेखक में होना और उत्तर देने में इनका जिक्र करना खेदपूर्ण है। हिन्दी किसी व्यक्ति की बपौती नहीं है। इसके सुधार का जैसे आदरणीय किशोरीदास को अधिकार है वैसे ही मुझ अल्पज्ञ को भी है! यदि मेरे सुझावों को वह ठीक न समझें या वे किसीको ठीक न जान पड़ें तो वह व्यक्ति अपने रास्ते पर दृढ़ता के साथ चलता रहे।

'सरस्वती' में प्रकाशित उनके लेख में जो सार की बातें हैं, उन्हींका यहाँ पर विवेचन शास्त्रीय ढंग से मैं करूँगा। व्यक्तिगत आक्षेपों का उत्तर मैं न दूंगा।

पं० किशोरीदासजी बाजपेयी यह स्वीकार करते हैं कि जब "आठवें दर्जे का छात्र भी यह जानता है कि 'आया' के बहुबचन और स्त्री-वर्गीय रूप होंगे 'आये' और 'आयी'', तब मेरे और उनके बीच में कोई मतभेद नहीं रह जाता। मतभेद केवल है 'आए'—'आई' के विषय में। 'आए'-'आई' "हमारे कृतविद्य पुरखे" यदि लिखते रहे तो उनके लिखने में कुछ भी सुधार न किया जाए, ऐसी सम्मति आदरणीय किशोरीदास की है। उन्होंने अपने प्रमाण में तुलसी, सूर, रहीम आदि के लेखों से प्रमाण दिये हैं कि "गये-गई" वे लिखते थे, अतएव उन्हें शुद्ध मानना चाहिए। मेरा निवेदन है कि 'सूर और रहीम' की कविता ब्रज-भाषा में है और तुलसीदास की अधिकांश रचना अवधी भाषा में हुई। हम तो गद्य खड़ी बोली में लिखते हैं, वैसे ही जैसे आदरणीय किशोरीदासजी भी! यदि मेरा सुझाव आदरणीय मित्र को पसंद न आए तो उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता है कि वह उसी तरह लिखते जायें, जिस तरह की भाषा उन्हें ठीक जँचे! इसी बात को जनवरीवाले लेख के आरम्भ ही में मैंने स्पष्ट कर दिया था।

'सरस्वती' या लखनऊ-दैनिक में प्रकाशित श्री किशोरीदासजी के लेख मुझे कुछ खटके। मेरा लेख जनवरी की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। मैंने उसे और किसी पत्र में छपने के लिए नहीं भेजा। उसका यदि उन्हें जवाब देना था तो उन्हें अपने उत्तर को 'सरस्वती' ही में प्रकाशित कराना था। ऐसा उन्होंने नहीं किया। सिर्फ 'सरस्वती' में अपने उत्तर को न छपाकर 'नयी दिल्ली' से प्रकाशित होनेवाले एक दैनिक की उन्होंने शरण ली! शिष्टाचार के पारखी आदरणीय लेखक महोदय ठहरे। उन्होंने जो किया, उसीको वह शिष्टाचार-सम्मत मान लेंगे।

जनवरी की 'सरस्वती' में प्रकाशित अपने लेख में मैंने यह लिखा था कि "इनके विषय में मैंने एक स्वतंत्र लेख लिखा था।" वह लेख 'आजकल' में प्रकाशित होगा। इन दोनों लेखों को पढ़ने के बाद यदि आदरणीय किशोरीदास कुछ कहते तो अधिक-उचित होता। लेकिन उतावली में वह अपने धीरज खो बैठे। "बड़ेन की बात बड़ेन पहिचाना!" इन मामलों के औचित्य को आदरणीय किशोरीदास मुझसे कहीं अच्छी तरह समझते हैं। अतः इनके सम्बन्ध में मुझे चुप ही रहना चाहिए।

विशेषण 'नया' का स्त्रीवाची रूप 'नई' आदरणीय किशोरीदासजी को स्वीकार है या नहीं, इसपर उन्होंने कोई प्रकाश नहीं डाला। 'गया' के बहुबचन में, उनकी सम्मति में, 'गए' शुद्ध है। वह उतना ही शुद्ध है जितना 'गई' शुद्ध है। वह फतवा देते हैं कि "ये दोनों रूप शुद्ध हैं—आयी-आई, आये-आए, रोयी-रोई, इत्यादि।" उनकी दृष्टि में 'नये-नयी' और 'नए' 'नई' भी शुद्ध होंगे। है क्या यही बात? यदि मेरा अनुमान सही है कि बाजपेयीजी 'नयी' और 'नई' के दोनों रूपों को सही मानते हैं तो वैसा उन्हें लिखना चाहिए था। ऐसा उन्होंने कहीं पर अपना मत प्रकट नहीं किया। इससे लोग भ्रम में पड़ जायेंगे। आदरणीय किशोरीदास अपनी सम्मति इस विषय में भी स्पष्ट कर दें ताकि लोगों को यह मालूम हो जाये कि वह इस मामले में कहाँ तक आगे जाने को तैयार हैं।

उन्होंने पाणिनि के एक सूत्र की व्याख्या भी मनमानी की है। वह अपने एक लेख में लिखते हैं—"संस्कृत में यह बात उचित देखी जाती है कि 'ए' के स्थान में 'अय्' और 'ओ' के स्थान में 'अव्' होता है" पाणिनि का सूत्र है "एचोयवायावः।" इस सूत्र के बाद पाणिनि ने एक दूसरा सूत्र बनाया "लोपः शाकल्यस्य।" शाकल्य के मत में 'य्' और 'व्' का लोप हो जाता है, अर्थात् दोनों का अदर्शन होता है। पाणिनि ने शाकल्य के मत का उल्लेख किया है कि जिस क्षेत्र के शाकल्य निवासी थे, वहाँके लोग 'य्' और 'व्' को लोप कर देते थे। उदाहरण के लिए हरे इहि=हरयिह=(लेकिन शाकल्य के मत से) हरइह। इसी तरह विष्णोइह=विष्णविह, होगा, लेकिन शाकल्य के मतानुसार इसका रूप 'विष्णविह' न होकर 'विष्णइह' होगा। पहला सामान्य नियम है जो सब जगह लागू होगा। अकेले आचार्य शाकल्य के मत के अनुसार 'हरइह' और 'विष्णइह' इनके रूप होंगे।

इस सूत्र पर पाणिनि के नए भाष्यकार, आदरणीय किशोरीदास ने जो टीका की है उसे पाठक गौर से पढ़ लें—'य्' का और 'इ' का उच्चारण-स्थान एक है। इसलिए ये दोनों वर्ण 'सवर्ण' हैं। स्वर प्रबल होता है। व्यंजन (तदाश्रित) कमजोर होता है। आश्रयदाता की आवाज में ही आश्रित की आवाज आ जाती है। फलतः वह सामने नहीं रहता। उसका अदर्शन (लोप) हो जाता है। परन्तु उसकी सत्ता बनी रहती है; लोग समझ लेते हैं (कि) यहाँ 'य्' की स्थिति है। 'हर इह'

के अनुकरण पर ही 'विष्णइह' प्रयोग चला और इसे भी पाणिनि ने शुद्ध माना। विष्णुविह में व्यंजन (व्) दबता नहीं है; क्योंकि वह 'इ' का सवर्ण नहीं है। उसकी अपनी पृथक् आवाज होती है। परन्तु तो भी 'हरइह' के अनुसरण पर 'विष्णइह' प्रयोग चला और पाणिनि ने इसे भी शुद्ध माना।" क्या कहें इस नवीन पतंजलि के मत को! 'हरि' का 'हर' कैसे हुआ, इसपर नवीन भाष्यकार ने कोई प्रकाश नहीं डाला। पाणिनि के नियम से सम्बोधन में 'हरि' का 'हरे' होगा और 'हर' का 'हर' रहेगा! 'हरि' का रूप बदलकर शाकल्य ने 'हर' कर दिया। किसी क्षेत्र विशेष में 'हरे इह' के स्थान में 'हर इह' बोला जाता रहा होगा क्योंकि पाणिनि के समय में भी विभिन्न क्षेत्रों की बोलियों में काफी अंतर था। अतएव पाणिनि ने शाकल्य के क्षेत्र की बोली को भी अपनी 'अष्टाध्यायी' में स्थान दिया। पाणिनि का नियम —हरे इह=हरयिह और विष्णोइह=विष्णविह—सार्वभौमिक है; शाकल्य का मत क्षेत्र-विशेष से सम्बन्ध रखता है। शाकल्य का मत अपवाद है। शाकल्य के अतिरिक्त दूसरे बहुत से आचार्य पाणिनि के समय या इसके पूर्व हुए थे। उनको शाकल्य का मत ठीक न जँचा। इसीलिए पाणिनि सब आचार्यों का मत न देकर केवल शाकल्य के मत का इस सम्बन्ध में उल्लेख करते हैं। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में सब आचार्यों की सम्मति अपने नियम-विशेष के समर्थन में दी है। इस सूत्र विशेष —'लोपःशाकल्यस्य'—में सब आचार्यों की सहमति का कोई उल्लेख नहीं है। उल्लेख है केवल शाकल्य के मत का!

(पाणिनि का नाम लेना, 'आई' और 'आए' के सम्बन्ध में, गलत है। इसका दूसरा कारण भी है। वह यह है कि 'हिंदी' के लिखने में संस्कृत व्याकरण की दोहाई देना सिर्फ आदरणीय किशोरीदास को शोभा देगा क्योंकि पाणिनि की अष्टाध्यायी, कात्यायन के वार्तिक और पतंजलि के महाभाष्य को उन्होंने पढ़ा था। विदेशी भाषाओं का उन्हें परिमित ज्ञान है! अतएव उनका इस ओर प्रयास करना वैसा ही है जैसे अंधे का सड़क पर चलना।

आदरणीय बाजपेयीजी को सूर, तुलसी और रहीम के उदाहरण न देने थे, क्योंकि अन्य जीवित भाषाओं की तरह हिन्दी भी एक सजीव भाषा है। वह गतिशील है और समय-समय पर उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। अतएव मेरे सुझाव हिन्दी के विकास प्रतिभा के अनुकूल है; बाजपेयीजी के सुझाव उसके प्रतिकूल हैं। हिन्दी की अनेक विधियों को मैंने दूर करने की चेष्टा की; किन्तु वे अनेक विधियों के समर्थक हैं, जिनसे हिन्दी लिखने की वर्तमान प्रणाली में जो गड़बड़ी है उसे बल मिलता है।

अब, आइए, हिंदी में तद्धित प्रत्ययों के जोड़ने की प्रणाली की ओर। १९६१ ई० की जनवरी म मेरा जो लेख 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था, उसमें मैंने क्या लिखा था? उसमें मैंने जो कुछ लिखा था उसका ज्यों का त्यों उद्धरण दे देना अनुचित न होगा। उस लेख का उद्धृत अंश निम्न है:—

"संस्कृत भाषा की देखा-देखी हिंदी में भी 'अलंकार' का विशेषण 'आलंकारिक', 'इतिहास' का 'ऐतिहासिक' और 'भूत' का 'भौतिक' लिखा जाता है। लेकिन संस्कृत के प्रत्यय—वे कृत् प्रत्यय या तद्धित-प्रत्यय हों—लगाने के पहले हमें उन नियमों का जानना आवश्यक है जो पाणिनि की अष्टाध्यायी, कात्यायन के वार्तिक और पतजलि के महाभाष्य में हमें मिलेंगे। शुद्ध हिन्दी लिखने के लिए संस्कृत व्याकरण में पारंगत होना क्या आवश्यक है? यह प्रणाली पंडिताऊ है, और हिन्दीवाले संस्कृत-व्याकरण के घातक जाल से जितनी जल्दी निकल सकें, उतना ही अच्छा होगा। हिन्दी शब्दों में संस्कृत प्रत्ययों को जोड़ने में हिन्दीवाले क्यों न अपना एक नया रास्ता अपनाएँ, और संस्कृत की गुलामी से अपने को क्यों न मुक्त करें? उदाहरण के लिए 'अलंकारिक', 'इतिहासिक' और 'भूतिक' आदि रूप हम क्यों न लिखें? यदि हम ऐसा करने लगें तो भाषा में आप से आप सरलता आ जायेगी और उसके लिखने में विद्यार्थियों और लड़कों को प्रत्यय के लगाने में संस्कृत के नियमों को जानने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। यहाँ पर 'सरस्वती' के संपादक की टिप्पणी भी दे देना उचित होगा:—"संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार हिन्दी के शब्दों में विकार किये बिना ही इनमें प्रत्ययों का जोड़ देना काफी होना चाहिए।"

इस अंश पर आदरणीय किशोरीदासजी बहुत बिगड़े हैं। उनका कहना है कि 'राष्ट्रिय' अशुद्ध है, और संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार 'राष्ट्रीय' शुद्ध है। पाणिनि ने राष्ट्र के बाद 'इय' (घ) प्रत्यय के लगाने का विधान किया है। आदरणीय मित्र किशोरीदासजी इस सम्बन्ध में पाणिनि की बतायी हुई बात को ठुकरा देते हैं। पाणिनि के अनुसार 'युवति' शब्द होना चाहिए न कि 'युवती', लेकिन हिन्दीवाले 'युवती' ही लिखते चले जाते हैं, न कि 'युवति।' इसी तरह वे अंतर्राज्यिक लिखते हैं यद्यपि विधान के ग्यारह संस्कृतज्ञ अनुवादक 'आंताराज्यिक' का उपदेश देते हैं। इसी प्रकार हिन्दीवाले 'वयस्क मतदान' लिखते हैं यद्यपि इन अनुवादकों की दृष्टि में उसका शुद्ध रूप होगा 'प्राप्त-वयस्क मतदान।' लेकिन इस सम्बन्ध में संस्कृतज्ञों की बात हिंदीवालों ने नहीं मानी। किशोरीदास जो कहते हैं 'दारा' का असली रूप 'दार' है। 'दाराः' 'दार' को प्रथमा का बहुवचन है। यद्यपि 'दाराः' का अर्थ पत्नी है, लेकिन हिन्दीवाले उसे पुल्लिग का बहुवचन न मानकर स्त्रीलिंग का एक वचन ही मानते हैं। इसी तरह के और भी अनेक प्रमाण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि हिन्दीवाले संस्कृत नियमों का उल्लंघन करते और हिन्दी व्याकरण के अनुसार शब्द

का प्रयोग करते हैं। तद्भव शब्द इस प्रणाली के सबसे बड़े प्रमाण हैं। यदि 'अलंकारिक', 'इतिहासिक' और 'भूतिक' को भी हम तद्भव शब्द मान लें तो इससे 'आलंकारिक', 'ऐतिहासिक', और 'भौतिक' रूप भी हिन्दी में चलेंगे और उन रूपों के होते हुए उनके तद्भव रूप जैसे, 'अलंकारिक', 'इतिहासिक' और 'भूतिक' भी साथ-साथ प्रचलित होंगे। तुलसीदास ने दैहिक-दैविक और भौतिक आदि विशेषणों का यदि प्रयोग किया है तो इसका यह अर्थ नहीं कि आगे, भाषा को सरल बनाने के लिए, सुधार का रास्ता सदा के लिए बन्द हो गया। हमारे बाप-दादा रेल पर कभी नहीं चढ़े और न वायुयान से उन्होंने कभी कोई यात्रा ही की। इसका क्या यह अर्थ होगा कि हम रेल पर न चढ़ें या हवाई जहाज से यात्रा न करें? आदरणीय किशोरीदास की सम्मति में हमें अपने पूर्वजों के निर्दिष्ट पथ ही पर चलना चाहिए। मेरे मत से संसार गतिशील है और नये-नये आविष्कारों का हमें उपयोग करना चाहिए। जब तक हिन्दी भाषा के पढ़ने और लिखनेवाले केवल वे ही लोग होते थे जिन्हें संस्कृत का थोड़ा या बहुत ज्ञान था तब तक तुलसीदास की दोहाई देना तो ठीक था, लेकिन जब हिन्दी का अधिकाधिक प्रचलन हो रहा है उस समय चार सौ वर्ष पुराने प्रमाणों के आधार पर हिन्दी को संस्कृत के नियमों से जकड़े रखना असम्भव है। तद्धित प्रत्यय हिन्दी शब्दों में जोड़े जाएँगे, लेकिन संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्रत्यय लगाने के पहिले शब्दों में कोई विकार न होगा। यही मेरा निवेदन है।

बाजपेयीजी ने मेरे 'सरस्वती' वाले लेख के संयुक्ताक्षर सम्बन्धी सुझाव पर भी आपत्ति की है। वह कहते हैं:—"तिवारीजी ने संयुक्त वर्णों से बचने का भी सुझाव दिया है, जो कि हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध है। संयुक्त वर्ण भी हिन्दी में चलते हैं—चलेंगे। 'क्या' को असंयुक्त करके क्या रूप दिया जायगा? 'क्यारी फूटि गई' थी 'क्यारी' को क्या कहा जायगा? 'क्यारी' और 'पियारी' दोनों चलते हैं, पर 'क्यारी' को 'कियारी' क्वचित् किसीने किसी कविता में कर दिया होगा। फिर, संस्कृत के तत्सम शब्दों के बिना हमारा साहित्यिक काम चल ही नहीं सकता। वहाँ क्या किया जायगा?"

बाजपेयीजी ने संयुक्ताक्षर के प्रयोग के विषय में जो कुछ लिखा, वह इसी बात का एक नमूना है कि मेरे विचारों को श्री किशोरीदासजी या तो ठीक समझे नहीं या उन्हें तोड़-मरोड़कर वह अपने को पक्षपाती सिद्ध करते और निरर्थक दोष मुझे देते हैं। मैंने क्या लिखा था? जनवरी की 'सरस्वती' में मैंने लिखा था कि संयुक्ताक्षरों का जितना कम प्रयोग हो उतना ही अच्छा है, क्योंकि विद्यार्थियों के लिए वे हौआ का काम करते हैं। मैंने हिन्दी लेखकों से प्रार्थना की थी कि जहाँ तक सम्भव हो अगर वे संयुक्ताक्षरों को बचा सकें तो अच्छा होगा। आगे चलकर मैंने लिखा:—"विदेशी नामों को हिन्दी में लिखने की प्रणाली इस दोष के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है। यदि हम विदेशी नामों को हिन्दी रूप दे दें तो बहुत कुछ इस झमेले से हम बच जायँ।"

मेरे निवेदन को और बाजपेयीजी की उसपर आपत्ति को पाठक ध्यानपूर्वक पढ़ने की कृपा करें। उन्हें विवश होकर यह कहना पड़ेगा कि जैसे इस सुझाव पर, वैसे मेरे दूसरे सुझावों पर, बाजपेयीजी ने अपना संतुलन खो दिया।

बाजपेयीजी का मैं बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने इस लेख में बड़ी संयमित भाषा में अपने विचारों को व्यक्त किया है। उसमें उन्होंने न मेरे ऊपर और न 'सरस्वती' के वर्तमान सम्पादक के ऊपर छींटे कसे। क्या इतना ही कुछ कम है?

'था' के विषय में बाजपेयीजी ने जो आपत्ति की है, उसका उत्तर डा० हेमचंद्र जोशी देंगे, क्योंकि उन्हींकी 'था'-विषयक उत्पत्ति पर यह आक्षेप किया गया है। मुझे इस विषय में कुछ नहीं कहना है। डा० जोशी जैसा उचित समझें, वैसा जवाब वह देंगे।

अंत में आदरणीय किशोरीदास से मेरा एक विनम्र निवेदन है। वह जिन लेखों का उत्तर देना आवश्यक समझें, उन्हें पहले वह ध्यानपूर्वक पढ़ने की कृपा किया करें। यदि वह ऐसा करेंगे तो, मुझे आशा है, विवाद की गुंजाइश न रह जाएगी या उसकी बहुत कम आवश्यकता उन्हें खुद दिखायी देगी। आदरणीय मित्र से मैं दूसरा निवेदन भी करूँगा। पक्षपात आदि दोष यदि उनके लेखों में न रहें तो अच्छा होगा। अपने आपको यदि कोई समझे कि वह सर्वज्ञ है, तो यह उसकी भारी भूल होगी। हिन्दी व्याकरण स्वतंत्र है। उस पर संस्कृत व्याकरण को थोपना ठीक नहीं है।

हिन्दी का नया विश्वकोश

डा० हेमचन्द्र जोशी

स्वराज्य में ज्ञान-प्रचार से राष्ट्र का सबसे अधिक हित होता है। यही कारण है कि सब सभ्य देश अपने गरीब से गरीब नागरिक के घर तक ज्ञान-विज्ञान पहुँचा रहे हैं। भारत सरकार की भी यह इच्छा है कि शुद्ध और सत्य ज्ञान भारत भर में फैले जिससे हमारा देश ज्ञान की पवित्र ज्योति से जगमगा उठे और संसार के अन्य सुसंस्कृत और समृद्ध देशों के जोड़ का बन जाये। इसके लिए बालपोथी से लेकर विश्वकोश तक प्रकाशित करवाये जा रहे हैं। प्रायः तीस-बत्तीस वर्ष पहले बंगाली विद्वान्, प्राच्यविद्यामहार्णव नगेंद्र-नाथ बसु ने अपने बँगला विश्वकोश का अनुवाद हिंदी में निकाला था। वह अच्छा होने पर भी अपूर्ण सा था, और अब वह प्राप्य भी नहीं है। इस कारण भारत सरकार ने उचित समझा कि एक अद्यतन और प्रामाणिक विश्वकोश हिंदी में भी, किसी संस्था को आर्थिक सहायता देकर, प्रकाशित करवाया जाये। काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा को कई लाख रुपये की सहायता देकर यह काम कराया गया। कई विद्वान् इस विशाल-काय ग्रन्थ को तैयार करने के लिए नियुक्त किये गये। इस ग्रन्थ का डिमाई ¾ साइज का ५४० पेज का प्रथम खंड हाल में प्रकाशित हुआ है।

मुझे सदा अपना ज्ञान बढ़ाने की उत्सुकता रहती है। इस विश्वकोश में छपे मेरे दो लेखों का पारिश्रमिक न मिल सका था। इसलिए मैंने भी अपने पारिश्रमिक के रुपयों में से एक प्रति इस महान् कृति की मँगवायी ताकि अपने ज्ञान का दायरा और भी विस्तृत करूँ। किंतु ग्रंथ में तथ्यों की अनेक भूलें भरी पड़ी हैं। यह देख दुख हुआ कि जब हमारे देश में पत्र-पत्रिकाओं के लेख, बाबा वाक्यं प्रमाणम् के सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मवाक्य माने जाते हैं, तब ये भूलें जनता में सत्य तथ्य मान ली जायें तो क्या आश्चय! तथा इससे जनता किस भ्रमजाल में फँस जायेगी इसे सभी समझ सकते हैं। अब, एक शब्द लीजिए। हिंदी विश्वकोश में अंगिरा (?सं० अंगिरस्) शब्द आया है। इसके विषय में उसमें दिया गया है:—

"अंगिरा दस प्रजापतियों और सप्तर्षियों में गिने जाते हैं, अथर्ववेद का प्रारंभकर्त्ता होने के कारण इनको अथर्वा भी कहते हैं, अंगिरा की बनायी 'आंगिरसी श्रुति' का महाभारत में उल्लेख हुआ है (महा० ८,६९-८५), ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के ऋषि अंगिरा हैं, इनकी बनायी एक स्मृति भी प्रसिद्ध है।"

इस वर्णन में अनेक तथ्य छूट गये हैं। एक पद बताता है कि अंगिरस् नाम के एक ज्योतिषी भी थे। ज्योतिष-शास्त्र के ज्ञाताओं में एक पद प्रचलित है जो अवश्य ही अति प्राचीन है। प्रस्थान किस मुहूर्त में करना चाहिए, इस विषय पर नाना मुनियों के नाना मत हैं। अंगिरा की राय है कि जब मन में उत्साह उठे, उसी समय प्रस्थान करना चाहिए। संस्कृत में यह पद है 'अंगिरा मनउत्साहः।' इसका विश्वकोश में जिक्र ही नहीं है। यह अवश्य होना चाहिए था। इसके साथ इस तथ्य का उल्लेख भी होना चाहिए था कि अंगिरस् की व्युत्पत्ति क्या है? वैदिक और संस्कृत के यूरोपियन परम पंडितों ने अंगिरस् को यूनानी आंगेलुस् से मिलाया। इसका अर्थ है देवदूत। वह आत्मा जो पूजा आदि भले कामों में सहायता करने में तैयार रहती है। अंगिरस् ऋषि लोग यज्ञों के करने-कराने वाले और उनके याजक थे। वे मानो अग्नि के संरक्षक थे। इसलिए ऋग्वेद के कोशकार विद्वान् ग्रासमान ने बताया है कि अंगिरस् की व्युत्पत्ति पर आंगेलुस शब्द से स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। उक्त तथ्य विद्वान् संपादकों और लेखकों को जानने चाहिए।

प्रसिद्ध विद्वान् डौसन ने अंगिरस् (अंगिरा ?) के विषय में लिखा है—'बाद को पिछले युग में अंगिरस् एक स्मृतिकार तथा ज्योतिष-शास्त्र का ज्ञाता भी हुआ था।' उक्त तथ्य अँगरेजों और जर्मनों की पुस्तकों में हो और अपने विद्वान् विश्वकोश में इसका नाममात्र भी वर्णन न करें, यह बताता है कि हमारे ज्ञानी या तो ज्ञान प्राप्त करने में आलस्य करते हैं या उनका ज्ञान अधूरा है। राकेट, परमाणु-बम आदि के इस उन्नत युग में विश्व-कोश और उसके कर्त्ता भी ज्ञान से लबालब भरे होने चाहिए। यदि हम अपनी घर की बातों में अशुद्धियाँ और त्रुटियाँ रहने देंगे तो विदेशों की बातें स्वभावतः नाना भ्रमों से खचाखच भरी रहेंगी।

अंगिरस् का 'नाम **देवतानाम् पुरोहितः या पुरोधस्** भी पाया जाता है। इस नाम से ग्रासमान का समर्थन होता है। संभवतः यह **अंग्** धातु से बना हो जिसका अर्थ 'चलना' हिलना-डुलना है।

और एक त्रुटि पर विचार कीजिए। हिंदी विश्व-कोश में पाया जाता है 'अथर्व वेद का प्रारंभकर्त्ता होने के कारण उन्हें **अथर्वा** भी कहते हैं।' इस भ्रमपूर्ण बात के विषय में आप्टे महोदय के संस्कृत कोश में दिया गया है:—**अथर्वा**—The Atharva Veda regarded as the fourth Veda . . ? दूसरा कोई अर्थ नहीं दिया गया है। **अथर्वन्** का अर्थ 'अग्नि और सोम का याजक ब्राह्मण' है। डॉसन साहब ने भी अथर्वन् का अर्थ दिया है:—

'Name of a priest mentioned in the *Rig Veda* who is represented as having 'borne forth' fire and to have' offered sacrifice in early times'. He is mythologically represented as the eldest son of Brahmā, to whom that god revealed the Brahmā-Vidya, as a Prajāpati and as the inspired author of the fourth Veda. At a later period he is identified with Angiras. His descendants are called Atharvanas, and are often associated with the Angirasas'.

इसका अर्थ यह हुआ—'अथर्वन् एक पुरोहित का नाम है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है और वहाँ यह लिखा गया है कि उसने पहले-पहल अरणि घिसकर आग पैदा की और अति प्राचीन काल में यज्ञ किया या बलि दी। पुराणों में कहा गया है कि वह ब्रह्मा का सबसे जेठा पुत्र है जिसे ब्रह्मा ने स्वयं प्रजापति के रूप में ब्रह्मविद्या पढ़ाई; और ब्रह्मा ने ही उन्हें चौथे वेद का ऋषि भी बनाया। बाद को यह ऋषि अंगरिस् के साथ एक कर दिया गया और इसके वंशज **अंगिरस** कहलाये" इस तथ्य से यह सत्य प्रकट होता है कि आदि में अंगिरस् (अंगिरा नहीं) अथर्वा नहीं कहलाते थे। वेदों में अथर्वन् और अंगिरस भिन्न-भिन्न नाम थे। पौराणिक काल में ये एक कर दिये गये। यह तथ्य न देने से विश्वकोश में अंगिरा का वर्णन अधूरा ही नहीं भ्रामक भी माना जायेगा; और सुनिए ऊपर दिये गये तथ्यों से यह भी स्पष्ट है कि विश्वकोश में **अथर्वा** शब्द का अशुद्ध प्रयोग हुआ है। इसके स्थान पर **अथर्वन्** शब्द दिया जाना चाहिए था। इस शब्द की व्युत्पत्ति भी नदारद है।

विश्वकोश में विदेशी शब्दों की भी भरमार है। अंकारा, अंगोला, अंडलूशिया, अकशक, अकीबा; अकोस्ता जोजेद, अक्काद, अक्कोराबोनी वित्तोरिया; अक्रे, अक्रोन; अक्रोपोलिस्, अक्सकोव, सर्जी निमोफियेविच, अक्तब्रिज अगस्तिन संत, अगाथोक्लीज, अगामेम्नान, अगेसिलास द्वितीय; अगेस्सो, हेनरी फ्रांस्वा, द; अगोरा; अगोरानोमी; अग्निकोला, ग्नायस, यूलियस; अग्निकोला जार्ज, अग्रिपा: अग्रिपा मार्कस विप्सानिअस; अग्रिपा, हेरोद प्रथम; अजरबैजान; अजाव, अजोर्से अटलस पर्वत; अटलांटा; अथीना; अदाद; अदीस अबाबा; अनक्सागोरस; अनवरी; अनवरी औहदुद्दीन अवीवर्दी, अनाक्रिओन; अनादिर; अन्यूरिन; अपलेशियन पर्वत; अपेनाइंस; अपोलो; अपोलोदोरस्; अपोलोनियस् (त्याना का); अपोलोनियस् (रोड्स का); अप्पियना अडिलेट आदि विदेशी नाम प्रायः तेरह सैकड़ा हैं। ये विदेशी नाम हिंदी पाठकों के लिए अति महत्त्व के होंगे, क्योंकि विद्वान् संपादकों ने बहुत विचार विमर्ष करने के बाद इन्हें विश्वकोश में स्थान दिया होगा। किन्तु इस कार्य में एक बात खटकती है, वह यह कि भारत में तथा भारतीय राष्ट्र की भाषा हिन्दी में प्रकाशित किये जानेवाले विश्वकोश में पहले भारत के प्राचीन तथा नवीन साहित्यों में मिलने-वाले नामों और विषयों को अवश्य स्थान मिलना चाहिए। अपने नाम और विषय छोड़कर विदेशी को स्थान देना सर्वथा अनुचित माना जायेगा। इस हिन्दी विश्वकोश में ऐसा ही हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द यहाँ दिये जाते हैं जो भारतीय हैं और अपनी संस्कृति से घनिष्ठ संबन्ध रखते हैं, पर इस हिन्दी विश्वकोश में ऐसे बहुतसे नाम नदारद हैं। अभिरामभीव, अग्निष्वात्त, अग्नि-वेश आदि, अमरेश्वर, आम्नाय, अनाधृष्टि, आनक-दुंदुभि, आनन्द (शिव, बलराम अर्थ नहीं दिया गया है) आनन्द-लहरी, अनरूय, अनुमति, अनुसर आदि-आदि भारतीय नाम और विषय छूट गये हैं। हमारे विश्वकोश में इनका रहना अनिवार्य है। पहलों भारतीय संस्कृति और इसके निर्माण करनेवालों के नाम अपने विश्वकोश में रखे जाने चाहिए तब विदेशी नामों को स्थान मिलना उचित है। 'आन गाँव के खा गये, घर के गावें गीत'

का मुहावरा चरितार्थ करना विद्वानों में अपनी हँसी उड़वाना है। विश्वकोश में कुछ ऐसा ही प्रयास देखने में आता है। विदेशी शब्दों का उच्चारण और उनका वर्णन स्थान-स्थान पर अशुद्ध है। स्थानाभाव से एक ही उदाहरण यहाँ दिया जाता है। बहुत से पाठक जानते ही होंगे कि टर्की की राजधानी का नाम अंकारा है। इसे पहले अंगोरा भी कहते थे। हिन्दी विश्वकोश में अंगोरा का पता नहीं है। इसी प्रकार आखेन नाम दिया गया है, इसका शुद्ध उच्चारण आखन् है। पर यह कभी फ्रांस और बेलजियम के अधीन था। फ्रेंच में इसका नाम आज भी ए-ला-शापैल है। डच भाषा में इसे आ-केन् कहते हैं। अतः इस दृष्टि से कि जर्मन, फ्रेंच और डच भी इसे पढ़ेंगे, ब्रिटिश इन्साइक्लो पीडिया में तीनों देशों में प्रचलित तीनों नाम दे दिये गये हैं ताकि जर्मन, फ्रेंच और डच भाषाएँ जाननेवाले उक्त भाषाओं में प्रचलित इस नगर के तीनों नामों से पूर्णतया परिचित हो जायें और साथ-साथ यह भी समझ सकें कि यहाँ पर कभी फ्रांस और हालैंड का भी राज्य रहा होगा।

अंकारा के विषय में यह दिया गया है कि कभी यहाँ रोमन लोगों का राज्य था, सो ठीक ही है। किन्तु अंकारा पर लिखनेवाले विद्वान् को आर्य गौरव के इस तथ्य का पता नहीं है कि कभी टर्की की इस राजधानी के पड़ोस में ही खत्तु—शिल नाम से हित्ताइत या खत्तियों की राजधानी थी। यह घटना चार हजार वर्ष पुरानी है। खत्ति आर्य जाति थी। इसके ईंटों पर लिखित लेखों और पुस्तकों में इन्द्र, वरुण, मित्र और नासत्या के नाम भी पाये गये हैं। यह तथ्य भारतीय और राष्ट्रभाषा के विश्वकोश में न दिया जा सका और इसके विषय में केवल रोमन साम्राज्य का यश बखानना, और आर्य जाति के इतिहास की गौरवपूर्ण घटनाओं की अवहेलना करना साहित्यिक अपराध या अज्ञान ही समझा जायगा, तथा हमारे और राष्ट्रभाषा के लिए महा-ग्लानि का विषय है। अंकारा की जनसंख्या भी गलत दी गयी है। हिन्दी विश्वकोश में बताया गया है कि इसकी आबादी १९५० ई० के अन्त में २,८६,०८१ थी। ह्विटैकर के ऐलमैनक में दिया गया है कि वहाँ की जनसंख्या १९५५ ई० में ३,५३,१७० थी और इस समय (१९६१ ई०) यहाँकी जनसंख्या का अनुमान पाँच लाख से भी अधिक का है। ऐसी भूलें इस विश्वकोश में अनेक हैं। विश्वकोश में यथासंभव अद्यतन जानकारी होनी चाहिए।

इस विश्वकोश में भारत सरकार के विद्वानों ने लाखों रुपये व्यय करवाये हैं, किंतु जो वस्तु सामने आयी है वह संतोषजनक नहीं है। भूलों और अज्ञान से भरा यह विश्वकोश का प्रथम खण्ड क्या भारत में नवीनतम और सही ज्ञान-विज्ञान को जनता में फैलाने का कार्य ठीक तरह से कर सकेगा? क्या भारत की स्वराज्य सरकार अधिकारी विद्वानों द्वारा इस विश्वकोश की परख करायेगी? क्योंकि यदि हिन्दी विश्वकोश के अगले भाग इसी तरह से निकलेंगे तो हिन्दी में ज्ञान के स्थान पर अज्ञान का बोलबाला हो जायेगा, और यह कहना पड़ेगा कि "अन्धेरा छा जायेगा जहाँ में, अगर यही रोशनी रहेगी।"

विस्मय

श्री 'अंचल'

तेरी मुस्कानों में क्या मद है जो पी पी जाता हूँ?
क्यों मैं तन्मयता में प्रतिक्षण डूब-डूब उतराता हूँ?
तेरी आँखों में असंख्य नक्षत्रों का सौन्दर्य भरा
मेरी पथराई आँखों में जिनका कम्प बड़ा गहरा।
तेरे रंजित कानों में क्या है जो इतना गाता हूँ?
जहाँ स्रवन्ती के स्वर सा बहता बहता थक जाता हूँ
भरे बादलों सी तेरी भौंहों में किस सुख की सिहरन
जिसे झाँकती है नीचे से मेरी हारी थकी तपन?
तेरे दो होठों की दिव्य प्रभा में क्या पा जाता हूँ?
क्यों तेरी बोली बनने को तरस तरस रह जाता हूँ?
तेरे चरणों में क्या है जो देख-देख ललचाता हूँ?
सकुचाये हाथों का कंपित अर्घ्य नहीं दे पाता हूँ
तेरे मन की घनी नीलिमा में जाने क्या पाता हूँ?
क्यों उसकी आकाशी पावनता में रोज नहाता हूँ?

भारतेन्दु जब बस्ती गये थे

श्री श्रवणकुमार श्रीवास्तव

एक दिन अचानक मेरी दृष्टि भारतेन्दु ग्रन्थावली के तृतीय भाग पर पड़ी। मैं उसके अन्तिम पृष्ठों को देखने लगा। उसमें कैम्प हरैंया बाजार तथा बस्ती का नाम देखकर आश्चर्य में पड़ गया, क्योंकि बस्ती जिला सदा से ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। अतएव बड़ी उत्सुकता से मैंने उस लेख को पढ़ा। भारतेन्दुजी की यह उक्ति मैंने पहले ही सुन रखी थी, "बस्ती को बस्ती कहूँ काको कहूँ उजाड़?"

बात १८७८ की है। भारतेन्दुजी अपनी सरजू पार की यात्रा का वर्णन कर रहे हैं। हरैंया बाजार बस्ती जिले की एक तहसील है। यह फैजाबाद से बस्ती जानेवाली सड़क पर है। भारतेन्दुजी ने हरैंया की यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है "सवारी कोई नहीं। न राह में छाया के पेड़, न कुआँ, न सड़क। हवा खूब चलती रही जिससे पगडंडी भी नहीं नजर आती। बड़ी मुश्किल से चले और बड़ी ही तकलीफ हुई। खैर, बेलवाँ तक रो-रो कर पहुँचे। वहाँसे बैल की डॉक पर नौ बजे रात को यहाँ (हरैंया) पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही हरैंया बाजार के नाम से यह गीत याद आ गया। "हरैंया लागल झबिया केरै लेहें ना"। शायद किसी जमाने में यहाँ हरैंया बहुत बिकती रही होगी। इसके पास ही मनोरमा नदी है। मिठाई हरैंया की तारीफ के लायक है। बालूसाही बिल्कुल बालू-साही, भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए, लड्डू भूर के, बरफी आहा! हा हा! गुड़ से भी बुरी। खैर, लाचार होकर चने पर गुजर की। गुजर गई गुजरान, क्या झोपड़ी क्या मैदान!"

यह रहा भारतेन्दुजी का वर्णन! बस्ती जिला पहले कोई जिला नहीं था। यह नैपाल की तराई का एक भाग था। वहाँ जनसंख्या बहुत बिखरी है। आज के युग में भी वहाँ ऐसे क्षेत्र हैं जो आज की सभ्यता से परिचित नहीं हैं। उस समय के हरैंया बाजार और इस समय के हरैंया बाजार में थोड़ा ही अन्तर है।

भारतेन्दुजी को बस्ती की यात्रा में बड़ा कष्ट हुआ। इसीसे उन्होंने इस यात्रा को 'बेवकूफी' कहा है। उसका विवरण भी देखिए। "अब आज आठ बजे सुबह रें रें करके बस्ती पहुँचे। बाहरे बस्ती, [illegible] बसती है। अगर बस्ती इसीको कहते हैं तो उजाड़ किसको कहेंगे? सारी बस्ती में कोई भी पंडित बस्तीरामजी जैसा पंडित नहीं। खैर अब तो यहीं बस्ती होगी।" उन्होंने बस्ती शब्द की एकदम झड़ी लगा दी है। परन्तु इस वर्णन में भी कोई अत्युक्ति नहीं। बस्ती नगर की नगर के रूप में कोई प्रसिद्धि नहीं रही। आज भी (जब उसका काफी विस्तार हो गया है।) वह एक कस्बा मात्र है। म्युनिसिपैलिटी भी कुछ ही वर्षों से हुई है। आज के बस्ती जिले का कुछ भाग पहिले नैपाल की तराई में था, और कुछ गोरखपुर में। जब बस्ती का जिला बना तो उस क्षेत्र में कोई ऐसा नगर न था कि उसमें जिले के कार्यालय खोले जा सकते। इसलिए जिले के प्रायः मध्य में स्थित इस नाम के गाँव को जिले का मुख्य स्थान चुना गया और अंग्रेजों ने इसे कस्बे का रूप दिया। भारतेंदुजी ने बड़े मनोरंजक ढंग से उस समय की बस्ती के समाज तथा रीति-रिवाजों का वर्णन किया है। "सभी पुरुष एक से एक हैं, सभी अपने को अर्जुन, भीम और वाजिद अली शाह समझते हैं। उनका व्यक्तित्व मोटी चाल सुरती और खड़ी मोछ में है। नई सभ्यता इधर आयी नहीं है। रूप कुछ ऐसा नहीं, पर सभी स्त्रियाँ नेत्र नचाने में चतुर। उनके गानों में मोटी रसिकता थी। उनमें सबसे अच्छा था "बोलो प्यारी सखियाँ सीताराम राम।" भारतेन्दु ने सरकार द्वारा दी गयी सुविधाओं का भी वर्णन किया है। बस्ती में रेल आ गयी थी। स्टेशन पर पानी के प्रबंध के संबंध में वे कहते हैं: "कम्पनी ने रेलवे की ओर से कोई जल की तथा आराम की सुविधा नहीं दी। एक औरत पानी का डोल लेकर आई भी तो 'गुपला', 'गुपला' पुकारती रह जाती। जब हम लोगों ने पानी माँगा तो कहने लगी "रहः हो, पानियैं पानी पड़ल हौ"। फिर जियादा जिद में लोगों ने माँगा तो बोली, 'अब हम गारी देब'।" अब बस्ती जिले का भौगोलिक वर्णन सुनिए, "बस्ती जिले की सीमा उत्तर नैपाल, पश्चिमोत्तर गोंडा, पश्चिम-दक्षिण अयोध्या और पूरब गोरखपुर है। नदियाँ इसमें बड़ी सरजू, और ईरावती (आधुनिक राप्ती) हैं। सरजू के इस पार बस्ती उस पार फैजाबाद है। छोटी नदियों में [illegible] (आधुनिक [illegible]) मनोरमा, कठनेय (आधु-

निक कठिनाइयाँ), आमी (प्राचीन अनोमा) और जमवर (आधुनिक मनवर) हैं। बरकरा (बखिरा) और जिर-जिरवा दो बड़ी झीलें हैं। बाँसी, मगहर और बस्ती तीन राजा भी हैं। बस्ती सिर्फ पाँच हजार की बस्ती है। पर जिला बड़ा है क्योंकि इसकी आमदनी चौदह लाख है। साहब लोग कुल दस बारह हैं। उतने ही बंगाली हैं। अगरवाला मैंने खोजा एक भी न मिला, सिर्फ एक हैं वह भी गोरखपुरी।"

अब जरा बस्ती नगर का वर्णन देखिए, "पुरानी बस्ती खाईं के बीच में बसी है। राजा के महल बनारस के अर्दली बजार के किसी मकान से उम्दा नहीं। महल के सामने मैदान, पिछवाड़े जंगल चारों ओर खाईं है। पाँच सौ खटिकों के घर महल के पास हैं जो आगे किसी जमाने में राजा के लूटमार के सहायक थे। अब राजा के मैनेजर कुक साहब हैं।"

उस समय बाँसी राज की स्थिति अच्छी थी। वह राज्य बलरामपुर की समता में आता था। उन्होंने उसका वर्णन इसलिए नहीं किया कि वे वहाँ तक जा नहीं पाये। साथ ही इनके वर्णन में यह कमी है कि इन्होंने जिले के कई महत्त्वपूर्ण स्थानों की चर्चा तक नहीं की है। जैसे, मगहर, खलीलाबाद (तमेसरनाथ), रोमनदेई (लुम्बिनी) आदि। इसी कारण ये मेंहदावल तक सीमित रह गये। भारतेन्दुजी ने एक आलोचक के दृष्टिकोण से यहाँ तक लिखा कि, "यहाँ के बाजार की तुलना बनारस के किसी भी बाजार से नहीं हो सकती महज बहैसियत।" याने बनारस का एक टुकड़ा भी बस्ती नहीं है। वे एक बनिये की निन्दा करते हुए लिखते हैं कि—"वह साल में दो बार कैद किया जाता है क्योंकि उस बेचारे को जालसाजी छिपाने का शऊर नहीं।" ठाकुरद्वारे का रेखाचित्र देखिए, "तीन हाथ चौड़ा, उतना ऊँचा, उतना लम्बा बस! भला आप ही बतलाइए कि क्या किसी युग के लिए यह पैमाना सर्वग्राह्य हो सकता है?" वहाँकी जलवायु पर उनका व्यंग्य देखिए—"और क्या! पानी जरूर बस्ती का खराब है पर इतना नहीं कि उससे आदमियों के बजाय कुत्ते और सुग्गों का भी गला फूल जाय।" भारतेन्दु बाबू का यह व्यंग्य अपनी सीमा पर पहुँच कर कहता है "गलाफूल कबूतर यहीं से पैदा हुए!"

यह वर्णन आज से सौ साल पहिले का है। आज की परिस्थिति में और तब की परिस्थिति में बड़ा अन्तर है। उस समय की बस्ती का वर्णन सिवाय सरकारी गजेटियर के और कहीं हमें नहीं मिलता।

मेंहदावल बस्ती जिले का पुराना नगर (कस्बा) है। उसकी जनसंख्या इतनी है कि उसमें म्यूनिसिपैलिटी बन गयी है। भारतेन्दुजी ने मेंहदावल का भी बड़ा अच्छा वर्णन किया है। आज भी हम वैसा रूप मेंहदावल का पाते हैं जैसा पहले था। आवागमन के सीमित साधन थे। यह नगर बस्ती से काफी दूरी पर भी है। अतएव भारतेन्दु-जी का यात्रा में कष्ट उठाना स्वाभाविक था। जरा देखिए, "आज सुबह सात बजे मेंहदावल पहुँचे। सड़क कच्ची है। राह में एक नदी भी उतरनी पड़ती है जिसका नाम आमी है (आधुनिक बालू सासत घाट)। छः आना पुराना महसूल लगा। रात को ग्यारह बजे पालकी पर सवार हुए। बदन खूब हिला, अन्न भी नहीं पचा। इस वक्त यहाँ पड़े हैं। यहाँ मक्खी बहुत हैं। दो लड़कों के स्कूल हैं और एक लड़कियों का स्कूल है और एक डाक्टर-खाना है। बस्ती शहर है मगर उससे यह मेंहदावल गाँव बहुत आबाद है।"

× × ×

"अभी अभी एक गँवार आया था बेतरह बका। फूहर औरतों की तारीफ में एक बड़ा भारी पचड़ा पढ़ा। यहाँ गरमी बहुत है। और मक्खियाँ लखनऊ से भी जियादा। दिन को बड़ी बेचैनी है।"

इस यथार्थ वर्णन के बाद वे लिखते हैं "यहाँ की औरतों का नाम श्यामतोला, रामतोला, मनोतरा इत्यादि विचित्र होता है और नारंगी को यहीं श्यामतोला कहते हैं जो संगतरा का अपभ्रंश मालूम होता है क्योंकि यहींके गँवार संतरा को संतोला कहते हैं। यहाँ एक नाऊ बड़े पंडित थे। उनसे किसी पंडित ने प्रश्न किया, 'किं दूधं' (तुम कौन जात हो?) तब नाई ने जवाब दिया 'चटपटाक चटपटाक' (नाई)। तब ब्राह्मण ने कहा 'तं दूरं' (तुम जाओ) तब नाई ने जवाब दिया 'किं छौरं' ('तब मूड़ कौन मूड़ेगा?')। एक का बाप मर गया डूब करके। उसके बाप का पिंडा इस मंत्र से कराया गया, "आर गंगा पार गंगा बीच में पड़ गई रेत, तहाँ मर गये नायका चले बुड़ बुजा देत, धर दे पिंडवा"।

यह रहा पंडितों और स्त्रियों का हाल; अब धर्म का

समाज के बारे में सुनिए। "मजहब का हाल अच्छी तरह से दरियाफ्त किया तो मालूम हुआ कि हमारे मजहब की एक शाखा है। इनके ग्रन्थों में हमने एक श्लोक श्री महाप्रभुजी की कारिका का देखा, इसीसे हमको संदेह हुआ। फिर हमने बहुत खोद-खादकर पूछा तो यह साफ मालूम हुआ कि इसी मत से यह मत निकला है। क्योंकि वह एक बात और बोले कि हमारा मत श्री बल्लभाचार्य की टीका में लिखा है। इन लोगों के उपास्य श्रीकृष्ण हैं किन्तु वे एकादशी, शालिग्राम, मूर्तिपूजा, तीर्थ किसीको नहीं मानते। इनके पहले आचार्य देवचन्द्रजी थे जो जात के कायथ (कायस्थ) थे और दूसरे प्राणनाथजी जो कच्छ के क्षत्री थे। हमारे मत की शाखा सही, पर विचित्र रिफार्म्‌ड मत है। वैष्णव होकर मूर्त्तिपूजा का खंडन करनेवाले यही लोग सुने।"

यह है भारतेन्दुजी के समय की बात। परन्तु अब तो यहाँके प्रायः सभी हिन्दू लोग सनातन धर्मावलंबी हैं और मूर्त्तिपूजा करते हैं। कुबेरनाथजी का मन्दिर इसका प्रमाण है।

अब आबादी तथा लोगों के रहन-सहन का परिचय लीजिए। "गाँव (मेंहदावल) बड़ा गंदा है और लोग परले सिरे के बेवकूफ। यहाँसे चार मील दूर एक मोती झील व बखिरा झील दरहकीकत देखने लायक हैं। कई कोस लम्बी झील है और जानवर भी तरह-तरह के देखने में आते हैं। पहाड़ से चिड़ियाँ हजारों ही तरह की आती हैं और मछली भी इफरात। पेड़ों पर बन्दर भी। मेंहदावल में कोई चीज देखने लायक नहीं है। जहाँ देखो वहाँ गंदगी। लोग वज्र मूर्ख, क्षत्री, ब्राह्मण जियादा। यहाँ एक प्राणनाथ का मजहब है और दस बीस उसके माननेवाले हैं। सुने-सुनाये जो दो-चार श्लोक याद कर लिये हैं बस उसी पर चूर हैं। 'मदीनास्यां शरदां शतं' और 'गोविन्दं गोकुलानन्द मक्केश्वरं' यह श्लोक पढ़ के कहते हैं कि वेद में मक्का-मदीने का वर्णन है। ऐसे ही बहुत सी वाहियात बातें कहते हैं। कोई कितना भी कहे पर कुछ सुनते ही नहीं। कहते हैं गोलोक का नाश है और गोलोक के ऊपर एक 'अखंड मंडलाकार' लोक है, उनमें मेरे कृष्ण हैं। इनका मजहब एक प्राणनाथ नामक क्षत्री ने चलाया था (पन्ना में करीब तीन चार सौ वर्ष पूर्व)। यहाँ चैत सुदी भर रात को औरतें जमा होकर माता का गीत गाती हैं और बड़ा शोर करती हैं। असभ्य बकती हैं। सरजू पार के ब्राह्मण बड़े विचित्र हैं। मांस मछली सब खाते हैं। कुएँ के जगत पर जो पानी भरता हो, दूसरा चला आवै तो घड़ा फोड़ डालें, और उससे घड़े का दाम ले लें। 'घड़ा' कोई कहै तो 'घड़ा छू जाय', क्योंकि 'घड़ा' मुसलमानी लफ्ज है। दाल कहै तो छू जाय क्योंकि दाल मुसलमानी है। सूरजवंशी छत्री राजा बाबू को छाता नहीं लगता है, क्योंकि वे सूरजवंशी हैं, सूरज से क्या छाता लगावें? नेम बड़ा, धरम बिल्कुल नहीं। एक ब्राह्मण ने कोंहार से नई सनहकी मोल लेकर उसमें पूरी बनाकर खाया। इससे वह जात से निकाल दिया गया क्योंकि जैसे बर्तन में मुसलमान खाना बनावै उस आकार के बर्तन में इसने हिन्दू होकर क्यों खाना बनाया! हा हा हा! और मजा यह कि ताजिये को सब मानते हैं। मेंहदावल में एक थाना है। थानेदार यहाँके बादशाह हैं। एक डाक्टरखाना भी है। यहाँ सरकार का बड़ा पुण्य है। बस हमको तो सरकार के पुण्य में कसर यही मालूम होती है कि पुलों पर महसूल लिया जाता है क्योंकि भला नाव या ऐसे पुल पर महसूल लगै तो ठीक है, जिसकी हर साल मरम्मत हो। पक्के पर भी महसूल! बस्ती में एक अगरवाला नहीं। एक हैं सो जूता उतार कर लायची खाते हैं। मेंहदावल में एक अगरवाले हैं। मुसलमान फर्श पर यहाँ नहीं बैठते। पिंडारे जिनको इसी जिले में जमीन मिली है, अब नवाब हो गये हैं, और उनकी मुस्तैदी आराम से बदल गयी है। यहाँ कहीं-कहीं धारू लोगों का रक्खा सोना खोदने से अब तक मिलता है। यहाँके बाबू ऐसे हठी कि बंगला गिर पड़ा पर जूता उल्टा था, खिदमतगार को बुलाया वह न आया। इससे आप वहाँसे न चले और दबकर मर गये।"

यह कहना तो उचित न होगा कि इस वर्णन में भारतेन्दुजी ने अत्युक्ति की है या किसी प्रकार का व्यंग्य। पर अब कुछ हद तक शिक्षित लोग बदल गये हैं। फिर भी पुरानी रूढ़ियों के अवशेष अब भी देखने को मिल सकते हैं। मेंहदावल अब एक गाँव नहीं, एक बड़ा कस्बा है जहाँ म्युनिसिपल बोर्ड भी है। नगर की स्थिति अब अच्छी है। मेंहदावल तथा बखिरा दोनों व्यापारिक केन्द्र होने के कारण प्रसिद्ध हैं। यहाँ ताँबे तथा पीतल के बर्त्तन बनते हैं। क्षत्रियों और मुसलमानों की आबादी अब भी यहाँ अधिक है। अब तो यहाँ विकास केन्द्र खुल गया है, और बिजली भी शहर में आ गयी है। शिक्षा भी बढ़ी है। अब यहाँ एक इंटर कालेज और लड़कों और लड़कियों के जूनियर हाई स्कूल हैं। एक अच्छी संस्कृत पाठशाला भी है। किंतु खेद की बात यह है कि अब भी यहाँके अधिकांश हिन्दू ताजिया चढ़ाते हैं।

पिंडारियों का गाँव बस्ती नगर से ६ मील है जो गनेसपुर पेंडारा के नाम से प्रसिद्ध है। अब वे लोग खेती करते हैं और सभ्य हो गये हैं। "धारू लोगों" के स्थान से संकेत पुरातत्त्व के स्थान से हैं। बस्ती जिले में बहुत से ऐसे न जाने कितने स्थान हैं जो ऐतिहासिक महत्त्व के हैं परन्तु पृथ्वी के गर्त में छिपे पड़े हैं। "धारू" एक आदिवासी जाति है जो तराई में रहती है और प्राचीन ध्वंसावशेषों को भी कभी-कभी खोदा करती है। जिले में बौद्ध, मौर्य और गुप्तकालीन स्थानों के कितने ही अवशेष हैं जो अब ढूह हो गये हैं। कनिंघम ने मेंहदावल के पास के कोपिया स्थान का अनुसंधान किया था। यदि इन स्थानों की खुदाई हो तो बहुत से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन हो। किंतु इस जिले की ओर किसी ने कभी ध्यान नहीं दिया। इसीलिए आश्चर्य होता है कि भारतेंदु ने बस्ती की यात्रा की और उसके ये संस्मरण लिखे।

सन्तोष के फूल

श्री ओ३म्प्रकाश शर्मा

शादी पक्की हो गयी। भाभी बड़ी प्रसन्न थीं। कदाचित् सोच रही होंगी कि अब मेरा मन अपनी समस्त पीड़ाएँ भूल जायगा। घर में बड़ी चहल-पहल थी। शादी की तैयारियाँ की जा रही थीं। दिन बीतते रहे, विवाह के केवल पन्द्रह दिन शेष रह गये।

मेरे चित्त से रूपा का ध्यान उतरता ही नहीं था। अब ज्यों-ज्यों विवाह समीप आता जाता था, त्यों-त्यों उसकी याद और भी अधिक तीव्र होती जा रही थी। अब मैं चाह रहा था कि रूपा को लिवा लाऊँ। भाभी भी आग्रह कर रही थीं।

रूपा को लिवाने गया। वहाँ जाकर जो देखा उससे मेरे मन प्राण अवसन्न से हो गये। रूपा का रुग्ण शरीर निर्जीव सा चारपाई पर पड़ा था। उसके पति पास ही कुर्सी पर बैठे थे। उनके समीप ही एक छोटी सी मेज पर दवाई की शीशी आदि रखी थीं। उसकी व्यथित-हृदया सास दवा देने का उपक्रम कर रही थीं।

मुझे आया हुआ देखकर उसके पति तुरन्त ही उठ खड़े हुए; व्यथा-भार से जर्जर-से वे मुझसे लिपट गये। बोले—

"भैया! तुम्हारी रूपा शायद अब मुझसे रूठने लगी है। देखो तो कैसी हो गयी है। कभी बोलती है तो बोलती ही रहती है, मौन हो जाती है, तो फिर बोलती ही नहीं। इस बार तो उसने बहुत देर से आँखें ही नहीं खोलीं।"

उनकी हिलकी सी बँध गयी। सचमुच रूपा ने उन्हें मोह लिया था। मैं रूपा के पास बैठ गया—मौन, धीर और गम्भीर। वे रूपा के पास अपना मुँह ले जाकर धीरे से बोले—

"रूपा! देखो तो कौन आये हैं! एक बार तो आँखें खोलो, तुम्हारे प्रकाश कब के तुम्हारे पास बैठे हैं!"

कुछ हलचल सी हुई। वह धीरे से हिली। चेहरे पर हलकी सी स्मिति दीप्त हो उठी। फिर आँखें खुलीं। मुझे सचमुच ही आया हुआ देखकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। क्षण भर को उसमें नया सा जीवन आ गया। बोली—

"आ गये तुम! मैं जानती थी, तुम अवश्य आओगे।"

फिर वह मेरी ओर अपलक देखती रही। उस समय उसकी आँखों में आनन्द था, प्यार था। थोड़ी देर बाद उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

बस, वह आँखें खोलती—एक बार अपने पति की ओर देखती, फिर मेरी ओर देखती। स्वतः ही आँखें बन्द कर लेती। कुछ बुदबुदाती और अचेत सी हो जाती।

सन्ध्या हुई। एक बार फिर उसे चेतना हुई। उसने अपना हाथ पति की ओर किया, जिसे उन्होंने अपने हाथ में ले लिया। वह बोली—

"मेरे लोक और परलोक दोनों ही सफल हो रहे हैं। तुम अपना विवाह कर लेना।"

फिर उसने पानी माँगा। पानी मेरी ओर ही था। उसके पति ने मुझे इशारा किया, शायद वे वहाँसे उठना नहीं चाह रहे थे, दुखी थे। रूपा की सास उस क्षण वहाँ थी नहीं। सहसा ही उसने करवट बदली। मेरी ओर मुँह करके बोली—

"प्रकाश! खूब धूम-धाम से विवाह करना। ऐसी हालत में मैं कैसे सम्मिलित हो सकूँगी?"

इतना कहते-कहते वह बहुत थक गयी। कोशिश करने पर भी न बोल सकी। आँखें मुँद गयीं। हम सब भाँप रहे थे कि अब वह बच न सकेगी। कुछ क्षण बीते, उसे फिर चेतना हुई। पानी दिया, पर पिया न गया। मैंने कहा—

"रूपा! निराश मत हो, अच्छी हो जाओगी, तभी विवाह करूँगा।"

उसने तत्काल ही कहा—

"नहीं, विवाह इसी लगन का करना, टालना मत। बोलो............!"

मैंने हामी भर ली। फिर वह बोल न पायी। न उसे चेतना ही हुई। और मेरी रूपा को उस अँधियारी रात ने सदा सदा के लिए निगल लिया।

चिता की लपटों ने उस अँधियारी रात को एक बार भेद-भेद डाला। मन और प्राणों में दुख ही दुख व्याप्त था। अतीत की घटनाएँ चित्रपट के समान याद आ रही थीं, जैसे उस निविड़ अंधकार में चिता की उठती लपटों ने प्रकाश भर दिया हो।

× × ×

पिताजी की छाया बचपन में ही उठ चुकी थी। मैं तब आठ या नौ वर्ष का रहा होऊँगा। ताऊजी के पुत्र जो मुझपर विशेष कृपा करते तथा हर समय मेरे सुख-दुख का ध्यान रखते आये हैं, मुझे अक्सर अपने साथ ही रखते थे। मैं भी उनके साथ रहने में असीम सुख का अनुभव करता था। जहाँ प्यार हो, आश्वासन हो, निश्छल हृदय हो, तथा हो अपरिमित आनन्द का लहराता हुआ सागर, तो कौन अभागा उसमें गोते न लगायेगा? मेरे लिए तो फिर उनका रोम-रोम आकुल रहता था। कब मैं उनके अधिक से अधिक सामीप्य में न आता! अपने मन की भली-बुरी सब उनके सामने उगल देता। भाई की तरह ही मुझे भाभी का भी स्नेह प्राप्त था।

विष्णु भाई साहब का साला था। रूपा उसकी छोटी बहन। बिलकुल गेहूँ सा गोरा रंग। इकहरा छरहरा शरीर। लम्बी सुडौल नाक, जो चेहरे पर भरा कम होने के कारण ही अधिक उभरी ज्ञात होती थी। आँखें ऐसी, जैसे किसी प्रणय-मत्त मृगी से छीन ली हों। अवस्था मुझसे कम ही थी। मैं भाई साहब के साथ उनकी ससुराल जाता तो उस मृगाक्षी का चापल्य मेरा मन मोह लेता।

माँ का स्वरूप था पूजा सा पावन, जैसे प्रभु की भक्ति में विह्वल होकर, प्रेमाश्रुओं से स्नान करके अ

अभी आयी हों। नयनों में प्यार का अपूर्व स्रोत तथा व्यवहार में अति दुर्लभ आत्मीयता का पुट छलक-छलक पड़ता ज्ञात होता। भाई साहब झुककर प्रणाम करते या न करते, पर उनका कुछ मन-मन में तथा कुछ प्रकट सा अस्पष्ट आशीर्वचन अवश्य पहले से ही सुनाई पड़ने लग जाता। मुझे तो वे गोद ही में उठा लेतीं। मैं सहम सा जाता। भाई साहब को देखकर, यदि वे वहाँ ससुराल में ही होतीं, तो भाभी लज्जा में गड़ सी जातीं तथा कुछ-कुछ माँ से छिपकर देखती हुई सी भीतर चली जातीं। (अब भी गाँवों में लज्जा शील ललनाएँ अपने माँ-बाप के समक्ष पति के सामने नहीं आतीं और न बातें ही कर पाती हैं।)

एक बार ऐसे ही एक अवसर पर भाभी को भीतर जाते हुए देखकर रूपा बोली—

"माँ! देखो, जीजाजी आये और जीजी भीतर चलीं। क्या उन्हें इनसे डर लगता है? जब जीजी जीजाजी के साथ ससुराल जाती हैं, तब भी तुमसे लिपटकर रोती क्यों हैं?"

उस छोटी सी अबोध बालिका को यह बात कैसे समझायी जाती! माँ कुछ सोच रही थीं, उत्तर देना ही चाहती थीं, कि रूपा फिर बोल पड़ी—

"कैसी हैं जीजी, डर जाती हैं? मुझे तो किसीसे डर नहीं लगता।" फिर मेरी ओर देखकर बोली—"इनसे भी नहीं।"

बात कही गयी थी सहज चापल्य के वश में आकर। उस बिचारी को क्या पता था कि क्या कह रही है। भाई साहब हँस पड़े, बोले—

"तो चलेगी इनके साथ? खेला करना दोनों जने।"

"हाँ, हाँ, बड़ा अच्छा रहेगा।"

इसबार माँ भी मुस्कराईं। बोलीं—

"जोड़ा तो बड़ा ठीक रहेगा।" फिर थोड़ा मुँह पर गाम्भीर्य लाती हुई बोलीं—"भगवान मालिक है।"

और इसके साथ ही साथ उनके हृदय में यह बात बस गयी। पिताजी भी राजी हो गये। हम दोनों के विवाह योग्य हो जाने की प्रतीक्षा की जाने लगी।

मैं बड़ा हुआ। और बड़ा हुआ। किशोर अवस्था ने रंग दिखाया। मेरे ताऊजी के मन में भी रूपा के साथ मेरा सम्बन्ध बड़ा ठीक जँचने लगा। मैंने भी कल्पना के महल चिनने शुरू कर दिये। भावी जीवन के रंगीन स्वप्नों में मेरा मन खोया-खोया रहता। धीरे-धीरे मेरी आत्मा उस सुखद लोक में विचरण करने लगी, जहाँ पहुँचकर इस वास्तविक भूमि पर लौट आना दुष्कर ही नहीं, असंभव सा ही हो गया। मेरा हृदय अब अपना नहीं था, वह तो अब एक ऐसा पतंग थी, जिसकी डोर अब किसी और के ही हाथ में थी, मेरे में नहीं। वह डोर आकर्षण की थी, रूप-माधुरी की थी, हृदय की स्वच्छन्द प्रेरणा और पावन प्रणय की थी। मैं तो अनजाने ही अपनी आत्मा रूपा को समर्पित कर चुका था, बचपन में उसने मुझे स्वयम् जो चुना था।

जब से मेरे और उसके विवाह की बात चली, तब से उसकी सूरत भले ही एकाध बार नसीब हो गयी हो, पर उसकी वह स्नेह-सिक्त स्वर-माधुरी तो श्रुति पुटों में कभी पड़ी ही नहीं। पड़ी भी तो तब जब सामने अनन्त आकाश-सा अलंघ्य एवम् निस्सीम सूनापन ही सूनापन शेष था। घुटन, विवशता, टीस तथा मजबूरियों के सिवाय कुछ भी दिखायी नहीं देता था। हम दोनों अपना जीवन हार चुके थे। एक मन एक प्राण होकर भी इन भौतिक शरीरों को साधे, विपरीत दिशाओं के पथिक थे। पाथेय था तो केवल सुधि का, जो हृदय में हर समय रम-रम कर दुखते घावों को और भी हरा करता रहता था।

मैं जब जब गया, रूपा मिलकर भी फिर न मिली। दर्शन मिले, पर देवता जैसे पत्थर का था, बोल नहीं सकता था—न बोला।

एक बार भाभी वहीं थीं। उनके लड़के संजीव के चेचक निकली। ताऊजी देख आये। कुछ दिन बाद उसे देखने मुझे भेजा गया। यह भी बताया गया कि यदि अब संजीव ठीक हो गया हो, तो भाभी को साथ ही लिवाता भी लाऊँ।

मैं पहुँचा। रूपा चौपाल लीप रही थी। मुझे देखकर संकोच में गड़ सी गयी। मैंने कुशल-क्षेम पूछी, तो उत्तर के स्थान पर मुझे एक तिरछी चितवन ही मिली। ऐसी चितवन, जिसमें कुशलता थी, भावी मिलन की अनुभूति थी, प्यार का पुट था और शरारत की झाँकी थी। उस दिन की उसकी चितवन मुझसे भुलायी नहीं जा सकती। मैं सोचता ही रह गया—क्या यह वही रूपा है, जो माँ तथा पिता के सामने भी मुझसे निस्संकोच बात करती थी। आज अकेले में राजी-खुशी भी नहीं बतायी। अधलिपी ही चौपाल छोड़कर चल दी।

एक बार समय पाकर माताजी के सामने ही इसी रूपा ने मुझे रंग से सराबोर कर दिया था। मुझे बड़ा संकोच लगा। मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा था और वह थी कि हँसे जा रही थी। रंग डाले जा रही थी। उस दिन उसमें इतनी प्यास न जाने कहाँ से आ गयी थी, जिसे तृप्त करने की ऐसी लालसा उसमें जग गयी थी। अथवा वह निर्लिप्त भाव से मेरी ही प्यास बुझाने की कोशिश में रंगरूपी अपने मन का समस्त स्नेह-स्रोत उड़ेले दे रही थी—कौन कहे? मैं तो वह जो किये जा रही थी, जो कुछ समर्पित कर रही थी, उसे स्वीकृत किये जा रहा था।

हाँ, तो वही ऐसी चपल रूपा उस दिन मुझे देखते ही अधलिपी चौपाल छोड़कर क्यों चल दी? वह न बोले, न सही, पर मुझे तो एक बार भी ऐसा अवसर दे देती कि मैं ही अपनी बात उससे कह पाता। अगर रूपा एक क्षण भी रुक पाती, तो मैं उससे पूछता—"रूपा! अब तुम्हें मुझसे डर तो नहीं लगने लगा है?"

ऐसे ही समय हमारे भाग्याकाश का वह चमचमाता सितारा टूट पड़ा।

रूपा का और हमारा दोनों का ही परिवार काफी

बड़ा है। उसके एक चाचा अपनी लड़की का संबंध हमारे यहाँ ही एक लड़के के साथ पक्का कर गये। रस्म पूरी हुई। लग्न शोधी गयी। समय पर चढ़ी भी। किन्तु विवाह से केवल दो दिन पूर्व एकाएक खबर मिली, कि यह विवाह नहीं होगा। हम प्रबन्ध न करें। सारे परिवार की प्रतिष्ठा पर पानी पड़ गया। इज्जत धूल में मिलती जान पड़ी, लड़के की शादी जो छूट रही थी। किसी की इज्जत इतनी सस्ती थोड़ी ही है कि जब चाहो लूट लो। अपनी आन-बान के पक्के दस-पाँच आदमी वहाँ गये।

पंचायत हुई। भला-बुरा कहा गया। शरमदार आदमियों की आँखें झुक गयीं। पर लड़कीवाला भी एक ही बेशरम था। शादी नहीं होनी थी, नहीं हुई। पंच लौट आये।

बस। इसके पश्चात् हमारे दोनों के हृदयों की न रूपा के पिताजी ने ही सुध ली और न इधर से ताऊजी ने ही। कोई अपनी ओर से चर्चा चला देता तो बात जो बिगड़ जाती। फिर दोनों के हृदय आपस में खट्टे भी हो गये थे।

समय बीतता गया। मैं रूपा की प्रतीक्षा में था। पर समय को और होनी को तो किसीकी प्रतीक्षा नहीं थी।

एक दिन रूपा के पिताजी आये। ज्ञात हुआ कि रूपा का विवाह है। भाभी को लिवाने आये हैं। मैं कमरे के सामने चौपाल पर बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था। जब रूपा के विवाह की बात सुनी, तो मेरा रोम-रोम दुखने लगा। उस दिन मैंने बिना चोट की पीड़ा अनुभव की। ऐसी पीड़ा, जिसने मर्म को वेध डाला, हृदय को तोड़ दिया: अब रूपा परायी होने जा रही थी, अब मैं रूपा की ओर कभी आँख भी उठाकर देख जो नहीं सकता था। मेरे हृदय में सञ्चित भविष्य के समस्त स्वप्न ध्वस्त हो गये।

मेरी रूपा किसी दूसरे की दुलहिन बनकर सजी-सँवरी उसके घर चली गयी।

ये दिन मेरे कैसे बीते, यह बतलाना संभव नहीं। हृदय में अब पुरानी कामना साधनाओं का रूप ले रही थीं। मैं अपने पठन-पाठन में दत्त-चित्त हो गया। परीक्षाएँ होती गयीं। चार वर्ष में मैंने चार परीक्षाएँ पास कर लीं, अच्छे नम्बरों से। अब मैं तीन सौ रुपये प्रति मास की एक सरकारी नौकरी पर भी लग गया था।

विष्णु की शादी हुई। वह मेरा सहपाठी था। मित्रता की माँग थी कि मैं शादी में अवश्य ही सम्मिलित होऊँ। भाई साहब भी मुझे बचपन से ही अपनी ससुराल लिवा जाया करते थे। इधर गत वर्षों में मैं बाहर अध्ययन करने के बहाने वहाँ जाने से कतराता रहा। अब मेरा दफ्तर भी गाँव से दो ही मील दूर था। अतः गाँव में उपस्थित न हो सकने के सब बहाने व्यर्थ थे। भाई साहब भी मुझसे विष्णु की शादी में सम्मिलित होने का आग्रह कर रहे थे। उनको फुरसत नहीं थी। जाना अनिवार्य हो गया। गया भी।

मुझे अब विष्णु के गाँव को देखे बिना लगभग सात वर्ष हो गये थे। इस अरसे में परिवर्तन भी पर्याप्त हो चुके थे। पहले जहाँ हरे-हरे नीम के वृक्ष थे, सघन शीतल छाया थी, दोपहरी में भी गरम हवा नहीं लगती थी, वहाँ अब लू की प्रचण्डता आकुल करती थी। घर के सामने के वृक्ष काट डाले गये थे, उनके स्थान पर अब घर के सामने की दीवार उठा दी गयी थी। घर के सामने ही कुआँ था। अब वहाँ वही बच रहा था जो पुराने दिनों की याद दिलाता था। घर के बायीं ओर एक बड़ा चबूतरा था, जिसपर खड़ा नीम का सुन्दर स्वस्थ वृक्ष अब बूढ़ा हो चला था। चबूतरे का एक भाग अब बैठक में बदल गया था। सब ठीक था, कमी थी तो केवल घर के सामने खड़े पेड़ों की। चबूतरे पर खड़ा पेड़ मात्र अब छाया का अवलम्ब बचा था।

बैठक झंडियों से सजी थी। ऊपर चारों ओर तस्वीरें टँगी थीं। एक चित्र उनमें मेरा भी था, बाल्यावस्था का। चारपाइयाँ पड़ी थीं, जिनपर अतिथिगण बैठे थे। आम के पत्तों के वन्दनवार बनाये गये थे। कागज के विविध रंगों के पुष्पों के अर्द्धवृत्ताकार विपुल तोरण टँगे थे। सब मिलाकर बड़ी सजधज थी।

मैं यह सब देख ही रहा था कि स्वागत में चारपाई बिछ गयी। मुझे कुछ थकान सी अनुभव हो रही थी। मैं लेटना ही चाहता था कि विष्णु आ गया। उसका हल्दी चढ़ा सद्यःस्नात शरीर आज और भी अधिक सुन्दर लग रहा था। दोनों गले मिले। कण्ठ गद्गद हो गया। बात न बनी। आँखें सुख-सलिल से भर आयीं। हम दोनों सहपाठी मित्रों का यह मिलन आज कई वर्षों बाद हो पाया था। विष्णु की आँखों में अब शिकायत थी——

"भाई! खूब आये! मुझे तुम्हारे आने की आशा तो बहुत नहीं थी, पर मेरा हृदय बार-बार कहता था कि तुम न आये तो सब काम अधूरा ही रह जायेगा। मन में आता भी था कि तुम जरूर आओगे, पर मेरा चेतन इस बात को स्वीकार ही नहीं कर पाता था।"

"मेरी भी तुमसे मिलने की बड़ी इच्छा थी, और इस अवसर पर तो आना ही था।"

"अच्छा, चलो घर! अम्मा को पता चल गया है। तुम्हें शीघ्र ही देखना चाह रही हैं। कह रही थीं——लड़ैंगी।"

मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि माँ मुझे पुत्रवत् स्नेह करती थीं, वही स्नेह अब उनकी इन बातों में झलक रहा था। मैं चलने को उद्यत हो गया। सहसा ही मुझे ध्यान हो आया कि घर में तो रूपा भी होगी। उससे भी साक्षात्कार होगा। उसकी याद आते ही मेरा हृदय धड़कने लगा। प्राणों में कुछ शूल सा चुभने लगा। वेदना का जो अंगार समय की राख का आवरण पाकर दब सा चुका था, वह अब सुधि की वायु से अनावृत होकर फिर दहकने लगा। मन में आ रहा था कि अभी यहाँसे उठकर चल दूँ। जितना यहाँ रहूँगा, उतना ही विष्णु के गाँव का यह वातावरण मुझे अधिक कष्टकर सिद्ध होगा।

हम दोनों घर के भीतर गये। पर रूपा से मिलन होगा, यह सोचते ही मेरे प्राण काँप गये, पैर लड़खड़ाने से लगे। विष्णु कुछ-कुछ भाँप रहा था। मैंने छिपाते हुए बात बनायी--

"बहुत दिन बाद माताजी के दर्शन करूँगा। अपराधी हूँ, भाई! क्षमा माँग लूँगा।"

घर में बड़ी चहल-पहल थी। लड़कियाँ मंगल गा रही थीं। प्रौढ़ा एवम् वृद्धायें अन्य कार्यों में संलग्न थीं। मैंने माताजी को पहचान लिया। वे मुझे ही देख रही थीं। कदाचित् पहिचान नहीं पा रही थीं। बचपन में जब मैं आया करता था, तब कमीज पतलून पहनता था, बाल सजे-सँवरे होते थे। अब मैं तीन सौ रुपये पानेवाला एक अधिकारी था। वे कदाचित् सोचती होंगी कि मैं अब अति मूल्यवान कोट-पतलून में तो हूँगा ही, साथ ही साथ सिर के बाल अवस्था के अनुसार और भी अधिक बढ़ गये होंगे। पर यहाँ कुरता-धोती पहने छोटे-छोटे बालोंवाले युवक को देखकर वे, ज्ञात होता था, कुछ आश्चर्य में पड़ गयी थीं। मैंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उनका चेहरा प्रसन्नता से खिल गया। आशीर्वाद के मंगल वाक्य कहती हुई मोढ़ा उठा लायीं। मुझे बाँह पकड़कर उसपर बैठाया, सिर पर हाथ फेरा। उनकी आँखों में इतने दिन बाद आने की कोई शिकायत नहीं थी। हाँ, वे भर अवश्य आयी थीं--

"मुझसे भी छिपते रहे बेटा! कभी माँ से भी यों अलग रहा जाया करता है? ऐं!"

इतने में मुझे सामने से आती एक दुबली-पतली युवती दिखायी दी। स्वच्छ श्वेत साड़ी, माथे पर सिन्दूर-बिन्दु। मैं देखता ही रह गया, रूपा थी। देखकर हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। कहाँ वह स्वास्थ्य और कहाँ यह अस्थि-पञ्जर!

भीतर से किसी कार्यवश माँ की पुकार आयी। वे चली गयीं। रूपा अब सामने की दीवार के सहारे बैठी थी। थकी हारी सी। मेरा हृदय भर आया। 'रूपा को यह क्या हो गया है? उसे क्या दुख है, जिसमें घुलघुलकर उसकी ऐसी अवस्था हो गयी है? क्या वह अपने वैवाहिक जीवन से सुखी नहीं है? इस थोड़े से ही समय में उसे जीवन-सागर के थपेड़ों ने कैसा बेदम-सा निरुपाय बना दिया है?' ज्ञात होता था, उसकी बाँहों का बल थक गया है।

मेरी हृदय-गति तो जैसे रुक जाना ही चाह रही थी। प्राणों में तीव्र उद्वेलन सा हो रहा था। रूपा से साक्षात्कार के ऐसे क्षणों को, केवल उसके दर्शन-मात्र को मैं तरस-तरस जाया करता था। पर अब रूपा, मेरे सपनों की देवी, प्राणों की प्राण, मेरे सम्मुख बैठी थी और मैं कैसा विवश था कि ऐसा अवसर भी मुझे शतशत बिच्छुओं के सम्मिलित दंश के समान पीड़ा दे रहा था। मैं नहीं जानता कि रूपा पर क्या बीत रही थी। काश! वह मुझे भूल ही गयी होती और मैं उसे!

रूपा सामने बैठी थी, मौन। कदाचित् मेरे हृदय की पीड़ा पहिचान रही थी। एक मन-प्राणवाले दो पथिक प्रतिकूल दिशाओं में चलते-चलते भी आज हारे थके से आमने-सामने बैठकर जैसे दो क्षण विश्राम करना चाह रहे थे।

सहसा मेरा ध्यान भंग हुआ। विष्णु कह रहा था--

"अब चलो भाई! थोड़ा विश्राम कर लो। थक गये होगे।"

मैं भी एकान्त चाह रहा था। उसके साथ हो लिया। उस समय की रूपा की कुछ-कुछ कातर-सी पश्चात्ताप भरी दृष्टि मुझसे देखी न गयी। मुझे विष्णु ने घर की बैठक में ही ठहरा दिया।

मैं लेट गया। रूपा का वह रूप मेरी आँखों में घूम रहा था। मन-प्राण एक होकर उसकी आराधना में संलग्न थे। अब मुझे विश्वास हो गया था कि रूपा के मन की मुराद पूरी नहीं हो सकी। इसीसे उसका सोने के समान सुन्दर तथा दुग्ध-फेन के समान सुकोमल शरीर मिट्टी में मिलता जा रहा है। अब वह मेरी आराध्य नहीं, आराधना थी। उल्लास के स्थान पर उदासीनता थी।

मैं यही सब सोच रहा था कि सहसा दरवाजे में अँधेरा सा हुआ। सुरीली पर धीमी-सी आवाज भी आयी--

"राजी-खुशी तो हो?"

मैंने सहसा करवट बदली। देखा--रूपा खड़ी थी। मैं बैठ गया। बोला--

"हाँ, खूब अच्छी तरह हूँ। तुम तो प्रसन्न हो न?"

"हम भी खूब ठीक हैं।"

"स्वास्थ्य का क्या कर लिया है?"

"जैसे हमसे चल रहा है, चला रहे हैं। वैसे खूब प्रसन्न हैं।"

"कैसी प्रसन्न हो! तन को क्षीण बना लिया है और मन को दीन। स्वर कैसा बुझा सा है! और हँसी कैसी विवश!! मुझे जब-जब तुम्हारा ध्यान आता है, सोचा करता हूँ--मेरी बचपन की सखी रूपा बड़ी स्वाभिमानिनी है।"

इतना सुनते ही उसके मुख पर आनन्द की क्षणिक दीप्ति खेल गयी। बोली--

"तो कभी-कभी हमारा भी ध्यान आ जाया करता है?"

फिर उसने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ी। कुछ सँभली सी--

"यदि मैं क्षीण हूँ, दीन हूँ, तो उसे तुमसे कैसे छिपाऊँ? तुम सचमुच ही प्रकाश हो, जहाँ पहुँचते ही सब रहस्य प्रकट हो जाते हैं। जैसी हूँ, वैसी तुम्हारे सामने आने में कुछ हिचक भी नहीं है। मेरा मन दीन है तो उसे अदीन बनाकर कैसे दिखाऊँ? फिर मेरा, मेरे मन का तथा प्राणों का तुम्हारे सामने आकर जैसा रूप रह जायगा, वैसा ही तो तुम देख पाओगे?"

"क्या देख पाऊँगा या पा रहा हूँ, यह कैसे बताऊँ! पर मैं अब तक तुम्हारे स्वाभिमानी स्वरूप की ही अधिक कल्पना करता आया हूँ, जो टूट सकता है, पर लचकना

नहीं जानता। दैन्य का हरण कर सकता है, उसका वरण नहीं कर सकता। पर मेरी वह कल्पना है कहाँ? इतनी अशक्त क्यों होती जाती हो?"

"स्वाभिमानी स्वरूप लचक नहीं सकता, टूटता ही है। पर जिन्दगी की यह बात नहीं है। जिन्दगी में जितनी लोच हो, उतना ही आनन्द है।'

"अच्छा, पर वह आनन्दवाली लोच भी तो यहाँ नहीं है। कैसी थक गयी हो!"

"जब प्यास लगती है, और उसकी परितृप्ति हो नहीं पाती, तब कैसा लगता है? एक-एक घूँट की कल्पना कितनी मधुर बन जाती है? पर यह बात तुम नहीं जानते, मैं जानती हूँ। तुमने तो कभी प्यास जानी ही नहीं। जानी है?.....जानते, अनुभव करते तो आज तुम्हारा ही नहीं, मेरा भी जीवन-पथ दूसरा ही होता।"

वह अपने जीवन से मेरे जीवन का सीधा सम्बन्ध जोड़ रही थी। कितना स्पष्ट था! थोड़ी देर रुककर फिर बोली—

"मुझे प्यास लगी, सही नहीं गयी। यह बात नहीं कि कोई जानता न हो, सब जानते थे—तुम भी। पर मुझे पीने को दी गयी मदिरा। सोचो—क्या कभी भी उससे प्यास बुझ सकती है? मेरे इस चिर तृषित हृदय की तृषा अब कभी शान्त नहीं हो सकती। इस जीवन को लेकर ही रहेगी।"

"रूपा! इस तरह काम नहीं चलता। जो अभाव है झेलना ही होगा। देखो न, मैं भी तो झेल ही रहा हूँ।"

"तुम पुरुष हो, जिसका पौरुष सब कुछ सह सकता है। मैं भी सब झेलूँगी, पर तुमसे छिपाकर नहीं। एक बार इस निगोड़ी लज्जा के वश में होकर अपने मन की बात मैं तुमसे छिपा गयी थी, उसीका परिणाम यह जीवन झेल नहीं पा रहा है। उसी लज्जा को आज तुम स्वाभिमान समझ बैठे हो। अब और अधिक व्याधि नहीं पालूँगी।"

रूपा इस बार सब कुछ कह गयी। मैंने सब सुना। मेरा हृदय इस व्यथा को सह नहीं पा रहा था। पर सब सहता गया, पुरुष जो था। इस बार वह नीचे देख रही थी। हाथ में हल्दी की गाँठ थी। वह उसे धरती पर रगड़ रही थी—बोली—

"अब तो दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। कितने दिन बाद आज आये हो! क्या इन सब लोगों को भी भूल गये? भाई साहब को भी? हमारे लिए न सही, कभी-कभी इनके लिए ही आ जाया करो। आ जाया करोगे न?"

मैं क्या उत्तर देता? कैसे कहता—"प्राण! तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। तुम्हारी सूरत के लिए ये दर्शन की भूखी अँखियाँ तरस-तरस जाती हैं। क्षण भर भी मन को चैन नहीं पड़ता।" पर पौरुष का धर्म रूपा क्षण भर पहले ही बता चुकी थी, मेरे पौरुष को यह सब कहना उचित नहीं जँचा।

मेरे मन में रूपा का वह दौर्बल्य काँटे की कसक सा दुख दे रहा था। मैंने एक बार फिर पूछा—

"स्वास्थ्य ऐसा कैसे कर लिया है?"

उसने अपनी दृष्टि ऊपर की, पर मुझे अपनी ओर देखता पाकर तुरन्त नीचे झुका ली—

"क्या बताऊँ? कभी ज्वर हो आता है। कभी भूख नहीं लगती। शरीर को प्रसन्न ही रखती हूँ। पर मन को क्या करूँ, इसे न जाने क्यों चैन ही नहीं पड़ता। इलाज भी कराया है। पर कोई फायदा नहीं। 'वे' तो रात दिन फिकर करते हैं। हर एक बात का, छोटी से छोटी का भी, बड़ा ध्यान रखते हैं। पर क्या बताऊँ, यह शरीर है पनपता ही नहीं। घर में भी किसी बात का अभाव नहीं। सास मेरी समस्त सुविधाओं का ध्यान रखती हैं। वे खाना भी मुझे खिलाने के बाद ही खाती हैं।"

"तो रूपा! सब ठीक है फिर चाहिये ही क्या?"

"पर प्रकाश जी!" उसने पहली तरह ही मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा, जो बड़ा भला ज्ञात हुआ—

"तुमने एकदम हाथ क्यों खींच लिया है? आते भी क्यों नहीं? बुरा न मानना, आज कई वर्षों के बाद मिले हो। अब आगे क्या भरोसा? न जाने कब दर्शन दोगे! जो भी मेरे मन में आ रहा है, बके जा रही हूँ। तुम गुम-सुम से क्यों हो? बोलते क्यों नहीं? पहिले हम तुम दोनों मिलकर खेलते थे। तुम आते थे, मुझे ही तलाश करते आते थे। चलो न, बाहर आज भी थोड़ी देर खेल आवें?"

मुझे उसके इस बचपने पर हँसी आ गयी। पर देखा—रूपा की आँखें भर आयी थीं। जैसे अभी रो पड़ेगी। उसकी बात के भीतर छिपी गम्भीरता के कारण एक विषाद की गहरी रेखा भी मेरे तन-मन पर छाती चली गयी। न चाहने पर भी एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा।

"इतनी भोली न बनो रूपा! वे दिन गये। अब तो हमें तुम्हें इतनी देर तक बातें करते भी कोई देखेगा तो न जाने क्या-क्या सोचेगा!"

वह निराश स्वर में बोली—

"सोचने दो, मुझे फिकर नहीं। 'उन्हें' तो मेरे ऊपर स्वप्न में भी सन्देह नहीं हो सकता। मैं भी 'उनसे' कुछ नहीं छिपाती। मैंने एक दिन तुम्हारे विषय में 'उन्हें' सब बातें बता दीं। उन्होंने बुरा नहीं माना उलटा उस दिन से मुझे बहुत अधिक प्यार करने लगे हैं। मेरे ऊपर विश्वास तो और भी अटूट हो गया है। अच्छा, अब मैं जा रही हूँ। आराम करो।"

यह कहकर वह भीतर चली गयी, और थोड़ी ही देर में एक गिलास नीबू का ठण्डा शरबत मुझे दे गयी।

दावत हुई। सब आराम करने लगे। मैं बहुत थका हुआ था। पर नींद न आयी, न थकान महसूस हुई। दिल में एक अजीब बेचैनी सी थी। लगा करता था, कि इस समग्र संसार में मैं अकेला हूँ। मेरा कोई नहीं है। पर अब मुझे लग रहा था कि मैं अकेला नहीं हूँ। कोई

मेरा भी है––कोई है, जो मरता है तो मेरे लिए, जीता है तो मेरे लिए। पुरानी स्मृतियाँ जग ही नहीं गयी थीं, वे बिलकुल ताजी होकर मन में रम गयी थीं। जिस व्यथा को मैं तिल तिलकर भुलाना चाह रहा था, पर तनिक भी नहीं भूल पाया था, वही व्यथा अब शत सहस्र गुना विकराल रूप धारण कर सामने खड़ी थी।

रूपा के पति से भी मुलाकात हुई। वे बड़े मिलनसार थे। मेरा परिचय प्राप्त करते ही उन्होंने मुझसे घनिष्टता बढ़ा ली। अपनी, अपने घर की सब बातें मुझसे कहते रहते। रूपा की तारीफ के तो वे पुल ही बाँध देते। मैं भी उनसे कुछ ही घंटों में खूब घुल-मिल गया। मुझसे वे कह देते––

"मेरा जीवन रूपा को पाकर स्वर्ग के समान बन गया है।"

सचमुच मुझे भी अपनी रूपा पर गर्व हो आता।

विवाह हो गया। मैं अब विष्णु के गाँव रुकना नहीं चाह रहा था। बड़ी मुश्किल से मैं दोपहर के बाद चले जाने की आज्ञा माताजी से ले सका। अब सभी रिश्तेदार चले गये थे। रूपा के पति रूपा को लिवा ले जाने के लिए रुके हुए थे।

मैं दोपहर के बाद चला जाऊँगा, यह सुनकर रूपा आयी। दरवाजे में खड़ी होकर उँगली से किवाड़ खुरचने लगी। मुँह मेरी ओर न था। मैंने कहा––

"मैं थोड़ी देर बाद चला जाऊँगा। तुम प्रसन्न रहा करो। देखो, तुम्हारी प्रसन्नता से ही मेरी प्रसन्नता है। इस प्रकार घुलने से काम थोड़े ही चल सकता है।"

उसने अब भी मेरी ओर मुँह नहीं किया। कह नहीं सकता कि मेरी बात का उसपर क्या प्रभाव पड़ा। उसने अति करुण सा स्वर करके मुझसे आग्रह किया––

"क्या अभी ही जाना आवश्यक है? रुक नहीं सकते? हमें भी तो जल्दी ही जाना है। तुम रुको तो हम भी दो-चार दिन के लिए रुक जायँ।"

न मुझसे हाँ करते बना और न ना। तभी माताजी पीछे दिखायी दीं। बोलीं––

"बेटा! रूपा भी कह रही है। तब तो रुक ही जाओ। मेरे इस घर में दो दिन और रौनक रहेगी।"

और मुझे रुक जाना पड़ा।

रूपा प्रसन्न है या दुखी, यह बात ही मालूम नहीं पड़ती थी। मुझे देखते ही उसका मन जैसे आनन्द के सागर में गोते लगाने लगता। फिर तत्क्षण ही अन्तर से विषाद की एक गहरी सी छाया उठती, और उसके चेहरे को आवृत कर लेती, मानों जाड़े की सुहावनी धूप खिलते-खिलते सहसा बदली हो आने पर छाया में बदल जाती हो। एक दिन मैंने कहा––

"तुम सब समझती हो, फिर भी अनजान क्यों बन रही हो? इतनी समझदार होकर भी ऐसी बात करती हो। जो विगत है, उसे सोच-सोचकर सूखती जाती हो, पर जो आगत है, उसके स्वागत का उत्साह बिलकुल ही खो बैठी हो। हर समय का सोच ठीक नहीं होता। हमारा जनम भर का साथ हो जाता, तभी क्या था, और यदि अब नहीं हो सका, तो ही क्या है? मेरी अच्छी रूपा! एक बात मानोगी?"

"कहते क्यों नहीं? यदि मैं अपनी मनोकामनाओं के फूल तुम्हारे चरणों में समर्पित नहीं कर सकी, तो न सही; पर हाँ, यदि तुम्हारी मनोकामनाओं का एक भी फूल अपने शीश पर ढो सकी, तो मैं जन्म-जन्म को धन्य हो जाऊँगी।"

"फिर रूपा, दुख काहे का मानती हो? प्रसन्न रहा करो।"

"मैंने तो जब से इस बार तुम्हें देखा है तब से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब इस जिन्दगी में एक बार भी दुख नहीं मनाऊँगी। पर....।"

वह कहते-कहते रुक गयी। मैंने प्रश्न-सूचक अति स्निग्ध दृष्टि से उसे निहारा। वह मेरी ओर ही देख रही थी। देखती रही, जैसे मुझमें खो जाना ही चाह रही हो। बोली––

"तुम्हें मेरा बहुत ध्यान है। मेरे दुख से तुम द्रवित हो-हो जाते हो। पर जब मैं तुम्हें देखती हूँ, तुम्हारे एकाकीपन का, जिन्दगी के सूनेपन का ध्यान करती हूँ, तो मेरा रोम-रोम अपने आप ही दूखने लगता है। मैं कभी भी दुखी नहीं होऊँगी, पर मेरी इस पीड़ा का उपचार तो हो। जो न मिला उसे भूल कैसे जाऊँ, जब जो मिल सकता है, वह भी न मिल रहा हो?

"तुम्हारा यह एकाकीपन अब मैं अपना एकाकीपन महसूस करने लगी हूँ। सोचती हूँ, तुम्हारी जिन्दगी एकाकी नहीं है, मेरी है। अगर तुम मेरा, मेरे मन का दुख कम करना चाहते हो तो अब शादी कर लो। जीजी कहती रहती हैं कि तुम शादी ही नहीं करते। जब-जब वे मिलती हैं, यही बात सुनती हूँ। सच प्रकाशजी! मुझे चैन नहीं मिलता। आखिर अकेले कब तक बने रहोगे?"

मैं उसके मन की व्यथा अपने हृदय में धरता जा रहा था। वह उड़ेले जा रही थी। कह रही थी––

"प्रकाशजी! तुम समझते हो कि हमारी माताजी कैसी हैं? वे तुम्हें कितना प्यार करती हैं? फिर मेरा तो कहना ही क्या! ऐसी माँ पाकर मेरी जिन्दगी सचमुच ही कृतार्थ हो गयी है। मैं सोचा करती थी–– यदि ऐसी माँ के किसी काम आ सकूँ तो.....।"

वह कुछ क्षण रुकी। पुरानी स्मृतियों में खो सी गयी। धीरे-धीरे कहने लगी––

"माँ का हृदय बड़ा विशाल और उदार होता है। उससे सन्तान भला कभी कुछ छिपा सकती है? मेरी तुम्हारी साध भी नहीं छिपी रही। जब वह शादी छूटी थी, तुम्हें याद होगा––तब एक दिन अचानक ही उन्होंने मुझे अपनी गोद में खींच लिया। मेरा शरीर बड़े दुलार से सहलाया। सिर और पीठ पर अपना स्नेहिल हाथ फेरा। फिर बोलीं––'बेटी! माँ-बाप की इज्जत कहाँ

है—समझती हो? तुम्हारे स्वच्छ अंचल में। नारी का अञ्चल बड़ा सहनशील एवम् शीतल होता है। कहीं उसकी मर्यादाएँ भूल मत जाना।' और उन्होंने मेरा मस्तक चूम लिया था। एक क्षण को मुझे लगा कि मुझे मेरी समस्या का निदान मिल गया है। उस क्षण मुझे कितना सन्तोष मिला था। वैसा सन्तोष आजतक पूरे जीवन भर मैंने कभी नहीं पाया। मैंने अनजाने ही अपनी बाँहें माँ के गले में डाल दी थीं, जैसे उनके मन की साधना को अपने गले का हार बनाना चाह रही होऊँ। पर प्रकाश जी! कितना छल था मेरे उस सुख में? मेरा मन अपने अचेतन की साधनाओं को भूल सा गया था। और उस क्षण भर के सुख का मूल्य मुझे जिन्दगी भर चुकाना पड़ा। माँ ने अपने गले में पड़ी मेरी वे भुजायें, कितनी प्रसन्नता से थपथपायी थीं। कितना प्यार था उस थपथपाहट में!! पर मैं जान रही हूँ, उनकी उन दिनों की वह भावना भी कितनी अस्थायी थी। मेरी शादी अन्यत्र पक्की होते ही उनके शरीर को भी मेरे ही सोच में घुन लग गया। मेरे जी को चैन नहीं पड़ता, तो यह जानकर उनका मन भी बड़ा दुखी है।

"हाँ, तो मुझे नारी के अञ्चल की शीतलता और सहनशीलता निभानी थी। मैं शादी करने के लिए मजबूर हो गयी थी। तुम्हें भूल जाने को विवश थी।

"मैं जान रही थी कि तुम्हारा मन बड़ा तपस्वी है। पर उस तपस्या का ताप इतना असहनीय हो उठेगा, तब मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर पायी थी। तुम्हारी इस तपस्या से अब भी मुझे लगता है कि तुम मेरे हो। पर यह लगना भी उस क्षणिक सुख के समान छलना ही तो है। तुम्हारी यह तपस्या अब मुझसे देखी नहीं जाती। यह सब सहूँ कैसे? तुम्हारा यह सूना जीवन और मूक व्यथा देख-देखकर घुलना और शेष है, सो घुल रही हूँ।"

अफसोस का वेग सँभालने के लिए क्षणभर चुप हो गयी। फिर निःश्वास छोड़कर बोली—

"विवाह क्यों नहीं कर लेते?"

कैसी विवशता थी! रूपा का सुख, उसकी आत्मा का सुख अगर मैं चाहता हूँ, तो मुझे विवाह करना ही होगा। मैं बोला—

"अच्छी बात है, अगर मेरे विवाह से सचमुच ही तुम सुखी हो जाओगी, तो रूपा! मैं सच कहता हूँ, आज विवाह करने को तैयार हूँ।"

"मेरे सुख के लिए? अपने लिए क्यों नहीं?"

"वह अपने ही लिए तो होगा बावरी!"

"तो कब कर रहे हो? हमें तो नहीं भूल जाओगे?"

"यह भी कोई कहने की बात है? सब काम तुम्हारे ही ऊपर रहेगा। लड़की पसन्द तुम ही करोगी। मेरे पास तो खबर भर भेज देना, बस। और देखो विवाह पर मंगल-गाँठ भी तुम ही बाँधोगी।"

"यह कैसा भार डाल दिया मेरे ऊपर भगवान्! पर इस मन की बात कभी पूरी हुई है क्या? यह तो सदा हारता आया है, आज भी हारा ही है। जितना भार तुम मेरे ऊपर डाल रहे हो, उतना यह शायद ही झेल पायेगा। आज भी मन की एक साध कहूँगी, साध! क्या, पाप ही समझो। इधर एक लड़की को देखकर अनायास ही कुछ अपनत्व सा हो आया है, मैं उसके और तुम्हारे साथ की सुखद कल्पना करती रही हूँ। सपनों के ताने-बाने बुनती रही हूँ।"

"जैसा तुम चाहो।"

मैंने बात पूरी कर दी। उसका मन आनन्द से खिल उठा।

अब माताजी तथा भाभी बहुत प्रसन्न थीं। रूपा की प्रसन्नता का तो कुछ ठिकाना ही नहीं था। हर समय खिलती ही दिखायी पड़ती। मानो उसके मन का सारा क्लेश ही धुल गया हो। यह देखकर मेरी आत्मा को भी सचमुच बड़ा सन्तोष मिला।

मेरी छुट्टी समाप्त हो आयी थी। अतः मैं और अधिक वहाँ रुक नहीं सका। जब अपना सामान सँवार रहा था तब रूपा आयी। चुप-चाप खड़ी हो गयी, खड़ी रही। मैं सामान बाँधता जाता था, तथा प्रतीक्षा भी कर रहा था कि वह कुछ कहे, पर वह न बोली। उदास सी गुमसुम खड़ी रही। मैंने कहा—

"रूपा! अब मैं जा रहा हूँ। जैसे कहोगी, वैसा ही करूँगा। पर तुम अपने को भूलती न जाओ। तन्दुरुस्ती का ध्यान रखो। प्रसन्न रहा करो।"

वह फिर भी कुछ न बोली। मैंने लक्ष्य किया—उसकी उदासी और भी गहन हो गयी थी। मैंने फिर कहा—

"इस तरह उदास रहने से काम थोड़े ही चलेगा पगली कहीं की! मैं जा रहा हूँ; तुम यह सब कर रही हो!"

इस बार उसकी सूरत पर मुसकराहट आयी अवश्य पर वह कितनी विवश थी। मैंने देखा उसकी आँखें आँसुओं के सागर में गोते लगाना चाह रही थीं। वह अचानक ही झुकी, और मेरे पैर छूकर एक साथ ही कमरे से बाहर हो गयी।

मेरी आँखों से भी दो बिन्दु धरती पर गिर पड़े। एकान्त पाकर दुखी मनुष्य की आँखों का बाँध टूट ही जाता है। मैं रो रहा था, आत्मा दूख रही थी और प्राण चीत्कार कर रहे थे।

आह! आज उसी रूपा की चिता धू-धू जल रही है। प्रेम-बावरी रूपा! मेरे विवाह का इतना सुख मनाया कि सहेज भी न पायीं। कम से कम अपने हाथ से उसे पूरा तो करा जातीं। उसे अपनी आँखों से देख तो जातीं!! अपने अञ्चल में सन्तोष के फूल समेट कर तुम इन उठती लपटों की बाँहों में समा गयीं, रूपा! मेरी बाँहों में जो अंगार भरे हैं, उन्हें तो एक बार आँख उठाकर देख जातीं!!! जब तुमसे वे एक क्षणभर को भी नहीं देखे गये, तो सोचो मैं उन्हें जीवन कैसे झेल पाऊँगा?

चरणदास

श्री श्रीराम शर्मा 'राम'

चर्मकार चरणदास अपने जीवन में कभी ऐसा सुयोग नहीं पा सका कि गाँव के लाला धनपतराय की तरह बड़ी हवेली में बैठता, बड़े आदमियों में सम्मान पाता और जिन्दगी के प्रथम चरण में ही वह जिस दलदल में फँस गया था, उससे निकल जाता। जीवन के प्रभात में उसने आँख खोलकर देखा तो पाया कि वह ऐसे घर में पैदा हुआ है कि जहाँ दरिद्रता, विवशता और नित नये अभाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं पाया जा सकता। ऐसी जटिल अवस्था में एक बार फँसकर चरणदास ने कभी निकलने का यत्न किया या नहीं; परन्तु यह सच था कि वह उससे निकल नहीं सका। चमारों के जिस मोहल्ले में चरणदास का छोटा-सा घर था, वह हवेलियों और महलों के सामने निस्सन्देह "घर" नाम से नहीं पुकारा जा सकता था। बड़े आदमियों की तुलना में चरणदास की तरह उसके उस घर की भी कोई गिनती न थी। मानों दोनों ही दरिद्रता के प्रतीक थे। लेकिन महान् आश्चर्य की बात यह थी कि स्वयं चरणदास अपनी उस स्थिति से सन्तुष्ट था। वह जैसा था, जिस अवस्था में था, उसीको निभाने के लिए सचेष्ट रहना अपना कर्तव्य मानता।

एक दिन, रात्रि के समय अपनी जगह पर बैठा हुआ, चरणदास जब दीये की रोशनी में जूतियाँ बना रहा था, तो वहींपर उसकी स्त्री, फुलिया भी आ बैठी थी। वह अपनी गोद के बच्चे को सुलाकर, चरणदास का हाथ बँटाने में लगी थी। उसी समय लाला धनपतराय का आदमी द्वार पर आकर खड़ा हुआ। देखकर, फुलिया ने अपना घूँघट खींच लिया।

चरणदास ने कहा--"पायँ लागूँ, पण्डितजी!"

किन्तु हरकारे के रूप में आये हुए वह पण्डितजी, चरणदास की "पायँ लागूँ" का उत्तर न देकर अपनी ही बात लेकर बोले--"मैं रुपये माँगने आया हूँ, चरणदास! लाला ने कहा है, जितनी रकम थी, उतना ही सूद हो गया।"

चरणदास ने अपने हाथ का काम छोड़ दिया। पण्डित की ओर देखकर बोला--"लाला के हाथ में कलम है, आज दूना हुआ है, कल तिगुना हो जायगा। मुझे खुद फिकर है, पण्डितजी!"

"पर देते क्यों नहीं? क्यों नहीं उतारते इतनी बड़ी रकम को।"

"हाँ, उतारूँगा। अब देने की कोशिश करूँगा।"

"कब? कल आऊँ मैं?"

"नहीं, नहीं, इतनी जल्दी कैसे हो सकता है, महाराज!"

"लाला कहते हैं, डिगरी हो जायगी, फिर मकान भी छिन जायगा।"

यह सुनकर चरणदास कुछ बोला नहीं। न जाने, कैसी कड़वी मुस्कान उसके चेहरे पर डोल गयी। उसके मन में आया कि महल तो है नहीं, जिसके छिनने का दुख होगा। यह छोटी-सी कोठरी है, वह भी पुरानी। बरसात में बीसों जगह चूती है। उसने उस छोटे-से मकान पर दृष्टिपात किया और फिर अपना मुँह पण्डितजी की ओर उठाकर हँस दिया।

पण्डित ने कहा--"हँसते हो!"

"हाँ, क्यों न हँसूँ, पण्डितजी! सोचता हूँ, जो महलों में रहते हैं, उन्हें उस पर भी संतोष नहीं। मेरा यह छोटा-सा घर भी उनकी आँखों में खटकता है। रुपये तो मैं जरूर दूँगा। लालाजी से कहना, अगर उन्हें मेरा घर भी चाहिए, तो यह भी दे दूँगा।"

"बड़ा दानी है न! लखपती बाप का बेटा!"

चरणदास ने तपाक से कहा--"हाँ, मैं लखपती बाप का बेटा हूँ, पण्डितजी! मैं किसी महल में पैदा हुआ होता, तो परेशान रहता। पर यहाँ तो कोई परेशानी भी नहीं, कोई झंझट नहीं, कोई लालच नहीं, कोई दुराशा नहीं।"

"अच्छा, अच्छा, तो क्या कहूँ लाला से, यह बता?"

चौंककर, चरणदास ने कहा--"इस महीने के आखीर में दूँगा।"

पण्डित चला गया। फुलिया ने अपना घूँघट खोल लिया। उसने खुला हुआ दरवाजा भी बन्द कर दिया। चरणदास के पास लौट, फिर बैठते हुए, उसने कहा--"यह लाला भी कैसा है। रात में भेजा है, तकाजा!"

चरणदास के मन में उस समय कुछ और उठ रहा था। इसलिए वह क्षणभर में ही जैसे कहीं अन्यत्र चला गया था। उसी समय, जब उसने फुलिया की बात सुनी, तो तुरन्त ही, उसकी ओर देखकर बोला--"हाँ, फुलिया! यह रुपया ऐसा ही होता है। यह न दिन में चैन लेने देता है, न रात को नींद। शराब की तरह यह नशा भी आदमी को पागल बना देता है।"

"और आदमी फिर भी इसीके पीछे भागता है! वह जिन्दगी-भर रुपया ही देखता है।"

"यही तो, यही तो!" चरणदास ने अपनी जूती पर सलमे की पट्टी चढ़ाते हुए कहा--"रुपया ही तो आदमी को बनाता है और वही इसे बिगाड़ता है। यह अजीब गोरखधन्धा है।"

फुलिया ने कहा--"मैं कहती हूँ, पैसा आदमी को बिगाड़ता है, बनाता नहीं।"

यह सुनकर, चरणदास ने फुलिया की ओर देखा। उसने कहा--"तू बात तो ठीक कहती है, फुलिया! रुपया अन्धा बनाता है आदमी को।" पर इसके बाद ,ही

उसने फुलिया की ओर से अपनी आँखें हटाकर, फिर हाथ में पकड़ी हुई जूती पर टिका दीं। उसने सूई भी उठा ली, और बरबस, अपने मन की अधीर अवस्था में कहा--"अब चार सौ रुपये हो गये, लाला के! मेरे व्याह में चाचा ने दो सौ रुपये लिये थे। दो सौ सूद के चढ़ गये!"

"इतने हो गये!" उसी चिन्तित स्वर में फुलिया ने कहा।

"हाँ, फुलिया, चाचा ने तुम्हें इस घर में लाने के लिए ही रुपया लिया था।"

फुलिया ने फिर चिन्तित भाव में कहा--"तो...."

"तो क्या, मैं उतारूँगा इन रुपयों को। जिन रुपयों के कारण मुझे फुलिया जैसी भली और नेक स्त्री मिली, क्या मैं उन रुपयों को मार लूँगा? नहीं, फुलिया, मैं दूँगा उन्हें।"

"पर दोगे कैसे? कहाँ से दोगे?"

यह सुनकर चरणदास चुप हो गया। मानों वह स्वयं उस समस्या के अन्तराल में डूब गया। उसे नहीं सूझ पड़ा कि किस प्रकार लाला के रुपये देगा। वह दिन-रात मेहनत करता है, तब कहीं जाकर दो समय उसे दो रोटियाँ नसीब होती हैं। इसलिए अब वह अधीर बनकर, बेचैन हो उठा, तो अपने-आप ही, उसके हाथ से सूई-डोरा छूट गया। उसने जूती को भी रख दिया। उस समय बाहर सन्नाटा था। कुत्तों के भौंकने का स्वर भी सुनाई देने लगा था। दूर, बड़े आदमियों के मोहल्ले में, चौकीदार की आवाज भी सुनाई देने लगी थी। वह चौकीदार, उन चमारों के मोहल्ले में तो आता नहीं था; क्योंकि उसे जिस वस्तु की चौकीदारी करनी थी, सब के साथ, उसे भी पता था कि चमारों के पास वह वस्तु कहाँ है! और वह वस्तु थी रुपया। रुपया जैसी बड़ी चीज को रखने के लिए न सिर्फ बड़ा आदमी होना जरूरी है, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी जाति का बड़ा होना आवश्यक है। अतएव, जब फुलिया ने दूर से चौकीदार का बोल सुना, तो उसने कहा--"अब उठो।" और यह कहते हुए, उसने स्वयं अँगड़ाई ली। जो चीजें इधर-उधर फैली हुई थीं, उन्हें करीने से रख दिया। वह चारपाई पर जा पड़ी और अपने छोटे-से बच्चे के सिर पर हाथ फेरती हुई, कुछ देर पहिले की मन में उठी हुई समस्या को भूल-सी गयी, जैसे वह उसकी नहीं थी, उसके पति की नहीं थी।

किन्तु, इसके विपरीत, जब चरणदास दीया बुझाकर अपनी चारपाई पर जा पड़ा, तो उसका मन और मस्तिष्क मानों एकत्र होकर, उसके विरुद्ध बगावत कर उठे थे। चरणदास मौन था, परन्तु एक के बाद दूसरा विचार, उसके सामने आ रहा था। वह बार-बार करवट बदलकर सोने का प्रयत्न करता। पर जब वह शान्त नहीं था, तो सो कैसे सकता था? इसलिए, जब देर तक, मन की समस्या में उलझा रहा, तो बरबस, उठकर बैठ गया। उसने अपनी चिलम में तम्बाकू रखा और किवाड़ खोलकर बाहर से आँच लेने चला गया। जब वह लौटकर आया और किवाड़ बन्द करके अपनी चारपाई पर बैठने लगा, तो उसी समय किवाड़ खुलने और बन्द होने की आहट सुन फुलिया जग गयी। चरणदास चारपाई पर बैठकर हुक्के में दम मारने लगा तभी फुलिया ने उसकी ओर करवट लेकर कहा--"नींद नहीं आयी क्या?"

"हाँ, नींद नहीं आ रही, फुलिया!"

"क्या बात है?"

चरणदास ने हुक्के में दम मारकर, धुआँ छोड़ा और कहा--"बात क्या है, फुलिया! तू तो....."

"मैं पूछती हूँ, तुम्हें क्यों नहीं नींद आयी?"--कहते हुए वह उठकर बैठ गयी और अपनी चारपाई को छोड़ चरणदास की चारपाई पर आकर, उसकी रजाई में अपने घुटने देकर बोली--"हाँ, बताओ न, क्या बात है!" और यह कहते हुए, उसने चरणदास के हाथ पर अपना गरम हाथ रख दिया और उसे पकड़ लिया। उसी अवस्था में उसने कहा--"सुनते हो, इस अन्धेरे में, मैं तुम्हारा मुँह तो नहीं देख पाती, आँखें भी नहीं, पर जो कुछ तुम्हारे दिल में उठा है, उसे मैं समझ सकती हूँ।" फिर आगे बढ़कर उसने चरणदास के कन्धे पर अपना मुँह रख दिया, और कहा---"उस दिन मैं भगतजी के घर गयी थी। उनके लड़के की बहू जब मुझे मट्ठा देने लगी, तो बोली---'अरी, तेरा आदमी तो ठीक है, तेरा बच्चा तो अच्छा है?' मैंने कहा--'जी, हाँ। दया है, आपकी।' तब उन्होंने कहा--'दया तो भगवान् की होती है, बहू! तू भगवान् को भजा कर। अपने आदमी की सेवा किया कर। तेरा वह ही भगवान् है'।" इतना कहते हुए फुलिया ने अपनी बाँह चरणदास के दूसरे कन्धे पर रख दी और वह एक प्रकार से उसकी छाती के पास पहुँचकर बोली--"सो, तुम तो मेरे भगवान् हो। जब मेरी जिन्दगी ही तुम्हारी बन चुकी, पाँच-पंचों ने मेरी बाँह तुम्हारे हाथों थमा दी, तो स्याह करो, चाहे सफेद, यह फुलिया तुम्हारी है, तुम्हारे ही चरणों की दासी है।"

इतना सुनकर, जैसे चरणदास चंचल हो उठा। उसने तुरन्त ही फुलिया को और अधिक अपने पास खींच लिया और उसका सिर अपनी छाती से लगाकर बोला--"नहीं, नहीं, कोई बात नहीं, फुलिया! मेरी रानी!"--और फिर अपना मुँह चारों ओर फैले हुए अन्धकार की ओर करके चरणदास बोला--"मैं सोचता हूँ, मेरे व्याह के लिए बाप ने जो दो सौ रुपये लिये, वह जरूर मुझे उतार देने चाहिए। चाचा होते, तो वह इन रुपयों को चुका देते। यह बोझ मेरे ऊपर न डालते। पर उन्हें तो जाना था, सो चले गये। रह गये हैं हम, सो, जिन्दगी के इस खेल में सभी-कुछ करना पड़ेगा। उधार लिया भी देना होगा, पेट भी भरना होगा और तू जो मेरी फूल-सी रानी बनकर आयी है, तुझे सजाने के लिए भी गहना-कपड़ा बनवाना होगा।"

फुलिया ने कहा--"मुझे छोड़ो। मेरी फिकर न करो। जिसका देना है, उसे दो। तुम हो, तो सब-कुछ है मेरे लिए।"

इतनी देर में चरणदास की चिलम का तम्बाकू जल गया। उसने हुक्का अपने पास से सरका दिया।

फुलिया की ओर देखकर बोला––"हाँ, फुलिया, यह ठीक है। जिसका देना है, उसे तो देना ही पड़ेगा। सब दूँगा मैं।"

लेकिन इतना उसने कह तो दिया, पर देने का साधन तो उसके पास नहीं था। उसमें जितनी शक्ति थी, उस सबको खर्च करके वह केवल पेट भर सकता था। अतएव, अपने सामने अवरुद्ध पथ पाकर, वह चिन्तित था, परेशान था। पर फुलिया परेशान न हो, यह भी वह चाहता था। इसलिए, अपनी कठिनाई को व्यक्त करना भी उसे अच्छा नहीं लगता था। उसने कहा––"अच्छा, अब सो जा, फुलिया! सुबह हाथ में ली हुई इन जूतियों को पूरी कर दूँगा। कल से और अधिक काम किया करूँगा। इस महीने में कुछ दे दूँगा।"

फुलिया ने कहा––"मैं घास बेचूँगी। एक रुपया रोज ले आया करूँगी।"

"नहीं, फुलिया! यह ठीक न होगा, नहीं बेच सकेगी।" आतुर बनकर चरणदास ने कहा।

फुलिया बोली––"मेहनत में क्या बुराई है? और भी मेहनत करती हैं। मैं उन्हींके साथ जाऊँगी।"

यह सुनकर, चरणदास ने उत्तर नहीं दिया। मानों उसने परोक्ष भाव से फुलिया की बात को स्वीकार कर लिया।

(२)

नहीं कहा जा सकता कि किस संस्कारवश चरणदास जितना अपने शरीर से हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था, उतना ही नम्र था। वह गाँव के मन्दिर पर तो नहीं चढ़ सकता था, पर उस मन्दिर के नीचे बैठकर, सुबह-शाम के झुटपुटे में अवश्य ही लोग उसे आँखें मूँदें, होंठ फड़फड़ाते हुए, ईश्वर-भजन करता पाते। उसकी स्त्री फुलिया भी मन्दिर के नीचे लोटा भर जल अर्घ्य देती। जो भी उस छोटे-से परिवार से सम्पर्क रखनेवाले थे, वे कहते, चरणदास की बहू क्या आयी, लक्ष्मी आयी है। और यह कहना उन्हें इसलिए भी ठीक लगता कि व्याह के बाद से चरणदास पूरा मेहनती बन गया। पहले वह बहुत कम काम करता था। सैलानी बना फिरता था। लड़ाई-झगड़े भी करता था। परन्तु बहू ने उसे आते ही ऐसे रास्ते पर डाला कि मानों कोल्हू का बैल बन गया। इसीसे कभी-कभी चरणदास का मजाक भी उड़ाया जाता। उससे कहा जाता, "किसी को जोरू का गुलाम देखना हो, तो तुझे देखे चरणदास!"

चरणदास यह सुनता, तो मुस्कुरा देता। कभी हँस भी देता।

परन्तु उस दिन जब शाम को बाजार से लौटकर फुलिया उसके पास आकर बैठी, तो वह मुँह से कुछ कहे बगैर ही, उसके घुटनों पर सिर रख, फूट-फूटकर रोने लगी। चरणदास ने यह देखा, तो उसका माथा ठनका। हाथ का काम छूट गया। अपनी उस आतुर अवस्था में ही उसने पूछा––"क्या.... क्या हुआ री, फुलिया!"

रोते हुए फुलिया ने कहा––"वह जमींदार का लड़का ....वह...."

"हाँ, हाँ, वह जमींदार का लड़का, मलखान! तब? क्या हुआ?"

फुलिया ने कहा––"आज वह जंगल में खेत की मेड़ पर मिला। कहता था, तू बड़ी अच्छी है, तू..."

"मलखान कहता था....हूँ!" एकाएक चरणदास के माथे पर बल पड़ गये। उसका खून खौल उठा। उसके सामने तेज धारवाला हँसिया पड़ा था, उसके कठोर और मजबूत हाथों ने उसे उठा लिया। अपनी तेज और रक्तपूर्ण आँखों से फुलिया की ओर देखकर बोला–– "तो मलखान कहता था, ...अच्छा!" वह खड़ा हो गया। हँसिया कसकर उसने हाथ में पकड़ लिया। हाय! उस समय वह कैसा कठोर था, कैसा भयावह! शायद उससे पूर्व फुलिया ने पति का यह रूप नहीं देखा था। यह देखते ही, फुलिया की देह का रोयाँ-रोयाँ खड़ा हो गया। उसने काँपते हुए आगे बढ़कर, चरणदास के पैरों को पकड़ लिया और कहा––"तुम्हें मेरी कसम....मेरे सिर की..."

"फुलिया! उसकी जुबान काट लूँगा। उसे बता दूँगा कि फुलिया चरणदास की स्त्री है। किसीकी स्त्री को छेड़ना कितना बुरा है, आज मैं उसे ऐसा सबक भी सिखा दूँगा।"

लेकिन फुलिया ने कसकर चरणदास के पैर पकड़ लिये। उसने कहा––"तुम मेरी ओर देखो, मेरी ओर!" वह फिर बोली––"तुम जानते हो, तुम्हारी फुलिया जिन्दा नहीं रहेगी। यह मर जायेगी! कोई भी देखेगा, तो कहेगा कि इस औरत ने अपने भले पति को जानवर बना दिया....भेड़िया!"

परन्तु चरणदास तब भी कठोर था। वह घूर-घूरकर दरवाजे की ओर देख रहा था। उसी अवस्था में उसने कहा––"यह तो एक नारी के अपमान की बात है, फुलिया! गरीबी के अपमान की बात!" उसने फुलिया की ओर देखकर कहा––"तू गरीब थी, घास खोदने गयी थी, इसीलिए तो उस हरामजादे ने तेरे सतीत्व पर निगाह डालने की हिम्मत की।

पर फुलिया अपनी बात पर दृढ़ थी, चरणदास अपनी पर। फुलिया ने कहा––"गरीब होना भी पाप है। यह क्या अच्छा है!"

"होगा! मैं नहीं मानता। मैं किसीसे दान नहीं लेता।"

"स्त्री होना भी पाप है!" फुलिया ने फिर कहा–– "एक मैं ही तो नहीं हूँ। जाने कितनी स्त्रियाँ ठगी जाती हैं। नीच जाति की हूँ न मैं, इसीसे तो समझा होगा उस मलखान ने कि यह हाथ आ जायगी। कमी तो हमारे अन्दर है। उसका क्या दोष? जो देखा उसने, वही किया।" और वह उस समय भी अपने आँसू बहाती हुई और उन्हें चरणदास के पैरों पर ढुलकाती हुई बोली––

"ऐसा एक मुझसे ही थोड़े कहा है, आज! जाने कितनी औरतों से कहा होगा। जाने कितनों को ठगा होगा। इस लघुता और गरीबी का फायदा जाने कितनों ने उठाया है।"

उस समय, सचमुच ही, चरणदास के हृदय में जो आग जल रही थी, उसकी लपटों से निश्चय रूप से उसका शरीर जल उठा था। जिस मलखान की बात फुलिया ने कही, उस मलखान को बलिष्ट चरणदास का एक हाथ ही उठाकर पटकने में समर्थ था। गाँव भर में एक चरणदास ही ऐसा था कि जो सुन्दर, जवान और बलवान समझा जाता था। अवश्य ही वह पहलवान नहीं था पर किसी भी अच्छे पहलवान से उसका शरीर कम नहीं लगता था। गाँव के लोगों को चरणदास के क्रोध का भी पता था। उस बार जब चमारों और राजपूतों में लड़ाई हुई, तो अकेले चरणदास ने बिना लाठी उठाये, कई व्यक्तियों को पटका और उनकी लाठियों को छीनकर तोड़ दिया था। कई बार वह काँटे की तरह गाँव के व्यक्तियों की आँखों में खटका। परन्तु, प्रश्न इतना ही था कि अगर उसे पुलिस के हवाले किया जाता, तो किस जुर्म में? और फिर जेल कराने पर जब वह जेल से छूटकर आयगा, तो उन लोगों से अवश्य बदला लेगा। इस बात का भी उन्हें भय था। इसीलिए ऐसा करना उनकी शक्ति के बाहर था। परन्तु उस समय तो, स्वयं उसीकी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान की भावना का प्रश्न था। फुलिया उसकी स्त्री थी। वह उसकी नाक थी, उसकी जिन्दगी थी। जब फुलिया के सतीत्व पर जमींदार के लड़के ने निगाह डाली, तो भला चरणदास भी कैसे चैन से बैठ सकता था? वह कैसे शान्त रह सकता था? उसने फिर सोचा कि अवश्य उसे मलखान के पास जाना चाहिए, उससे पूछना चाहिए, और आगे फिर कभी वह किसी नारी की ओर अपनी आँख न उठाये, ऐसा सबक भी उसे सिखाना चाहिए। अतएव चरणदास उसके पास जाने के लिए फिर चंचल हो उठा। परन्तु जिस समय फुलिया ने कहा, कि यह कमी तो हमारी है, हमारी गरीबी की है, तो सचमुच ही, जैसे चरणदास के हृदय में जलती हुई आग पर किसीने घड़ा भर पानी उड़ेल दिया। वह चारपाई पर बैठ गया। वह तेज धारवाला हँसिया उसके हाथों से छूट गया। उसने हथेली पर मुँह रख लिया, और सोचने लगा, हाँ, पाप तो हमारा है.... हमारी गरीबी का।

निश्चय ही, चरणदास के जीवन का वह एक ऐसा क्षण था कि जब वह उस जिन्दगी की वास्तविकता को समझ लेना चाहता था। अब तक वह आगे ही देखता आया था, किन्तु उस समय उसे दीखा कि वह अपने पीछे जितना पथ छोड़ आया है और उस जिन्दगी के पार जिस रास्ते को तय कर आया है, वह सभी——जैसे कलंक बन गया उसकी दृष्टि में। अशिक्षित चरणदास भला इतना कैसे जान सकता था कि देश की पिछली पीढ़ियों ने जो पाप किया, उसीका फल उसको और उसकी पत्नी फुलिया जैसों को भोगना पड़ रहा है। परन्तु आज जब स्वयं फुलिया ने ही उसके दबे हुए मर्म को खुरच दिया, जब उसे इतना कह दिया कि दोष उन्हींका है——स्वयं अपना; तो सचमुच चरणदास नितान्त उदास और अज्ञेय बन गया। वह नहीं समझ सका कि वह क्या करे। कुछ क्षण पूर्व, उसके मानस में जो आँधी उठी थी, जो भभूका उठा था, उससे प्रभावित होकर तो उसके मन में आया कि जाते ही मलखान की गर्दन पकड़ लेगा और उसकी छाती पर बैठकर कहेगा, 'शैतान के बच्चे, अब बता तू...' वह उसकी नाक काट देगा वह उसकी गर्दन भी उड़ा देगा।

किन्तु कुछ ही देर बाद उसकी मनःस्थिति ऐसी हो गयी कि अगर स्वयं मलखान उसके पास आये, उसे मारे या कोई अपशब्द कहे, तो भी शायद चरणदास गर्दन झुकाकर उसे भी बरदाश्त कर लेगा। इसी कारण वह विह्वल हो उठा।

उसी समय, पड़ोस के एक वृद्ध ने आकर कहा——"अरे, चरणदास! दीये जल गये और तुम अभी तक मन्दिर के सामने माथा टेकने नहीं गये।"

यह सुनकर भी चरणदास ने एकाएक कुछ उत्तर नहीं दिया। उसे ऐसा लगा कि मानों मन्दिर का देवता——वह पत्थर——भी निरा अशक्त है। वह भी निर्बल का सहायक नहीं, उसे भी चरणदास की परवा नहीं। वह देवता है! मौन है।

वृद्ध ने फिर कहा——"चरणदास....."

चरणदास ने कहा——"हूँ!"

"कैसे बैठे हो, चुपचाप? दीया भी नहीं जलाया। क्या बहू नहीं आई अभी? आओ, मन्दिर में चलो। तुमने ही तो मुझे मन्दिर जाने को कहा और मेरे अन्दर भक्ति का भाव पैदा किया। मुझे तुम्हींने सुख का रास्ता दिखाया, और अब तुम ही....."

सुनकर चरणदास ने फिर कहा——"हूँ।"

"सच कहता हूँ, मन्दिर के द्वार पर जाकर तो मैं ऐसा पाता हूँ कि मैं छोटा नहीं। देवता बड़ा हो सकता है, पर इन्सान मुझसे बड़ा नहीं... बड़ी जाति वाला भी नहीं।"

एकाएक चरणदास ने पूछा——"ऐसा कब से? क्यों?"

वृद्ध ने कहा——"न जाने क्यों, चरणदास! अपने आप ही, यह ज्ञान हो रहा है। नहीं तो, मैं जन्म भर चमार ही रहा.....अपने-आपको छोटा ही मानता रहा। पर अब तो केवल देवता का ही सहारा है। जब सब देवता से कुछ माँगते हैं, तो मैं भी उससे प्रार्थना करता हूँ। पर तुम आज कैसे नहीं गये?"

चरणदास ने कहा——"कुछ नहीं, कोई बात नहीं।"

"तो आओ, मन्दिर में चलें। दिन भर तो आटे-दाल की फिकर में बीत गया, अब तो इस समय देवता के सामने जायें, उससे प्रार्थना करें कि वह हमें बुद्धि दे, हमें शान्ति दे।"

"तो सचमुच, तुम्हें शान्ति मिलती है, सुख मिलता है, बाबा?"

"हाँ, भैया चरणदास! बड़ा सुख मिलता है। सचमुच लगता है कि जैसे मेरे काले और अँधेरे हृदय में उजियाला हो गया है। मुझे सब मनुष्य भी भाई भाई लगते हैं। कोई बड़ा-छोटा नहीं लगता। कोई बुरा नहीं लगता, किसीसे द्वेष नहीं रहा। सब भगवान् के प्यारे लगते हैं।"

उसी समय, जाने किस भावना से भरकर चरणदास खड़ा हो गया। उसने फुलिया से भी मन्दिर में चलने के लिए कहा। उसका बच्चा सो रहा था। अतएव फुलिया ने भी चलना स्वीकार कर लिया। विशेषकर उस समय इसलिए भी कि चरणदास के ऊपर उसे उन क्षणों में भरोसा नहीं था। उसे भय था कि वह जाने क्या कर बैठे। कहाँ किस ओर अपने पैरों को बढ़ा ले जाये। निदान, वह साथ हो ली। जब वह दोनों वृद्ध के साथ, मन्दिर की ओर गये और वहाँ जाकर दूर से देवता को हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे तो उसी समय, फुलिया को यह देखकर अचरज हुआ कि हाथ जोड़े हुए और आँख मूँदे हुए चरणदास अविरल अश्रुधारा बहा रहा है। आँसुओं का प्रवाह उसके गालों पर आ गया है। देर तक यह देखने के बाद फुलिया से नहीं रुका गया। आगे बढ़कर, उसने अपने दुपट्टे के पल्ले से उन आँसुओं को पोंछ दिया और मन्दिर की प्रतिमा की ओर देख, स्वयं भी रोते हुए कहा--"मेरे देवता!"

उसी समय चरणदास ने अपनी आँखें खोल दीं। उसने फुलिया की ओर देखकर कहा--"सचमुच, आज मुझे भी सुख मिला। आज मुझे भी यह दीखा कि मैं छोटा नहीं, मैं हीन नहीं, फुलिया! मैं आदमी हूँ, मैं छोटा हूँ तो बड़ा भी हूँ।"

फुलिया ने कहा--"आओ, अब चलें घर।"

लेकिन चरणदास ने कहा--"घर अभी नहीं।" और वह फुलिया को साथ ले, जमींदार के घर की ओर चल दिया।

फुलिया अचरज में थी, इसीसे पूछ बैठी--"कहाँ? किस ओर?"

"आओ, तुम चली आओ, फुलिया!" और जब इतने में जमींदार का घर आया, तो वह वहीं उसकी बैठक पर रुककर बोला--"ठहर, फुलिया, ठहर!"

लेकिन फुलिया का तो दिल धड़क रहा था। उसकी आँखों में उद्वेग और वेदना का भाव भी जग आया था। वह कुछ कहती, पर उसका मुँह सूख गया। उससे बोला नहीं गया।

चरणदास आगे बढ़कर, बैठकखाने पर चढ़ गया। वहाँ अनेक व्यक्ति थे। जमींदार था, उसका लड़का मलखान था। चरणदास को देखते ही, जमींदार ने कहा--"आओ, चरणदास।"

चरणदास बोला--"मुझे आपसे कुछ कहना है।"

"कहो, तुम्हें क्या कहना है, चरणदास।"

चरणदास ने कहा--"आज मेरी स्त्री को तुम्हारे लड़के ने छेड़ा। जब सुना, तो मैंने सोचा, मैं वही काम करूँ, जो दुनिया करती आई है। अब तक करती रही है। पर अभी देवता के सामने जाकर वह सोचना तो मैंने छोड़ दिया, अब तो मैं यह पूछने आया हूँ कि अगर तुम्हारे लड़के को यह विश्वास हो कि मेरी स्त्री इसके साथ रहना चाहती है और यह रख सकता है, तो मैं खुशी से अपनी स्त्री को छोड़ सकता हूँ.....अगर ऐसा नहीं, तो मैं आदमीयत के नाते यह पूछना चाहता हूँ कि क्या किसीकी, किसी गरीब की, बहू-बेटी को छेड़ना अच्छा है? छोटी जाति को इस प्रकार सताना क्या भला है?"

जमींदार ने यह सुना, तो जैसे उसके मुँह पर कालिख का पोता फिर गया। उससे एकाएक कुछ नहीं कहा गया। लेकिन उसी समय देखा कि जमींदार का लड़का, मलखानसिंह, उठकर आगे आया और चरणदास के पैरों पर झुककर बोला--"मैं क्षमा माँगता हूँ, चरणदास!"

चरणदास ने उसे ऊपर उठाकर कहा--"इसकी जरूरत नहीं, मलखानसिंह! तुमने मुझसे कुछ नहीं कहा, मेरी स्त्री से कहा। अब भी उसीसे कहो। वह खड़ी है।"

मलखान उसी ओर बढ़ गया और बोला--"बहिन!"

फुलिया ने कहा--"भाई....."

(३)

चरणदास के जीवन में वह अवसर भी आ गया कि जब उसने अपने पिता का ऋण भी उतार दिया, और खुशहाल हो गया। इतना ही नहीं, वह इज्जत की निगाह से देखा जाने लगा। एक बार जमींदार का लड़का मलखान बीमार पड़ा और उसके इलाज के लिए डाक्टर ने मनुष्य का खून माँगा। कोई अपना खून नहीं दे रहा था, पर उस समय चरणदास ने ही आगे बढ़कर अपना खून दिया। जब जमींदार ने उसके प्रति आभार प्रदर्शित किया, तो उस चरणदास ने नितान्त नम्र बनकर कहा--"इसकी आवश्यकता नहीं है। वह मनुष्य ही क्या, जो मनुष्य के लिए कुछ न कर सके। मुझे तो आपसे इतना ही कहना है कि सभी ईश्वर के बन्दे हैं, ऊँच-नीच कोई नहीं, इतना आप समझिए, और औरों को भी समझाइये।"

इसी प्रकार कई घटनाएँ ऐसी घटीं, जब चरणदास ने अपनी दयालुता का, मानवता का और सहृदयता का परिचय दिया। इन बातों से वह गाँव का एक विशिष्ट व्यक्ति माना जाने लगा। गाँव में कोई झगड़ा होता, वह भक्त चरणदास के द्वार पर जाकर ही तय किया जाता। अदालत के पेचीदा झगड़ों को भी भक्त चरणदास आसानी से सुलझा देता। इसमें क्या रहस्य था, कौन-सा जादू था, इतना तो कोई नहीं समझ सका, पर यह सभी ने समझा कि चरणदास न केवल भगवान् का भक्त है, वह जनता का भी एक सेवक है। कदाचित् इसीसे वह 'भक्त चरणदास' कहलाया जाने लगा।

पंडित मोतीलाल नेहरू : एक महान् व्यक्तित्व

श्री विश्वम्भरनाथ पांडे

अध्यक्ष—नेहरू शताब्दी महोत्सव प्रकाशन समिति

महापुरुषों की त्रिमूर्ति

सन् १८६१ का वर्ष, ठीक एक शताब्दी पहले की बात ! भारत के भाग्य-गगन में तीन जगमगाते नक्षत्र अवतरित हुए। तीन महापुरुषों ने जन्म लिया। ६ मई १८६१ को त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू ने, ८ मई को विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने और २५ दिसम्बर, क्रिसमस के दिन, महामना पंडित मदन मोहन मालवीय ने। तीनों ने अपनी अद्भुत प्रतिभा और शालीनता से, पराधीनता की ग्लानि से विक्षुब्ध, भारत-माता के मस्तक पर गौरव और गरिमा का तिलक लगाया। ऐसा प्रतीत होता है मानों सन् १८५७ की पराजय से मर्माहत भारत जननी ने अपने समस्त शौर्य, श्री और शुचिता को केन्द्रीभूत कर इस रत्न-त्रयी को जन्म दिया।

त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू यदि गगनचुम्बी हिमालय के समान विशाल थे तो विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर सीमाहीन आकाश के समान अनन्त थे और महामना पंडित मदन मोहन मालवीय अथाह महासागर के समान गम्भीर थे। जन्म क्रम के अनुसार पंडित मोतीलाल नेहरू महापुरुषों की इस त्रिमूर्ति में अग्रज थे। छः मई के दिन उनकी जन्मशती तिथि पर स्वाधीनता संग्राम के महान् योद्धा, त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू को भारत के कोटि-कोटि नर-नारी आदर और श्रद्धा के साथ शतशत प्रणाम कर रहे हैं।

नेहरू खानदान के पूर्वज

३ जुलाई सन् १९१६ को अपना वंश-परिचय देते हुए स्वयं पंडित मोतीलाल नेहरू ने लिखा था :—

"हमारे परिवार का कोई लिखित इतिहास नहीं है। सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में सभी पुराने कागज और दस्तावेज नष्ट हो गए। परिवार के बुजुर्गों में मेरे बड़े भाई पंडित बंशीधर नेहरू (१९१६में) जीवित हैं। वे ६८ वर्ष के हैं। १३ वर्ष पूर्व इस प्रदेश के प्रथम श्रेणी के सबार्डिनेट जज के पद से उन्होंने अवकाश लिया था। पारिवारिक परम्परा से प्राप्त हमारे खानदान के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में उन्होंने जो सूचना दी है उसीके आधार पर मैं यह वंश-परिचय दे रहा हूँ।

"मेरे पितामह के प्रपितामह पंडित राजकौल संस्कृत और फारसी के बहुत बड़े विद्वान् थे। कश्मीर में उनका बड़ा मान-सम्मान था। सम्राट फर्रुखसियर जब कश्मीर गये तो उन्होंने पंडित राजकौल की विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा सुनी। सम्राट् के निमंत्रण पर हमारे पूर्वज पंडित राजकौल सन् १७१६ के लगभग दिल्ली में बसने के लिए चले आये। सम्राट् ने गुजारे के लिए उन्हें कु... गाँवों की जागीर और शहर के बीच से बहनेवाली नहर सआदत खाँ के किनारे बनी हुई एक हवेली अता फरमाई। नहर के किनारे रहने के कारण हमारा खानदान कौल नेहरू कहलाने लगा। समय के प्रवाह में कौल शब्द उ... गया और खानदान के लोग नेहरू सरनाम का ही प्रयोग करने लगे।

सम्राट् फर्रुखसियर के कत्ल के बाद—"दिल्ली के तख्त और बादशाहत की डांवाडोल स्थिति के कारण हमारे खानदान को भी जो उतार-चढ़ाव देखने पड़े उनका कोई निश्चित ब्योरा नहीं मिलता। केवल एक ही बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि खानदानी जागीर की हैसियत घटकर जमींदारी की रह गयी और उसके अन्तिम हकदार हमारे प्रपितामह पंडित मौसाराम नेहरू और उनके अनुज पंडित साहबराम नेहरू हुए।

"मेरे पितामह पंडित लक्ष्मीनारायण नेहरू दिल्ली में 'सरकार कम्पनी' के शाही दरबार के प्रथम वकील थे। मेरे पिता पंडित गंगाधर नेहरू सन् १८५७ के विद्रोह के कुछ समय पूर्व दिल्ली शहर के कोतवाल थे। सन् १८६१ में मेरे जन्म से लगभग तीन मास पूर्व केवल ३४ वर्ष की अल्पायु में ही मेरे पिता पंडित गंगाधर नेहरू की अचानक मृत्यु हो गयी।

"मेरी ननिहाल के लोगों में मेरे पड़नाना समरू बेगम के दीवान थे। मेरे नाना पंडित शंकरनाथ जुत्शी दिल्ली के प्रसिद्ध कवि, साहित्यकार और विद्वान् थे। सर सय्यद अहमद ने अपनी पुस्तक 'असरा-उस्-सनादीद' (पृष्ठ १२... में उनका जिक्र किया है।

मोतीलाल नेहरू : जन्म और शिक्षा-दीक्षा

"अपने भाइयों में मैं सबसे छोटा था। मेरे सबसे बड़े भाई, जिनकी चर्चा मैं ऊपर कर चुका हूँ, पंडित बंशीधर नेहरू थे। अवकाश प्राप्त करने के बाद इस समय वे मथुरा में रह रहे हैं। मेरे मँझले भाई पंडित नन्दलाल नेहरू ने लगभग दस वर्ष तक खेतड़ी (राजस्थान) में दीवान के पद पर बड़ी सफलता के साथ काम किया। ब्रिटिश सरकार के ठगी और डकैती उन्मूलन विभाग को उन्होंने बड़ी सहायता पहुँचाई। इस पर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कई प्रशंसात्मक सनदें और खरीते अता किये। राजा की मृत्यु के बाद भाई नन्दलाल नेहरू इलाहाबाद चले आये और वकालत की परीक्षा पास करके हाईकोर्ट में वकालत

करने लगे। उनकी गणना शीघ्र ही सर्वोच्च वकीलों में होने लगी। भरी जवानी में सन् १८८७ में सहसा उनकी मृत्यु हो गयी।

६ मई सन् १८६१ को आगरे में मेरा जन्म हुआ। घर में प्रारम्भिक अरबी फारसी की शिक्षा के पश्चात् मैंने गवर्नमेंट हाई स्कूल कानपुर और म्योर सेंट्रल कालेज इलाहाबाद में शिक्षा पायी। सन् १८८३ में इलाहाबाद हाईकोर्ट के वकीलों की सूची में मेरा नाम दर्ज किया गया और जनवरी सन् १८९६ में चीफ जस्टिस और हाईकोर्ट के अन्य जजों के सर्वसम्मत प्रस्ताव द्वारा मुझे एडवोकेट की श्रेणी में दाखिल किया गया। अगस्त सन् १९०९ में सम्राट् की प्रीवी कौंसिल की जुडीशल कमेटी के इजलास में मुझे वकालत करने की अनुमति प्रदान की गयी। दिसम्बर सन् १९०९ में ही इलाहाबाद डिवीजन के मतदाताओं द्वारा म यू० पी० लेजेस्लेटिव कौंसिल का प्रतिनिधि चुना गया।"

३-७-१९१६   (हस्ताक्षर) मोतीलाल नेहरू

वकालत : नाम और यश

युवक वकील पंडित मोतीलाल नेहरू ने कानपुर की जिला अदालत से अपनी वकालत प्रारम्भ की। केवल तीन वर्षों की प्रैक्टिस के बाद उनकी गणना कानपुर के श्रेष्ठ वकीलों में होने लगी। जो पहला मुकदमा उन्होंने हाथ में लिया उसीसे उनकी धाक जम गयी। डिस्ट्रिक जज ने अपने फसले में पंडित मोतीलाल नेहरू की प्रशंसा करते हुए लिखा :—

"पंडित मोतीलाल नेहरू ने जिस खूबी के साथ अभियुक्त की वकालत की वह तारीफ के काबिल है। अभियुक्त के खिलाफ सात इल्जाम थे और पंडित मोतीलालजी ने उसे सातों इलज़ामों से बरी कर लिया। बड़े से बड़े वकील के लिए यह काफी कठिन काम था। पंडित मोतीलालजी ने मामले के हर पहलू का बारीकी से अध्ययन किया, मुकदम की ब्योरेवार छानबीन की, अत्यन्त योग्यता के साथ अपने मुवक्किल के बचाव के लिए तर्कपूर्ण दलीलें दीं और प्रत्येक आपत्ति का कानूनी निराकरण किया। अपने पहले मुकदमे को जिस विद्वता के साथ उन्होंने पेश किया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।"

कानपुर बार के नेता उस समय स्वर्गीय पंडित पृथ्वीनाथ थे। वे युवक मोतीलाल की कानूनी प्रतिभा तथा उच्च आकांक्षाओं से बेहद प्रभावित हुए। पंडित मोतीलालजी उनका बड़ा आदर करते थे। एक दिन पंडित पृथ्वीनाथ ने पंडित मोतीलाल को परामर्श दिया—"कानपुर की जिला अदालत का परिमित क्षेत्र तुम्हारी कानूनी प्रतिभा के विकास के लिए काफी नहीं है। तुम्हें इलाहाबाद जाकर हाईकोर्ट म वकालत करनी चाहिए।" पंडित मोतीलाल जी को यह सलाह बहुत पसन्द आयी। शीघ्र ही प्रयाग आकर, ९ नम्बर एलगिन रोड में अपना दफ्तर खोलकर उन्होंने हाईकोर्ट में वकालत प्रारम्भ कर दी।

भवितव्यता की बात कि जिस साल उन्होंने इलाहाबाद में वकालत प्रारम्भ की उसी वर्ष, यानी सन् १८८७ में, उनके बड़े भाई पंडित नन्दलाल नेहरू की मृत्यु हो गयी। भाई की मृत्यु के बाद परिवार का सारा भार पंडित मोतीलाल नेहरू के कन्धों पर आ पड़ा। लेकिन जितनी जिम्मेदारी आयी उतने ही दृढ़ निश्चय और अध्यवसाय के साथ वे सर्वोच्च वकील बनने के प्रयत्न में जुट गये।

दिग्गज वकील के रूप में

पंडित मोतीलाल नेहरू हर मुकदमे की गहराई के साथ छानबीन करते थे। मुकदमें की मिसिल का अत्यन्त परिश्रम के साथ अध्ययन करते थे। तथ्यों और कानूनी नुक्तों, दोनों को वे एक सा महत्त्व देते थे। अपने पक्ष की कमजोरी और विरोधी पक्ष के मजबूत नुक्तों पर वे पहले विचार करते थे। उनके विरुद्ध अकाट्य और दिल पर असर करनेवाली दलील ढूंढ़ते थे। अपनी विलक्षण और अनोखी सूझबूझ के साथ बहस में अपने पक्ष को इतने ओजपूर्ण ढंग से पेश करते थे कि न्यायाधीश पक्ष में फैसला देने को विवश हो जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९१० के लगभग देश के ऊँचे से ऊँचे दिग्गज वकीलों में उनकी गणना होने लगी। मोतीलालजी कहा करते थे—"एक मूख वकील भी मजबूत मुकदमे में वहस कर सकता है लेकिन कमजोर मुकदमा लड़ने के लिए बहुत बड़ी योग्यता की जरूरत है।"

अमेठी राज के मुकदमे में सफलता के कारण अवध के लगभग सभी ताल्लुकेदार पंडितजी के मुवक्किल बन गय। लखना राज का मुकदमा भी उन्होंने बड़े परिश्रम से लड़ा। वह मुकदमा प्रीवी कौंसिल तक गया। अगस्त १९२१ में पटने के अँगरेजी दैनिक 'सर्चलाइट' पर जब अदालत की मानहानि का मुकदमा चला तो पंडित मोतीलाल नेहरू ने उसमें 'सर्चलाइट' की ओर से बहस की। उस मुकदमें में सर तेजबहादुर सप्रू उनके सहायक वकील थे। पाँच न्यायाधीशों के इजलास ने, जिसमें चीफ जस्टिस सर कर्टनी टेरेल मुख्य न्यायाधीश थे, मानहानि के उस मुकदमे को सुना। उस मुकदमे का राजनीतिक महत्त्व था। उसमें पंडित मोतीलाल ने इतनी विद्वता, चतुराई, खूबी और मनमोहक ढंग से बहस की कि चीफ जस्टिस के मन पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। यद्यपि सम्पादक के ऊपर जुरमाना हुआ तथापि चीफ जस्टिस पंडित मोतीलाल की विद्वत्ता का इतना कायल हुआ कि कहा जाता है कि उसने दरभंगा के महाराजाधिराज सर रामेश्वर सिंह को निजी तौर पर सलाह दी कि वह आगरा में चलने वाले दीवानी के एक बहुत बड़े मुकदमें में पंडित मोतीलाल को अपना वकील बनाएँ। पंडित मोतीलाल ने महाराजा दरभंगा के इस लम्बे मुकदमे में महीनों बहस की।

इस एक मुकदमे में उन्हें लाखों रुपये फीस मिली। डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा के अनुसार पंडित मोतीलाल नेहरू का सबसे अधिक फीस का मुकदमा यही था। (हिन्दुस्तान रिव्यू नवम्बर १९३६)

महाराजा डुमराँव के मुकदमे में वादी के वकील पंडित मोतीलाल नेहरू थे और प्रतिवादी की ओर से देशबन्धु चित्तरंजन दास। सन् १९२९ में पंडित मोतीलाल नेहरू ने जिन दो अत्यन्त प्रसिद्ध मुकदमों में बहस की वे थे बनारस में कायस्थ पाठशाला का मुकदमा और इन्दौर में रावराजा सर हुकुमचन्द सेठ का मुकदमा।

मार्शल ला के बन्दियों की अपील

जलियानवाला बाग के हत्याकांड के बाद पंजाब में मार्शल ला के जो मुकदमे चले उनमें सेशन्स के कई मुकदमों में पंडित मोतीलालजी ने बहस की। अमृतसर में मार्शल ला षड़यन्त्र केस के अभियुक्त रतनचन्द और बग्गा चौधरी की अपील खारिज करके जब उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई तो पंडित मोतीलालजी ने बड़े रोष और दुख के साथ जवाहरलालजी के नाम अपने २५ फरवरी सन् १९२० के एक पत्र में लिखा--"मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि रतनचन्द और बग्गा इस मामले में उतने ही बेकुसूर हैं जितनी इन्दु (इन्दिरा गांधी)। पंजाब का हर आदमी, सरकारी और गैर-सरकारी यह बात जानता है, फिर भी उन्हें फाँसी लगेगी। देश में नित्य होने वाले लाखों अन्यायों में से यह एक है।"

पंडित मोतीलालजी ने प्रीवी कौंसिल में दोनों अभियुक्तों की अपील दायर की। नवम्बर सन् १९२४ में जब इस अपील का फैसला हुआ तो उस पर टिप्पणी करते हुए महात्मा गांधी ने ११ दिसम्बर सन् १९२४ के 'यंग-इंडिया' में लिखा था--"मार्शल ला के इन दोनों कैदियों की अपील पंडित मोतीलाल नेहरू ने प्रीवी कौंसिल में दायर की थी। यद्यपि मौत की सजा घटाकर आजन्म करावास की हो गई है तथापि यदि तथ्यों के ऊपर गौर किया जाता तो दोनों कैदियों को निर्दोष छोड़ दिया जाता।"

पंडित मोतीलालजी जब सन् १९२९ में कांग्रेस के सदर थे तो हजार रुपए रोज पर उन्होंने दस दिन तक आगरे में एक मुकदमे में बहस की। उसके बाद दस दिन की फीस के दस हजार रुपये उन्होंने आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के खजाने में जमा कर दिये।

जजों की श्रद्धांजलि

मोतीलालजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री इकबाल अहमद ने कहा था:--"पंडित मोतीलालजी की अपनी निराली शान थी। हाईकोर्ट में उनका अद्वितीय स्थान था। उनका कानूनी ज्ञान अगाध था। उनकी बहस चमत्कार-पूर्ण होती थी। उनकी जिरह तह से सच्चाई निकाल लाती थी। चाहे मौलिक दावा हो या अपील--वे दोनों की वकालत में एक समान कुशल थे। चाहे तथ्यों पर हो या कानूनी नुक्तों पर, उनकी बहस सुनकर तबियत फड़क उठती थी। वे एक दैवी-शक्ति-सम्पन्न दिग्गज वकील थे। वकालत के पेशे की मर्यादा को उन्होंने बहुत ऊँचा उठाया।" इलाहाबाद हाइकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मीयर्स ने इसी अवसर पर बोलते हुए कहा था:--"बार में पंडित मोतीलाल नेहरू के सहयोगी जिस गर्व और आदर के साथ उनकी चर्चा करते थे उसका मेरे मन पर बड़ा असर पड़ा। जब मुझे स्वयं उनसे मिलने का सम्मान प्राप्त हुआ तब मैं समझ गया कि लोग क्यों उनका इतना आदर करते हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। ज्ञान पर उनका सहज अधिकार था। एडवोकेट की हैसियत से वे अत्यन्त आकर्षक ढंग से अपना मामला पेश करते थे। मुकदमे की हर बात उनकी वर्णनशैली में उचित स्थान पर आती थी और जितना उचित होता था उतना ही उसपर वे जोर देते थे। सार्वजनिक वक्ता की हैसियत से उनकी आवाज में एक मिठास था और एक लोच थी। उनके कहने का ढंग इतना आकर्षक था कि बरबस चित्त को हर लेता था। लखना राज के मुकदमे में रानी किशोरी की ओर से जिस कुशलता के साथ उन्होंने मामले को रखा उसकी स्मृति बहुतों के दिमाग में ताजा होगी। संसार का कोई भी वकील उस मुकदमे की वकालत उससे बेहतर न कर पाता जो पंडित मोतीलाल नेहरू ने की।" (लीडर फरवरी ८, १९३१)।

ऐश्वर्य, वैभव और व्यक्तित्व

पंडित मोतीलाल नेहरू ने जिस शान के साथ लाखों रुपए कमाये, उसी शान के साथ लाखों रुपए खर्च किये। उनका आनन्दभवन ठाठ-बाट, वैभव और विलासिता का केन्द्र था। उनका आतिथ्य-सत्कार राजाओं, महाराजाओं के आतिथ्य-सत्कार को फीका कर देता था। लेफ्टिनेण्ट गवर्नर और उच्च अँगरेज अधिकारी आनन्द भवन की कीमती से कीमती और बढ़िया से बढ़िया विलायती शराबों के लिए लालायित रहते थे। अँगरेज नर्सें आनन्द भवन में बच्चों की देखभाल करती थीं। इस शताब्दी के प्रारम्भ में इलाहाबाद में सबसे पहली मोटर पंडित मोतीलाल नेहरू ने खरीदी। इलाहाबाद में जब बिजली नहीं थी तब भी अपने डायनेमो से आनन्द भवन बिजली की रोशनी से जगमगाता रहता था। हर दूसरे तीसरे वर्ष सपरिवार वे विलायत की सैर करने को जाते थे। सर से पैर तक वे अँगरेजी लिबास ही पहनते थे। उनके सूट इतने कीमती और बढ़िया होते थे कि यही प्रतीत होता था कि अभी अभी वे लन्दन की बांड स्ट्रीट के मशहूर दरजीखाने से सिलकर आये हैं।

सर राशबिहारी घोष पंडित मोतीलाल ही की तरह देश के प्रमुख वकीलों में से थे। अत्यन्त धनी

अपनी कमाई में से चालीस लाख रुपया उन्होंने दान दिया था। शान-शौकत से रहते थे। सूरत कांग्रेस के लिए उन्हींका नाम सभापति के पद के लिए प्रस्तावित हुआ था। एक बार ऐसा अवसर आया कि कलकत्ते में पंडित मोतीलाल नेहरू उनके मेहमान बननेवाले थे। जिस समय यह समाचार मिला महाराजा मैमन-सिंह और महाराजा कासिमबाजार इनके यहाँ बैठे हुए थे। सर राशबिहारी उनसे बोले—"मोतीलाल को मेरे घर में आराम न मिल सकेगा।" दोनों महाराजा हंसने लगे। उनकी हँसी में अविश्वास था। इस पर सर राशबिहारी बोले—"आप लोग नहीं जानते कि इलाहाबाद में मोतीलाल किस ठाठ-बाट, शान-शौकत और नफासत से रहते हैं। इसीलिए आप हँस रहे हैं।" (प्रवासी मार्च १९३१)।

पंडित मोतीलाल नेहरू का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावो-त्पादक था। जिस सभा में वे जाते सबकी निगाहें उन्हींकी ओर उठ जातीं। उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर जर्मन पत्रकार वलीजेल ने बर्लिन के दैनिक पत्र 'बर्लिनर तेजेबलेत' में दो कालम का उनका एक शब्द-चित्र प्रकाशित किया था। वलीजेल ने लिखा था :—

"भारत की आजादी के महान् नेता पंडित मोती-लाल नेहरू से मैंने रोम में भेंट की। लम्बा कद, इकहरी सुगठित देह, आकर्षक और सतेज आँखें, दृढ़ता का परिचय देनेवाली ठोड़ी, प्रतिभा के परिचायक पतले ओठ, वंशगत अभिमान की प्रतीक लम्बी और सुडौल नाक और निर्भीकता, तेजस्विता और अडिगता को प्रकट करनेवाला उन्नत मस्तक और इन सबकी एकरूपता के पीछे था—पंडित मोतीलाल नेहरू का प्रखर और आकर्षक व्यक्तित्व। वे खादी की धवल श्वेत चादर उसी प्रकार अपने कंधों पर डालते हैं जैसे प्राचीन रोमन लोग डालते थे। जब मैंने उन्हें देखा तो मुझे ऐसा लगा मानों इतिहास की चादर हटाकर कोई प्राचीन रोमन सम्राट् मेरे सामने खड़ा हो। मोतीलाल नेहरू ने जब अपना सुडौल दाहिना हाथ मेरे अभिवादन के लिए उठाया तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वे मुसोलिनी को इस बात का सबक सिखा सकते हैं कि ठीक ढंग से रोमन सलाम कैसे करना चाहिए। बड़े प्रेम से वे मुझसे मिले और इसके पूर्व कि मैं यह जान सकूँ कि वे किस स्वभाव के व्यक्ति हैं, उनकी तेजस्विता से भरी उपस्थिति और व्यवहार-चतुरता ने मेरे मन को हर लिया।"

समाज-सुधारक के रूप में

पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और नित्य नये वैज्ञानिक आविष्कारों ने उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में भारत पर भी अपनी युगान्तकारी छाप लगायी। भारत के नवयुवकों के मन में भी ज्ञान-विज्ञान की साधना की अभिलाषा जागी। राजा राम मोहन राय शिक्षा के क्षेत्र में भारत को आगे बढ़ाने की दागबेल डाल चुके थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर, महादेव गोविन्द रानाडे और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उनके प्रयत्न को आगे बढ़ा रहे थे। जमशेदजी नसरवान टाटा और जमशेद जी जीजीभाय, देश में औद्योगिक क्रान्ति के लक्षणों को भाँपकर उस दिशा में प्रयत्नशील हो गये थे। पुनर्जीवन का सन्देश देनेवाली सामाजिक क्रान्ति ने उत्तर प्रदेश में रहनेवाले प्रगतिशील कश्मीरी समाज को भी आलो-ड़ित किया। कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष बिशन नारायन दर पहले काश्मीरी थे जो ज्ञान की साधना में समुद्र पार कर विलायत गये। इस घटना ने कश्मीरी समाज के पुरातनपन्थियों को विक्षिप्त कर दिया। उन्होंने समुद्रयात्रा का घोर विरोध किया। पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में कश्मीरी नवयुवकों ने बिशननारायण का समर्थन किया। परिणामस्वरूप कश्मीरी समाज दो दलों में बँट गया। रूढ़िवादी दल का नाम था 'धर्म सभा' और नवयुवक दल का नाम था "बिशन सभा"। बिशन सभा के नेता थे पंडित मोतीलाल नेहरू और धर्मसभा के अगुआ थे स्वयं उनके बड़े भाई पंडित वंशीधर नेहरू। धर्मसभा ने पंडित बिशननारायण दर को जाति-च्युत कर दिया। इस पर बिशन सभा ने यह निश्चय किया कि बिशन सभा के सदस्यों के परिवारवाले चमार और मेहतर भाइयों के हाथ का पानी पी लेंगे किन्तु धर्मसभा के सदस्यों के हाथ का छुआ पानी न पियेंगे। इसी निर्णय के अनुसार पंडितजी ने अपने निजी भृत्य के रूप में चमार जाति के एक हरिजन को नियुक्त किया।

पंडित मोतीलाल नेहरू प्रारम्भ से ही स्त्री-शिक्षा और अछूतोद्धार के पक्ष में थे। जातीयता और साम्प्र-दायिकता के वे प्रबल शत्रु थे। सन् १९२९ में लाहौर में अखिल भारतीय जात-पाँत तोड़क सम्मेलन में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था :—"मेरी उम्र इस समय ६९ वर्ष की है। मैं जब १८ वर्ष का था अर्थात् सन् १८७९ में ही मैंने जात-पाँत के बन्धन तोड़ दिये थे। खानपान के बंधनों और छुआछूत पर तबसे ही मेरा विश्वास नहीं रहा। (माडर्न रिव्यु, मार्च, १९३१)।

स्त्री शिक्षा के पक्षपाती

पंडित मोतीलाल नेहरू सन् १९०९ से सन् १९१९ तक यू० पी० लेजेस्लेटिव कौंसिल के सदस्य रहे। हर साल सरकारी बजट के अवसर पर वे स्त्री-शिक्षा की मदों पर व्यय को बढ़ाने के लिए बढ़ौती के प्रस्ताव पेश करते थे। सन् १९१२-१३ के बजट में उन्होंने नीचे लिखे कामों के लिए लाख रुपया अनावर्तक और पन्द्रह हजार रुपया आवर्तक व्यय की बढ़ौती का प्रस्ताव रखा :—

(क) लड़कियों के लिए अतिरिक्त विद्यालय खोले जायँ,

(ख) महिला शिक्षकों के लिए ट्रेनिंग स्कूल खोले जायें, और

(ङ) मौजूदा कन्या विद्यालयों को और अधिक आर्थिक अनुदान दिये जायें।

बढ़ौती के इस प्रस्ताव पर बोलते हुए पंडितजी ने कहा—"स्त्री शिक्षा के विस्तार पर ही देश की वास्तविक प्रगति निर्भर करती है। लेकिन आज स्त्री-शिक्षा के नाम पर न आर्थिक अनुदान है, न महिला शिक्षक हैं और न विद्यार्थी बालिकाएँ हैं। प्रगतिशीलता का दंभ भरनेवाली ब्रिटिश सरकार का कर्त्तव्य है कि जिस देश पर वह राज करती है वहाँकी स्त्रियों की प्रगति करने में वह सहायता करे।" (यू० पी० गवर्नमेंट गजट, मार्च १५, १९१३, भाग, ३, पृष्ठ १६९)।

सन् १९१० में प्रांतीय समाज सुधार सम्मेलन के सभापति के पद से भाषण करते हुए उन्होंने कहा था—"क्या भारत अपनी भूतकालिक महानता पर गर्व अनुभव कर सकता है जब कि आज हमारे देश में हजार में केवल चार स्त्रियाँ और अट्ठारह पुरुष शिक्षित हैं! करोड़ों इंसानों को अछूत समझते हुए क्या हम इन्सानियत का दावा कर सकते हैं? समाज में पाँच वर्ष से कम आयु की लाखों विधवाओं के होते हुए क्या हम राम और कृष्ण के नाम लेने के अधिकारी हैं? समुद्र यात्रा को महान् पातक समझना क्या हमारी कूपमंडूकता की निशानी नहीं है? राजनीतिक स्वाधीनता के लिए आप अवश्य प्रयत्न करें किन्तु याद रखिए, अपनी सामाजिक अवस्था को उन्नत बनाये बिना आप देश का वास्तविक कल्याण नहीं कर सकते।"

स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्याय ने मार्च १९३१ के 'माडर्न रिव्यू' में लिखा था—"सन् १९२८ के कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्षीय पद से भाषण करते हुए पंडित मोतीलाल नेहरू ने जिस रचनात्मक कार्यक्रम का रेखाचित्र खींचा था वह वास्तव में समाजोन्नति का ही कार्यक्रम था।"

राजनीति में दिलचस्पी

वकालत के व्यवसाय में जब मजबूती के साथ पैर जम गये तो पंडित मोतीलाल ने राष्ट्रीय कामों में दिलचस्पी लेनी शुरू की। उस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही देशसेवा का निमित्त थी। पंडित मोतीलालजी ने सन् १८८८ और सन् १८९२ के कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशनों में सक्रिय भाग लिया। सन् १८९२ की कांग्रेस में तो वे स्वागतकारिणी समिति के पदाधिकारी भी थे। इसके बाद से तो हर साल वे कांग्रेस के अधिवेशनों में शामिल होते रहे। सन् १९०३ के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में वे १४ वर्ष के जवाहरलाल को भी साथ लेकर गये। सन् १९०६ की कलकत्ता कांग्रेस में पंडित मोतीलाल नेहरू ने यू० पी० के प्रतिनिधियों को नरमदल का साथ देने की अपील की। सन् १९०७ की सूरत कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष ने जब सर राशबिहारी घोष का नाम अध्यक्ष के पद के लिए प्रस्तावित किया तो पंडित मोतीलाल नेहरू ने सर राशबिहारी के नाम का समर्थन किया। इस पूरे समय में पंडित मोतीलाल नेहरू नरमदली राजनीति के समर्थक बने रहे। बंगभंग का आन्दोलन भी पंडित मोतीलाल की ब्रिटिश सरकार के प्रति दृढ़ आस्था को विचलित न कर सका।

नरमदली नेता

सन् १९०७ में पंडित मोतीलाल यू० पी० प्रान्तीय सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये। उनकी राजनैतिक सेवाओं की जनता द्वारा वह पहली स्वीकारोक्ति थी। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन तीव्रगति से प्रगति कर रहे थे। पंडितजी ने अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में इस सम्बन्ध में बोलते हुए कहा :—

"मैं मैंकडोनेल्ड के इस कथन से पूरी तरह सहमत हूँ कि ब्रिटिश सरकार ने प्लासी के युद्ध के बाद यदि कोई दूसरी सबसे बड़ी राजनीतिक भूल की है तो वह है बंग भंग। परिणामस्वरूप बंगाल में गरम विचारों की एक बाढ़ सी आ गयी है। 'पानी से रक्त गाढ़ा होता है' इस उक्ति के अनुसार ब्रिटिश सरकार इस बाढ़ को दबाने का जितना भी प्रयत्न कर रही है उतना ही उस प्रदेश के नवयुवकों के दिलों में प्रचण्ड अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है।

"किन्तु प्रश्न उठता है कि यदि शासकों ने अपना धीरज और सन्तुलित बुद्धि खो दी तो क्या हम भी उनके अनुरूप आचरण करें? क्या इक्का दुक्का तमंचे की गोली हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचा सकती है? नहीं। इसके लिए जनता द्वारा सामूहिक और संगठित प्रयत्न करना होगा। जनता खामोशी के साथ कष्ट उठाती रहती है। कोई संगठन नहीं जो उसके कष्टों की कथा को उचित जगह पहुँचा सके जिससे उन कष्टों का निवारण हो सके। हमें हर जिले, तहसील और कस्बों में संगठन को मजबूत करना है। यह काम गैर-सरकारी संगठन ही कर सकता है। जन जागृति के अभाव में हमारे समाचारपत्र भी बहुत दुर्बलता से काम लेते हैं। हमें तगड़े समाचारपत्रों की जरूरत है।"

समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता

शायद इसी भावना से प्रेरित होकर पंडित मोतीलाल नेहरू ने पंडित मदन मोहन मालवीय के परामर्श और सहयोग से सन् १९०९ में इलाहाबाद में दैनिक समाचार-पत्र "लीडर" की स्थापना की। पंडित मोतीलाल नेहरू ने लीडर के चलाने में यथेष्ट रुपया लगाया। चलानेवाली कम्पनी के वही पहले चेयरमैन थे। सन् १९१० में जब अपनी खरी टिप्पणियों के लिए लीडर पर सरकारी रोक की आशंका हुई तो पंडित मोतीलालजी ने कहा था—"जब तक मेरे मकान में ईंट के ऊपर एक भी ईंट बाकी है तब तक मैं लीडर के अधिकारों की सुरक्षा

के लिए लड़ाई लड़ूँगा।" किन्तु आगे जाकर जब खुद "लीडर" ने दुर्बल नीति अपनानी शुरू कर दी तो उन्होंने उससे अपना नाता तोड़कर फरवरी सन् १९१९ में 'इण्डिपेण्डेंट' नामक निर्भीक समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू किया। (माडर्न रिव्यू, मार्च १९३१, संत निहाल सिंह)।

'इण्डिपेण्डेंट' के पहले सम्पादकीय अग्रलेख में स्वयं मोतीलालजी ने इस बात की घोषणा की थी कि--इण्डिपेण्डेंट इस उद्देश्य से प्रकाशित हो रहा है कि वह राष्ट्र की आत्मा को प्रकाश में लाये। आज इस देश की जनता राष्ट्रीयता के रंग में रँगकर एक कौम का स्वरूप ले रही है। आज विविध सम्प्रदाय अपने साम्प्रदायिक रूप को छोड़कर जनता का रूप ले रहे हैं। आज व्यक्ति अपने आप को समष्टि में अर्पित कर रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति 'इण्डिपेण्डेंट' कैसे करेगा? अँधेरे कोनों को दिन के प्रकाश से आलोकित करके। एक ओर जहाँ वह दिलेरी के साथ इस बात की माँग करेगा कि किसी भी कौम को स्वाधीनता के नैसर्गिक अधिकार से वंचित नहीं रखा जा सकता, वहाँ साफगोई के साथ यह भी बताएगा कि साम्प्रदायिक और धार्मिक झगड़ों के बीच में किसी भी देश की आजादी पनप नहीं सकती।"

होमरूल के ब्रिगेडियर जनरल

पहले महायुद्ध के प्रारम्भ होने के बाद परिस्थिति में तेजी के साथ परिवर्तन होने शुरू हुए। पंडित मोतीलाल जी प्रारम्भ में यू० पी० सरकार के पब्लिसिटी ब्यूरो के सदस्य हो गये। ब्यूरो का उद्देश्य युद्ध कार्य में सहायता देना था। किन्तु साल भर बाद ही श्रीमती बेसेंट द्वारा प्रारम्भ किये हुए होमरूल आन्दोलन में वे शामिल हो गये। होमरूल लीग की इलाहाबाद शाखा के वे अध्यक्ष चुने गये। बड़े उत्साह से पंडितजी ने कार्य शुरू किया। एंग्लो-इण्डियन दैनिक 'पायोनियर' ने ताना देते हुए लिखा था--"पंडित मोतीलाल नेहरू होमरूल लीग के ब्रिगेडिअर जनरल हैं।" श्रीमती बेसेंट की गिरफ्तारी और नजरबन्दी ने ब्रिटिश सद्भावना के प्रति उनका विश्वास घटा दिया। फिर भी अगस्त १९१७ के लखनऊ राजनैतिक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में पंडित मोतीलालजी ने प्रतिनिधियों से ब्रिटिश जनता पर विश्वास करने की अपील की। इस पर जवाहरलालजी ने शायद चिल्लाकर कहा--"गलत बात।" मोतीलालजी ने फौरन डपटकर कहा--"कौन कहता है गलत बात? ब्रिटिश जनतंत्र के अतिरिक्त कौन हमारे भाग्य का निर्णय करेगा? क्या किसीने कभी यह सुना है कि वादी ही न्यायाधीश बन जाय? एंग्लो-इंडियन नौकरशाही और भारतीय जनता के मामले में ब्रिटिश जनतंत्र ही न्यायाधीश बन सकता है?" (हिन्दुस्तान रिव्यू, नवम्बर १९३६)।

इसी बीच रुड़की इंजीनियरिंग कालेज के प्रिन्सिपल मिस्टर वुड ने भारतीयों के चरित्र पर घृणित आक्षेप किया। इस पर पंडित मोतीलाल नेहरू ने पहली अक्तूबर १९१७ को लेजिस्लेटिव कौंसिल में एक प्रस्ताव रखा कि मिस्टर वुड सार्वजनिक रूप से क्षमा-याचना करें। सरकार ने वुड का पक्ष समर्थन करते हुए प्रस्ताव वापस लेने के लिए कहा। गैर-सरकारी सदस्यों को इससे सन्तोष नहीं हुआ। पंडित मोतीलाल के बावजूद बार-बार प्रार्थना करने पर भी बहस का उत्तर देने का अवसर नहीं दिया गया। मोतीलालजी भला इसे कैसे सहन कर सकते थे? उन्होंने लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को सम्बोधन करते हुए कहा --"एक सदस्य की हैसियत से मेरे अधिकारों का हनन किया गया है, अतएव मैं अब इस कौंसिल की कार्यवाही में भाग नहीं लेना चाहता।" यह कहकर उन्होंने सदन परित्याग कर दिया। (लीडर, ३ अक्तूबर, १९१७)। इस एक घटना ने एक ओर भारतीय जनता की नजरों में मोतीलालजी को बहुत ऊँचा उठा दिया तो दूसरी ओर मोतीलालजी के दिल से अँगरेज सरकार के प्रति रहे सहे विश्वास को भी समाप्त कर दिया।

जलियानवाला बाग और मार्शल ला

युद्ध की समाप्ति के बाद जो घटनाएँ घटीं उन्होंने दिमागी तौर पर मोतीलालजी को अहिंसात्मक असहयोग के लिए तैयार कर दिया। भयानक विरोध के होते हुए भी रौलट बिल का पास होना, जलियानवाला बाग का हत्याकांड, मार्शल ला और पंजाब के नर-नारियों पर अधिकारियों द्वारा भीषण अत्याचार आदि घटनाओं की शृंखला ने उनके मन पर गहरा असर डाला।

पंजाब के अत्याचारों की जाँच के लिए कांग्रेस ने जो उपसमिति बनाई मोतीलालजी उसके अध्यक्ष थे। जख्मी पंजाब के आँसू पोंछने के लिए मोतीलालजी को दिल ही दिल खून के आँसू बहाने पड़े। देश ने उनकी पंजाब की सेवाओं का आदर किया और उन्हें सन् १९१९ की अमृतसर कांग्रेस का अध्यक्ष चुना। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने एक फारसी कवि के निम्नलिखित शब्दों में अपनी मर्मान्तिक पीड़ा को प्रकट किया :—

"मातृभूमि पर दुख और उदासी का सैलाब आ गया है।
"ऐ मेरी मातृभूमि! तू गम के आँसुओं को न रोक।
"शहीदों के लिए कफन और मय्यत की तैयारी हो रही है।
"ऐ मेरी मातृभूमि! तू गम के आँसुओं को न रोक।
"शहीदों के रिसते हुए खून से--
"चाँद पर भी लाली छा गई है।
"पहाड़, मैदान और बाग सब शहीदों के खून से रँग उठे हैं।
"ऐ मेरी मातृभूमि! तू गम के आँसुओं को न रोक।

अपने भाषण को समाप्त करते हुए पंडितजी ने कहा--"पंजाब की घटनाएँ इस बात का इंगित कर रही

हैं कि हमारा आगे का रास्ता कठिनाइयों का रास्ता है, त्याग का रास्ता है, तपस्या का रास्ता है। इसी रास्ते से हम अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।"

अहिंसात्मक असहयोग—

सन् १९२१ में अहिंसात्मक असहयोग के आह्वान पर पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपनी लाखों रुपये की वकालत छोड़ दी, फैशन और विलासिता का परित्याग कर दिया और मातृभूमि की सेवा के लिए अपने को त्याग और बलिदान के पथ का पथिक बना दिया। देश ने उन्हें इस अनुपम बलिदान पर 'त्यागमूर्ति' की उपाधि दी। प्रिंस आफ वेल्स के बहिष्कार के सिलसिले में छः दिसम्बर सन् १९२१ को उन्हें जवाहरलालजी के साथ गिरफ्तार किया गया। मुकदमे में उन्होंने कोई भाग नहीं लिया। उन्हें छः मास के कारावास का दण्ड मिला। जेल जाते हुए देश के नाम उन्होंने अपने संदेश में कहा—"आज मुझे इस बात का सौभाग्य प्राप्त हुआ कि मैं अपने इकलौते बेटे के साथ जेल जाकर मातृभूमि की सेवा करूँ। देशवासियों से हमारी प्रार्थना है कि वे अहिंसात्मक असहयोग के काम को आगे बढ़ाएँ। हजारों और लाखों की संख्या में स्वयंसेवक बनें। भारत की स्वतंत्रता का एक मात्र मन्दिर जेल है। उस मन्दिर की ओर यात्रियों का दल उमड़ती हुई नदी की धारा के समान अपनी शक्ति और विस्तार में दिन-प्रति दिन बढ़ता रहे।"

असेम्बली में विरोधी दल के नेता

चौरीचौरा के हत्याकाण्ड के बाद गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। पंडित मोतीलालजी जब जेल से छूटे तो गांधीजी जेल में थे। सत्याग्रह और आगे के कार्यक्रम को निश्चित करने के लिए कांग्रेस ने एक सत्याग्रह जाँच समिति बनाई जिसके पंडित मोतीलालजी भी सदस्य थे। देश में दौरा करने के बाद समिति ने यह निश्चय किया कि देश अहिंसात्मक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है। समिति की राय थी कि कौंसिल का बहिष्कार जारी नहीं रखना चाहिए। सन् १९२२ की गया कांग्रेस ने समिति की रिपोर्ट स्वीकार नहीं की। परिणामस्वरूप पंडित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चित्तरंजनदास, विट्ठल भाई पटेल आदि ने मिलकर स्वराज पार्टी बनाई। सन् १९२३ की कोकोनाडा कांग्रेस ने कांग्रेस जनों को कांग्रेस के नाम पर नहीं, किन्तु स्वराज पार्टी के नाम पर असेम्बली और कौंसिलों का चुनाव लड़ने की अनुमति दे दी। विरोधी दल के रूप में सन् १९२४ से असेम्बली में स्वराज पार्टी ने कार्य शुरू किया। २ अगस्त १९२४ को श्री विट्ठल भाई पटेल केन्द्रीय असेम्बली के अध्यक्ष चुने गये।

पंडित मोतीलाल नेहरू लगभग सात वर्षों तक केंद्रीय असेम्बली में स्वराज पार्टी की ओर से विरोधी दल के नेता रहे। बड़ी योग्यता, अनुशासन और सभा-चातुर्य से पंडितजी ने स्वराज पार्टी का संचालन किया। असेम्बली में सरकार के विरुद्ध दूसरे दलों और नेताओं का ना[...] मौकों पर सहयोग ले लेना पंडित मोतीलालजी की खूबी थी। असेम्बली की बहसों में योग्यता, तर्क [...] सफलता के साथ जनता के पक्ष को रखने और नौक[र]शाही को पगपग पर नीचा दिखाने का श्रेय मो[ती]लालजी ही को था। पूरा सदन उनके विचारों को म[नो]योग के साथ सुनता था और उनका आदर करता [था।] जातीयता, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता और हर प्र[कार] की संकुचितता का वे साहस के साथ विरोध करते [थे।]

स्कीन कमेटी

असेम्बली ने एक मत से उनके इस प्रस्ताव [को] स्वीकार किया कि सेना का भारतीयकरण करने के [लिए] ब्रिटिश सैंडहर्स्ट कालेज की तरह भारत में भी भार[तीय] सेना के अफसरों की ट्रेनिंग के लिए इण्डियन सैंडह[र्स्ट] कालेज खुलना चाहिए। इसकी योजना बनाने के [लिए] सर एंड्रू स्कीन की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई [गई] जो स्कीन कमेटी के नाम से मशहूर थी। इस कमेटी [ने] यह निर्णय किया कि योग्य भारतीय केडटों के अभाव [में] यह कालेज भारत में नहीं खुल सकता। पंडित मोतील[ाल] कुछ समय तक इस समिति के सदस्य थे। बाद में उन्[होंने] इस्तीफा दे दिया था। कमांडर इन-चीफ ने जब रि[पोर्ट] असेम्बली के सामने पेश की तो पंडित मोतीलाल ने[हरू] ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा—

"यह कहना कि भारत में योग्य केडटों का अभ[ाव] है, भारत के पुरुषत्व को चुनौती देना है। हजारों यो[ग्य] भारतीय युवक सैनिक अफसरी के शिक्षण के लिए [उप]लब्ध हैं किन्तु सरकार उन्हें लेना नहीं चाहती। सरक[ार] शिक्षा और काबलीयत को योग्यता नहीं मानती [...] खानदान को योग्यता मानती है। हजारों ऐसे शिक्षि[त] नवयुवक हैं किन्तु सरकार उन्हें इसलिए अफसरी के [लिए] नहीं चुनेगी क्योंकि वे ऐसे किसी व्यक्ति के पौत्र या प्रप[ौत्र] नहीं हैं जो अनेकों वर्ष पूर्व सेना से सम्बन्धित था। कमा[ंडर-]इन-चीफ ने यह बताया है कि जो सैनिक चीन भेजे [गए] थे उन्होंने बचत करके अपने परिवारों को रुपया भे[जा] है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या यह उनकी तनख[ाह] की बचत है या उन्होंने गरीब चीनियों को लूटकर पैसा भेजा है!"

सर बैसील ब्लैकेट—"यह उनकी तनखाह की ब[चत] का पैसा है?"

पंडित मोतीलाल—"भारत में भी कभी ये लोग अ[पनी] तनखाह से पैसा बचाते थे?"

कमांडर-इन-चीफ—"मैं नहीं जानता कि भारत में लोग क्यों पैसा नहीं बचा पाते थे?"

सर बैसील ब्लैकेट—"क्या पंडित मोतीलाल यह सा[बित] करेंगे कि इन लोगों ने चीनियों को लूटा या [...] के लिए इन्हें आज्ञा मिली?"

पंडित मोतीलाल--"क्या आप चाहते हैं कि मैं मानव स्वभाव को साबित करूँ? आपने हमारे विरोध के बावजूद चीन में हमारी सेनाएँ भेजीं। जनता के फैसलों का उल्लंघन करके न जाने कितने साम्राज्य धूल में मिल गयें, अब ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत-वासियों के दृढ़ निश्चय का उल्लंघन कर रहा है। मैं कहता हूँ कि ईश्वरीय न्याय का दिन बहुत दूर नहीं है!"

नेहरू रिपोर्ट

केन्द्रीय असेम्बली के भीतर पंडित मोतीलाल नेहरू स्वराज्य की जोरदार लड़ाई लड़ रहे थे। किन्तु प्रश्न था कि स्वराज्य की रूपरेखा क्या हो जिस पर एकमत होकर ब्रिटिश सरकार से मोरचा ले सकें। इस प्रश्न को हल करने के लिए पंडित मोतीलालजी ने मिस्टर जिन्ना, लाला लाजपतराय, महामना मालवीय, सर तेज बहादुर सप्रू, डाक्टर जयकर और अन्य दलों के नेताओं से परामर्श करके कांग्रेस की ओर से सन् १९२८ में डाक्टर अंसारी की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन ने पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में इस बात के लिए एक समिति बनाई कि वह भारत के संविधान का मस्विदा तैयार करे। बड़ी योग्यता और परिश्रम के साथ पंडित मोतीलाल ने यह मस्विदा तैयार किया। यही मस्विदा नेहरू रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १९२८ की कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर सर्वदल सम्मेलन में यह रिपोर्ट पेश हुई। देश के विविध दलों के १५०० प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित थे। लगातार ८ दिन तक इस रिपोर्ट पर विवाद हुआ। नेहरू रिपोर्ट में बंगाल और पंजाब की साम्प्रदायिक गुत्थी को सुलझाने के लिए जो हल पेश किए गए थे यदि उन्हें स्वीकार कर लिया गया होता तो देश का विभाजन न होता। मिस्टर जिन्ना उन तजवीजों से सहमत थे।

साइमन कमीशन

दिसम्बर १९२८ की कलकत्ता की कांग्रेस के पंडित मोतीलाल अध्यक्ष निर्वाचित हुए। कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार को औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को एक वर्ष में पूरा करने का समय दिया। यह भी निश्चय किया कि यदि ब्रिटिश सरकार इस माँग को पूरा न करे तो कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता के लिए लड़ाई लड़ेगी। ब्रिटिश सरकार ने भारत के बढ़ते हुए जनमत के प्रवाह को शान्त करने के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति की। देश ने कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का निश्चय किया। साइमन कमीशन के आगमन पर--'साइमन वापस जाओ' के नारे लगाते हुए लाहौर, लखनऊ और दूसरे शहरों में जुलूस निकले। लाहौर में इसी बहिष्कार-प्रदर्शन में पंजाब केशरी लाला लाजपत राय पर लाठियों की वर्षा हुई। लालाजी घायल हुए और उसीके परिणाम-स्वरूप कुछ दिनों के बाद उनकी मृत्यु हो गयी। लालाजी ने घायल अवस्था में ही वक्तव्य दिया--"मेरे ऊपर किया हुआ लाठी का हर वार ब्रिटिश सरकार के कफन में कील साबित होगा।" लखनऊ में पंडित जवाहरलाल नेहरू और पंडित गोविंद वल्लभ पन्त को लाठियों से बुरी तरह पीटा गया। इन दारुण अत्याचारों ने देश को लाहौर कांग्रेस के अवसर पर पूर्ण स्वाधीनता के निर्णय के लिए तैयार कर दिया। लालाजी के ऊपर जो वार हुआ उससे विचलित होकर दिलेर सरदार भगतसिंह ने लालाजी के कातिल सांडर्स की हत्या की और उसके बाद दिल्ली में केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंका। समाचार-पत्रों की रिपोर्ट के अनुसार जिस समय असेम्बली में बम गिरा सिवाय पंडित मोतीलाल नेहरू के शेष सभी सरकारी-गैर सरकारी सदस्य तेजी से दौड़कर हाल के बाहर चले गये। केवल मोतीलालजी ही शान्तिपूर्वक अपने आसन पर बैठे रहे।

पूर्ण स्वाधीनता का निर्णय

सन् १९२९ की लाहौर कांग्रेस में पंडित मोतीलाल ने अपने पुत्र जवाहरलाल के सिर पर कांग्रेस का काँटों का ताज रखा। यह घटना भी भारत के इतिहास में अभूतपूर्व थी। २६ जनवरी सन् १९३० को सारे देश ने पूर्ण स्वाधीनता की शपथ ली और १८ मार्च को महात्मा गांधी ने नमक कानून तोड़ने के लिए दांडी की यात्रा प्रारम्भ की। लाहौर कांग्रेस के पूर्व ही पंडित मोतीलाल जी ने अपना आनन्द भवन देश को अर्पण कर दिया। इस राष्ट्रीय स्मारक का नाम 'स्वराज्य भवन' रखा गया। पूर्ण स्वाधीनता के निश्चय के बाद स्वराज पार्टी के सभी सदस्य कौंसिलों और असेम्बली से त्याग-पत्र देकर बाहर आ गये।

नमक सत्याग्रह

नमक सत्याग्रह की बढ़ती हुई प्रगति को रोकने के लिए १४ अप्रैल को जवाहरलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। लाहौर में पिता ने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। अब पुत्र ने अपनी गिरफ्तारी पर सत्याग्रह के संचालन के लिए पिता को अपना उत्तराधिकारी बनाया। हजारों स्त्रियाँ पहली बार सत्याग्रही बनकर मैदान में उतरीं। सरकारी जुल्म अपनी चरम सीमा पर था। धरसाना और शोलापुर में नृशंस से नृशंस अत्याचार किये गये। बम्बई में देश-सेविकाओं पर भयंकर लाठी चार्ज किया गया। पेशावर में किस्से-खानी गली में ४५५ निहत्थे और अहिंसात्मक पठानों को मशीनगनों से उड़ा दिया गया। पंडित मोतीलाल इस सारे आन्दोलन का एक कुशल महारथी की तरह संचालन कर रहे थे। अन्त में उन्होंने सेना और पुलिस को देश के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए निमंत्रित किया। इसी घोषणा पर पंडित मोतीलालजी को गिरफ्तार करके छः मास की सजा दे दी गयी।

इसी बीच जयकर और सप्रू ने सुलह का प्रयत्न किया। पिता पुत्र को बन्दी रूप में ही नैनी से यरवदा-जेल ले जाया गया। किन्तु सुलह न हो सकी। वापस नैनी जेल लौटकर पंडित मोतीलालजी का जर्जर वृद्ध शरीर कठिन बीमारी का वार न सह सका। दमा और ज्वर उन पर टूट पड़े। फेफड़ों में सूजन हो गयी और मुँह से खून गिरने लगा। उन्हें ८ सितम्बर को जेल से रिहा किया गया। इलाज के लिए वे कलकत्ता और आराम करने के लिए मसूरी गये। सर्दियों में फिर इलाहाबाद लौट आये। किन्तु उनकी तबियत सँभल न सकी। २० जनवरी सन् १९३१ के पंडित जवाहरलाल के नाम अपने अन्तिम पत्र में पंडित मोतीलालजी ने लिखा--"कल कँपकँपी आई और सारी रात झपकी नहीं लगी। टेम्परेचर नार्मल से ऊपर रहा। मुँह से खून बेहिसाब गिरा। परिणाम यह है कि आज बेहद थकान है। लेकिन उम्मीद करता हूँ कि रात बेहतर बीतेगी।" पंडित मोतीलालजी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे इतना गिरता गया कि पंडित जवाहरलाल को जेल से रिहा करना पड़ा। गांधी-इर्विन समझौते की चर्चा के लिए गांधीजी और फिर बाद में अन्य नेता भी छोड़ दिये गये।

अन्तिम अभिलाषा

गांधीजी पंडित मोतीलालजी को देखने सीधे इलाहाबाद आये। अपनी मृत्युशय्या पर पड़े हुए मोतीलालजी ने ३ फरवरी को गांधीजी से अनुरोध करते हुए कहा--"मैं रोग से लड़ूँगा, मैं मौत से लड़ूँगा, मैं दासतारूपी दानव से लड़ूँगा। भारत के भाग्य का निर्णय आप मेरे सामने स्वराज भवन में करें। अपनी मातृ-भूमि के अन्तिम सम्मानपूर्ण समझौते में मुझे भी भाग ले[ने] का अवसर दें। यदि मुझे मरना ही है तो मैं स्वतंत्र भार[त] की गोद में मरूँगा। मैं अपनी आखरी नींद, पराधी[न] भारत में नहीं, स्वतंत्र भारत में सोना चाहता हूँ।"

महा प्रयाण

४ फरवरी को उन्हें एक्स-रे परीक्षा के लिए मो[टर] से लखनऊ ले जाया गया। ५ की दोपहर तक वे अ[च्छे] रहे। शाम को शरीर की शक्ति क्षीण पड़ने लगी। चेहरा पीला पड़ गया। आधी रात के बाद बेचैनी [बढ़] गयी। ६ फरवरी को सबेरे पुत्र के हाथ से पानी पी[ने] के बाद ६-४० पर स्वतंत्रता संग्राम के महारथी पं[डित] मोतीलाल नेहरू ने अपने प्राण त्याग दिए। पंडित[जी] के पार्थिव अवशेष इलाहाबाद लाये गये और उसी दि[न] शाम को त्रिवेणी तट पर उन्हें चिता के सुपुर्द कर दि[या] गया। महात्मा गांधी ने लाखों शोकाकुल नरनारि[यों] के बीच प्रज्वलित चिता की ओर संकेत करते हुए क[हा] था :--

"यह पंडित मोतीलाल नेहरू की चिता नहीं है, यह तो राष्ट्र की स्वतंत्रता के महायज्ञ का हवन-कुण्ड है, यह तो इस यज्ञ की पवित्र पूर्णाहुति है।"

पण्डित मोतीलालजी राष्ट्र के भीष्म पितामह थे। उन्होंने देश की सेवा में अपना सब कुछ अर्पित क[र] दिया। देश को उन्होंने अपना शारीरिक सुख-चै[न], अपना अमूल्य समय, अपनी अनुपम मेधावी शक्ति, अप[ना] परिवार, अपना भवन, अपना तन, मन, धन सभी कु[छ] अर्पित कर दिया। किन्तु देश के लिए उनका सबसे अनु[पम] दान है--उनके सुपुत्र पंडित जवाहरलाल नेहरू।

चित्र-प्रतियोगिता

१--यह फोटो-प्रतियोगिता प्रतिमास होती है। बीस तारीख तक प्राप्त चित्रों पर ही चालू महीने में विचार किया जाता है और पुरस्कृत चित्र 'सरस्वती' में प्रकाशित किये जाते हैं।

२--चित्रों का प्रिंट मैट या ग्लेज पेपर पर ही रहे। सिल्किन पेपर पर चित्र न भेजे जायँ। इन चित्रों का दायित्व प्रेषकों पर ही होगा, अर्थात् वे किसी दूसरे के चित्रों की नकल न हों।

३--सर्वोत्तम चित्र पर १५) पन्द्रह रुपये का नकद प्रथम पुरस्कार प्रदान किया जायगा। द्वितीय पुरस्कार नकद १०) दस रुपये का होगा। पुरस्कृत चित्र 'सरस्वती' की संपत्ति हो जायँगे। और इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लि० को पूरा अधिकार होगा कि इन चित्रों का कहीं भी उपयोग कर सके।

४--प्रतियोगिता में प्राप्त चित्र किसी भी दशा में वापस नहीं किये जायँगे।

५--इस प्रतियोगिता में व्यापारिक फोटोग्राफर्स भाग न ले सकेंगे।

६--चित्र-प्रेषकों को चित्र की पीठ पर अपना प[ता] स्पष्ट लिपि में लिखकर भेजना आवश्यक है।

७--कौन चित्र कितनी लाइट में लिया गया, स[मय], एक्सपोज़र और कैमरे का स्टाप क्या रहा, यह अ[वश्य] लिखा जाय।

८--चित्र-प्रतियोगिता-सम्पादक का निर्णय सर्वम[ान्य] होगा। चित्र-प्रतियोगिता के लिए प्राप्त चित्रों के संबं[ध में] कोई पत्र-व्यवहार न किया जायगा।

९--जो चित्र भेजा जाय, उस चित्र का साइज, लम्ब[ाई] चौड़ाई, पोस्टकार्ड साइज का होना चाहिए।

१०--चित्र-प्रतियोगिता में चित्र भेजते समय अ[पना] पूरा पता शुद्ध अक्षरों में चित्र के पीछे लिखें। प्रत्येक [मास] की २ तारीख तक चित्र-प्रतियोगिता के लिए चित्र [भेजे] जाने चाहिए।

११--चित्र निम्न पते पर भेजे जायँ :--

संपादक "सरस्वती" (चित्र-प्रतियोगिता)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहा[बाद]

'सरस्वती'—चित्र-प्रतियोगिता : मई १९६१

प्रथम पुरस्कार : 'स्कूल नहीं आफिस'। छविकर्त्री—कु० सुमन कपूर, शान्तिनगर, कानपुर। टाइम एक्स १/१०० सेकण्ड, स्टाप एफ/१६।

द्वितीय पुरस्कार : 'तू भी आ'। छविकार—विशंभरनाथ कपूर, सुतहटी बाजार, ज.नपुर। टाइम एक्स १/५० सेकंड, स्टाप एफ/११, समय सवा पाँच बजे सायंकाल।
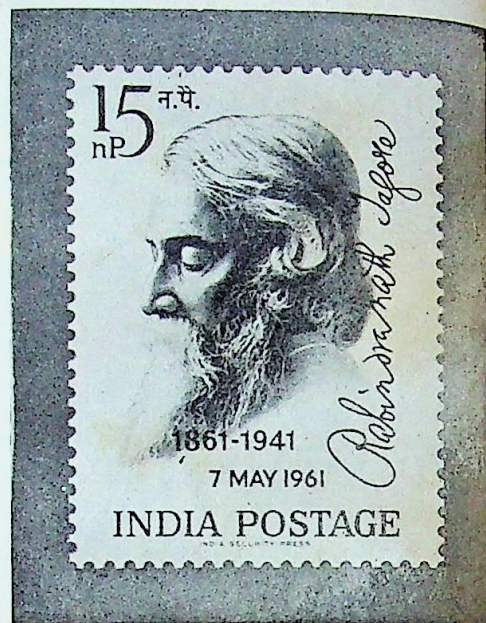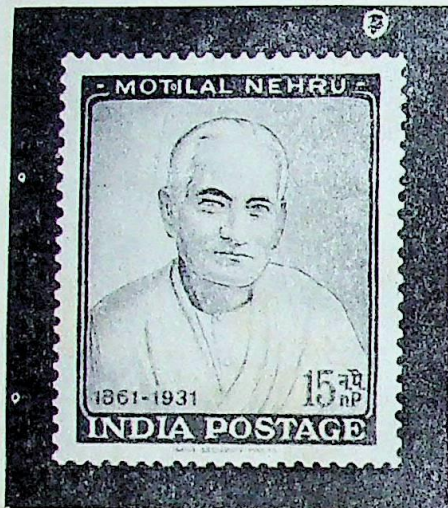
पं० मोतीलाल नेहरू और रवींद्रनाथ टागोर की शताब्दिक जयंतियों के अवसर पर भारत के डाक विभाग ने ये टिकट प्रसारित किये हैं।
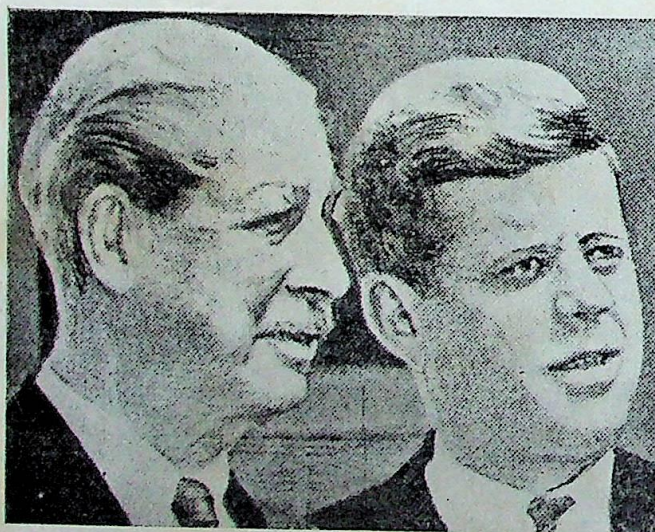
वाशिंगटन में अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेडी इंग्लैंड के प्रधान मंत्री मैकमिलन से लाओस की समस्या पर विचार-विनिमय के लिए बुलायी गयी कॉन्फ्रेंस प्रारंभ होने से पूर्व ह्वाइट हाउस के बाहर बातें कर रहे हैं।

छत्रपति महाराज शिवाजी की पुण्य स्मृति में १५ न० पै० का यह दुरंगा डाक टिकट चलाया गया है।

सम्पादक

मूल लेखक--श्री रवीन्द्रनाथ टागोर
अनुवादक--लाला पावतीनन्दन

मेरी घरवाली जब जीवित थी तब ललिता के लिए मुझे कुछ चिन्ता न थी। तब मैं ललिता की अपेक्षा ललिता की माता ही की धुन में अधिक लगा रहता था।

तब ललिता के खेल और उसकी मीठी-मीठी मुसकान को देखकर, उसकी तोतली बातों को सुनकर, और उसके प्यार ही को सब कुछ समझकर, मुझे संतोष हो जाता था। जब तक अच्छा लगता मैं उसे लेकर खेलाया करता, रोते ही उसे उसकी माँ की गोद में डालकर अपना पिण्ड छुड़ा लेता। आगे उसके पालने-पोसने का बड़ा भारी झंझट उठाना पड़ेगा सो बात कभी मेरे मन में नहीं आई थी।

निदान, मेरी स्त्री असमय में मर गई। और वह कन्या अपनी माता की गोद से छूटकर मेरी गोद में आ गिरी--मैंने उसे उठाकर अपने कलेजे से लगा लिया।

परन्तु, माता से बछुड़ी कन्या को दुगने स्नेह से पालना मेरा धर्म्म है, इस बात को मैंने अधिक सोचा था, या पत्नीहीन पिता को परम यत्न से रक्षा करनी चाहिए इसका ललिता ने अधिक अनुभव किया था—यह मेरी समझ में ठीक-ठीक नहीं आया। क्योंकि, छः वर्ष की ही होते न होते वह गृहस्थी के काम-काज में प्रवीण होने लग गयी। साफ जान पड़ने लगा कि नन्हीं सी कन्या अपने पिता की एकमात्र आधार बनने की चेष्टा कर रही है।

मैंने, मन ही मन हँसकर, उसके हाथों में आत्म-समर्पण कर दिया। मैं देखता था कि मैं जितना ही निकम्मा और असहाय हो जाता, उसे उतना ही अच्छा लगता। मैं आप अपने कपड़े या टोपी उतार कर धरता तो वह ऐसा मुँह बना लेती मानों मैं उसके अधिकार में जबरदस्ती हाथ डाल रहा हूँ। बाप के बराबर इतना बड़ा खिलौना पहले उसे कभी नहीं मिला था। इसीलिए बाबा को खिलाकर, पिलाकर, कपड़े पहनाकर बिछौने पर सुलाकर, दिनभर वह आनन्द में मग्न रहती थी। सिर्फ शिक्षावली और सुताप्रबोध पढ़ाते समय ही मेरे पितृत्व को वह सचेत कर देती थी।

पर, कभी-कभी मेरे मन में यह चिन्ता आ जाती थी कि कन्या का सुपात्र से विवाह करने के लिए धन का प्रयोजन होगा--मेरे पास इतना रुपया कहाँ? मैं उसे भरसक पढ़ाता तो था, परन्तु सोचता कि यदि वह किसी निरे मूर्ख के हाथ पड़ जाय तो उसकी क्या दशा होगी?

धनार्जन में मैंने ध्यान लगाया। सरकारी दफ्तर में नौकरी करने की अवस्था तो अब न रही थी। और, दफ्तरों में घुसने की योग्यता भी नहीं थी। इससे बहुत सोच-विचार कर मैं ग्रन्थ रचने लगा।

बाँस की नली में छेद करने से उसमें न तेल रक्खा जा सकता है, न पानी ठहर सकता है। धारणा शक्ति उसमें बिलकुल नहीं रहती, उससे संसार का कोई काम नहीं चल सकता, परन्तु फूँकने से बेदाम की बाँसुरी, खूब बजती है। मैं अच्छी तरह जानता था कि जिस हतभाग्य की बुद्धि संसार के किसी काम में नहीं काम देती, वह मनुष्य पुस्तक निश्चय ही अच्छी लिख लेगा। इसी साहस पर मैंने एक प्रहसन लिख डाला। लोग उसे अच्छा कहने लगे और एक नाटकवाले ने उसका अभिनय भी कर दिखाया।

सहसा निर्मल यशोनीर का स्वाद पाकर मैं ऐसी आपत्ति में फँस गया कि प्रहसन मुझसे छूटता ही न था। दिनभर व्याकुल-चित्त और सोच से भरे हुए मुख से मैं प्रहसन लिखने लगा।

ललिता आकर, प्यार से, हँसती हुई पूछने लगी, बाबा, नहाओगे नहीं?

मैं हुंकार देकर गर्ज उठा--अभी जा, अभी दिक मत कर।

बेचारी का मुँह, फूँक कर बुझाये गये दीपक के समान अँधेरे से छा गया। वह अनादर से फूलते हुए हृदय को लेकर कब वहाँ से चली गयी, मुझे जान भी न पड़ा।

मैं दासी को हटा देता, नौकर को मारने दौड़ता, भिखारी ऊँचे स्वर से यदि भीख माँगता तो लाठी लेकर मैं उसपर जा टूटता। मेरी बैठक सड़क के किनारे ही पर थी। सड़क की ओर एक खिड़की खुली रहती थी। मेरे पुस्तक लिखते समय कोई भोला-भाला राही खिड़की में होकर यदि मुझसे राह पूछता तो मैं उसे जहन्नुम नाम की किसी मशहूर जगह में जाने को कहता। हाय, कोई यह नहीं समझता था कि मैं एक बड़ा ही मजेदार प्रहसन लिख रहा हूँ।

परन्तु मजा जितना और यश जितना मिलने लगा, उसके परिमाण से धन कुछ भी न मिला। उस समय धन की बात स्मरण भी नहीं थी। इधर ललिता के योग्य लड़के दूसरे मनुष्यों की कन्याओं से ब्याहे जाने लगे—इस पर मेरा ध्यान नहीं गया।

पेट में जब तक ज्वाला नहीं धधकती तब तक चैतन्य नहीं होता। परन्तु वैसा भी अवसर आ पहुँचा। जाहिर-गाँव के तअल्लुकेदार ने जाहिरमित्र नामक एक समाचारपत्र निकालकर मुझे उसकी सम्पादकी पर बुला भेजा। मैंने यह नौकरी स्वीकार कर ली।

कुछ दिनों तक मैंने ऐसे प्रबल वेग से लिखा कि राह चलते लोग मुझे, मेरी ओर अँगुली उठा-उठाकर, बताने लगे और मैं अपने को जेठ की दुपहरी के सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य समझने लगा।

जाहिरगाँव के पास ही एक बाहरगाँव है। दोनों गाँवों के तअल्लुकेदारों में बड़ी भारी प्रतिस्पर्द्धा थी। पहले बात-बात में लाठी चल जाया करती थी। अब दोनों ओर मजिस्ट्रेट साहब ने मुचलका लिखवाकर लाठी चलना बन्द कर दिया है। लाठी तो बन्द हो गयी, परन्तु लाठी चलानेवाले लठियलों की जगह पर बेचारा मैं नियुक्त हुआ। सब लोग कहने लगे कि मैंने लट्ठबाज खूनियों का नाम रख लिया।

मेरे लेखों की वाक्य वर्षा से बाहरगाँववालों को सर ऊँचा करना कठिन हो गया। उनकी जात पर, उनके कुल

पर, उनके पूर्व पुरुषों के इतिहास पर, सब पर, मैंने स्याही लेख दी।

इस समय मैं बड़े सुख से था। खूब मोटा-तगड़ा हो गया था। मुँह पर से हँसी हटाये न हटती थी। बाहरगाँव-वालों के पुरखाओं पर कटाक्ष करके मैं तरह बेतरह के मर्म्मान्तिक वाक्यबाण छोड़ता और सारा जाहिरगाँव हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता।

अन्त में बाहरगाँव से भी बाहर-मित्र नामक एक पत्र निकला। वह किसी बेढब बात को युक्ति या पेंच-पाँच से नहीं कहता था। वह ऐसे प्रचण्ड उत्साह से, उसी कोरी, महाविरेदार और ठेठ भाषा में गालियाँ देता कि छापे के अक्षर तक भी मानों कानों में उन गालियों को चिल्ला-चिल्लाकर भरने लगते। इसलिए दोनों गाँवों के लोग उसकी बातों को बहुत अच्छी तरह समझ लेते।

परन्तु, मैं पुराने अभ्यास के अनुसार, ऐसे मजे से, ऐसे कूट कौशल से, विपक्षियों पर आक्रमण करता था कि शत्रु-मित्र कोई भी यह न समझ सकते कि मेरी बातों का मर्म क्या है। इसका फल यह हुआ कि जीत होने पर भी लोग मेरी ही हार समझते। इससे, विवश होकर, सुरुचि के विषय पर मैंने एक उपदेश-पूर्ण लेख लिखा। मैंने देखा, बड़ी भारी भूल मैंने कर डाली। क्योंकि जो वस्तु यथार्थ ही अच्छी है उसकी हँसी उड़ाना जैसा सहज है, वैसा उपहास्य विषय की हँसी उड़ाना सहज नहीं है। हनुवंशवाले मनु-वंशवालों की जैसे सहज में हँसी उड़ा सकते हैं, मनुवंशवाले हनुवंशवालों की हँसी करके उतनी सफलता नहीं पाते। इसीलिए सुरुचि को अँगूठा दिखाकर उन लोगों ने देश से निकाल दिया है।

मेरे प्रभु अब मेरे प्रति और उतना आदर नहीं दिखाते थे। सभा समाज में भी मेरा उतना सम्मान नहीं रहा। राह में चलते समय भी लोग मुझसे नहीं बोलते थे। यहाँ तक हुआ कि मुझे देखकर कोई-कोई हँसने भी लगे।

इतने दिनों में मेरे प्रहसनों की बात भी लोग बिलकुल भूल गये। अकस्मात् मुझे जान पड़ा कि मैं एक दियासलाई के बराबर हूँ। जरा देर सुलगकर एकदम अन्त तक मैं जल गया हूँ। मन मेरा ऐसा निरुत्साह हो गया कि सिर को कूट डालने पर भी एक पंक्ति का लेख भी उससे न निकलता। मैंने सोचा कि जीने में अब कुछ सुख नहीं है।

ललिता उस समय मुझसे डरा करती थी। बिना बुलाये एकाएक मेरे पास आने का वह साहस नहीं करती थी। वह जान गयी थी कि मजेदार बातें लिख सकनेवाले बाप से मिट्टी का खिलौना अधिक अच्छा होता है।

एक दिन मैंने देखा कि बाहरगाँव का बाहरमित्र मेरे तअल्लुकेदार को छोड़कर मेरे ही ऊपर सतुआ बाँध कर उतारू हुआ है। उसने कितनी ही भद्दी-भद्दी बातें छाप दी हैं। मेरे परिचित मित्र मेरे पास आये और सब कोई, एक-एक करके, मुझे वह पत्र हँसते-हँसते सुना गये। कोई-कोई कहने लगे कि इसका विषय चाहे जैसा हो, भाषा में अवश्य बड़ी बहादुरी दिखला[ई] गयी है। अर्थात् भाषा से यह साफ जान पड़ता है [कि] बेतहाशा गालियाँ दी गयी हैं। दिन भर में कोई बी[स] मनुष्यों के मुँह से वही बात मेरे सुनने में आयी।

मेरे घर के सामने एक छोटा-सा बगीचा था। सन्[ध्या] समय बड़े चिन्तित चित्त से मैं वहाँ अकेला घूम रहा था। पक्षिगणों ने घोंसलों में लौटकर और अपने कलरवों को ब[न्द] करके जब स्वच्छन्दता से सन्ध्या की शान्ति में आ[त्म]समर्पण कर दिया, तब मैंने अच्छी तरह से समझ लि[या] कि पक्षियों में रसिक लेखक नहीं हैं और उनमें रुचि [के] विषय में तर्क नहीं होता।

मन में केवल यही सोचने लगा कि उस आक्रमण [का] क्या उत्तर दिया जाय। भद्रता में विशेष कठिनाई यह [है] कि सब कहीं के लोग उसे नहीं समझते हैं। अभद्रता [की] भाषा उससे अधिक परिचित है। इसीसे मैं सोचने ल[गा] कि उसी प्रकार का एक मुँहतोड़ उत्तर लिखना चाहि[ए]। मैं किसी तरह हार नहीं मानूँगा।

ठीक उसी समय, सन्ध्या के अँधेरे में, एक छोटे [से] कण्ठ का स्वर मैंने सुना और साथ ही किसी कोमल औ[र] गरम-सी वस्तु ने मुझे छुआ। मेरा मन उद्वेग से इत[ना] अनमना हो रहा था कि उस क्षण उस स्वर और उस स्[पर्श] को जानकर भी मैंने नहीं पहचाना।

परन्तु दूसरे ही क्षण वह मधुर स्वर मेरे काम में फि[र] सिंचित हुआ। वह सुधास्पर्श मेरे करतल में फिर संजीवि[त] हुआ। मेरी कन्या ने धीरे-धीरे मेरे पास आकर मीठे हल[के] स्वर से कहा——बाबा। कोई उत्तर न पाकर मेरे दाहि[ने] हाथ को लेकर एक बार अपने कोमल ललाट पर फेरक[र] वह फिर धीरे-धीरे घर को लौटने लगी। ललिता ने बहु[त] दिनों से मुझे नहीं बुलाया था। अपनी इच्छा से आक[र] उसने मेरा इतना आदर बहुत दिनों से नहीं किया था। इसीसे आज उस स्नेह-स्पर्श से मेरा हृदय एकाएक बहु[त] व्याकुल हो उठा, वह कण्ठ तक उमड़ आया।

थोड़ी देर बाद मैंने घर लौटकर देखा, ललिता बिछौ[ने] पर लेटी है। शरीर क्लिष्ट हो गया है। नेत्र कुछ मुँ[दे] से हैं। दिन के अन्त में पेड़ पर से झरे हुए फूल के समा[न] वह पड़ी है। सिर पर मैंने हाथ रखकर देखा तो उसे बहु[त] गरम पाया। गरम साँस निकल रही है। ललाट पर [की] नसें फूल रही हैं। मैंने समझ लिया कि वह सन्ताप की त[प] से कातर होकर, प्यासे अन्तःकरण से, एक बार पिता [का] स्नेह, पिता का प्रेमाभिषिक्त आदर, पाने गयी थी। [प] पिता उस समय बाहरमित्र के लिए एक खूब कड़ा जवा[ब] देने की कल्पना में मग्न थे।

मैं ललिता के पास जा बैठा। कुछ न बोलकर स्व[र] सन्तप्त अपने दोनों करतलों से मेरा हाथ खींचकर, उस[पर] अपना कपाल रख, वह चुपचाप सो रही।

जाहिरगाँव और बाहरगाँव के जितने पत्र थे उन स[ब] को लेकर मैंने जला दिया। मैंने कोई उत्तर नहीं लिखा। हार मानकर कभी किसीको इतना सुख नहीं मिला होगा

जब कन्या की माता मर गई थी, तब मैंने उसे अपनी गोद में खींच लिया था। आज उसकी विमाता को भी आग में झोंककर, मैंने फिर उसे अपने हृदय से लगा लिया। मैं अपने देश को लौट आया। तब से, अवाच्य बकने में बर्क के बाबा की भी वक्तृत्व-शक्ति को मात करनेवाले पत्रों को मैं अपने पास तक नहीं फटकने देता।

पूर्वी हिन्दी

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हम डाक्टर ग्रियर्सन की हिंदी विषयक पुस्तकमाला का जिकर कर चुके हैं। इस पुस्तकमाला के एक एक खण्ड धीरे-धीरे प्रकाशित हो रहे हैं। इसकी पाँचवीं जिल्द के दूसरे खण्ड में उड़िया और बिहारी भाषा (बोली) का वर्णन है, और उसके नमूने हैं। बिहारी बोली पुरानी प्राकृत—मागधी—की कन्या है। पर आजकल की हिंदी से भी उसका बहुत साम्य है। अतएव इस प्रान्त के भाषा-प्रेमियों के भी जानने योग्य बहुत-सी बातें उसमें हैं।

इस समय डाक्टर साहब की इस पुस्तकमाला की छठी जिल्द हमारे सामने हैं। इसमें पूर्वी हिंदी का हाल है और उसके ५८ नमूने हैं। कोई-कोई नमूना बहुत ही मजेदार है। वह इतना मनोरंजक है कि उसे पढ़कर हँसी रोके नहीं रुकती। ये नमूने बिल्कुल 'देहाती बोली' में दिये गये हैं। जो बोली देहात में स्त्रियाँ और अपढ़ आदमी बोलते हैं उसीके नमूने इसमें इकट्ठा किये गये हैं। जो कहानियाँ देहाती स्त्रियाँ शाम के वक्त, आग के पास बैठ-कर, अपने लड़के-लड़कियों को सुनाकर उनको खुश करती हैं उनके कई नमूने इसमें बहुत ही अच्छे हैं।

डाक्टर ग्रियर्सन ने हिंदी—आर्य भाषाओं की एक मध्यवर्ती शाखा मानी है। उसी शाखा का नाम आपने पूर्वी हिंदी रक्खा है। पुरानी अर्द्धमागधी को आपने पूर्वी हिंदी की माँ माना है। पटना प्रान्त की पुरानी मागधी और मथुरा प्रान्त की पुरानी भाषा सौरसेनी कहलाती है। इन दोनों के मेल से बनी हुई भाषा अर्द्धमागधी है। इसीने पूर्वी हिंदी को पैदा किया है। डाक्टर साहब ने इस पूर्वी हिंदी के तीन भाग माने हैं—अवधी, बघेली और छत्तीस-गढ़ी। जिस प्रान्त में जो बोली अधिकता से बोली जाती है उसके अनुसार उसका नाम रक्खा गया है।

पूर्वी हिंदी नीचे लिखी हुई जगहों में बोली जाती है—

(१) अवध में—हरदोई और फैजाबाद के कुछ हिस्से छोड़कर।

(२) युक्त प्रान्त में—बनारस और हमीरपुर के बीच में।

(३) पश्चिमोत्तर बुंदेलखण्ड, बघेलखण्ड और छोटा नागपुर में।

(४) मध्य-प्रदेश में—छत्तीसगढ़ तथा जबलपुर और मंडला के जिलों में।

यह भाषा जिन खण्डों में बोली जाती है उसकी लंबाई कोई ७५० मील, चौड़ाई २५० मील और क्षेत्रफल १,८७,५०० वर्गमील है। कितने आदमी कौन बोली बोलते हैं, इसका हिसाब नीचे है—

अवधी	१६,०००,०००
बघेली	४,६१२,७५६
छत्तीसगढ़ी	३,७५५,३४६
कुल जोड़	२४,३६८,७९९

योरप में हंगरी, पोर्चुगल और बलगेरिया नाम के तीन छोटे देश हैं। अवधी बोलनेवालों की संख्या हंगरी के निवासियों की संख्या के, बघेली बोलनेवालों की संख्या पोर्चुगल के निवासियों की संख्या के, और छत्तीसगढ़ी बोलनेवालों की संख्या बलगेरिया के निवासियों की संख्या के लगभग है। योरप में आस्ट्रिया एक बहुत बड़ा देश है। मर्दुमशुमारी से सिद्ध है कि पूर्वी हिंदी के कुल बोलनेवालों की संख्या आस्ट्रिया के निवासियों से अधिक है। कुछ ठिकाना है। इस देश के छोटे-छोटे प्रान्तों में योरप के कई देश समा जाते हैं।

अवधी का नाम बैसवारी भी है, क्योंकि वह बैसवारे ही में सबसे अधिक बोली जाती है। जिस प्रान्त में बैस शाखा के क्षत्रिय अधिक रहते हैं उसका नाम बैसवारा है। लखनऊ, रायबरेली और उन्नाव के जिलों में इस शाखा के क्षत्रियों की अधिकता है। डाक्टर साहब ने फतेहपुर का भी नाम दिया है। परन्तु हम अपने अनुभव से कह सकते हैं कि बैसवारे की और फतेहपुर की बोली में अन्तर है। पर व्याकरण सब कहीं का प्रायः एक ही है। अवध की बोली में जिन्होंने आज तक कविता की है उनमें तुलसीदास को ग्रियर्सन साहब बहुत बड़ा ग्रन्थकार मानते हैं। उनकी राय है कि किसी समय दुनिया भर के आदमी एकमत होकर तुलसीदास का नाम उसी रजिस्टर में लिखेंगे जिसमें जगत् के सबसे बड़े कवि और ग्रन्थकारों का नाम दर्ज है। इसमें कोई सन्देह नहीं। हम भी ऐसा ही समझते हैं। हमारी भी वही राय है। इस बोली में जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं और जितनी कविता हुई हैं न तो उतनी पुस्तकें ही हिंदी भाषा-भाषियों की और किसी बोली में लिखी गईं और न उतनी कविता ही हुई है। कई अँगरेज और फरासीसी ग्रन्थकारों ने इस बोली पर प्रबन्ध लिखे हैं।

बघेली का महात्म्य अवधी की अपेक्षा बहुत कम है। उसमें अच्छी-अच्छी जितनी पुस्तकें बनी हैं सब प्रायः रीवाँ में बनी हैं। रीवाँ के ही दरबार में विद्वानों और कवियों का आदर अधिक होता रहा है। १५६३ ईसवी में प्रसिद्ध तानसेन महाराजा रामचन्द्र के यहाँ थे। असनी के हरिनाथ का भी इस दरबार में खूब सम्मान हुआ था। महाराजा विश्वनाथसिंह स्वयं अच्छे कवि थे, इसलिए कवियों और पंडितों की उन्हें बड़ी चाह थी। उनका बनाया हुआ आनन्दरघुनन्दन नाटक प्रसिद्ध है। महाराजा रघुराज-सिंह ने तो काव्यप्रियता में सबसे अधिक नाम पाया।

उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। उनका जिकर सरस्वती में हो चुका है। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ आनन्दाम्बुनिधि नामक भागवत पुराण का अनुवाद है। एक पादरी साहब ने बाइबिल का अनुवाद बघेली बोली में किया है। पादरी के लाग ने भी अपने हिंदी व्याकरण में इस बोली के विषय में कुछ लिखा है।

छत्तीसगढ़ी बोली की कई शाखायें हैं। जंगली अनार्य भी आर्यों की बोली बोलने लगे हैं। परन्तु इस प्रयत्न में वे अच्छी तरह कामयाब नहीं हुए। उनकी बोली आर्य और अनार्य बोलियों की खिचड़ी हो गयी है। बिंझवारी, भुलिया और बैंगानी आदि बोलियाँ उनमें मुख्य हैं। छत्तीसगढ़ी में नाम लेने योग्य भाषा-साहित्य नहीं है। वहाँके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गीत और किस्सों को बाबू हीरालाल काव्योपाध्याय ने अपने व्याकरण में लिखा है। यह व्याकरण छत्तीसगढ़ की बोली का है।

डाक्टर साहब ने जो नमूने दिये हैं उनमें से बैसवारे की बोलियों के नमूनों को हमने ध्यान से देखा। हमारी जन्मभाषा बैसवारी ही है। इसीलिए हमने औरों की अपेक्षा उसीके नमूनों का विशेष विचार किया। इससे हमारा यह सिद्धान्त हुआ कि जिन लोगों ने डाक्टर साहब को ये नमूने भेजे हैं या तो उनका इस प्रान्त से बहुत ही कम सम्बन्ध था, या उन्होंने ठीक-ठीक नमूने एकत्र करने की ओर यथोचित ध्यान ही नहीं दिया। क्योंकि इन नमूनों में फरक जान पड़ता है।

जिस बोली के वे नमूने हैं उसे लोग ठीक वैसा नहीं बोलते। सम्भव है, इस प्रकार की गड़बड़ और बोलियों के नमूने देने में भी हुई हो। हमारा इतना सौभाग्य कहाँ कि इस लेख को परम विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सन साहब देखें। वे न सही, और ही लोग शायद इस पर विचार करें। अतएव हम बैसवारी बोली के एकआध नमूने की आलोचना करना चाहते हैं।

अवधी बोली देहात में कई प्रकार के अक्षरों में लिखी जाती है। उन अक्षरों का सर्वसाधारण नाम कैथी है। परन्तु सब अक्षर एक से नहीं होते। उनमें अक्सर थोड़ा-बहुत भेद होता है। अतएव डाक्टर साहब को चाहिए था कि उन सब लिपियों के भी नमूने वे इस पुस्तक में देते। गोंडा जिले की एक लिपि का जो नमूना उन्होंने दिया है वह काफी नहीं है। ऐसे कितने ही नमूने इस लिपि के हैं। और और भाषाओं की प्रायः सभी लिपियों के नमूने आपने और-और जिल्दों में दिये हैं। पर नहीं मालूम अवधी और बुंदेलखंडी के दो-चार नमूने आपने क्यों नहीं दिये? शायद मिले ही न हों। या उनके लिए कोशिश ही न की गयी हो। या किसी ने आपसे कह दिया हो कि और कोई नमूने ही नहीं हैं। खैर।

डाक्टर साहब कहते हैं कि रायबरेली जिले में वही बोली बोली जाती है जो प्रतापगढ़ जिले के पश्चिम में बोली जाती है। फरक इतना [illegible] रायबरेली [illegible] बोली में उर्दू के शब्द और मोहाविरे अधिक हैं। क्योंकि यह जिला लखनऊ से मिला हुआ है। डाक्टर साहब की इस राय से हम सहमत नहीं। रायबरेली का जो भाग प्रतापगढ़ से मिला हुआ है उसकी बोली में विशेष अन्तर नहीं है। परन्तु रायबरेली जिले के और भागों की बोली पश्चिमी प्रतापगढ़ की बोली से बहुत अधिक भेदभाव रखती है। रायबरेली बैसवारे का केन्द्र है। इससे साहब को चाहिए था कि यहाँकी बोली के विषय में वे अधिक छानबीन करते। जिले के हाकिमों ने न मालूम किस आधार पर उन्हें लिख दिया कि प्रतापगढ़ और रायबरेली की बोली प्रायः एकसी है। हम अपने घर में रायबरेली की बोली कोई ३७ वर्ष से बोलते हैं। अतएव हम अपने तजरुबे और अपनी निज की गवाही के आधार पर कह सकते हैं कि डाक्टर साहब की राय सही नहीं है। डाक्टर साहब को इस विषय में इतना भ्रम हो गया है कि उन्होंने राय-बरेली, अर्थात् बैसवारी बोली के केन्द्रस्थल का एक भी नमूना देने की जरूरत नहीं समझी। पश्चिमी प्रतापगढ़ की जिस बोली को उन्होंने रायबरेली की भी बोली बतलायी है उसका उन्हींका दिया हुआ नमूना नीचे देकर हम उसके बराबर-बराबर उसका सही रूप देते हैं। पाठक देख लें कि दोनों में कितना अन्तर है।

प्रतापगढ़ के पश्चिम की अवधी बोली का नमूना:—

याक घरे—माँ कथा कही जात—रही। पण्डित जौ कथा कहत रहें सगरे गाँव--का न्योतिन—रहे। सुनवैयन-म याक अहिरौ आवत—रहै। ऊ कथवा सुनती बेरा र्वावै बहुत करै और पण्डितौ वहि-का प्रेमी जान कै वहि का नीकी तना बैठावें और खूब खातिर करैं। याक दिना पण्डितौ पूँछिन कि राउत तूँ र्वावत बहुत हौ तुम-का काऊ समुझ परत—है। तौ अहिरवा औरो सेवाइ र्वावै लाग औ कहिस कि महराज मोरे याक भैंसि विआन रही। कुछ बगद गवा और ऊ बहुतै बेराम हुई-रही। औ पड़ौना-का नेकचाई न देत रही। तौ पड़ौना दिन भर चिच्यान औ सांही जूनी मर गा। तौन पण्डित वहै को नाइं तु हूँ दिना में चुकरत-रहत-हौ। मैं-का डे लागत--है कि कतहूँ तुहूँ न ओकरी नाई मर जा।

रायबरेली की बोली का नमूना:—

याकन के घरमां कथा होति रहै। उन गाँव भर का न्यौता दीन रहै। सुनवैयन मां एकु अहिरौ रहै कथा सुनै की बेरिया वहु र्वावा बहुत करें। जी पण्डित कथा बाँचति रहैं उइ वहिका प्रेमी जानि कै निकी तना बैठावें औ खुब खातिर करैं। याक दिन पण्डित पूँछिन कि भगानि भाई तुम यतना र्वावति काहे का हौ। तुम का का जानि परत है। यह सुनि कै अहिरवा औरौ ज्वार ज्वार र्वावै लाग। वह ब्वाला कि महराज मोरे एक भैंसि बियानि रहै। वह नजरयाय गै औ पड़ौना का नगच्याय न देइ। पड़ौना दिन भरि चिल्लान और संझा [illegible] की तना पंडित तुमहूँ दिन भरि

चिल्लाति हौ। यहि ते महिका डेरु लागत है कि कतौं तुमहूँ ना वही की नाहित मरि जाव।

इससे यह साफ जाहिर है कि जो नमूना साहब ने दिया है उससे रायबरेली की बोली नहीं मिलती। पिछली बोली का तरीका ही जुदा है—उसमें उ और वा की बहुत अधिकता है। उर्दू के शब्द उसमें एक ही दो हैं। सो भी अपभ्रंश के रूप में।

यही दशा लखनऊ के जिले की बोली की भी है। उसके नमूने साहब ने हिन्दी लिपि में नहीं दिये, क्योंकि वे उर्दू में लिखाकर साहब के पास भेजे गये थे। आपने उनका रूपान्तर अँगरेजी लिपि में ही देकर संतोष किया है। पंडित श्यामबिहारी मिश्र लखनऊ जिले के रहनेवाले हैं। साहब के दिये हुए एक नमूने को अब मिश्रजी के नमूने से मिलाइए।

लखनऊ की (और बाराबंकी की भी) अवधी बोली का एक नमूना (डाक्टर साहब का दिया हुआ)

याक गाँव मा याक लम्बरदार के नान्ह सारी बिटीवा रहै। जब व-की उमर सोरह-सतरह बरिस-के भैं, वह जून लम्बरदार का वहके वियाह की फिकिर बाढ़ी। वह बेरिया नाऊ बाम्हन कै बोलाय-कै लड़िकवाका ढूढ़ै पठयन। थोड़े दिननमा याक लड़िका मिला। वह के साथ बिटीवा कै बनावन्त बना, और बाम्हन पूछा गवा, और वियाह की तैयारी भै। लड़िकवा-कै बाप आवा और लेय-देय के पाछे बत-कहाव होय लाग। हजार रुपैया बहुत कहे सुने तैभवा। तब लम्बरदार राजी-खुशी-से घर गैं और बरात कै दिन बदा गा। दुलहाके बाप पन्दरह हजार सवाग लै-कै बड़ी धूम-धाम से दुलहिन-के घरे आवा और द्वारे-चार होय लाग। होम दच्छिना-के मागे-मा पण्डितसे तकरार भै, लाठी चलै लाग। बहुत मनई दूनौ कैत घायल भयन। तब बरात रिसाय चली। वहि समय मा गाँव के भले-मानुस यकट्टा-होइ-कै बरात मनाय लायन। चौथे दिन बियाह भवा और भात्त बढ़ार खुसी-से खायन। और बिदा-होय-कै अपने घर आयन।

लखनऊ की ठीक अवधी बोली का नमूना (पंडित श्यामबिहारी का दिया हुआ)

याक गाँव में याकै लम्बरदार के नान्हिसरी बिटिया रहै। जब वहिकी उमिरि स्वारा-सत्रह बर्स कि भै तब लम्बरदार क वहि के विवाह के फिकिर बाढ़ी। वहे बेरिया नाऊ बांमन क बोलाय क लरिका ढूंढ़ै पठइनि। थोड़े दिनन में एकु लरिका मिला। वहि से बिटेवा क बनाबन्तु बना और बाँमनु पूंछा ग औ बियाहे कि तैयारी भै। लरिका क बापु आवा और ले दे क बतकहाव होइ लाग। हजार रुपया बहुतु कहे सुने ठीक भै। तब लम्बरदार राजी खुसी ते घरै गे और बरात क दिनुबदा ग। दुलहा का बापु १५ हजार बराती लैके बड़ी धूम-धाम ते दुलहिनि के घरै आवा औरु दुआरे के चारु होइ लाग। होम दच्छिना के मागै मैं पण्डित के तकरार ह्वैगे और लाठी चले लागि। बहुत मनई दूनो कैती घायल भे। तब बरात रिसाय चली। वहे बिरिया गाँव के भलेमानुस यकट्टा ह्वै कै बरात मनाय लाये। चौथे दिन बिवाहु भ औ खुसी से खायन; और बिदा होय कै अपने घर आयन। बराती ल्वाग भातु बढ़ार खुसी ते खायन और बिदा ह्वे कै अपने घरै आये।

ईश्वर करे यही दशा और और बोलियों की भी न हुई हो। परन्तु इसमें डाक्टर साहब का दोष कम है। जैसे नमूने उनको मिले वैसे उन्होंने दे दिये। अधिक दोष जिले के अफसरों और नमूना भेजनेवालों का है। मुमकिन है, इस ऊपर के नमूने की बहुत-सी गलतियाँ फारसी लिपि के कारण हुई हों। 'लागि' में नीचे जेर के छूट जाने से लाग हो जाना कोई बात ही नहीं है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने लखनऊ जिले की बोली के दो नमूने दिये हैं। ऊपर का नमूना जहाँ का है वहीं पं० श्यामबिहारी जी का घर है। अतएव उनका नमूना डाक्टर साहब के नमूने से जरूर अधिक प्रमाणिक है। डाक्टर साहब के नमूने में शब्द गलत हैं; वाक्य गलत हैं और वाक्यों का क्रम गलत है। जिस प्रान्त का नमूना है उसमें "सवांग" शब्द बोला ही नहीं जाता। 'वह के साथ बिटीवा कै बनावन्त पहिले ही बन गया: 'ब्राह्मण पूँछा गवा' उसके बाद। "और बियाह की तैयारी" पहिले ही हो गयी: लेन-देन की बात का फैसला हुआ पीछे। न मालूम किसने ऐसी उल्टी सीधी बातों से भरा हुआ बे सिर पैर का नमूना भेजा है। डाक्टर साहब तो हिन्दुओं के रस्म जानते होंगे। उनको चाहिए था वे ऐसी बेतरतीब और बेहूदा बातें नमूने में न आने देते। जो विवाह एक हजार रुपये में ठहरता है भला उसमें कहीं पन्द्रह हजार बराती आते हैं? यदि १५ हजार रुपये में भी कोई विवाह ठहरे तो भी शायद ही इतने आदमी उसमें आवें। इस तरह के कथन एक प्रलाप मात्र हैं। फिर कहीं शायद एक ही आध विवाह ऐसा होता होगा जिसमें लाठी चलती हो। अतएव उसके जिक्र की इस नमूने में क्या जरूरत थी? इसे पढ़कर विदेशियों के मन में यह सन्देह हो सकता है कि शायद हिन्दुस्तान में ऐसी दुर्घटनाएँ बहुधा हुआ करती हों।

हमारी समझ में हिन्दुस्तानियों की सब बोलियों के ठीक-ठीक नमूने कोई नहीं दे सकता। एक जिले में कई प्रकार की बोलियाँ बोली जाती हैं। दो-दो चार-चार कोस पर बोलियाँ बदलती हैं। उनका भेद-भाव कोई कहाँ तक बतलावेगा?

यदि कदाचित् डाक्टर साहब के देखने में यह लेख आ जाय तो हमारी प्रार्थना है कि इस स्वल्प आलोचना के लिए वे हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

नवीन प्रकाशन

सफर के साथी--(एकांकी संग्रह) ले० श्री कणाद भटनागर। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ६, सजिल्द, मूल्य दो रुपये।

इस पुस्तक में श्री भटनागर के पाँच एकांकी संग्रहीत हैं। इसका नामकरण पहिले एकांकी के नाम पर किया गया है। ये एकांकी सामाजिक विषयों पर हैं और बड़े मनोरंजक ढंग से लिखे गये हैं। वार्तालाप चटपटे और संगत हैं। इन एकांकियों का विशेष गुण यह है कि ये बड़ी आसानी से खेले जा सकते हैं और इनसे दर्शकों का काफी मनोरंजन हो सकता है। स्कूलों, कालिजों तथा नगरों के नाट्य समाजों के खेलने के लिए ये एकांकी बहुत उपयुक्त हैं। इन्हें केवल पढ़ने से भी पाठकों का काफी मनोरंजन होगा।

कहानियाँ--श्री विनोद शंकर व्यास। प्रकाशक, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। सजिल्द, बड़ा आकार पृष्ठ-संख्या ४०० मूल्य ८)।

श्री विनोदशंकर व्यास काशी की पिछली पीढ़ी के प्रसिद्ध साहित्यिक और कहानीकार हैं। उन्होंने उस समय कहानी लिखना आरंभ किया जब हिंदी में नयी शैली की कहानियाँ लिखना आरंभ ही हुआ था। तब से अब तक हिंदी में कहानी की लेखन शैली में बड़ा परिवर्तन हो गया है और बड़ी उन्नति हो गयी है। किंतु उस आरंभिक काल के लेखकों ने, किसी पूर्व परम्परा के न रहते हुए जिस प्रकार हिंदी में कहानी लिखने की कला को आगे बढ़ाया, उसे देखकर उस समय के लेखकों की कल्पना, साहस और अध्यवसाय की प्रशंसा करनी पड़ती है। इस संग्रह में व्यास जी की ८० कहानियाँ संग्रहीत हैं। शायद यह उनकी कहानियों का पूरा संग्रह है। कहानियाँ मनोरंजक तो हैं ही, साथ ही लेखक के विभिन्न प्रयोगों और परिवर्तनशील चिंतन-क्षणों तथा भावनात्मक संघातों का भी परिचय देती हैं। पाठकों को इसमें कुशल कहानीकार की विविध प्रकार की कहानियों का संग्रह मिलेगा। अधिकांश कहानियाँ भावना प्रधान हैं और पाठक के हृदय पर चोट करती हैं। आरंभ में कहानियों का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है।

चतुरसेन शास्त्री का सम्पूर्ण कहानी साहित्य--भाग १, 'बाहर भीतर' (मूल्य चार रुपया) भाग २ 'दुखवा मैं कासे कहूँ' (मूल्य चार रुपये)। प्रकाशक, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली। दोनों भाग सजिल्द।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री सिद्धहस्त कहानी-लेखक और उपन्यासकार थे। अपने जीवनकाल में वे हिंदी के प्रथम पंक्ति के लेखक माने जाते थे। उनकी कहानियाँ जगह-जगह बिखरी पड़ी थीं। राजपाल कम्पनी ने उनके जीवनकाल ही में इन बिखरी हुई कहानियों को एकत्र कर पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की योजना बनायी थी किंतु खेद है कि ये संग्रह उनके जीवन काल में प्रकाशित न हो सके। उनके भाई श्री चंद्रसेनजी ने इस संकलन का कार्य पूरा किया। शास्त्रीजी ने इस संकलन के लिए जो भूमिका लिखी थी, वह प्रथम भाग के आरंभ में छाप दी गयी है। उसमें शास्त्रीजी ने अपनी कहानियों के संबंध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। इस भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व है। शास्त्रीजी की कहानियों के "प्लाटों" के संबंध में साहित्य जगत् में नाना प्रकार की खुली और छिपी चर्चा हो चुकी है। इस भूमिका से उस विषय पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है।

शास्त्रीजी ने अपने जीवनकाल में लगभग साढ़े चार सौ कहानियाँ लिखी थीं। प्रथम भाग में १८, और दूसरे भाग में २६ कहानियाँ संग्रहीत हैं। प्रत्येक भाग में २५० से अधिक ही पृष्ठ हैं। इस हिसाब से शास्त्रीजी के केवल कहानी साहित्य को प्रकाशित करने के लिए २० जिल्दों की आवश्यकता होगी। शास्त्रीजी इतने महत्त्वपूर्ण लेखक थे कि उनकी कहानियों का ऐसा संग्रह आवश्यक ही नहीं वह हिंदी कथा साहित्य को निश्चय ही समृद्ध करेगा।

शास्त्रीजी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने कहानियाँ भी नाना शैलियों में, नाना विषयों पर और नाना प्रकार से लिखी हैं। इन दो भागों में ही उनकी ऐतिहासिक, सामाजिक, समस्यामूलक, राजनीतिक, भाव प्रधान तथा कौतुक-प्रधान कहानियों के नमूने संग्रहीत हैं। शास्त्रीजी को इतिहास में बड़ी रुचि थी और वे विचारक भी थे। अतएव उन्होंने कितनी ही ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं जिनमें उन्होंने तत्कालीन समस्याओं की व्याख्या की तथा अपनी दृष्टि से पात्रों का चरित्र-चित्रण किया। इस छोटी सी परिचयात्मक समालोचना में वह संभव नहीं है कि उनकी कहानियों का विश्लेषण या उनकी विशद आलोचना की जा सके। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त है कि हिंदी के विद्वानों, पुस्तकालयों और कहानी प्रेमियों को शास्त्रीजी के इस कहानी-साहित्य का संग्रह अवश्य करना चाहिए। वह पठनीय है, मनोरंजक है और ज्ञानवर्द्धक है। हिंदी कहानी साहित्य के इतिहास में इसका स्थायी स्थान है।

पगडंडी--मूल लेखक, रवीन्द्रनाथ टागोर। अनुवादक, श्री देवीप्रसाद। प्रकाशक, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली। सजिल्द, मूल्य, ३ रुपये।

यह रवीन्द्रनाथ की 'लिपिका' का अनुवाद है। इसमें उनकी ३८ लघु कथाओं का संग्रह है। ये लघु कथाएँ कहानियाँ होते हुए भी आज के स्वीकृत

अर्थ में कहानियाँ नहीं हैं। ये लघु कथाएँ कलात्मक ढंग से एक-दो पृष्ठों में कही गयी हैं, और इस कलापूर्ण रीति से कही गयी हैं कि कथा समाप्त करते-करते पाठक कवि द्वारा इंगित किये विचार में उलझकर चिंताशील हो जाता है। ज्यों-ज्यों वह सोचता है त्यों-त्यों उसे कथा की मार्मिकता का पता लगता है। यह अपनी शैली की एक ही पुस्तक है और गंभीर व्यक्तियों के पढ़ने योग्य है। साथ ही इसमें रवीन्द्रनाथ की काव्यात्मक भाषा और अनुपम शैली का भी आनन्द मिलता है।

हिंदीनव लेखन—डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी। प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुंड रोड, वाराणसी। सजिल्द, मूल्य, चार रुपये।

इधर पिछले प्रायः पंद्रह वर्षों से हिंदी के तरुण लेखक पश्चिम के युद्धोत्तर साहित्य और उसकी मान्यताओं से विशेषरूप से प्रभावित हुए। आज के युग में संचार के साधनों की उन्नति के कारण संसार के मनुष्य एक दूसरे के बहुत निकट आ गये हैं और बुद्धिवादी संसार में अद्भुत विचारसाम्य और दृष्टिकोण की एकता आ गयी है। अवश्य ही उनके सम्प्रदाय हैं, किंतु इन सम्प्रदायों में भी संसारव्यापी एकता दिखलायी पड़ती है। इन लेखकों के साहित्य को लेखक ने "नव लेखन" का नाम दिया है। इस पुस्तक में लेखक ने बड़ी योग्यता और सहानुभूति के साथ "उसकी रचनात्मक प्रक्रिया के समवर्ती रहकर उसके मूल्यों, प्रतिमानों के आकलन तथा भावबोध के स्तरों को उद्घाटित करने का" सफल प्रयास किया है। 'नवलेखन' के बारे में साधारण पाठकों को ही नहीं, बहुत से लेखकों को भी, ठीक-ठीक जानकारी नहीं। इस पुस्तक से उसके स्वरूप, उसके उद्देश्यों और उसकी 'टेक्नीक' का अच्छा और अधिकृत परिचय मिलता है। इसके पढ़ने से 'नवलेखन' को तथा नये लेखकों के दृष्टिकोण को समझने में बड़ी सहायता मिलेगी।

सूने आँगन रस बरसै—(कहानी संग्रह) श्री लक्ष्मीनारायण लाल। प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुंड रोड, वाराणसी। सजिल्द। मूल्य, तीन रुपये।

आधुनिक कहानी-लेखकों में श्री लक्ष्मीनारायण लाल का विशेष स्थान है। हिंदी कहानी लेखकों में उनका स्थान सुनिश्चित हो गया है। उसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने पिछले दस वर्षों में बहुत अधिक कहानियाँ लिखी है (वैसे भी उनकी संख्या कम नहीं है), किंतु उसका कारण यह है कि उनकी शैली अत्यंत चित्ताकर्षक है और उनकी कहानियों में धरती की सोंधी सुगंध आती है। वे साधारण जीवन का चित्रण करते हैं, किंतु अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण की सर्चलाइट को मर्मस्थलों पर इस प्रकार केंद्रित करते हैं कि पाठक को बिना विशेष प्रयास के कहानी का चरम उद्देश्य और सौंदर्य झलक जाता है। उनमें आंचलिकता होते हुए भी, आंचलिकता का "फंड" नहीं है। कहानियों में काव्य की सरसता और निर्झरिणी का प्रवाह है। इसलिए इस संग्रह की १४ कहानियों में से प्रत्येक एक नगीना है। इस अल्प परिचय में अलग-अलग कहानियों की आलोचना संभव नहीं है। वह फुर्सत का काम है। किंतु हम कहानी-प्रेमी पाठकों से आग्रह करेंगे कि वे इस संग्रह को अवश्य पढ़ें। उन्हें इनमें अनोखी ताजगी, स्वाभाविकता और सहज गति मिलेगी।

नई पीढ़ी, नई राहें—(कविता) ले० रामकुमार चतुर्वेदी। प्रकाशक, आत्माराम एंड सन्स। कश्मीरी गेट, दिल्ली। मूल्य, ढाई रुपये।

मध्य प्रदेश के तरुण कवियों में श्रीरामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल' का विशेष स्थान है। कवि सम्मेलनों में वे अत्यंत लोकप्रिय हैं। किंतु उनमें काव्य की ऊँचे दर्जे की प्रतिभा है और उनके संचेत्य हृदय पर जो वस्तु चोट करती है उसकी अनुभूति को वे कविता में मूर्त कर देते हैं। वे ऐसी भी कविताएँ लिखते हैं जिन्हें 'मांसल' कहा जा सकता है, और ऐसी भी लिखते हैं जिनमें मानवता का चीत्कार, तरुणाई का ओज, अन्याय और अत्याचार के प्रति विद्रोह मुखर हो उठता है। इस संग्रह की भूमिका डा० बृंदावनलाल वर्मा ने लिखी है। उसमें उन्होंने बड़ी सहृदयता से कवि का मूल्यांकन किया है। इस संग्रह में उनकी २४ कविताएँ संग्रहीत हैं। ये प्रायः सभी विचारोत्तेजक हैं और प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से वर्तमान समस्याओं और स्थिति पर लिखी गयी हैं तथा उनमें कवि का दृष्टिकोण परिलक्षित है। ये ओजपूर्ण, सरस और विचारोत्तेजक हैं।

तुलसीदल (मासिक पत्र) सम्पादक—डा० राजेश्वर गुरु तथा डा० व्रजवासी लाल श्रीवास्तव। प्रकाशक, श्री जगतपाल मिश्र, मानस प्रेस, इब्राहीमपुरा, भोपाल। एक अंक की पृष्ठ-संख्या ६०। वार्षिक मूल्य, पाँच रुपये।

तुलसीदास और रामचरितमानस के विचारों और आदर्शों के प्रचार के उद्देश्य से इस मासिक पत्र का प्रकाशन आरंभ किया गया है। इसके ११ अंक अभी तक निकल चुके हैं जो हमने देखे हैं। इसके सम्पादन परामर्शदाता श्री गुलाबराय जी, पं० परशुराम चतुर्वेदी और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी हैं। विद्वान् सम्पादक स्वयं भी इस विषय के अधिकारी पंडित हैं। इसलिए यह मासिक पत्र बड़ी सफलता से निकल रहा है। इसमें तुलसीदास तथा रामचरितमानस संबंधी विविध विषयों पर विद्वत्तापूर्ण और विचारोत्तेजक लेख रहते हैं। यह देखकर प्रसन्नता हुई कि इसे हिंदी के कितने ही गंभीर और चिंतनशील लेखकों का सहयोग प्राप्त है। प्रथम वर्ष में उसकी गतिविधि देखकर हमें विश्वास है कि यह पत्र जनता में तुलसीदास के कल्याणकारी विचारों का प्रचार करने का काम बड़ी तत्परता और योग्यता से करेगा। यह व्यावसायिक पत्र नहीं है। इसके निकालनेवाले सेवाभाव से रामचरितमानस के संदेशों का जनता में प्रचार करना चाहते हैं। हम इस पत्र का अभिनंदन करते और इसकी सफलता एवं अधिकाधिक प्रचार की कामना करते हैं।

'मालवीय जी अपना पुराण सुनायेंगे'

इस समय देश भर में त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू की जन्म शताब्दी मनाई जा रही है। इस अवसर पर उनके सम्बन्ध में निम्न संस्मरण सरस्वती के पाठकों के लिए मनोरंजक होगा :

बात उस समय की है जब इलाहाबाद आज जैसा उपेक्षित न होकर देश भर की राजनीतिक चेतना का केन्द्र बना हुआ था। पं० मोतीलाल नेहरू, पं० मदन मोहन मालवीय, सर तेजबहादुर सप्रू और सर सी० वाई चिंतामणि जैसे दिग्गज नेता वहाँ विद्यमान थे। अखिल भारतीय कांग्रेस का दफ्तर भी वहीं स्वराज्य भवन में स्थित था और वहाँ आये दिन किसी न किसी सभा का आयोजन हुआ करता था। एक दिन ऐसी ही एक सभा मोतीलालजी के सभापतित्व में चल रही थी। मंच पर अन्य नेताओं के अतिरिक्त महामना मालवीयजी भी मौजूद थे। उन्हें सभा के निर्धारित कार्यक्रम में अपने नेतृत्व की गुरुता और गरिमा के अनुरूप सबसे अन्त में भाषण देना था। मालवीयजी का भाषण सदैव विशुद्ध और धाराप्रवाह हिन्दी में, काफी लम्बा तथा धार्मिक मान्यताओं से ओतप्रोत हुआ करता था। इसीकी ओर मीठा व्यंग करते हुए सभापति मोतीलालजी ने मालवीय जी के बोलने का समय आने पर उपस्थित जनता से मुस्कराते हुए कहा––'अब मालवीयजी महाराज अपना पुराण सुनायेंगे।' मालवीयजी भी जैसे इस चुटकी का उत्तर देने के लिए तैयार ही बैठे थे। बोलने के लिए उठते हुए उन्होंने सभापति मोतीलालजी को संबोधित करते हुए कहा––"हाँ, मोतीलालजी, मेरा पुराण ध्यान से सुनना। निष्ठापूर्वक पुराण सुनने से तुम्हारा भी कल्याण ही होगा।"

सिगरेट के धुएँ की महिमा

पचास-साठ वर्ष पहिले इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा का केन्द्र आगरा था। बा० वृन्दावनलाल वर्मा अपनी एल० एल० बी० की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आगरा कालिज ही में भरती हुए थे। वहाँ उनका परिचय स्व० पं० बद्री-नाथजी भट्ट से हो गया और धीरे-धीरे दोनों में बड़ी घनिष्ठता हो गई। उन दिनों विश्वविद्यालय की सभी परीक्षाएँ इलाहाबाद में ही हुआ करती थीं। वर्माजी एल० एल० बी० की परीक्षा देने इलाहाबाद गये। परीक्षा समाप्त होने पर अपना सामान आदि लेकर घर (झांसी) जाने के लिए आगरा पहुँचे। किंतु होस्टल खाली हो चुका था। वर्माजी ने सोचा कि गोकुलपुरे में भट्टजी के यहाँ चलकर दो एक दिन उनका सत्संग किया जाय।

वर्माजी और भट्टजी में बड़ा प्रेम था। किंतु ए[illegible] बात में दोनों एक दूसरे से विपरीत थे। वर्मा[illegible] सिगरेट बहुत पीते थे। उन्हें सिगरेट की प्रायः '[illegible] सी पड़ गयी थी। भट्टजी को सिगरेट से उतनी [illegible] अधिक चिढ़ थी। इस बारे में दोनों में कभी एक म[illegible] नहीं हो पाता था।

जब वर्माजी भट्टजी के यहाँ पहुँचे तो वे बैठ[illegible] में बैठे हुए थे। गोकुलपुरे की एक सँकरी गली में [illegible] बैठक थी। जैसा कि पुराने शहरों में होता है, बैठक [illegible] किनारे किनारे मुहल्ले भर की गन्दगी लिये हुए नाली बह[illegible] थी। पड़ोस में कितनी ही मोरियाँ थीं। बैठक में पहुँच[illegible] ही भट्टजी ने उनका स्वागत किया और कौन से प[illegible] कैसे थे और कैसे किये, इसकी चर्चा छिड़ गयी। वर्मा[illegible] ने स्वभाव के अनुसार सहज भाव से जेब से सिगरेट [illegible] डिबिया निकाली और दियासलाई। वे बातें भी कर[illegible] जाते और सिगरेट का आनन्द भी लेते जा रहे थे, औ[illegible] बड़ी निश्चिन्तता से कमरे में उसका धुआँ फेंक रहे थे[illegible] थोड़ी देर में सारा कमरा सिगरेट की गन्ध से मह[illegible] उठा। कुछ देर तो भट्टजी ने संयम रखा, किंतु सिग[illegible] की गन्ध के कारण उनकी नाक में सिकुड़न आ गयी[illegible] अब वर्माजी का ध्यान उस ओर गया और उन्हें य[illegible] आया कि भट्टजी को सिगरेट से कितनी घृणा है[illegible] उन्होंने कहा कि "भाई, क्षमा करना। आदत से लाच[illegible] हो गया हूँ।" भट्टजी ने बड़े शान्त भाव से कहा[illegible] 'कोई बात नहीं, कोई बात नहीं! मुझे तो इ[illegible] धुएँ से लाभ ही हुआ है।' यह सुनकर वर्माजी [illegible] आश्चर्य हुआ और वे सहसा कह बैठे, "इससे आप[illegible] लाभ! वह कैसे?" तब भट्टजी ने अपना चेहरा [illegible] गम्भीर बनाकर कहा, "आप देख ही रहे हैं कि [illegible] बैठक के आसपास कितनी गन्दगी और बदबूदार मोरि[illegible] और नालियाँ हैं। उनके कारण इस बैठक में बदबू [illegible] जाती है। आपकी सिगरेट का धुंआ उस सब ब[illegible] को जड़ मूल से दबाये दे रहा है। इसे लाभ नहीं तो [illegible] क्या कहूँगा?" भट्टजी ने सिगरेट के धुएँ की बदबू [illegible] नालियों की बदबू से अधिक तेज बतला कर जिस क[illegible] पूर्ण ढंग से व्यंग्य किया उसे समझ कर वर्माजी सहसा [illegible] जोर से हँस पड़े, और उन्होंने तुरंत सिगरेट खिड़की [illegible] बाहर फेंक दी। वर्माजी को इस प्रकार सिगरेट फें[illegible] देखकर भट्टजी भी हँस पड़े।

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

गरीबों का सखा, शैतानों का यम
और भारत का रबिनहुड
डाकू मोहन के
विचित्र अभियान

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १ से ८वें खण्ड तक प्रत्येक खण्ड का मूल्य १०) रु०। ९वें खण्ड का ५।।) रु०। दसवें खण्ड की सहायता से पढ़नेवाला पुस्तक में तुरन्त अपने मन के स्थल को ढूँढ़ लेता है। इस खण्ड का मूल्य ४।) रु०।

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

छप गया!

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, नई दिल्ली—हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है। आप लोगों ने इसकी तैयारी में परिश्रम किया है। छपाई आदि तो अच्छी होनी ही चाहिए, क्योंकि यह इंडियन प्रेस का प्रकाशन है। परिशिष्ट-स्वरूप. संविधान-शब्दावली जोड़ देने से इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है।

डॉ० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। संकलन-कर्त्ताओं ने परिश्रम और विवेक से इस कोश का सम्पादन किया है। अर्थ की स्पष्टता और सुबोधता की दृष्टि से इस कोश का विशेष महत्त्व है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' मैंने देखा। वह बहुत ही उपयोगी कोश है। परिश्रमपूर्वक संग्रह किया गया है। मूल्य भी अधिक नहीं रखा।

श्री विनयमोहन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय—राष्ट्रभाषा-प्रेमियों के लिए यह कोश उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। हिन्दी शब्दों के अँगरेजी पर्याय की सूची से भी पाठक लाभ उठा सकता है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा सङ्कलित इस सर्वोपयोगी कोश को अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की गई है। प्राचीन और अर्वाचीन गद्य-पद्य में प्रयुक्त होनेवाले अधिक-से-अधिक और नवीनतम शब्दों का इसमें समावेश किया गया है। कहावतें और मुहाविरे भी इसमें यथास्थान दिए गए हैं। कोश के अन्त में भारतीय संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत संविधान-शब्दावली भी दे दी गई है।

प्रख्यात विद्वानों की प्रस्तुत सम्मतियाँ ही यह साक्षी दे रही हैं कि 'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' प्रत्येक सार्वजनिक, शैक्षणिक और व्यक्तिगत वाचनालय तथा छात्रों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

महाकवि पं० सुमित्रानन्दन पन्त—इस कोश में मुझे प्राचीन व नवीन साहित्य में प्रयुक्त अनेक नवीन शब्दों का सफल संकलन मिला है। प्रादेशिक भाषाओं, अरबी, अँगरेजी के प्रचलित शब्दों का समावेश भी इसमें किया गया है। सन्देह नहीं कि यह कोश हिन्दी पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगा।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, भूतपूर्व राज्यपाल उत्तर प्रदेश—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' बहुत ही मूल्यवान् कोश है।

पं० रमेशदत्त पाठक, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, महाकौशल महाविद्यालय, जबलपुर—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' हिन्दी की एक भारी कमी की पूर्ति करता है। वह विद्यार्थियों एवं विद्वानों दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

रायबहादुर पं० लज्जाशंकर झा, आई० ई० एस० (अवकाश-प्राप्त)—प्रायः पचास हजार शब्दों का भारी कोश मैंने देखा और प्रसन्नता हुई कि हिन्दी भाषा में भारी-भारी कोश बनने लगे हैं। × × × हिन्दी राष्ट्रभाषा हो जाने के कारण ऐसे कोश की बहुत आवश्यकता थी।

साहित्यवाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश' छात्रों के लिए ही नहीं, साधारण पाठकों के लिए भी बड़ा उपयोगी है। हिन्दी साहित्य में प्रचलित सभी प्रकार के शब्दों के सरल, शुद्ध और स्पष्ट अर्थ दिए गए हैं। उसकी एक विशेषता यह भी है कि अन्त में अँगरेजी के उन पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्द दिए गए हैं, जो अब हिन्दी में प्रचलित हो रहे हैं और जिनका ज्ञान साधारण पाठकों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस एक कोश से ही हिन्दी-प्रेमी पाठकों की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सकती है।

पृष्ठ लगभग १६००; सजिल्द प्रति का मूल्य १४) रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

उपहार देने योग्य हमारे अनुपम प्रकाशन

नाटक प्रहसन

	रुपये
आधुनिक एकांकी—श्री वैकुण्ठनाथ दुग्गल	१·७५
सोहाग बिन्दी—श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी	१·२५
प्रेम-कसौटी—रा० ब० लाला सीताराम	१·२५
शकुन्तला-नाटक—राजा लक्ष्मणसिंह	१·२५
दयालु दयानन्द—श्री सुवर्णसिंह वर्मा	०·३१
वेणी-संहार—कविवर भट्टनारायण	१·२५
रणभेरी—श्री वैकुंठनाथ दुग्गल	१·००
स्वप्न वासवदत्ता—महाकवि भास	१·००
न्याय—श्री वीरदेव 'वीर'	१·२५
सन्त कबीर—प्रोफेसर साधुराम शास्त्री	०·७५
मझली महारानी—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी	१·७५
नाटक और नायक—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ६ भागों में प्रत्येक सजिल्द भाग	१·२५
रंगीन पर्दा—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	१·५०
शबरी अछूत—पं० गौरीशंकर मिश्र	१·००
बाल-नाटक-माला—श्री दशरथ ओझा	
पहला भाग	०·५६
दूसरा भाग	०·६२
तीसरा भाग	०·६९
चौथा भाग	०·७८
उत्सर्ग—पं० लक्ष्मणसिंह चौहान	१·७५
पुरु और एलेकजेण्डर—श्री हरिश्चन्द्र सेठ	१·००
मेवाड़-उद्धार—श्री चन्द्रशेखर पांडे	०·७५
तरल-तरंग—पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल	१·००
जौहर—श्री नारायण चक्रवर्ती	०·३७
संघर्ष—वीरदेव 'वीर'	१·७५
विवाह पत्र तथा अन्य प्रहसन—श्री एन० आर० टण्डन	[प्रेस में

सरस काव्य साहित्य

प्रतिमा—श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
वनवास—श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
लक्ष्मणशक्ति—श्री राजाराम श्रीवास्तव	०·७५
विजया—श्री 'अभिराम'	१·००
नव सतसई-सार—डा० कैलाशनाथ भटनागर	२·७५
चारण—पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी	२·२५

	रुपये
हल्दीघाटी—श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·७५
रूपान्तर—श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
तुमुल—श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
कुणाल—श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·००
युगाधार—श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·५०
भैरवी—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५
चित्रा—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·३१
वासन्ती—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·३१
वासवदत्ता—श्री सोहनलाल द्विवेदी	४·५०
विषपान—श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·००
चेतना—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
हँसो हँसाओ—श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·५०
प्रेमांजलि—ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
जगदालोक—ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
ग्रामिका—ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
मानवी—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
ज्योतिष्मती—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
सुमना—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
विश्वगीत—ठाकुर गोपालशरण सिंह	१·७५
गंगावतरण—श्री जगन्नाथदास रत्नाकर	१·२५
दैत्यवंश—श्री हरदयालुसिंह	३·५०
देव-दर्शन—श्री हरदयालुसिंह	२·००
विहारी-विभव—श्री हरदयालुसिंह	२·००
तक्षशिला—श्री उदयशंकर भट्ट	३·००
पद्य-समुच्चय—स्वर्गीय कामताप्रसाद गुरु	१·००
रवि बाबू के कुछ गीत—अनुवादक—श्री रघुवंशलाल गुप्त	२·५०
संक्षिप्त पद्मावत—रायबहादुर श्यामसुन्दरदास	२·५०
सीताराम-संग्रह—रायबहादुर लाल सीताराम	२·५०
ब्रज-सतसई—पं० रामचरित उपाध्याय	०·७५
बन्दना—श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'	२·००
सवेरा और साया—श्री विद्याभास्कर 'अरुण'	१·५०
कवि और छवि—श्री बालकृष्ण राव	२·००
रात बीती—श्री बालकृष्ण राव	३·००
अपराजिता—श्री रामेश्वरप्रसाद शुक्ल 'अंचल'	३·००
सुबहे वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त'	२·७५

पुस्तक	रुपये
संक्षिप्त सूरसागर—प्रो० वेणीप्रसाद	३·५०
सूर-संदर्भ—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	२·००
सुदामा के तंडुल—ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम'	१·५०
रानी दुर्गावती—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	१·२५
कश्मीर-विजय—श्री सत्यनारायण पाण्डेय	१·५०
बैरागी—श्री परमानन्द शर्मा	२·००
सरोज—श्री सोमेश्वर सिंह	२·००
शाहजादा खुसरो—कुँवर सोमेश्वर सिंह	२·२५
सिद्धान्त-समर—श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय	४·००
अवसाद—श्रीमती 'ममता'	१·२५
मधुमास—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	१·५०
बुन्देलखंडी लोकगीत—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	०·५०
महारथी—श्री मोहनलाल अवस्थी 'मोहन'	१ २५

सरस कहानी संग्रह

पुस्तक	रुपये
अनातोले फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ—श्री कान्तचन्द्र सोनरिक्सा	१·००
मास्टर साहब—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	०·५०
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ—अनुवादक : श्री धनञ्जय भट्टाचार्य	०·६२
कलियुग की कहानियाँ—श्री गौरीशंकर मिश्र	१·२५
पत्र-पुष्प—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी	२·००
गल्प-गवाक्ष—सम्पादिका : श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	१·५०
हवा का रुख—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी	१·५०
गल्प-तरंगिनी—श्री सन्तराम, बी० ए०	१·५०
दर्पण—श्री सत्यजीवन वर्मा	१·२५
कलंक—श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह	१·००
नये चित्र—श्री रामस्वरूप दुबे	१·२५
अमर ज्योति—श्री निशीयकुमार राय	१·००
सतमी के बच्चे—श्री राहुल सांकृत्यायन	०·४४
कागज की नाव—उमाशंकर शुक्ल	१·७५
ऊँचे और ऊँचे—वैकुण्ठनाथ मेहरोत्रा	२·००
भेड़ और मनुष्य—यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	१·७५
रंगीन डोरे—श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	२·२५
जासूसी कहानियाँ—श्री निशीथ कुमार राय	प्रेस में

जीवनचरित तथा आत्म-कथाएँ

पुस्तक	रुपये
बुद्धदेव—श्री शरतकुमार राय	१·७५
गोस्वामी तुलसीदास—डॉ० श्यामसुन्दरदास	१·५०
काठिया बाबाजी—श्री संतदास	१·२५
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ—पं० उमेशचन्द्र मिश्र	५·००
सरदार वल्लभभाई पटेल—श्री यज्ञदत्त उपाध्याय	०·५०
भारतीय रत्न—डा० किरणकुमारी गुप्ता	१·००
भारतमाता के पुजारी—श्री दशरथ ओझा	१·७५
भारत के धुरंधर कवि—लाला कन्नोमल	०·५०
कोविद-कीर्तन—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	१·००
क्रान्ति-दूत—श्री फकीरचन्द्र रस्तोगी	०·७५
चरितचर्या—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	१·२५
मैक्सिम गोर्की	३·००
कमाल अतातुर्क	०·३१
सम्राट् पंचम जार्ज—सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव	३·००
एक आत्मकथा	२·००
मेरी आत्मकहानी—डॉ० श्यामसुन्दरदास	२·००
मुदर्रिस की रामकहानी—श्री कालिदास कपूर	३·००

साहित्य-समालोचना

पुस्तक	रुपये
भाषा-रहस्य—डा० श्यामसुन्दरदास	५·५०
साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दरदास	५·५०
भाषा-विज्ञान—डा० श्यामसुन्दरदास	५·००
हिन्दी साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास	३·५०
रूपक रहस्य—डा० श्यामसुन्दरदास	३·००
संक्षिप्त पद्मावत—डा० श्यामसुन्दरदास	२·५०
निबन्ध-रत्नावली—(पहला भाग)—डा० श्यामसुन्दरदास	२·००
हिन्दी भाषा—डा० श्यामसुन्दरदास	२·००
गद्य कुसुमावली—डा० श्यामसुन्दरदास	१·२५
हिन्दी निबन्ध रत्नावली—डा० श्यामसुन्दरदास	२·७५
काव्य कला—श्री गोपाल लाल खन्ना	२·००
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—श्री गोपाललाल खन्ना	२·००
काव्य-कलाप—श्री गोपाललाल खन्ना	१·००
देव-दर्शन—श्री हरदयालुसिंह	२·००
मतिराम-मकरन्द—श्रीहरदयालुसिंह	१·२५
बिहारी-विभव—श्री हरदयालु सिंह	२·००
पूर्ण पराग—श्री हरदयालुसिंह	२·००
प्रतिष्ठान—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·००
परिव्राजक की प्रजा—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·५०
संचारिणी—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	२·५०
कवि और काव्य—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	२·००

	रुपये
निबन्ध-निचय—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	३·००
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	१·००
आलोचनांजलि—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	१·५०
कालिदास की निरंकुशता—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	०·५०
चिन्तामणि—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल	३·००
साहित्य-प्रकाश—डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	२·००
माधव मिश्र-निबन्ध-माला—साहित्यभूषण चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा	३·५०
विवेचनात्मक गल्प-विहार—संपादिका : स्वर्गीया सुभद्राकुमारी चौहान	२·००
भाषा-विज्ञान—डाक्टर मंगलदेव शास्त्री	६·००
प्रबन्ध प्रकाश—डा० मंगलदेव शास्त्री	
पहले भाग का	३·००
दूसरे भाग का	३·००
द्विवेदी-मीमांसा	२·५०
हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक चर्चा—पं० गंगाराम शर्मा	१·५०
कुमार सम्भव—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी	१·२५
यात्री—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	२·००
कुछ—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	१·५०
समीक्षा-दर्शन—श्री रामलालसिंह (प्रथम भाग)	६·००
(द्वितीय भाग)	४·००
सिद्धराज-समीक्षा—पं० ब्रजभूषण शर्मा	१·००
तुलसी के चार दल—श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी	
प्रथम भाग	३·००
द्वितीय भाग	२·७५
महाकवि अकबर—श्री 'वतन'	१·२५
हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि—डा० रामरतन भटनागर, एम० ए०, डी०, फिल०	४·००
प्राचीन हिन्दी काव्य—डा० रामरतन भटनागर, एम०, ए०, डी० फिल०	४·००
महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—गंगा प्रसाद पाण्डेय	२·७५
भारती-कवि-विमर्श—श्री रामसेवक पाण्डेय	३·००
मौलाना हाली और उनका काव्य—श्री ज्वालादत्त शर्मा	१·५०

	रुपये
अपभ्रंश-पाठमाला (प्रथम भाग)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
साहित्य-तरंग—आचार्य सद्‌गुरुशरण अवस्थी	५·००
विचार-तरंग	प्रेस में

विविध पुस्तकें

संक्षिप्त कर्मयोग	१·००
ऐतिहासिक भौतिकवाद—श्री मन्मथनाथ गुप्त और श्री रमेन्द्रनाथ वर्मा	६·००
मार्क्सवादी अर्थशास्त्र—श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल	२·००
हर्बर्टस्पेंसर की ज्ञेय मीमांसा	०·४४
मौलिकता—स्वर्गीय गोपाल दामोदर तामस्कर	०·३१
चरित्र-गठन—श्री जर्नादन झा	२·००
उद्‌बोधिनी—श्री सन्तराम	३·००
कर्त्तव्य शिक्षा—श्री ऋषिश्वरनाथ भट्ट	१·७५
अँगरेजी भाषा की शिक्षा—ई० एस० ओकली	२·००
भारत में पश्चिमी शिक्षा—पं० मनोहरलाल जुतशी और पं० काशीराम	०·५०
पारसी-परिचय—श्री कृपानारायण पाठक	०·७५
सुखमार्ग—पं० महेन्दुलाल	०·५०
अपनी बात—स्वर्गीय चन्द्रभूषण	०·७५
प्रेम-रहस्य—पं० रामचन्द्र शुक्ल'सरस'	२·००
अपनों की खोज में—बुकसेलर की डायरी : श्री रावी	१·००
लन्दन-पेरिस की सैर—श्री वेणी शुक्ल	२·००
स्वदेश-विदेश-यात्रा—श्री सन्तराम और श्रीमती रामेश्वरी नेहरू	१·७५
देशान्वेषण की सरल कथाएँ—श्री पी० एन० चक्रवर्ती और पं० लल्लीप्रसाद पाण्डेय	१·००
संसार का संक्षिप्त इतिहास—(दो भाग) प्रत्येक	४·००
पुरातत्त्व निबन्धावली—महापंडित राहुल सांकृत्यायन	२·७५
सचित्र भारत	१०·००
संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी—बृजकिशोर चतुर्वेदी	३·२५
भरत-दर्शन—झुन्नीलाल वर्मा	२·५०
प्रासंगिक कथाकोश—श्रीमती गुलाब मेहता	२·५०
विष्णु धर्मोत्तर में चित्रकला—श्री बी० एन० मालवीय	२·००
विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला—श्री बी० एन० मालवीय	४·००
प्लेटो का प्रजातंत्र—जावेट अनुवादक मिस विनीता वांचू	
भाग १	प्रेस में
भाग २	प्रेस में

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड प्रयाग

विज्ञान-भारती
प्रधान संपादक
आर० डी० विद्यार्थी
शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।
सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रति का ७५ नये पैसे
बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये
प्रकाशक : इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

सरस्वती
नवम्बर
१९६१
दीपावली अंक

अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

आदर्श
लिवर
टानिक
QUMARESH
The Oriental Research & Chemical

नया प्रकाशन :

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

विवेकानन्दजी के सान्निध्य में, सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य ६० नये पैसे। धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि विभिन्न विषयों पर स्वामी विवेकानन्दजी के उद्‌बोधक तथा स्फूर्तिदायक सम्भाषणों का संकलन।

देववाणी : सचित्र आकर्षक जैकेट सहित, मूल्य २·७५ नये पैसे। अमरीकी शिष्यों को आध्योत्मिक जीवन के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्दजी के अमृततुल्य उपदेश।

भारत में विवेकानन्द : स्वामीजी द्वारा भारत में दिये गये समग्र व्याख्यान ५);
विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप), शरच्चन्द्र चक्रवर्ती कृत, महान् शिक्षाप्रद संग्रह ५·२५;
चिन्तनीय बातें १·००;
विविध प्रसंग १·१२;
जाति, संस्कृति और समाजवाद १·२५;
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १·१५;
विवेकानन्दजी की कथायें १·६०;
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग १·२५;
पत्रावली (प्रथम भाग) ५·२५;
" (द्वितीय भाग) ४·२५;
कर्मयोग १·४०; भक्तियोग १·३७;
राजयोग २·५०; ज्ञानयोग ३·००;
प्रेमयोग १·३७; सरल राजयोग ०·५०;
हिन्दू धर्म १·५०; धर्मरहस्य १·२५;
धर्मविज्ञान १·६२; परिव्राजक १·२५;
भारतीय नारी ०·७५; शिक्षा ०·६२;
कवितावली ०·६२; मेरे गुरुदेव ०·६२;
मन की शक्तियाँ ·४०; हमारा भारत ०·५०;
विवेकानन्द-चरित : सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत, तृतीय संस्करण, ६·००

पॉकेट साईज पुस्तकें :
विवेकानन्दजी के उद्‌गार ०·६५;
शक्तिदायी विचार ०·६२;
मेरी समर नीति ०·६२;

श्रीरामकृष्ण-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत : 'म' कृत, 'निराला' द्वारा अनुवादित, श्रीरामकृष्णदेव के अमृतमय उपदेशों का अपूर्व संग्रह, तीन भागों में, पूर्ण, प्र० भा० ६), द्वि० भा० ६), तृ० भा० ७);

श्रीरामकृष्णलीलामृत : विस्तृत जीवन-चरित्र, गांधीजी द्वारा भूमिका सहित, दो भागों में, प्रत्येक भाग का मू० ५);

श्रीरामकृष्ण उपदेश : स्वामी ब्रह्मानन्द कृत, पॉकेट साइज, आकर्षक जैकेट सहित, ७५ न० पै०

माँ सारदा : श्रीरामकृष्णदेव की लीला-सहधर्मिणी का पावन जीवन-चरित्र, नयनाभिराम जैकेट सहित, ४·५०;

धर्म प्रसंग में स्वामी शिवानन्द : श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरङ्ग संन्यासी शिष्य द्वारा धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर वार्तालाप, दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २·७५;

परमार्थ प्रसंग : स्वामी विरजानन्दकृत, आर्ट पेपर पर छपी हुई, मूल्य ३·२५

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :— श्रीरामकृष्ण आश्रम (स), धन्तोली, नागपुर—१

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

भारतविख्यात वैद्यरत्न सत्यदेव द्वारा प्रस्तुत

रूपविलास कम्पनी कानपुर की कुछ औषधियाँ

लक्ष्मण धारा जिस घर में लक्ष्मण धारा रहता है उस घर के लोग बेफिक्र और सुखी रहते हैं। लक्ष्मण धारा की ३-४ बूंदें पानी में डालकर पीने से हैजा, कै, दस्त, पेट दर्द, जी मिचलाना, पेचिस, अतीसार, खट्टी डकारों का आना, बदहजमी, पेट फूलना, मंदाग्नि, कफ, खांसी, जुकाम, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। इसी के लगाने से चोट, मोच, सूजन, दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, पसली का दर्द, भिड़ मक्खी, बर्रे आदि के काटे का दर्द अच्छे होते हैं। लाखों गृहस्थ लक्ष्मण धारा का प्रयोग कर गृहस्थी सुखमय बना रहे हैं क्योंकि यह आकस्मिक दुर्घटना के कष्ट और रोगों से बचाता है। जिसे बुद्धिमान और दूरदर्शी गृहस्थ घरेलू चीजों की तरह मंगाकर हर समय अपने घरों में मौजूद रखते हैं। लक्ष्मण धारा खरीदते समय पैकेट पर लक्ष्मण धारा व रूपविलास कम्पनी का नाम अवश्य देख लें कहीं दुकानदार बदले में दूसरी नकली दवा तो नहीं दे रहा है। यह हर जगह मिलता है। न मिलने पर हमसे वी० पी० द्वारा मंगवा लें। मूल्य छोटी शीशी ।।।=) चौदह आना, बड़ी शीशी ३।) तीन रुपया चार आना डाकखर्च पृथक्।

बालको हर बच्चों का पौष्टिक और मीठा पेय है। बालको पर पलनेवाले बच्चे नीरोग और प्रसन्न चित्त रहते हैं इसके पिलाने से खून की कमी दूर होकर निर्बल व कमजोर बच्चे हृष्ट-पुष्ट व तन्दुरुस्त बनते हैं। इसलिये हर माता को चाहिए कि दैनिक-कार्य में अपने प्यारे बच्चे को "बालको" पिलाना कभी न भूलें। यह बच्चों को सूखा रोग से बचाता है और उनके दांत निकलने में कष्ट नहीं होता है। मूल्य प्रति शीशी १=) एक रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

दमे की दवा खांसी श्वास दमा को फायदा करता है। यह दवा श्वास की नली को साफ कर बलगम को बाहर निकाल कर दमे को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३=) तीन रु० दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास इसके लगाने से झाईं, रूसी, खुश्की, फुन्सी, बदरौनकी, झुर्रियां वगैरह दूर कर मलिन मुख साफ हो कर चेहरा चमकने लगता है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वर वधुओं की सुन्दरता बढ़ाने के लिये इस उबटन का दैनिक उपयोग करना चाहिये। मूल्य फी डिब्बा २) दो रुपया डाकखर्च अलग।

रिगोलक्स (रजिस्टर्ड) यह मरहम दाद को बिना जलन व तकलीफ के मिटाने वाली दवा है। इससे कपड़े पर दाग नहीं पड़ते। कीमत फी डिब्बी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

फकीरी सुरमा यह सुरमा मोती, ममीरा, भीमसेनी कपूर आदि जड़ी बूटियों के सम्मिश्रण से घोंटकर तैयार किया जाता है इसके लगाते ही यह तमाम गंदे पानी को निकाल कर आंखों को बर्फ की तरह ठण्डी कर देता है। इसके लगाने से साधारण तजला, कीचड़ निकलना आदि दूर होते हैं। मूल्य प्रति शीशी ।।।) बारह आना डाकखर्च अलग।

चन्द्रोदय मकरध्वज वटी यह शारीरिक, मानसिक और शक्ति बढ़ाने के लिए आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है। इसके सेवन करने से ताकत, तन्दुरुस्ती और ताजगी हासिल होती है। मूल्य २० दिन का कोर्स ७·५० नये पैसे और ४० दिन का कोर्स १४) डाक व्यय अलग।

बन सुधा इसके सेवन से कमर व रीढ़ का दर्द, शिर दर्द, दुबलापन, कमजोरी, चक्कर आना आदि रोग दूर होकर नारियों को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ बनाने की दवा है। मूल्य ३=) तीन रुपया दो आना डाकखर्च अलग।

रूपविलास हिम कुसुम तैल शिर दर्द को दूर कर शीतलता प्रदान करता है मस्तिष्क व बुद्धि से काम लेने वालों को उपकारी है खुशबू भीनी मन को लुभाने वाली है। मूल्य प्रति शीशी ।।।=) चौदह आना डाकखर्च पृथक्।

गैस निवारक गोलियाँ पेट की गड़बड़ी, गैस बनना, वायु की अधिकता, भूख की कमी, शूल, वायु गोला, पेट का भारीपन, खाना हजम न होना, खट्टी डकारें आना, दस्त साफ न होना आदि शिकायतें दूर होती हैं खाना हजम करती है पेट साफ रखती है। मूल्य १ शीशी २।।) दो रुपया आठ आना, बड़ी शीशी ४।।) चार रुपया आठ आना डाकखर्च अलग।

सफेद दाग विनाशक यह एक प्रकार का चर्म रोग है, जिससे शरीर में दाग के चकत्ते पड़ जाते हैं। यह दवा सफेद दागों तथा चकत्तों को दूर करने में लाभदायक है। मूल्य प्रति शीशी ३।।) साढ़े तीन रुपया, खाने वाली दवा २० रोज की ४० खुराक का फी १० रुपये, डाकखर्च अलग।

दवा मँगाने का पता :—रूपविलास कम्पनी धनकुट्टी १२२ कानपुर

माल मंगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

रवीन्द्र जन्म शताब्दी

कवीन्द्र रवीन्द्र की शताब्दी न केवल बंगाल या भारत में धूमधाम से मनाई गई बल्कि योरप, रूस और अमरीका तक में इसका अपूर्व आयोजन हुआ और कवीन्द्र की प्रतिभा की विजय-दुन्दुभि निनादित हुई। उन्हीं कवीन्द्र के कुछ ग्रन्थ यहाँ विज्ञापित हैं। कवीन्द्र का मुख्य क्षेत्र कविता था; पर उन्होंने कहानियाँ, छोटे-बड़े उपन्यास, देश-भ्रमण, साहित्य आदि विविध अंगों पर ऐसी विचित्र रचनाएँ की हैं कि संसार शतमुख से उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाता। उनकी विख्यात रचनाओं का अध्ययन और मनन करके पाठक समझेंगे कि रवीन्द्र बाबू का संसारव्यापी इतना आदर क्यों है।

बच्चों के रवीन्द्रनाथ—लेखक : यामिनीकान्त सोम मूल्य २.२५

रवि बाबू के कुछ गीत लेखक : रघुवंशलाल आई० सी० एस० २.५०

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ-लेखक : उमेशचन्द्र मिश्र ५)

रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१.५०	प्राचीन साहित्य	१.५०
विश्व-परिचय	२)	गल्प गुच्छ भाग १	१)
मास्टर साहब	.५०	गल्प गुच्छ भाग २	१.२५
योगायोग	४)	गल्प गुच्छ भाग ३	१.२५
रूस की चिट्ठी	१.५०	गल्प गुच्छ भाग ४	१.२५
मेरा बचपन	२)	व्यंग कौतुक	.७५
चार अध्याय	१.५०	राजर्षि	१.७५
मुकुट	.५०	डाकघर	.४४

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।
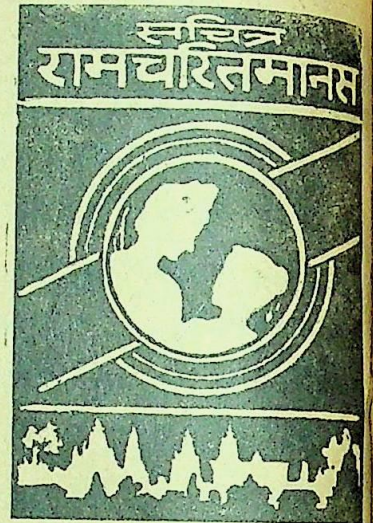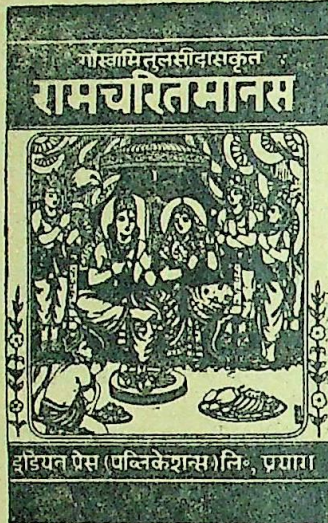
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्याकाण्ड
(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० रुपये।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १) रुपया।

सचित्र
श्रीमद्वाल्मीकीय
रामायण

महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० रुपये प्रति भाग है।

गोस्वामी तुलसीदासकृत
कुंडलिया रामायण
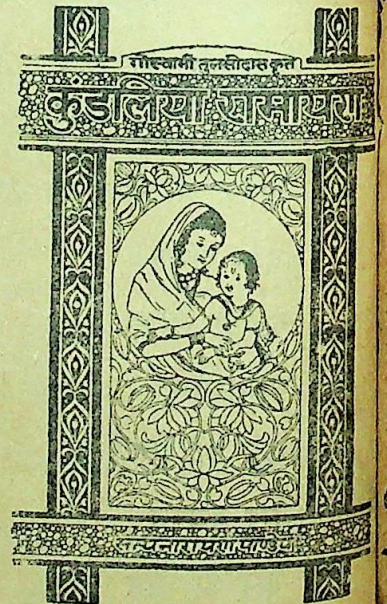
इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४) चार रुपये।

महर्षि वेदव्यास के महाभारत का अक्षरशः अनुवाद। अगणित रंगीन और सादे चित्रों सहित नयनाभिराम ग्रंथ है। सभी के लिए उपयोगी है। १० जिल्दों का मूल्य ८०) अस्सी रु०।

सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।

ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।
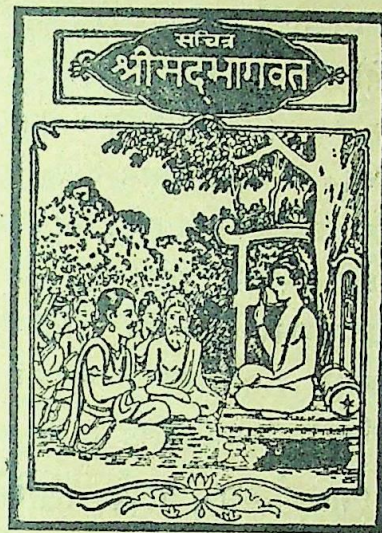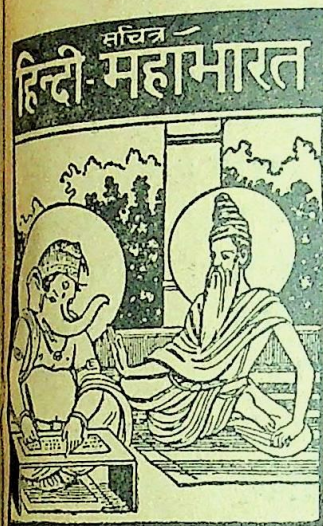
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्य

गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।
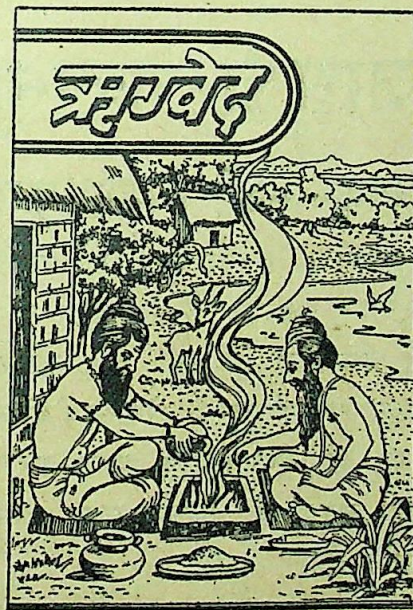
यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मू० १२)
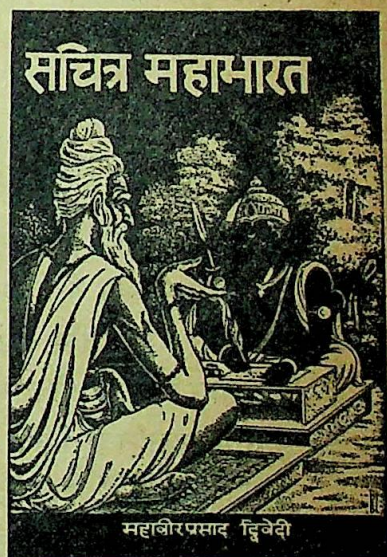
इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

४२ पुस्तकें अब तक प्रकाशित — प्रत्येक का मूल्य १·५० नये पैसे

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ, इसी से अनियमित धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित बीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ...... मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है...... मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। बी० पी० द्वारा कम से कम २ पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

विषय-सूची

चित्र : २ रंगीन, १५ सादे।

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६२ पूर्ण संख्या ७४३ | इलाहाबाद : नवम्बर १९६१ : कार्त्तिक २०१८ | खण्ड २ संख्या ५

सम्पादकीय

एक नक्षत्र टूट गया!—हिंदी-साहित्याकाश का सबसे प्रखर, तेजस्वी और देदीप्यमान नक्षत्र टूट गया। गत १५ अक्टूबर को महाकवि निरालाजी ने प्रयाग में अपनी जीवन-लीला समाप्त की। उस युग-प्रवर्तक कवि के लीला-संवरण के साथ हिंदी का एक युग समाप्त हो गया। हमारा मत है कि तुलसीदासजी के बाद से अब तक हिंदी काव्य-जगत् में निरालाजी की काव्य-प्रतिभा का कोई कवि नहीं हुआ। निरालाजी हमारे समय में हुए। यह हमारा सौभाग्य था। किंतु इस निकटता के कारण हम उनके काव्य और व्यक्तित्व की विशालता और महत्ता को ठीक तरह से देख नहीं सके। भावी पीढ़ियाँ ही निरालाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व का सही-सही मूल्यांकन कर सकेंगी। वैसे भी, इस अवसर पर जब हम इतने शोकाकुल हैं, हम उनके कृतित्व का मूल्यांकन करने की स्थिति में नहीं हैं। यह काम हम निश्चित होकर इतिहास के विवेक पर छोड़ सकते हैं।

निरालाजी का निधन हमारे लिए एक आत्मीय का वियोग है। निरालाजी का हमारा घनिष्ठ संबंध तीस वर्ष से भी अधिक समय तक रहा। वैसे तो हमारा उनका परिचय दिल्ली के हिंदी साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर हुआ था किंतु सन् १९२८-२९ से उनसे घनिष्ठता हुई। हममें और निरालाजी में कोई साम्य नहीं था। विचारों, रहन-सहन, भोजन-पान में वे मुक्त थे, और हम विवेकशील रूढ़िवादी। स्वभाव में भी कोई साम्य नहीं था। वे अत्यंत खरे, स्पष्टवक्ता और विरोध के मामले में बहुत संचेत्य। हम दुनियादार। किंतु इतना हम समझ गये थे कि वे एक असाधारण पुरुष हैं, और साधारण सामाजिक या व्यक्तिगत मापदंडों से उनको आँकना ठीक नहीं है। हमने उन्हें

असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति (जीनियस) समझा, और हम यह भी जानते हैं कि ऐसे व्यक्ति "रवि, पावक, सुरसरि की नाईं" साधारण नियमों से परे होते हैं। हमारी ओर से यह भावना, और उनकी ओर से हमारे प्रति अकृत्रिम और अगाध प्रेम तथा सम्मान ऐसे तत्त्व थे जिनसे हम दोनों सारे जीवन एक दूसरे के आत्मीय बने रहे। संयोग से हमने इस संसार में उनसे तीन-चार वर्ष पहिले जन्म ले लिया था। इसलिए वे आरंभ ही से हमें अपने बड़े भाई की तरह मानते थे। हम इसे अपने पूर्व जन्मों के किसी बहुत बड़े सुकृत का ही फल समझते हैं कि उन्होंने अपनी सर्वोत्तम कृति 'तुलसीदास' हमें समर्पित की ओर समर्पण में हमें अपना 'अग्रज' घोषित किया। घोषित ही नहीं किया, अन्त तक उस संबंध का निर्वाह भी किया। इसलिए उनके संबंध में हमारे लिए तटस्थ भाव से कुछ कहना यदि असंभव नहीं, तो अत्यंत कठिन तो अवश्य है। इस समय हमारी मनोदशा भी ऐसी नहीं है कि हम उनके बारे में कुछ अधिक कह सकें।

निरालाजी कवि थे, और कवि मालूम भी पड़ते थे। युवावस्था में उनका शरीर दर्शनीय था। वे छः फुट एक इंच लंबे थे और सारा शरीर उसी अनुपात में, मानों साँचे में ढालकर, बनाया गया था। पहलवानी का उन्हें शौक था, और व्यायाम ने उनके शरीर को दृढ़ और पुष्ट कर दिया था। अनेक लोगों का कहना है कि वे रोमन सरदार मालूम पड़ते थे। 'तुलसीदास' में उन्होंने तुलसीदासजी का जो वर्णन किया है वह स्वयं उन पर पूरी तरह घटित होता है :

युवकों में प्रमुख रत्न-चेतन
समधीत - शास्त्र - काव्यालोचन
जो, तुलसीदास, वही ब्राह्मण कुलदीपक;
आयत - दृग, पुष्ट - देह, गत - भय
अपने प्रकाश में निःसंशय
प्रतिभा का मंद-स्मित परिचय, संस्मारक।

हमें उन्होंने अपने दो चित्र दिये थे। उनमें से जो रंगीन चित्र इस अंक में प्रकाशित हो रहा है, वह उनकी प्रौढ़-युवावस्था का है। उससे पाठकों को निरालाजी के उस समय के व्यक्तित्व का कुछ आभास मिल सकता है। एक छोटा पार्श्व-मुख-चित्र उनकी युवावस्था का भी दिया जा रहा है। दूसरा बड़ा चित्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। कवियों में कहीं एक 'स्त्री-तत्त्व' होता है; किसी में कम, किसी में अधिक। वह कवि-हृदय की कोमलता, स्निग्धता और करुणा का आधार है। निरालाजी को अपने उस तत्त्व का ज्ञान था। इस फोटो को उन्होंने बड़े प्रेम से हमें भेंट किया, और भेंट करते समय कहा, "चतुर्वेदीजी, इसमें मेरी 'फेमिनिन ग्रेसेज' (स्त्रीसुलभ शोभा) देखिए।" उनमें इतनी अपार करुणा, कोमलता और स्निग्धता थी कि उसके दर्शन साधारणतः लोगों को नहीं हो पाते थे।

लोगों को इस बात का भ्रम है कि निरालाजी की सेवा नहीं हुई और वे सदैव अभावग्रस्त रहे। यह अर्द्धसत्य है। यह सही है कि उनका कोमल हृदय जिस प्रकार के स्नेह का भूखा था, वह उन्हें नहीं मिल पाया। आरंभिक जीवन में उन्हें जीवन-यापन के लिए संघर्ष भी करना पड़ा और उन्होंने कष्ट भी सहे। अभावों की विभीषिका से भी घिरे रहे। किंतु उनके अंतिम बीस-पचीस वर्षों में उन्हें आर्थिक कष्ट का वैसा सामना नहीं करना पड़ा। पिछले कुछ वर्षों से डा० सम्पूर्णानंदजी ने उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से उनकी पेंशन बाँध दी थी और उनकी चिकित्सा आदि की भी व्यवस्था कर दी थी। उनके बाद उनके उत्तराधिकारी श्री चंद्रभानुजी गुप्त ने भी उसे जारी रखा और उनकी चिकित्सा आदि में व्यक्तिगत रुचि ली। जो पेंशन उन्हें मिलती थी वह इतनी पर्याप्त थी कि जब उनकी मृत्यु हुई तब उनकी पेंशन के हिसाब में, सब खर्च करने के बाद, प्रायः साढ़े तीन हजार रुपये की राशि बच रही थी। निरालाजी ऐसे 'निराले' व्यक्ति की सेवा कितनी कठिन थी, इसका अनुमान वे लोग नहीं लगा सकते जो उन्हें दूर से जानते हैं। किंतु फिर भी उनके मित्रों और भक्तों ने उनकी सेवा जिस आत्म-दमन, परिश्रम, लगन तथा प्रेम से की, उसका दूसरा उदाहरण हमें नहीं मालूम। पिछले बारह वर्षों से वे चि० कमलाशंकरसिंह के घर पर रहते थे जिन्हें साहित्य या कविता से कोई लगाव नहीं है। हम इसके साक्षी हैं कि उन्होंने और उनकी पत्नी ने इतने वर्षों जिस निःस्पृहता, प्रेम और आत्म-संयम से उनकी सही सेवा की, वैसी सेवा अधिकांश पिताओं को अपने पुत्रों से भी प्राप्त नहीं होगी। निरालाजी का कष्ट व्यक्तिगत न था। एक भी भूखे, नंगे या दुःखी व्यक्ति को देखकर वे उद्विग्न हो उठते थे, और यदि कारूँ का खजाना भी उनके पास होता तब भी वे संसार से कष्ट, दुःख और अभाव को दूर नहीं कर

सकते थे, और इस कारण कभी सुखी नहीं हो सकते थ। किंतु उनके मानसिक क्लेश और कुंठा को देखकर भी हिंदी क्षेत्र ही में हिंदी और हिंदी-साहित्यिकों का अपमान या अवमानना होती है, तथा उन्हें उनका न्याय-संगत दाय नहीं मिलता।

निरालाजी अब नहीं हैं। भारतेंदु ने अपने बारे में कहा था, "प्यारे हरिचंद की कहानी रह जायगी।" सो अब निरालाजी की कहानी भर रह गयी है। अवश्य ही उनका भौतिक शरीर नहीं रहा, किंतु जब तक हिंदी भाषा है, जब तक संसार में शुद्ध काव्य के पारखी हैं, जब तक दलित, पतित और पीड़ित मानव हैं, और जब तक उनके कष्टों को वाणी देने की या वकील की आवश्यकता है, तब तक निरालाजी का यश:शरीर अमर है, तब तक उनकी वाणी जीवित है। हिंदी के तो वे गौरव थे। उनके समान तेजस्वी, मेधावी, मौलिक और ऊँची उड़ान लेनेवाला कवि तथा 'शब्दों का बादशाह' यदा कदा ही जन्म लेता है। तुलसीदास और सूरदास की तरह उन्होंने हिंदी का मस्तक सदा के लिए गौरवान्वित किया है। वे चोटी के कवि, उपन्यासकार, कहानीकार और निबंध-लेखक ही नहीं थे, वे हिंदी की नयी काव्य-धारा के प्रवर्तक और क्रांतिकारी विचारों के प्रचारक ही नहीं थे, वे हिंदी भाषा के उन्नायक और प्रचारक भी थे। जो आधुनिक हिन्दी उनसे पुत्रवती हुई थी, वह उनके वियोग में आज शोक-संतप्त है। इस क्षति की पूर्ति होने में न मालूम कितने युग लग जायँगे। हिंदी के इस शोक-संताप के सामने हमारा व्यक्तिगत शोक नगण्य है। हिंदी संसार को भगवान् इस वज्रपात के सहन करने की शक्ति दे। निरालाजी अमर हैं। जो जीवन भर मन से 'आजाद परिंदे' रहे, वे आज शरीर से भी मुक्त हो गये।

हिंदी का रूप और प० जवाहरलाल नेहरू—राष्ट्रीय एकता-सम्मेलन (नेशनल इंटेग्रेशन कान्फरेंस) में बोलते हुए पहिली अक्टूबर को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने हिंदी भाषा के रूप के सम्बन्ध में कुछ बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें कहीं। उनमें से एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। उनके कथन का सारांश यह है कि जब मास्को में मैं हिंदी में बोला तो एक रूसी महिला, जिसने वहाँके कालिजों और विश्वविद्यालय में बड़े परिश्रम से हिंदी पढ़ी थी, मेरी भाषा नहीं समझ सकी। उसने संस्कृत-निष्ठ हिंदी पढ़ी थी और वह मेरी भाषा बिल्कुल नहीं समझ पायी। किन्तु जब मैं ताशकंद गया तो वहाँके लोगों ने मेरी भाषा के कितने ही उर्दू शब्द समझ लिये। मेरी भाषा में अपनी भाषा के कुछ शब्दों को पाकर उनमें भ्रातृत्वभाव उत्पन्न हुआ। इसलिए हिंदी का शब्द-विन्यास बहुत महत्त्वपूर्ण है।

यह सिद्धान्त कि दूसरे लोगों को अपनी भाषा में प्रचलित शब्द बोलते सुनकर सुननेवालों में भ्रातृत्व-भाव उत्पन्न होता है, स्वयंसिद्ध है। हिंदी के संस्कृतनिष्ठ होने का यही कारण है। यदि हम मराठी, गुजराती, बँगला, तैलगू, मलयाली आदि में व्यवहृत संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वहाँके लोग हमसे निकटता का बोध करते हैं। इन भाषाओं में अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्द अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। यदि हम 'बालक' या 'नीर' शब्द का प्रयोग करें तो अधिकांश भारतीय-भाषाभाषी उनका अर्थ समझ लेंगे, किन्तु ताशकंद, काबुल, इस्फहान या जिद्दा के लोग न समझ सकेंगे। इसके विपरीत, यदि हम 'तिफ्ल' या 'आब' शब्दों का प्रयोग करें तो ताशकंद, काबुल, इस्फहान या जिद्दा में तो शायद वे समझ लिये जायँ, पर केरल, गुजरात और बंगाल में न समझे जायँगे। अतएव प्रश्न यह है कि हिंदी का रूप स्थिर करते समय हम किनसे भ्रातृत्व स्थापित करने का उद्देश्य सामने रखें? ताशकंद, काबुल या इस्फहान के लोगों से, या केरल, गुजरात और बंगाल के लोगों से? या यों कहिए, कि हमारा उद्देश्य मध्य-पूर्व से भ्रातृत्व स्थापित करना है, अथवा देश के भिन्न-भिन्न भागों में एकता की भावना उत्पन्न करना। हम लोग "राष्ट्रीय भावनात्मक एकता" की बात तो करते हैं, किन्तु जब भाषा का रूप बनाने का प्रश्न सामने आता है तब हम उसका ऐसा रूप बनाना चाहते हैं जिसे सुनकर काबुल और ताशकंद के लोग आत्मीयता का अनुभव करें। हम मध्यपूर्व की ओर उन्मुख होना चाहते हैं, या भारत की ओर? यदि हमारा लक्ष्य भारत की ओर उन्मुख होना है तो हमें संस्कृत के उन शब्दों का प्रयोग करना ही होगा जो अधिकांश भारतीय भाषाओं में प्रचलित हैं। संविधान में भी नये शब्दों के स्रोत के लिए प्राथमिकता संस्कृत को ही दी गयी है। अतएव हमारी समझ में यह बात नहीं आयी कि देश की भावनात्मक एकता की बात करते हुए प्रधान मंत्री हिंदीवालों से किस प्रकार की भाषा की अपेक्षा करते हैं?

जब संविधान सभा में यह निश्चय हुआ कि संविधान हिंदी में भी स्वीकृत हो तो उसके अनुवाद करने का प्रबंध किया गया। संविधान में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के हिंदी पर्याय स्थिर करने के लिए एक समिति बनायी गयी। लक्ष्य यह था कि ये शब्द ऐसे हों जो सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हो सकें। इसलिए इस समिति में प्रत्येक भारतीय भाषा के विद्वान् रखे गये। उस समिति ने जो शब्दावली बनायी वह अधिकांश में संस्कृत-

निष्ठ है, क्योंकि संस्कृत या संस्कृतमूलक शब्दों पर ही समिति में एकमत हो सकता था। अरबी या फारसी के कुछ शब्द हिंदी के लिए भले ही नये न हों, पर अधिकांश दूसरी भाषाओं के लिए अपरिचित और अग्राह्य थे। हिंदी प्रदेशों के जिन लोगों ने संस्कृत नहीं पढ़ी, और जिन्हें हिंदी साहित्य का भी ज्ञान नहीं है, उन्हें अवश्य ही संस्कृत या संस्कृतमूलक शब्द अजीब और दुरूह लगते होंगे। अँगरेजी में जो संविधान की पुस्तकें हैं, जो अर्थशास्त्र की पुस्तकें हैं, क्या उन्हें इँगलैण्ड के प्राइमरी पास व्यक्ति पढ़ सकते हैं? उनमें लैटिन के कितने शब्द और वाक्यखंड होते हैं? किन्तु वहाँ यह माँग नहीं की जाती कि उच्च साहित्य और उच्च शास्त्रीय विषयों की पुस्तकें ऐसी भाषा में लिखी जायें जिन्हें चारवोमैन (charwoman), किसान, मजदूर आदि भी समझ सकें। इँगलैण्ड में ऐसे 'शिक्षित' व्यक्ति भी नहीं मिलेंगे जिन्हें अपनी भाषा के साहित्य का अच्छा ज्ञान न हो, और जिनका उसपर अच्छा अधिकार न हो या जो अपनी भाषा की किसी साहित्यिक कृति के उद्धरण को सुनकर मुँह फाड़कर रह जायें, या बिदक उठें। इसके विपरीत इस देश में वे लोग जिन्होंने कभी हिंदी पढ़ी भी नहीं, जिन्हें हिंदी साहित्य का परिचय नहीं, और यदि है भी तो अपूर्ण या अधकचरा, उन लोगों की भर्त्सना करते हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन भाषा की सेवा में व्यतीत किया है क्योंकि वे उच्च विषयों को ऐसी हिंदी में नहीं लिखते जिसे वह व्यक्ति भी समझ ले जिसने नियमित रूप से कभी हिंदी पढ़ी ही न हो। इस माँग की पूर्ति शायद वाग्देवी सरस्वती और विधाता भी न कर सकें। इसके विपरीत, यदि वे हिंदी को पसंद नहीं करते और यदि वे अरबी-फारसी-प्रचुर भाषा--जिसमें संस्कृत शब्दों का बहिष्कार हो--लाना चाहते हों तो उन्हें यह स्पष्ट रूप से कहना चाहिए कि वे हिंदी नहीं, उर्दू चाहते हैं। तब समस्या स्पष्ट हो जायगी और असंभव को संभव कर दिखाने में असफल होने के लिए हिंदीवालों को रोज-रोज उलाहने न सुनने पड़ेंगे।

दिनकरजी और पारिभाषिक शब्दों के रूप--इसी सम्मेलन में हमारे मित्र और हिन्दी के विख्यात कवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' एम० पी० ने भी हिन्दी पारिभाषिक कोशों का कार्य करनेवाले विद्वानों को दो बातें सुना दीं—जैसे चढ़ी कड़ाही पर दो पूड़ियाँ और सेक ली हों। उन्होंने कहा कि हिन्दी के सरकारी शब्द गढ़नेवालों ने हिन्दी में अनर्थ मचा रखा है। (The official word-coiners of Hindi were playing havoc with Hindi) हमने शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्मित हिन्दी पर्यायवाची पारिभाषिक कोशों को देखा है। सन् १९०४ में काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने जो हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली (Hindi Scientific Glossary) बनायी थी, उससे लेकर अब तक के बने हुए प्रायः सभी पारिभाषिक और वैज्ञानिक हिंदी कोश हमारी नजरों से गुजरे हैं। शिक्षा मंत्रालय के ये सरकारी पर्यायवाची कोश हिन्दीभाषी और अहिन्दीभाषी विद्वानों और सम्बन्धित विभागों के प्रतिनिधियों के सहयोग से तैयार हुए हैं। सभी कोशों के समान इनमें भी सुधार की गंजाइश है। किन्हीं पर्यायों को लेकर मतभेद हो सकता है, और होगा भी। किन्तु सब कुछ देखते हुए यह कहना कि हिन्दी में अनर्थ मच गया है, केवल कवि दिनकर का अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग ही कहा जाना चाहिए। हमने सुना है कि अब दिनकरजी इन कोशों का पुनरीक्षण करेंगे। हम यह देखने को उत्सुक हैं कि हिंदी की प्रकृति की रक्षा करते हुए, और उसे अँगरेजी-गर्भित बनाये बिना वे किस प्रकार के पर्याय हमें देते हैं। उन्होंने अब तक के हिंदी कोशकारों को जो चुनौती दी है उसकी पुष्टि वे अपने सुधारे हुए कोश को 'आमफहम' बनाकर ही कर सकते हैं। दिनकरजी हिंदी के कवि ही नहीं, आज हमारे कवियों में चोटी के दो-तीन कवियों में से एक हैं। उनके नवीनतम काव्य उर्वशी की भाषा कैसी है? कुछ नमूना देखिये :

मन की असीमता में निबद्ध नक्षत्र, पिण्ड, ग्रह, दिशाकाश,
तन में रसस्विनी की धारा, मिट्टी की मृदु, सोंधी सुवास;
मानव मानव ही नहीं, अमृत-नंदन यह लेख अमर भी है,
वह एक साथ जल-अनल, मृत्ति महदम्बर, क्षर-अक्षर भी है।

× × ×

निशा योग-जागृति का क्षण है और उदग्र प्रणय की
ऐकायनिक समाधि; काल के इसी गरुत के नीचे
भूमा के रस-पथिक समय का अतिक्रमण करते हैं,
योगी बँधे अपार योग में, प्रणयी आलिंगन में,

यह हिंदी के एक प्रामाणिक कवि की प्रामाणिक भाषा है। हमें उसमें सौंदर्य और सौष्ठव के दर्शन होते हैं। वह हिंदी-शिक्षित लोगों के लिए दुरूह भी नहीं है। सरकारी कोशों की शब्दावली प्रायः इसीके टक्कर की है। वह भी अशिक्षितों के लिए नहीं है। दिनकरजी की भाषा को, जिसे हम ठीक समझते हैं, क्या हमारे प्रधान मंत्री या हिन्दी प्रदेशों के अधिकांश मंत्रीगण "टकसाली हिंदी" न मानेंगे? यदि यह उन्हें मान्य हो और यदि दिनकरजी इस भाषा को 'हिंदी' समझते हों, तो निश्चय ही सरकारी कोशकारों ने शब्दावली बनाने में कोई अनर्थ नहीं किया।

उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के नये उपकुलपति—उत्तर प्रदेश में पाँच विद्यालयों के कुलपति राज्य के राज्यपाल हैं। इस वर्ष उत्तर प्रदेश की विधान सभा ने एक नया कानून बनाया जिसके अनुसार इन सभी विश्वविद्यालयों में नये उपकुलपति नियुक्त किये गये हैं। इस कानून के अनुसार प्रत्येक विश्वविद्यालय के उपकुलपति

के चुनाव के लिए एक विशेष समिति बनायी गयी जिसमें एक प्रतिनिधि संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा मनोनीत, एक कुलपति द्वारा मनोनीत और एक इलाहाबाद हाई-कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मनोनीत था।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के लिए जो समिति बनायी गयी उसमें न्यायमूर्ति वासुदेव मुकर्जी, बिहार के राज्यपाल डाक्टर जाकिर हुसेन और रुड़की वि० वि० के उपकुलपति श्री पांडे थे। लखनऊ की समिति में न्यायमूर्ति मुकर्जी, आचार्य कृपलानी और उ० प्र० सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री राधाकृष्ण थे। आगरा विश्वविद्यालय की समिति में न्यायमूर्ति मुकर्जी, दिल्ली वि० वि० के उपकुलपति श्री सिद्धान्त तथा सागर के उपकुलपति पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र थे। गोरखपुर की समिति में न्यायमूर्ति मुकर्जी, उ० प्र० के ऐडवोकेट जनरल पं० कन्हैयालाल मिश्र और डा० राधाकमल मुकर्जी थे। संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की समिति में न्यायमूर्ति मुकर्जी, सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश श्री पातंजलि शास्त्री और महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश जी थे। प्रत्येक समिति ने अपने-अपने विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद के लिए कुलपति के पास तीन नाम भेजे। उनमें से संस्कृत विश्वविद्यालय को छोड़कर शेष चार विश्वविद्यालयों के लिए राज्यपाल ने एक-एक व्यक्ति को उपकुलपति पद के लिए चुनकर उनके नाम घोषित कर दिये। वे नये उपकुलपति ये हैं—इलाहाबाद वि० वि०—श्री बलभद्रप्रसाद सिनहा (पटना); लखनऊ—श्री राव; आगरा वि० वि०—श्री पी० डी० गुप्त और गोरखपुर वि० वि०—श्री ए० सी० चटर्जी। संस्कृत विश्वविद्यालय के नये उपकुलपति की घोषणा शीघ्र की जायगी।

नये कानून के परिणामस्वरूप जो नियुक्तियाँ हुई हैं, उनमें कोई असाधारणता नहीं है। पुराने ढंग के चुनावों में भी इसी स्तर के लोग चुने जाते थे। नये ढंग से चुनाव करने से उपकुलपतियों के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसका एक अच्छा परिणाम यह अवश्य हुआ कि उपकुलपति के चुनाव में विश्वविद्यालयों की कार्यकारिणी में कभी-कभी जो अशोभनीय कनवैसिंग होती थी, वह बंद हो गयी। नये उपकुलपतियों में दो विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर हैं, एक निजी कालिज के प्रिंसिपल और एक शिक्षा विभाग के भूतपूर्व उच्च-अधिकारी हैं। इधर कुछ दिनों से इसी प्रकार के व्यक्ति उपकुलपति चुने जाते थे। चुने हुए सभी व्यक्ति योग्य हैं, किंतु इनमें से कोई भी असाधारण योग्यता का नहीं है। जिस प्रकार के व्यक्ति चुनाव समितियों में रखे गये थे उससे आशा की जाती थी कि उपकुलपति के पदों पर असाधारण योग्यता और प्रशासनिक क्षमता के लोग आ सकेंगे। किंतु वह आशा फलवती नहीं हुई। एक ऐसी बात अवश्य हुई कि जिसकी आशंका ऐसी उच्चस्तरीय समितियों से नहीं की जाती थी। इनमें से कुछ समितियों ने ऐसे लोगों के नाम कुलपति के पास भेजे जिन्हें उपकुलपति का पद स्वीकार्य नहीं था। कहा जाता है कि इसका परिणाम यह हुआ कि एक विश्वविद्यालय के लिए भेजे गये तीन सज्जनों में से एक, और दूसरे विश्वविद्यालय के लिए प्रस्तावित तीन सज्जनों में से दो इस पद पर नहीं आना चाहते थे। यह समझ में नहीं आता कि इन समितियों ने संबंधित व्यक्तियों की स्वीकृति प्राप्त किये बिना उनके नाम कैसे प्रस्तावित कर दिये। यदि कोई साधारण समिति ऐसे नाम भेजती तो उसपर 'डमी' नाम भेजने का दोष लगाया जा सकता था। किंतु यह दोष इन उच्चस्तरीय समितियों पर नहीं लगाया जा सकता। यह केवल 'मुनीनां च मतिभ्रमः' ही समझा जाना चाहिए।

उत्तर प्रदेश का संक्षिप्त हिन्दी में उ० प्र० और अँगरेजी में U.P. लिखा जाता है। इन आद्याक्षरों की व्याख्या लोग अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार करते हैं। कई वर्ष पहिले एक दूसरे राज्य के एक पत्र ने इनकी व्याख्या "उल्लू प्रदेश" की थी। इसपर हमने एक टिप्पणी भी लिखी थी। कुछ लोग उसे 'उल्टा प्रदेश' और कुछ लोग 'उतरा प्रदेश' भी कहते हैं। जब पंतजी मुख्यमंत्री थे तब अँगरेजी आद्याक्षरों (यू० पी०) की व्याख्या कुछ लोग "अंडर पंत" कहकर करते थे। किंतु जब इन चार उपकुलपतियों के नाम घोषित हुए तब हमारे एक मित्र ने हमसे कहा कि "वास्तव में उ० प्र० के अर्थ 'उदार प्रदेश' हैं। देखिए, चार में से एक उपकुलपति दक्षिण भारतीय, एक बंगाली, एक बिहारी और केवल एक उत्तर प्रदेशीय है। किस दूसरे राज्य में यह चमत्कार संभव है? या तो उत्तर प्रदेश के लोग इतने अयोग्य हैं कि वहाँ इस पद के योग्य चार व्यक्ति भी नहीं मिल सकते, और या हमने इतनी भावात्मक एकता प्राप्त कर ली है कि हम अपने यहाँके चोटी के पदों पर राज्य के बाहर के लोगों को रखकर अपनी उदारनीति का परिचय देना चाहते हैं। अवश्य ही उत्तर प्रदेश में योग्य व्यक्तियों की कमी नहीं है। तब ये नियुक्तियाँ हमारी उदारता की ही द्योतक हैं। उपकुलपति के पद पर ही नहीं, हमने उनकी चुनाव-समितियों में भी अधिकांश व्यक्ति उत्तर प्रदेश के बाहर के ही नियुक्त किये। भारत का कोई कोना नहीं छोड़ा जहाँ का व्यक्ति न लिया हो। क्या यह हमारे विशाल दृष्टिकोण और उदारता का द्योतक नहीं है?" इस प्रशंसा से हमारे अहम् को बड़ी सांत्वना मिली, किंतु हम यह नहीं तय कर पाये कि यदि उत्तर प्रदेश के निवासियों में चार योग्य व्यक्ति इन पदों के लिए मिल सकते थे तो वे क्यों नहीं नियुक्त किये गये। विश्वविद्यालयों में हिंदी का प्रवेश कराना आवश्यक है। जो लोग इन पदों पर नियुक्त किये गये हैं उनमें से कितने हिंदीनिष्ठ या हिंदीप्रेमी हैं? जो लोग इस राज्य की भाषा के उन्नयन में सहायक नहीं हो सकते वे विश्वविद्यालयों में—जो राज्य की संस्कृति और शिक्षा के स्रोत हैं—हिंदी की क्या उन्नति करेंगे? वे विद्यार्थियों में कितना

हिंदी-प्रेम उत्पन्न करेंगे ? उत्तर प्रदेश के प्रमुख विश्व-विद्यालयों में हिंदी की जो दुर्दशा है उसका एक प्रमुख कारण उनमें हिंदी-विरोधी या हिंदी-निरपेक्ष अहिंदी-भाषियों का दीर्घकालीन प्राधान्य है। यदि उत्तर प्रदेश की सरकार वास्तव में इस राज्य में हिंदी की प्रगति चाहती है तो उसे विश्वविद्यालयों में नियुक्तियाँ करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी की हुई नियुक्तियों से राज्य की भाषा-नीति को सहायता मिलेगी या नहीं।

भारतीय पुलिस की शती-जयन्ती—भारतीय पुलिस विभाग की स्थापना प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद सन् १८६१ में हुई थी। इसके पहिले मुगलकालीन पुलिस प्रथा के अवशेषों पर अँगरेजों ने कुछ सुधार करके देश की आंतरिक व्यवस्था का प्रयत्न किया था। वह संक्रांति काल था। मुगल-साम्राज्य के पतन के बाद देश में छोटी-बड़ी रियासतें पैदा हो गयी थीं जिनका मुख्य उद्देश्य 'सुरक्षा' नहीं था। गाँवों में 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' की कहावत चरितार्थ हो रही थी। पिंडारियों और ठगों का उत्पीड़न प्रजा को भूला नहीं था। देहातों में छोटे-मोटे जमींदार कहीं-कहीं लूट-पाट को अपनी अतिरिक्त आय का साधन समझते थे। गाँवों में प्रजा स्वयं सुसंगठित होकर ही अपनी रक्षा कर पाती थी। इस अराजकता की स्थिति में पुलिस विभाग का जन्म हुआ। उससे संघर्ष करने के लिए उस समय की पुलिस सभी प्रकार के उपायों का प्रयोग करती थी और उसे बहुत शक्ति मिल गयी थी। पुलिस के अधिकारी-वर्ग में अँगरेज ही लिये जाते थे, किंतु थानेदार, सिपाही आदि भारतीय ही थे। दुर्भाग्य से उस समय पुलिस में जो लोग भर्ती हुए उनमें नैतिक विवेक बहुत अधिक नहीं था। ये निम्न श्रेणी के लोग अपनी शक्ति का दुरुपयोग भी करते थे। उस समय पुलिस की क्या दशा थी और उसमें कैसे हथकंडे खेले जाते थे, इसका बड़ा मनोरंजक और स्पष्ट वर्णन "कांस्टेबल वृत्तान्तमाला" नामक एक पुस्तक में हमने अपने विद्यार्थी-जीवन में पढ़ा था। यह पुस्तक, हमें जहाँ तक याद है, वाराणसी के भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित हुई थी। इस आरंभिक काल में पुलिस में जो आपत्तिजनक परम्पराएँ पड़ गयीं, उनके अवशेष अब तक पुलिस में मौजूद हैं। अवश्य ही इधर पुलिस के उच्च अधिकारियों का भारतीयकरण सम्पूर्ण रूप से हो गया है, और उनका बौद्धिक तथा नैतिक स्तर काफी ऊँचा है। किंतु पुलिस के उस भाग का—जिसका सीधा संपर्क जनता से है—स्तर बहुत कुछ सुधर जाने पर भी अभी पूर्णरूप से संतोष-जनक नहीं हुआ। स्वतंत्रता के बाद देश में, दुर्भाग्य से, अपराधों की वृद्धि हुई है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि देहातों में जमींदार इतने प्रभावशाली होते थे कि वे गुंडों और उपद्रवी तत्त्वों को सिर नहीं उठाने देते थे। इससे पुलिस को सुरक्षा रखने में उनसे परोक्ष सहायता मिलती थी। छोटे-मोटे गुंडों का उपाय वे ही कर देते थे। जमींदारों के नष्ट होने से अब पुलिस को सीधे प्रत्येक गाँव की देखरेख करनी पड़ती है। गाँवों में पुलिस बहुत कम है और वहाँ यदाकदा ही पहुँचती है, पर गुंडे वहाँ चौबीसों घंटे रहते हैं। इससे गाँववाले उनसे इतने आतंकित रहते हैं कि पुलिस को उनके विरुद्ध गवाही मिलना भी कठिन हो जाता है, और सब कुछ जानते हुए भी कभी-कभी पुलिस उन्हें दंड दिलाने में निरुपाय रहती है। ग्राम पंचायतों से यह आशा की जाती थी कि वे इस कार्य में जमींदारों का स्थान ग्रहण करेंगी। किंतु वे स्वयं पार्टीबाजी के दलदल में फँसी हुई हैं और इन गुंडा-तत्त्वों को नियंत्रित करने के बजाय अपनी पार्टीबंदी में उनसे सहायता लेकर कहीं-कहीं स्वयं एक समस्या बन गयी हैं।

इस बीच पुलिस की उपलब्धियाँ कम नहीं हैं। इस विशाल देश में सब कुछ देखते हुए सुव्यवस्था रखने में वह सफल रही है। किंतु देश की जनसंख्या और आकार देखते हुए, उसकी संख्या बहुत कम है। इसलिए वह प्रभावशाली ढंग से अपना कर्तव्य पालन नहीं कर पाती। उसे जनता से वैसा सहयोग भी नहीं मिलता जैसा दूसरे देशों में मिलता है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि यहाँ पुलिस से भले लोग घबड़ाते हैं। वे सामान्यतः उसे अपना मित्र और सहायक नहीं समझते, और उन्हें परेशान होने का भय बना रहता है। इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व स्वयं पुलिस पर है, क्योंकि वह उनका विश्वास प्राप्त करने में असमर्थ रही है। उसकी एक दूसरी कमी यह है कि अभी तक उसने दूसरे देशों में अपराध के जाँच के जो जनतांत्रिक वैज्ञानिक और बुद्धि-प्रधान उपाय हैं उनको ठीक तरह से ग्रहण नहीं किया। उसके पुराने ढंग वर्तमान जनतांत्रिक युग से मेल नहीं खाते। फिर भी, डाकुओं के उन्मूलन में तथा बहुत से उलझे हुए अपराधों की खोज में उसे सफलता मिली है। मध्यप्रदेश के डाकू-उन्मूलन में उसकी सफलता उल्लेखनीय है।

इस शताब्दी के अवसर पर दिल्ली और भोपाल में पुलिस के स्मारक बनाये गये हैं। सारे देश की पुलिस ने इस अवसर को बड़े समारोह के साथ मनाया। हम इस अवसर पर भारतीय पुलिस को एक शती के उपयोगी जीवन पर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र ही वह अपने को परिवर्तित स्थिति और जनतंत्र के अनुकूल बना लेगी, तथा जनता में इतना विश्वास उत्पन्न कर लेगी कि इंगलैण्ड की तरह यहाँ भी लाल पगड़ी से लोगों में भय न होकर मित्रता का भाव उदय हुआ करेगा।

न्यायमूर्ति मुल्ला की पुलिस पर टिप्पणी—यह इतिहास का व्यंग्य ही समझा जायगा कि जब देश में पुलिस की शती-जयंती मनायी जा रही थी, तब इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक न्यायमूर्ति ने अपने एक निर्णय में पुलिस के सम्बन्ध में कुछ बड़ी कड़ी बातें कह दीं। इस प्रकार राज्य के सर्वोच्च न्यायालय से इस अवसर पर उसे पुष्पों के उपहार के स्थान पर भर्त्सना मिली। जिस

कम से कम उत्तर प्रदेश में, जयंती की बधाइयाँ फीकी पड़ गयीं। किसी मामले में पुलिस के एक थानेदार ने कुछ अनियमित कार्रवाई की थी जिससे न्याय करने में बाधा पड़ती थी। संयोग से वे अनियमितताएँ खुल गयीं, और न्यायालय ने उससे पूछा कि असत्य भाषण के लिए उस पर क्यों न अभियोग चलाया जाय। उसने क्षमा माँग ली। उसकी क्षमा प्रार्थना स्वीकार करते हुए माननीय न्यायमूर्ति मुल्ला ने अपने निर्णय में लिखा :—

Where every fish barring perhaps a few, stinks, it is idle to pick out one or two and say that it stinks.

There is not a single lawless group in the whole of the country whose record of crime comes anywhere near the record of that single organised unit which is known as the Indian Police Force.

"जब, शायद कुछ को छोड़कर, सभी मछलियाँ दुर्गंधि छोड़ रही हों तब एक दो को पकड़कर कहना कि ये गँधा रही हैं, व्यर्थ है। (इसलिए इस थानेदार को दंड देने से काम न चलेगा।)

सारे देश में किसी न्याय-विरोधी या अपराधी-समूह के अपराधों की संख्या इतनी अधिक नहीं है जितनी कि उस संगठित संस्था की है जिसे 'भारतीय पुलिस' कहा जाता है।"

यह भर्त्सना इतनी कड़ी, और इतनी व्यापक थी कि उत्तर प्रदेश सरकार ने हाईकोर्ट से प्रार्थना की कि निर्णय से ये वाक्य निकाल दिये जायँ। यह आवेदन भी निर्णय के लिए न्यायमूर्ति मुल्ला ही के सामने प्रस्तुत हुआ। आवेदन में कहा गया था कि ये टिप्पणियाँ निकाल दी जायें क्योंकि वे अत्यंत व्यापक (Sweeping) हैं, उनसे पुलिस का मनोबल (morale) कमजोर हो जायगा और इनसे राज्य की सुरक्षा (security and safety) खतरे में पड़ जायगी। न्यायमूर्ति मुल्ला ने इन तर्कों को नहीं माना। उनके कथन का सारांश यह है कि यह टिप्पणी उतनी ही व्यापक है जितना व्यापक पुलिस का भ्रष्टाचार है। इस तर्क का उत्तर देते हुए कि इससे पुलिस का मनोबल निर्बल हो जायगा, उन्होंने कहा कि यदि पुलिस का मनोबल तभी बना रह सकता है जब उसे कानून तोड़ने दिया जाय, तो न्यायालय इसे मानने को तैयार नहीं है। देश की सुरक्षा के खतरे के तर्क पर उन्होंने कहा कि यह तर्क मेरी समझ में नहीं आया। यदि इस बात की ओर ध्यान दिलाने से कि पुलिस के बहुत से कर्मचारी कानून-विरुद्ध काम कर रहे हैं और इस बुराई को रोकना आवश्यक है, राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है तो मैं यह स्वीकार करता हूँ कि 'सुरक्षा' शब्द के अर्थ न्यायालयों के कोश में वे नहीं हैं जो प्रशासनिक वर्ग के कोश में हैं। जनतंत्रात्मक राज्य में कानून को व्यवस्था से अलग नहीं किया जा सकता। तानाशाही में भी सुरक्षा रहती है, किन्तु जनतंत्र की सुरक्षा इस बात पर निर्भर है कि उसमें कानून का राज्य है। कानून पहिले आता है, व्यवस्था बाद में। यदि सुव्यवस्था को कानून से अलग कर दिया जाय तो जनतंत्र की समाप्ति हो जायगी, क्योंकि तब तानाशाही की स्थापना अनिवार्य हो जायगी। अतएव उन्होंने सरकार के आवेदन-पत्र को अस्वीकार कर दिया। यदि सरकार इसकी अपील सुप्रीम कोर्ट में नहीं करती और वह वहाँ रद नहीं कर दी जाती तो न्यायमूर्ति मुल्ला की यह भर्त्सनात्मक टिप्पणी सदा के लिए हाईकोर्ट के एक निर्णय की अभिन्न अंग बनी रहेगी।

राहुलजी अस्वस्थ—हमें यह जानकर अत्यंत खेद और चिंता हुई कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन का स्वास्थ्य इधर फिर गिर गया है। राहुलजी श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र विभाग का अध्यक्ष पद सँभालने श्रीलंका चले गये थे। वहाँ आप अस्वस्थ हो गये और कई मास हुए भारत चले आये। आजकल वे दार्जिलिंग में हैं। वहाँ उनका स्वास्थ्य कुछ सुधरा था, किंतु इधर वे अत्यंत निर्बल हो गये हैं। अक्तूबर के द्वितीय सप्ताह में वे दो बार गिर गये—एक बार बेहोश होकर और दूसरी बार शरीर पर नियंत्रण न रख सकने के कारण। राहुलजी हमारे गौरव हैं। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करें और चिरकाल तक देश और हिंदी की सेवा करते रहें।

अलीगढ़ के दंगे——राष्ट्रीय एकता-सम्मेलन के प्रस्तावों की स्याही अभी सूखने न पायी थी कि अलीगढ़ में साम्प्रदायिक दंगा हो गया, और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई स्थानों में दंगे फैल गये तथा सारे राज्य में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया। देश में भावनात्मक एकता के अभियान को यह बड़ा कड़ा धक्का लगा। बात बहुत छोटी थी। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में कुछ दिनों पहिले तक हिंदू विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम थी। इधर वहाँ इंजिनियरिंग कालिज खुल गया जिसमें बहुत से हिंदू लड़के भर्ती हुए। दूसरे हिंदी आदि ऐसे विषयों के पढ़ाने पर भी ध्यान दिया जाने लगा जिन्हें हिंदू विद्यार्थी अधिक लेते हैं। इसके अतिरिक्त, स्वतंत्रता के बाद उस विश्वविद्यालय के प्रति हिंदुओं के भाव भी बदलने लग गये थे। इन सब कारणों से उसमें हिंदुओं की काफी संख्या हो गयी। मोटे ढंग से कहा जाय तो उसमें प्रायः साढ़े तीन हजार मुसलमान और प्रायः डेढ़ हजार हिंदू विद्यार्थी हैं। किंतु एक उल्लेखनीय बात यह है कि प्रायः सब के सब मुसलमान विद्यार्थी विश्वविद्यालय के अहाते में बने हुए छात्रावासों में रहते हैं। वे अधिकतर अलीगढ़ और उत्तर प्रदेश के बाहर के हैं। इनमें कई मुस्लिम देशों के भी विद्यार्थी हैं। किंतु लगभग डेढ़ सौ हिंदू छात्र ही विश्वविद्यालय के अहाते में रहते हैं। ये प्रायः सब के सब जियाउद्दीन छात्रावास में रहते हैं। हिंदू छात्रों में भी अलीगढ़

के बाहर के छात्रों की संख्या बहुत अधिक है, और वे नगर में किराये के घर या कमरे लेकर रहते हैं। किसी किसी कमरे में तो आठ-दस विद्यार्थी एक साथ रहते हैं। इनके ऊपर विश्वविद्यालय का कोई प्रभावशाली नियंत्रण नहीं है। अलीगढ़ में तीन निजी डिग्री कालिज हैं। इनमें भी हजारों विद्यार्थी पढ़ते हैं। ये कालिज आगरा विश्वविद्यालय से मान्यता-प्राप्त हैं। इनका कोई संबंध अलीगढ़ विश्वविद्यालय से नहीं है। इन कालिजों में भी उन विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है जो नगर के बाहर के हैं। ये भी अलीगढ़ वि० वि० के हिंदू विद्यार्थियों की तरह निजी घरों और कोठरियों में रहते हैं। अतएव इन किराये के मकानों में रहनेवाले विद्यार्थियों पर किसी का भी कोई विशेष नियंत्रण नहीं है। वे आपस में मिलते रहते हैं। शिक्षा-अधिकारियों ने उन्हें लावारिस बछड़ों और गउओं की तरह बिना किसी प्रकार के मार्ग-दर्शन के छोड़ रखा है।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय में विद्यार्थी सभा के चुनाव हुए। यह सर्वमान्य है कि चुनाव साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से हुए। कुछ हिंदू विद्यार्थी भी खड़े हुए थे। किन्तु साम्प्रदायिक भावना के कारण उनमें से एक भी नहीं चुना गया। मतदान की संख्या से मालूम होता है कि 'ब्लाक वोटिंग' की गयी। जीतने के बाद विजयी मुसलमान विद्यार्थियों ने हारे हुए प्रमुख हिंदू विद्यार्थी की अर्थी निकाली। रात में उनके छात्रावास में घुसकर उनकी मारपीट की। इतनी बातें तो स्पष्ट हैं। पूरा विवरण तो जाँच रिपोर्ट प्रकाशित होने पर ही जाना जा सकेगा।

इन सब घटनाओं से छात्रावास में रहनेवाले हिंदू छात्र आतंकित हो गये। वे छात्रावास छोड़कर नगर में चले जाना चाहते थे। पर अधिकारियों ने—कहा जाता है कि—उन्हें वहाँ चले जाने की अनुमति नहीं दी। फिर भी बहुत से हिंदू विद्यार्थी किसी प्रकार नगर में चले गये।

इनके अपने घर तो वहाँ थे नहीं, वे अधिकतर नगर में किराये के घरों में रहनेवाले अपने मित्रों के 'बासों' पर पहुँचे और उन्होंने अपने मार खाने आदि का जो वर्णन दिया (संभव है कि वह अतिरंजित रहा हो) उससे ये 'बासों' में रहनेवाले विद्यार्थी भड़क उठे। जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं, इन 'बासों' में रहनेवाले विद्यार्थी केवल मुस्लिम वि० वि० के ही छात्र न थे। अतएव नगर के इन छात्रों में उत्तेजना फैल गयी और उन्होंने जलूस निकाला, तथा वे मुस्लिम विश्वविद्यालय की ओर जाने लगे। जब अधिकारियों को इस जलूस की सूचना मिली तो उन्होंने आगे बढ़कर उसको रोका और लौटा दिया। इसी समय इस जलूस के इन विद्यार्थियों और कुछ लोगों में झगड़ा और मारपीट हो गयी जिसने अंत में दंगे का रूप ले लिया। किंतु कहा जाता है कि नगर के अन्य तत्त्वों ने इन दंगों में सामान्यतः कोई भाग नहीं लिया।

अलीगढ़ में दंगा हो जाने पर 'बासों' या मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थी अपने-अपने नगरों को चले गये। वहाँ इन दंगों के समाचार उन्होंने कहे। अवश्य ही वे अतिरंजित होंगे क्योंकि उस अवस्था में 'निमक-मिर्च' लगाकर बातें कहना सरल ही नहीं, स्वाभाविक भी है। अँगरेजी राज्य के समय से ही लोगों में यह धारणा चली आ रही है कि 'सरकारी समाचारों' में बहुत-सी बातें घटाकर बतलायी जाती हैं। इधर समाचार पत्रों ने बड़े साधु उद्देश्य से ऐसे समाचारों को घुमा-फिराकर और संक्षेप में देना आरंभ कर दिया है। किंतु उनके इस कार्य का इतना प्रचार हुआ है कि लोगों की यह धारणा हो गयी है कि समाचार-पत्रों में ठीक या पूरे समाचार नहीं निकलते। इन कारणों से लोगों ने प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा करनेवाले विद्यार्थियों के अतिरंजित समाचारों को सत्य माना। किंतु इन विद्यार्थियों का संपर्क भी पढ़े-लिखे लोगों से ही था। अतएव जो उत्तेजना फैली वह शिक्षित या अर्द्धशिक्षित वर्ग में ही सीमित रही। इस कारण इन दंगों की एक विशेषता यह थी कि इनमें भाग लेनेवाले अधिकांश "बाबू वर्ग" के ही लोग थे।

ये दंगे बड़े दुर्भाग्यपूर्ण रहे। इनमें जो लोग मारे गये वे निर्दोष व्यक्ति थे। किसी भी वर्ग की जनता ने इनमें अधिक भाग नहीं लिया। यह संतोषजनक भी है, और असंतोषजनक भी। जनता का भाग न लेना संतोषजनक है, किंतु उस 'बाबू वर्ग' का इनमें भाग लेना जो अभी तक इनसे दूर रहता था, खतरे की घंटी है। यह वर्ग जनता का नेतृत्व करता है, और यदि वह इसमें पड़ा तो भविष्य में ये दंगे अधिक भीषण रूप धारण कर सकते हैं।

जब तक पूरी जाँच न हो जावे, और पूरे-पूरे तथ्य मालम न हो जावें तब तक हम इन दंगों पर कोई टीका करना ठीक नहीं समझते। किंतु यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संबंध में साधारण जनता की यही धारणा है कि उसने पाकिस्तान बनवाया और आज भी वह मुस्लिम साम्प्रदायिकता का गढ़ है। इसलिए इसके संबंध में यदि कोई अतिरंजित समाचार भी कहा जाय तो लोग उसपर सहज ही विश्वास कर लेते हैं। इस बीच उसने अपने को असाम्प्रदायिक हो जाने का कोई प्रमाण भी नहीं दिया। इसके विपरीत, उसके संबंध में जो समाचार समय-समय पर मिलते रहते हैं, वे पुरानी धारणा को ही दृढ़ करते हैं। लोगों की यह भी धारणा है कि किसी भी कारण से हो, सरकार उस विश्वविद्यालय के साथ अत्यधिक नरम बर्ताव करती है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में कोई दंगा नहीं हुआ, पर वहाँ सशस्त्र पुलिस भेज दी गयी जो महीनों उस पर अधिकार किये रही। पर इस दंगे के बीच, या उसके बाद भी, सरकार ने अलीगढ़ में ऐसी कोई कड़ाई नहीं दिखलायी। सरकार का कर्तव्य है कि वह अलीगढ़ विश्वविद्यालय की पूरी जाँच करे तथा उसे साम्प्रदायिक विष फैलानेवाले तत्त्वों से मुक्त करे।

श्री लक्ष्मी-स्तव

शान्त्यै नमोऽस्तु शरणागतरक्षणायै कांत्यैनमोऽस्तु कमनीयगुणाश्रयायै ।
क्षान्त्यै नमोऽस्तु दुरितक्षयकारणायै धात्र्यै नमोऽस्तु धनधान्यसमृद्धिदायै ॥१॥
शक्त्यै नमोऽस्तु शशिशेखरसंस्तुतायै रत्यै नमोऽस्तु रजनीकरसोदरायै ।
भक्त्यै नमोऽस्तु भवसागरतारकायै मत्यै नमोऽस्तु मधुसूदनवल्लभायै ॥२॥
लक्ष्म्यै नमोऽस्तुशुभलक्षणलक्षितायै सिद्ध्यै नमोऽस्तु सुरसिद्धसुपूजितायै ।
धृत्यै नमोऽस्त्वमितदुर्गतिभंजनायै गत्यै नमोऽस्तु वरसद्गतिदायकायै ॥३॥
देव्यै नमोऽस्तु दिविदेवगणार्चितायै भूत्यै नमोऽस्तु भुवनार्तिविनाशनायै ।
धात्र्यै नमोऽस्तु धरणीधरवल्लभायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥४॥
सुतीव्रदारिद्र्यजदुःखहंत्र्यै नमोऽस्तु ते सर्वभयापहंत्र्यै ।
श्रीविष्णुवक्षःस्थलसंस्थितायै नमोनमः सर्वविभूतिदायै ॥५॥

जयतु जयतु लक्ष्मीर्लक्षणालंकृतांगी जयतु जयतु पद्मा पद्मसद्माभिवन्द्या ।
जयतु जयतु विद्या विष्णुवामांकसंस्था जयतु जयतु सम्यक्सर्वसम्पत्करी श्रीः ॥६॥
जयतु जयतु देवी देवसंघाभिपूज्या जयतु जयतु भद्रा भार्गवी भाग्यरूपा ।
जयतु जयतु नित्या निर्मलज्ञानविद्या जयतु जयतु सत्या सर्वभूतांतरस्था ॥७॥
जयतु जयतु रम्या रत्नगर्भान्तरस्था जयतु जयतु शुद्धा शुद्धजाम्बूनदाभा ।
जयतु जयतु कांता कांतिमद्भासितांगी जयतु जयतु शान्ता शीघ्रमागच्छ सौम्ये ॥८॥

दीपावली

श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी

[स्वर्गीय श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने यह कविता सन् १९१३ में लिखी थी। लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने उनका पूजन नये ढंग से करने की सलाह दी थी। बिजली तथा उद्योग-धंधों से ही अब लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है। उनकी सीख पर आज भारत सरकार चल रही है। बिजली उत्पादन की असंख्य योजनाएँ और देश के उद्योगीकरण का बहुमुखी प्रयत्न इसका प्रमाण है। भौतिक समृद्धि के लिए 'श्री' का यही पूजन इस युग में उचित है। कवि ने प्राय: पचास वर्ष पहिले-आज के दिन की जो कल्पना की थी और जो विधि बतलायी थी, वह पाठकों का अवश्य मनोरंजन करेगी——सम्पादक, सरस्वती।]

वह देखो मिट गयी घटा नीले घनवाली
अंधकार मिट गया रात अब रही न काली।
जुगनू की नहिं ज्योति न छनदा छटा छटा में
दीपक हैं जल रहे नगर के उच्च अटा में।
उच्च अटा ही नहीं, दीन भी दीप जलाये
मनो ज्योति की धार विश्व में हैं फैलाये।
वह कर कर के शोर द्यूत खल खेल रहे हैं
रुपया पैसा खूब दाँव पर ठेल रहे हैं।
सेठों के घर आज रमा पूजी जाती हैं
हो इसलिए प्रसन्न साल भर तक आती हैं।
अब पूजा करते हैं हम ऊपर के मन से
घर खाली होता जाता है दिन दिन धन से।
सप्तसिंधु के पार छीर की स्वेत धार है

श्री का होता वहाँ रात दिन अटल प्यार है।
दुर्गा काली सरस्वती अगनित रूपों से,
पूजी जाती वहाँ रमा अगनित रूपों से।
जहाँ रमा है वहाँ राम को जाना होगा
पत्नीव्रत का अटल नियम दिखलाना होगा।
इसीलिए भगवान् भवानी दोनों रहते
श्री को कल का धूम, हरी गिरजे में बसते।
कमलासन का ध्यान आप भी छोड़ बहाओ
जहाँ धूम की धूम वहीं इनको बैठाओ।
मिट्टी का यह दीप चूर कर दूर बहाओ।
विद्युत् विमल प्रकाश नील नभ तक फैलाओ।
दीपमालिका तब होगी उपयुक्त तुम्हारी
इसको कर लो याद यही है सीख हमारी।

निरालाजी के हाथ की लिखी सन् १९३८ की एक कविता

गर्वोक्ति

हारता है मेरा मन विश्व के समर में जब
कलरव में मौन ज्यों,
शान्ति के लिये ही त्यों हूँ
हार बन रही हूँ, प्रिय, गले की तुम्हारी मैं;
निभृत की, गन्ध की, तृप्ति की, निशा की,
जगती हूँ, तुममें ही
बीज है दान मेरा — मेरा अस्तित्व सब;
दूसरा प्रभात जब फैलेगा विश्व में
कुछ न रह जायगा मुझमें तब देने को;
किन्तु आजीवन तुम एक तत्त्व पाओगे —
और क्या विश्व में अधिकतर शासन है,
अधिक प्राणों के पास, अधिक आत्मसुख,
अधिक सहने के लिये, प्रगति की सार्थकता।

लखनऊ
२४. ३. ३८. } — निराला

आदरणीय
श्री श्रीनारायण जी चतुर्वेदी को
समर्पित।
चूँकि आपके ही स्थान पर लिखी गई। निराला

निरालाजी के हाथ की लिखी सन् १९५८ की एक कविता

गीत

जय तुम्हारी देख, भी ली
रूप की, गुण की, रसीली।
वृद्ध हूं मैं, ऋद्धि की क्या,
साधना की, सिद्धि की क्या,
खिल चुका है फूल मेरा,
पंखड़ियाँ हो चलीं ढीली।
चढ़ी थी जो आंख मेरी,
बज रही थी जहां भेरी,
वहां सिकुड़न पड़ चुकी है,
जीर्ण है वह आज तीली।
आग सारी फुक चुकी है
रागिनी वह रुक चुकी है
स्मरण में है आज जीवन,
मृत्यु की है रेख नीली।

दारागंज, प्रयाग
२.६.५८

निराला

हा निरालाजी !

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

१५ अक्टूबर, १९६१, के दिन ९ बजकर २३ मिनट पर प्रातःकाल कविवर निरालाजी की मृत्यु हो गयी। इस दुःखद समाचार से न केवल प्रयाग के हिंदी-भाषियों को भारी धक्का लगा किन्तु संसार में जहाँ कहीं हिंदी-भाषी हैं, उन सबको गहरी चोट पहुँचेगी। निरालाजी के निधन से एक तेजःपुंज दीपक बुझ गया और इस असार संसार को छोड़कर वह साहित्य-कर्मी, जो वर्षों तक हिंदी-जगत् को अपने संगीतमय काव्य से आनंद देता रहा, उठ गया। हिंदी-काव्य-जगत् में उनके निधन से वास्तव में जो क्षति हुई, वह भविष्य में पूरी न हो सकेगी। कुछ लोगों का कहना है कि इस अंधकार-आकाश में बहुत से तारे भविष्य में उजाला करेंगे। मेरी यह हार्दिक कामना है कि ऐसा ही हो, लेकिन इस समय इस बात के कोई लक्षण नहीं देखायी देते कि निरालाजी की मृत्यु से हिंदी की जो क्षति हुई है, वह अनतिदूर भविष्य में पूरी हो जायेगी।

सन् १८९६ में बंगाल के महिषादल नामक राज्य में निरालाजी का जन्म हुआ, उसी राज्य में इनके पिता उन्नावनिवासी श्रीरामसहाय त्रिपाठी, नौकर थे और निरालाजी की शिक्षा का प्रबंध राज्य की ओर से किया गया था। लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि स्कूल के सीमित वातावरण के कारण अधिक समय तक निरालाजी स्कूल में न रह सके। उन्होंने घर ही पर संस्कृत और अँगरेजी का अभ्यास किया और इन दोनों भाषाओं में उन्होंने काफी उन्नति की। सन् १९०९ में, १३ वर्ष की आयु में, निरालाजी का विवाह उनके पिता ने कर दिया था। उनकी पत्नी का देहांत सन् १९१९ में हो गया। इस विवाह से उन्हें एक पुत्र और एक पुत्री मिली। पुत्री का तो स्वर्गवास हो गया लेकिन पुत्र जीवित है। वह संगीत के शिक्षक हैं। उन्होंने निरालाजी की अन्त्येष्टि क्रिया संपन्न की।

हमने ऊपर कहा है कि अधिक समय तक स्कूल में निरालाजी का रहना असंभव हो गया। इस मामले में वह कवीन्द्र रवीन्द्र के उदाहरण का अनुसरण करते हैं। जैसे उन्हें स्कूल की पढ़ाई का ढंग खटकता था वैसी ही दशा, उनके बहुत पहले, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भी हुई थी। रवीन्द्र बाबू को स्कूल की पढ़ाई का ढंग आत्मा का हनन करनेवाला प्रतीत हुआ; और क्या बंगाल में और क्या इँगलैण्ड में उन्होंने स्कूलों को नमस्कार ही किया। रवीन्द्र बाबू तो बड़े बाप के बेटे थे, अतएव उन्हें पढ़ने के लिए इँगलैण्ड भी भेजा गया। पर उन्हें उस देश का कोई विद्यालय अधिक समय तक रोक न सका। निरालाजी, इसके विपरीत, एक राज्य के आश्रित थे और उनके बाप उसी राज्य के एक नौकर थे। उन्हें इँगलैण्ड पढ़ने के लिए तो नहीं भेजा गया, लेकिन बंगाल का स्कूल उन्हें अधिक समय के लिए न रोक सका।

जन्म ही से निरालाजी में वैयक्तिक स्वाभिमान बहुत अधिक मात्रा में दिखायी देता था। स्वाधीन और स्वतंत्र वनचारी पक्षी को जिस तरह पिंजड़े में कोई अधिक समय तक कैद नहीं कर सकता वैसे ही अल्हड़ और आजादी-पसंद निरालाजी को भी स्कूल के सीमित वातावरण में रख सकना असंभव हो गया। व्यायाम की धुन उन्हें आरंभ ही से थी। कुश्ती, घुड़सवारी और कसरत का अभ्यास करने में वह लग गये और इसमें उन्हें काफी सफलता मिली। लंबा कद, उन्नत ललाट, वाणी में बल और ओज, इस भव्य मूर्ति को जिसने नहीं देखा, वह प्रकृति की यह अनोखी और अनमोल रचना देखने से सदा के लिए वंचित रहा। उनका जितना शरीर सुसंगठित था वैसी ही उनकी आँखों से प्रतिभा की चमक-दमक दिखायी देती थी। स्कूल से अलग होने के बाद एक संगीताचार्य से उन्होंने संगीत की शिक्षा ली।

इसी अल्हड़पन और आजादी-पसंदी के कारण कभी-कभी वह गर्वोक्ति भी किया करते थे। हिंदी के प्रति उनकी ममता को देखकर किसी विदेशी के मन में यह भाव सहज ही उत्पन्न हो सकता था कि अन्य भाषाओं के प्रति उनमें असहिष्णुता है; लेकिन बात ऐसी न थी। बंगला के प्रति उनकी वही भावना थी, जैसी हिंदी के प्रति थी। अँगरेजी कवि शेली और कीट्स तथा शेक्सपियर का अध्ययन उन्हें उतना ही रुचिकर था जैसे तुलसीदास के रामचरितमानस के पाठ का उन्हें अभ्यास था। दूसरी भाषाओं के प्रति उनमें विद्वेष न था; लेकिन हिंदी के प्रति उनकी ममता अगाध और अपार थी। हिंदी के कर्मठ साधक वह अपने को मानते थे और हिंदी को उनकी देन का उचित मूल्यांकन आगेवाली नस्लें हमसे कहीं अधिक ठीक-ठीक कर सकेंगी।

मुक्त कविता करने की जो परिपाटी निरालाजी ने चलायी, उसके विषय में रामचन्द्र शुक्लजी के अभिमत को बहुत से लोगों ने भला-बुरा कहा। मैं शुक्लजी की निरालाजी-वाली इस आलोचना को इस समय फिर से पढ़ गया। उनकी उस आलोचना में कोई ऐसी बात न मिली, जिसके कारण हिंदीवालों को शुक्लजी पर कटाक्ष करने का कोई अवसर मिले। यह मानना पड़ेगा कि हिंदी-कविता के विषय में इन दोनों में मतभेद था। जहाँ शुक्लजी पुरानी छंद-मयी कविता के अनुकूल थे, वहाँ निरालाजी कविता को छंदों की जंजीर से मुक्त करना चाहते थे। निरालाजी का यह दावा था कि जैसे व्यक्ति को वैसे ही कविता को भी 'मुक्ति' का अधिकार है। छंदों

के जंजाल से कविता को मुक्त करने का श्रेय सबसे प्रथम निरालाजी ही को प्राप्त है। लेकिन इस मतभेद के होते हुए भी श्री रामचन्द्र शुक्ल ने निरालाजी की प्रतिभा की, बहु-वस्तु-स्पर्श की, नवीन उद्भावनाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

शुक्लजी के अतिरिक्त अन्य आलोचकों ने भी निरालाजी की कविता में कहीं-कहीं भाषा की दुरूहता देखी है, जिससे वह कविता के अर्थ को दूसरों तक पहुँचाने में असमर्थ रहे हैं। लेकिन जैसे शुक्लजी ने, वैसे ही निरालाजी के समकालीन आलोचकों ने, निरालाजी के मुक्त छन्दों की प्रशंसा की है। समकालीन आलोचकों में श्री सुमित्रानंदन पंत का नाम लेना काफी होगा। उनकी सम्मति में निरालाजी की देन हिंदी-साहित्य में अमर मानी जायेगी। उनकी तुलना वह हिमालय पर्वत से करते हैं। सौ वर्ष बाद भी निरालाजी के मुक्त छंद की प्रणाली का अनुसरण हिंदीवाले साहित्यकार करते रहेंगे, इसमें कोई शक-शुबह की गुंजाइश नहीं है। इसी बात के कारण उनका नाम सदा के लिए हिंदी-साहित्य में अमर रहेगा। समकालीन आलोचकों ने निराला-जी के निधन पर जो श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं, उन सबमें निरालाजी के संगीतमय काव्य—मुक्त छंद-पद्धति—के उस अपार ऋण की गाथा है जिसको सदियों तक हिंदी के कवि अपनी-अपनी रचनाओं में गाते रहेंगे। उनकी यह देन हिंदी के लिए बहुत बड़ी है और उनका ऋण सदा हिंदीवाले मुक्त कंठ से स्वीकार करेंगे।

ऐसी दशा में रामचन्द्र शुक्लजी पर यह लांछन लगाना अशोभनीय है कि उन्होंने निरालाजी के छंदों को 'रबर छंद' या 'केंचुआ छंद' कहा। उन्होंने तो अन्य लोगों की कही बात का उल्लेख कर निरालाजी की भावमयी रचनाओं की प्रशंसा की है। लेकिन शुक्ल-जी ने 'गीतिका' नामक ग्रंथ से जो उदाहरण दिये हैं वह निरालाजी के साथ अन्याय करने की प्रवृत्ति के आभास के सूचक हैं। हमें तो दूसरे लोगों के आरोपों का कुछ भी मलाल नहीं है। 'अनामिका' को निरालाजी अपनी सबसे श्रेष्ठ रचना मानते थे। उन्हें गर्व था कि कालि-दास के बाद यदि कोई कवि भारत में पैदा हुआ है तो वह कवि स्वयं निरालाजी थे। लेकिन उनकी गर्वोक्ति को यदि हम सही अर्थों में लें तो इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक हिंदी कवियों में निरालाजी का स्थान बहुत ऊँचा है। 'प्रसाद', पंत और महादेवीजी के रहते हुए हम यह मानने को कदापि तैयार नहीं कि कालिदास के बाद यदि भारत ने किसी कवि को जन्म दिया है तो वह स्वयं निरालाजी ही थे।

एक आलोचक का कहना है कि "निरालाजी की साहित्य-साधना में उनकी क्रांतिकारी छंद-योजना विशेष महत्त्व रखती है। आपके पहले भी हिंदी में अतुकांत छंद-योजना हो चुकी थी और इनके अन्य समकालीन लोग भी ऐसे छंद लिख रहे थे, किन्तु उनमें और भी कई प्रवृत्तियों का मेल हो जाया करता था। कुछ लोग संस्कृत के वर्ण-वृत्तों के आधार पर अतुकांत छंद-रचना करते थे और कुछ लोग मात्राओं के आधार पर; किन्तु निरालाजी ने सम्पूर्ण बंधनों को छिन्न-भिन्न कर अपनी साहसिक और स्वतंत्र शैली पर रचना (करना) आरंभ कर दी........अँगरेजी ढंग पर ध्वनि के उतार-चढ़ाव और उसके सम ही पर ध्यान रखा गया। (जब) आप हिंदी में ऐसे छंद लिखने लगे, तब उनका बड़ा विरोध हुआ। कुछ लोगों ने उनके छंदों को 'रबर छंद' की संज्ञा दी और कुछ ने 'केंचुआ छंद' की। किन्तु आप पर इसका कोई असर नहीं पड़ा।......आपने तुकांत छंदों की भी सुन्दर रचनाएँ की हैं। आपके अतुकांत छंद यद्यपि अनुकरणीय हैं, किन्तु कहीं-कहीं उनका रूप खट-कता है और उनमें नीरसता भासित होती है।"

इस आलोचक की अधिकांश सम्मति से, जैसा ऊपर कहा गया है, मैं सहमत हूँ। मुक्त छंद लिखने के कारण ही निरालाजी का मान हिंदी-जगत् में हुआ और उनकी इस देन की तुलना ब्रजभाषा के ऊपर खड़ी बोली का प्राधान्य स्थापित करने के आन्दोलन से की जा सकती है।

सन् १९४० में मुझे निरालाजी के आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। लखनऊ के पुराने विधायक-निवास की हरी घास पर मैंने उनका स्वागत किया और तुलसीदास पर अपनी नयी रचना की भेंट उन्होंने मुझे दी। उन्होंने गर्वोक्तियाँ अपने संभाषण में कई बार कीं लेकिन उन गर्वोक्तियों को कवि की स्वाभाविक बात समझकर मैं चुप रहा। मुझे याद है कि उस समय उन्होंने जो बातें कीं, उनका मेरे मन पर यही प्रभाव पड़ा कि कविजी दून की हाँक रहे हैं। उनकी महत्ता को मैं उस समय आँक न सका। मुझे इस बात का बहुत बड़ा दुःख है।

मैंने ही उनके साथ अन्याय किया है, सो बात नहीं है। अनेक साहित्यकारों ने भी समय-समय पर उनकी महत्ता को न समझने की भूल की है। इसीसे कुछ थोड़ा सा संतोष होता है। उनके प्रशंसकों में श्रीमान् श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि से रहे हैं। उनकी कृपा से मुझे 'कुल्ली भाट' नामक ग्रंथ के पढ़ने का सुख-सौभाग्य प्राप्त हुआ, लेकिन निरालाजी के गद्य में कोई विल-क्षणता न दिखायी दी जिसके कारण पद्य में वह युगांत-कारी कवि माने गये हैं।

उनके जीवन की विशेषता थी उनकी दान-शीलता और आतिथ्य-सत्कार। अनेक बातें इस सम्बन्ध में निराला-जी के विषय में कही जाती हैं। हाल ही में ऐसी घ
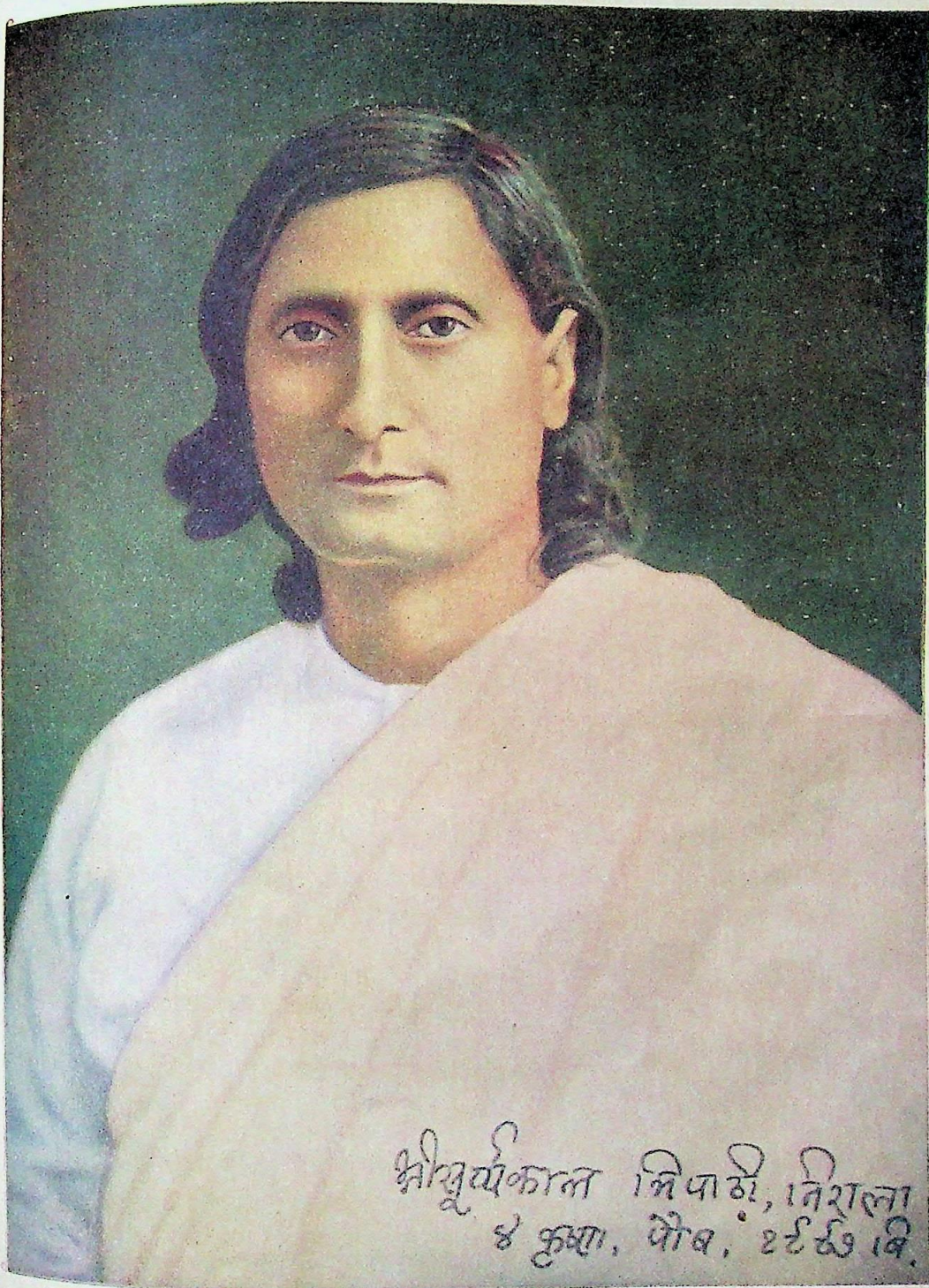
युग-प्रवर्तक निराला
(अपनी पूर्ण युवावस्था में)

नाओं का उल्लेख 'नव भारत टाइम्स' (अक्टूबर १६ और १७) ने किया है, जिनमें से कुछ का समावेश कर देना अनुचित न होगा ।

निरालाजी ने द्वितीय विश्व-युद्ध की एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा कि उन दिनों अँगरेज सरकार ने मुझे एक लाख रुपये का 'आफर' किया कि मैं नगर-नगर में, रेड-क्रास के लिए, हिंदी कविसम्मेलन करूँ। इन सम्मेलनों का प्रबंध आदि तो सब जिलों के अधिकारी करते; मेरा काम तो बस अपने कवि-मित्रों के साथ पहुँचकर कविता-पाठ करना भर होता। पर मैंने यह 'आफर' ठुकरा दिया ।

× × ×

उत्तर प्रदेश की सरकार की ओर से निरालाजी की एक पुस्तक पर २१००) का पुरस्कार मिला। निरालाजी ने एक स्वर्गीय साहित्यिक मित्र की विधवा पत्नी को ५०) मासिक के हिसाब से सारी रकम का दान कर दिया। उन स्वर्गीय साहित्यिक मित्र से निरालाजी ने कभी २१) उधार लिये थे !

× × ×

हिंदी साहित्यसम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के अध्यक्ष गांधीजी थे । उन्होंने अपने संभाषण में कहा था कि हिंदी में कौन है जो रवीन्द्रनाथ से टक्कर ले सके। इससे निरालाजी को बड़ी चोट पहुँची और जब गांधीजी लखनऊ में ठहरे थे तब निरालाजी ने उनसे भेंट की । गांधीजी से कविवर की बातें हुईं । निरालाजी ने उन्हें हिंदी कवियों के अनेक पद सुनाये और अंत में कहा कि आपने (गांधीजी ने) बिना जाने यह कैसे कह दिया कि कौन है हिंदी में रवीन्द्रनाथ जैसा ?

× × ×

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी निरालाजी के जीवन की ऐसी ही अनेक घटनाओं का वर्णन करते हैं जिनसे इनकी दानशीलता को देखकर कर्ण के दान की याद आती है। कर्ण ने अपनी माता कुंती को दान दिया था, लेकिन निरालाजी की दानशीलता की यह विशेषता थी कि जिस किसी भी प्राणी को वह दुःखित या पीड़ित देखते थे उसीको वह अपनी दानशीलता से उपकृत करते थे । एक भिखारिणी को निरालाजी ने अपनी राएल्टी का सारा रुपया देकर उसे यह आदेश दिया कि 'अब से भीख न माँगा कर।' घटना इस प्रकार है :—

एक दिन निरालाजी को किसी प्रकाशक से राएल्टी के रुपये मिले। वह उस रकम को लेकर अपने घर जा रहे थे। रास्ते में एक बुढ़िया भिखारिन मिली। उसने कविवरजी से कहा कि बच्चा, कुछ देता जा। तुरंत कविवरजी ने उसे सब रकम दे दी और कहा कि, 'माँ ! अब आगे से भीख माँगना छोड़ दे।' प्रसन्न मुद्रा में निरालाजी अपने घर पहुँचे लेकिन रकम के बिना। यह थी दानशीलता इस महापुरुष की। कौन ऐसा दूसरा है जो दुःखितों की पीड़ा से मर्माहत होकर अपने तन का कपड़ा तक दान में उसे दे डाले ?

दो साहित्यिक पत्रों से निरालाजी का किसी समय कुछ दिन के लिए सम्बन्ध रहा। स्वर्गीय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की सिफारिश पर यह बेलूर मठ में रामकृष्ण मिशन के 'समन्वय' नामक पत्र के संपादक हुए। 'समन्वय' का संपादन करते समय इन पर रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप अद्वैतवादी दार्शनिकता का आपकी कविता में प्राधान्य हो गया। कुछ दिनों तक मिर्जापुर से प्रकाशित होनेवाले 'मतवाला' में भी इन्होंने काम किया। उसके बाद यह स्वतंत्र रूप से साहित्य की रचना करने लगे। इस काल में इन्हें अनेक संकटों का सामना करना पड़ा लेकिन कविवर ने इन कठिनाइयों को तुच्छ गिना और अपनी दानशीलता से दूसरों को उपकृत करते रहे।

हिंदी-जगत् से ऐसे महाप्राण निराला का उठ जाना हिंदी-भाषियों के लिए दुःख और संताप का विषय है। हम उस संपादकीय से सहमत हैं जिसमें उनके व्यक्तित्व को उनकी रचनाओं से अधिक मान दिया गया है। प्रयाग की 'पत्थर तोड़नेवाली मजदूरिन' के गीत गाना सहज है लेकिन जीवन में उस दानशीलता का, जो निरालाजी के जीवन की अंग थी, जोड़ मिलना कठिन है। इस अर्थ में इनका व्यक्तित्व इनकी रचनाओं से कहीं अधिक मूल्यवान् है और जो कोई भविष्य में निरालाजी पर लेख लिखेगा, उसीके सामने यह प्रश्न आयेगा कि निरालाजी की रचनाएँ श्रेष्ठ हैं या इनका व्यक्तित्व बड़ा है।

महाकवि निराला ने अपने काव्य 'तुलसीदास' का अन्तिम पद यों लिखा था—

"वह तरुशाखा का वन-विहंग,
उड़ गया मुक्त नभ निर-सतरंग
छोड़ता रंग पर रंग, रंग पर जीवन॥"

हम उनके लिए भी यही कह सकते हैं।

निरालाजी के प्रति श्रद्धांजलि

स्वर्गीय गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

स्व० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' ने निरालाजी के सम्बन्ध में एक बार जो कहा था वह अप्रकाशित है। इस समय हम उसे प्रकाशित कर रहे हैं।

निरालाजी साधक साहित्यकारों की परम्परा के कवि हैं—वह परम्परा जिसके प्रवर्त्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित बालकृष्ण भट्ट, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचंद आदि हैं। हिंदी साहित्य के वर्त्तमान युग में, जब बड़े साहित्यिक मत्स्य छोटी साहित्यिक मछलियों को खा जाने के लिए महान् जीवन-संघर्ष उपस्थित कर रहे हैं, निरालाजी ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जिस धैर्य साहस और पराक्रमशीलता का परिचय दिया है, उससे हिंदी ही के नहीं, विश्व के प्रत्येक साहित्यकार को अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रबल प्रेरणा मिलेगी। इस कवि के हृदय में स्वतंत्रता की जैसी आग धधकती रही है और उसकी रचनाओं में उसके कारण जैसी स्फूर्त्ति का संचार हुआ है, उसे ध्यान में रखकर यदि निरालाजी के सम्पूर्ण काव्य की समीक्षा हमें करनी हो तो हम दो शब्दों में यही कहेंगे कि वह 'स्वतंत्रता का गान' है। काव्य के प्राण-रूप भाव के प्रस्फुटन में, अभिव्यक्ति-विषयक साज-सज्जा के निर्धारण में उन्होंने अपनी स्वतंत्र मौलिक प्रकृति का परिचय दिया है। स्वतंत्रता-विषयक उनकी वेदना उतनी ही अंतर्मुखी है जितनी बहिर्मुखी; अंतर्मुखी होकर वह अद्वैत की ओर प्रवाहित होती है तथा जीवन-मात्र से मुक्त होना चाहती है, साथ ही बहिर्मुखी होकर वह 'तुलसीदास' नामक काव्य में हिंदुओं की मुस्लिम शासन-कालीन पराधीन परिस्थिति का विश्लेषण भी करती है। निरालाजी की स्वतंत्रता-कामना-गत उभय प्रवृत्तियों में कहीं भी धर्म-वैषम्य नहीं है, कहीं भी असंगति नहीं है; गृह-जीवन का वे निषेध करते हैं, किन्तु क्यों? सुनिए—

> **मैं रहूँगा न घर के भीतर।**
> **जीवन में रे मृत्यु के विवर।**

वे कारण की स्पष्ट घोषणा कर रहे हैं, वे घर के भीतर नहीं रहना चाहते, क्योंकि घर के जीवन में मृत्यु के गर्त्त हैं, छिद्र हैं; यदि ये गर्त्त और छिद्र न हों तो वे गृह में रहकर जीवन की क्लान्ति मिटाने के लिए घर में भी ठहर सकते हैं। एक ओर तो कल्पनातीत अद्वैत के प्रति प्रगति करने के लिए उनमें इतना आग्रह है, दूसरी ओर उनकी उस व्यथा को भी देखिए जो हिन्दुओं की पराधीनता उनमें उत्पन्न करती थी—

> **लड़ लड़ जो रणबाँकुरे समर,**
> **हो शयित देश की पृथ्वी पर,**
> **अक्षर, निर्जर, दुर्धर्ष, अमर जगतारण।**
> **भारत के उर के राजपूत,**
> **उड़ गये आज वे देवदूत,**
> **जो रहे शेष, नृपवेश सूत बंदीगण।**

देवदूत सरीखे राजपूत और नृपवेश सूत बंदीगण का अंतर इन पंक्तियों में झलकाकर कवि की प्रतिभा तृप्ति का अनुभव कर रही है। हमारे जीवन में प्रगति के प्रत्येक स्तर की सच्ची पहचान करना तथा कराना यदि कवि का स्वाभाविक धर्म हो तो निरालाजी उसमें यथेष्ट रूप से सफल हुए हैं और यही उनकी लोकप्रियता का रहस्य है।

निरालाजी के सम्बन्ध में अपने इस निवेदन को मैं बहुत अधिक विस्तार नहीं देना चाहता। मैं संक्षेप में इतना ही कहूँगा कि देश में स्वतंत्र साहित्यकार के संघर्ष-मय जीवन में पड़कर भी जो थोड़े से साहित्यसेवी इस देश में जीवित बचे हैं, उनमें निरालाजी का नाम सर्वोपरि रखने योग्य है; जो साहित्यकार थोड़ा-सा लेकर समाज-सेवा की वेदी पर सर्वस्व अर्पित करते हैं और साहित्य-प्रेम तथा सेवा के नाम पर शोषण, परस्वत्वापहरण आदि की बढ़ती हुई प्रवृत्तियों के विरोध में अपने को मिटाकर भी लोकसेवा के आदर्श की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं उनमें निराला-जी शीर्षस्थान पर विराजमान हैं; असत्याराधना का रक्त पीकर मोटी पड़नेवाली हमारी वर्त्तमान युगीन तथा-कथित साहित्य-साधना निरालाजी के काव्य से अमृत प्राप्त कर सकती है और उस अमृत से छककर वह सहज ही उस अनंत पैशाचिक पिपासा से अपना पिंड छुड़ा सकती है जो उसे विपथगामिनी बनाकर हिंदी की सेवा के स्थान में हिंदी का दोहन करने की उमंग दे रही है। जितनी मात्रा में और जितनी दूर तक निरालाजी का त्यागमय जीवन और काव्य उक्त आदर्श को वाणी प्रदान करता है उतनी मात्रा में और उतनी दूरी तक उनका कवि-व्यक्तित्व अमर है और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मैं उसे प्रणाम करता हूँ।

संस्मरणांजलि

श्री अनन्त चौरसिया

बसंत फिर अपना समस्त सौंदर्य-सौरभ लेकर चारों तरफ पवन-पंखों पर उड़-उड़कर मँडरा रहा है। 'जूही की कली' चिटख-चिटखकर उद्‌घोष कर रही है यौवन के स्फुरण का—

बौरे आम कि भौंरे बोले!
प्रात कि गात पात के तोले!!
सरसाई समीर मधुबन की
आँखों छबि आई आनन की
आलस दूर हुआ मनभाया
चिड़ियों ने सुख के मुख खोले!
कैसी ज्योति छाँह से छल की
दुर्बल ने हद कर दी बल की
आज के साज भूल गये सब जन
कल के जीवन जो रस घोले!

और न जाने कब तक इसी भाँति चिर यौवन की अजेय पताका दिग्-दिगन्त में फहराती रहेगी। किन्तु इन सबसे दूर होकर महाकवि—जराजीर्ण-रुग्ण बोल उठा—

जय तुम्हारी देख भी ली,
रूप की गुण की रसीली!
वृद्ध हूँ मैं ऋद्धि की क्या
साधना की सिद्धि की क्या
खिल चुका है फूल मेरा
पँखुड़ियाँ हो चलीं ढीली!
चढ़ी थी जो आँख मेरी
बज रही थी जहाँ भेरी
वहाँ सिकुड़न पड़ चुकी है
जीर्ण है वह आज नीली!
आग सारी फुक चुकी है
रागिनी वह रुक चुकी है
स्मरण में है आज जीवन
मृत्यु की है रेख नीली!

अपनी सतत् साधना से अक्षय यश बटोरनेवाले युग-प्रवर्तक ने सब कुछ निरीहता से देखा। जिसने कभी पराजय नहीं स्वीकारी, निराशावाद में डुबकी नहीं लगाई, उस पर परिस्थितियों ने जीवन के अगणित पहलुओं पर अपनी जो अमिट छाप छोड़ी वह मिटायी नहीं जा सकती—किन्तु फिर भी उसकी साधना के नाद ने गूंज-गूंजकर उस निराला को यशज्जयी घोषित किया जिसने सब कुछ समर्पित कर दिया राम के सहारे—

राम के हुए तो बने सब काम,
सँवारे सारे धन-धर्म-धाम!
पूछा जन ने—वह राम कौन?
बोली विशुद्धि जो रही मौन—
वह जिसके दून न ड्योढ़-पौन
जो वेदों में है सत्य-साम!
वह सूर्यवंश सम्भूत, समी-
जीवन की जय का सूत अमी
कृष्णार्जुन-हारण पूत तमी
जो चरण-अचरण बिन दाम!

और वंदना में अपने स्वरों का ऊर्जस्वित गर्जन किया—

तिमिर-हरण तरणि-तरण किरण-वरण हे!
जिन दानव, मानवगण चरण-शरण हे!
कला सकल कर-तल गत
अविगत, अविनत, अविरत
आनन-आनन शत्-शत्
मरण-मरण हे!
जब तक नर-मन अविकल
रहो सकल फल-सम्बल
निचले के क्षमा गरल
जग-ठग रण के!

महाप्राण निराला इसी तरह के निराले व्यक्ति थे। अपनी अभुतपूर्व साधना के बल पर वे काव्य में एक युग के प्रवर्तक हुए। उनके जीवन का प्रत्येक पृष्ठ साधना के स्वर्णाक्षरों में चमक रहा है। यदि किसीको सचमुच कलाकार कहते हुए मस्तक श्रद्धा से नत होता है तो उसी महामानव के सामने, जिसने लक्ष्मी को कुछ भी न समझते हुए सरस्वती की अनवरत सेवा-निष्ठा में अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दिया।

न जाने उनके जीवन में कितनी विघ्न-बाधाएँ आयीं कितने अभाव सामने आये; किन्तु वे इनसे विचलित नहीं हुए। निरन्तर बढ़े चले गये। इसीसे वे महाप्राण

हुए। उनकी प्रतिभा ने, उनके कार्यों ने युग को नवीन मोड़ दिया।

भारतीय संस्कृति के पूर्ण समर्थक, भारतीय संस्कृति तथा हिन्दुत्व के पोषक, दार्शनिकता से ओत-प्रोत और आत्माभिमानी निराला ने कभी भी दुर्बलता अथवा अनाचारिता से समझौता नहीं किया। आंतरिक अनुभूति के सफल व्यंजनाकार ने उन्हीं तत्त्वों का पोषण किया जो 'भारति जय विजय करे' का मंत्र गुनगुनाती रहे। मानवता की जय-गाथा में उनकी वाणी——

सुख का दिन डूबे डूब जाय,
तुमसे न सहज मन ऊब जाय !
खुल जाय न मिली गाँठ मन की
लुट जाय न उठी राशि धन की
धुल जाय न आब शुभानन की
सारा जग रूठे रूठ जाय !
उलटी गति सीधी हो न भले
जन-जन की दाल गले न गले
यह बान न टाले कभी टले
यह जान जाय तो खूब जाय !

सदा-सदा मुखरित रही। इस व्यक्ति-विशिष्टता की गहरी छाप सदैव ही उन्होंने साहित्य-समाज पर छोड़ी। कहीं भी निर्झर का प्रवाह रुका नहीं——

गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने दो !
राह चलते ठोकरों से
होश के भी होश छूटे
हाथ जो पाथेय थे
ठग-ठाकुरों ने रात लूटे
कंठ रुकता जा रहा है,
आ रहा है काल देखो !
भर रहा है गरल से
संसार जैसे हार खाकर
बोलते हैं लोग लोगों से
सही परिचय न पाकर
बुझ गई है लौ प्रथा की,
जल उठो फिर सींचने को !

वेदना की प्रत्यक्ष अनुभूति की जहाँ अजस्रता है, वहीं सुमधुरता का संयोगिक सामंजस्य अपना अपार वैभव लिए हुए मंद-मंद मुसकुरा रहा है और आमंत्रित कर रहा है सरसता में आकंठ डूबने के लिए——

बाँसुरी जो बजी,
लाज कुल की तजी !
यमुना पुलिन अजन
आँजे नयन, सजन
तन, बसे फूल, जन
मन देखकर लजी !
बैर के बेर - बन
बो गये कृष्ण-घन
शेष के देश की
दशा दुख की भजी !

निराला का पार्थिव शरीर नहीं रहा, किंतु वास्तविक निराला अपने काव्य में अमर है। आशा, आनंद, अन्याय और अशिवता के प्रति घृणा, दलित, पतित और सम्बल-हीनों के प्रति सहानुभूति——यह है निराला की आत्मा। उनकी कविता हिंदी भाषा की निधि है जो भावी पीढ़ियों को आनंद और प्रेरणा देती रहेगी और जिसके द्वारा उन्हींके शब्दों में——

शरत् की शुभ्र गंध फैली,
खुली ज्योत्स्ना की सित शैली !
काले बादल धीरे-धीरे
मिटे गगन के चीरे-चीरे
पीर गयी उर आये पी रे !

मृत्युंजयी महाप्राण निराला की पीर गयी, और उन्हें इस शरद में 'प्रिय' का समागम प्राप्त हुआ। वे सूर, तुलसी, देव, भूषण, भारतेंदु, प्रसाद की उस कीर्ति-माला में हैं जिन्हें उत्पन्न कर माँ हिंदी पुत्रवती हुई। निराला अपने काव्य में जीवित रहेंगे। निराला अमर हैं।

मृत्युञ्जयी निराला

डा० रामविलास शर्मा

जीवन-द्रष्टा अनेक हुए हैं; जीवन से निराश होकर मृत्यु का आमंत्रण करनेवालों की भी कमी नहीं। जो मृत्यु का सामना करके जीवन का वरण करते हैं, उन विरले साधकों में थे निराला।

उन पर वेदान्त और स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव था, यह बात प्रसिद्ध है। स्वामी विवेकानन्द, वेदान्त, तुलसीदास या कालिदास--इन सबको समझने, उनकी भावधारा को आत्मसात् करने का उनका ढंग अपना था। स्वामी विवेकानन्द की जिस बात ने संभवतः उन्हें सबसे अधिक आकर्षित किया था, वह मृत्यु के प्रति उनका दृष्टिकोण था। अपने कवि-जीवन के आरंभ में ही उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की कुछ कविताओं का अनुवाद किया था। "गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को"--इस अनुवादित कविता का वर्ष उन्होंने १९२४ दिया है। इसमें मृत्यु के बारे में कहा गया है :

बार बार गाता मैं
भय नहीं खाता कभी,
जन्म और मृत्यु मेरे पैरों पर लोटते हैं।

इन पंक्तियों में व्यक्त स्थापना कवि का जीवन-आदर्श बन गयी। इसी वर्ष उन्होंने दूसरी कविता का अनुवाद किया-- "नाचे उस पर श्यामा"। इसमें जीवन और मृत्यु का संबंध एक रूपक द्वारा प्रकट किया गया है। सूर्य की प्रखर किरणों से लोग भय खाते हैं, चन्द्रमा की शीतल किरणों की खोज करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि चन्द्रमा को अपनी शीतल किरणें सूर्य से ही प्राप्त होती हैं।

रुद्र रूप से सब डरते हैं,
देख देख भरते हैं आह,
मृत्युरूपिणी मुक्तकुन्तला
माँ की नहीं किसीको चाह!

निराला ने निश्चय किया कि रुद्र रूप से डरना नहीं है। चन्द्रमा की शीतल किरणों से छले जाने के बदले सूर्य की प्रखर किरणों का ही सामना करना है। मृत्यु और अभय-दायिनी माँ अलग नहीं हैं।

मृत्यु-स्वरूपे माँ, है तू ही
सत्य-स्वरूपा, सत्याधार।

इस माँ के पास व्याधि है, रोग है, विष है, मृत्यु तो वह स्वयं है ही।

माँ, तू मृत्यु घूमती रहती,
उत्कट व्याधि, रोग बलवान,
भर विष-घड़े, पिलाती है तू
घूँट जहर के, लेती प्राण।

इस देवी ने मानों अपनी सारी विशेषताएँ अपने भक्त के जीवन में उतार दीं।

अनुवादित कविता में माँ को मृत्यु-रूपिणी कहा गया है। निराला मृत्यु के उपासक नहीं थे, वह मृत्यु पर विजय पाने के आकांक्षी थे। इसलिए उनकी अपनी रचनाओं में जिस आराध्य देवी की वन्दना की गयी है, वह मृत्यु से परे है। मृत्यु उसका आभरण है, वह विष के प्याले पिलाती है, मनुष्य को मृत्युञ्जयी बनाने के लिए।

१९२५ में उन्होंने गीत लिखा था--

मृत्यु-निर्वाण प्राण-नश्वर
कौन देता प्याला भर भर?

इन प्यालों को पीने वाला मृत्यु की बाधाएँ पार करके अमर हो जाता है।

मृत्यु की बाधाएँ, बहु द्वंद्व
पार कर कर जाते स्वच्छंद
तरंगों में भर अगणित रंग,
जंग जीते, मर हुए अमर।

मरना नहीं, मरकर अमर होना, यह था जीवन का आदर्श।

यह बात नहीं कि निराशा और उदासी ने उन्हें घेरा न हो किन्तु वे इनके उस पार भी कुछ देखने का साहस सँजोये रहे। २२ अक्टूबर १९२७ के "मतवाला" में उनकी प्रसिद्ध चुनौती छपी थी :

जीवन चिरकालिक क्रन्दन।
मेरा अन्तर वज्र-कठोर,
देता जी भरसक झकझोर
मेरे दुख की गहन अन्ध-
तम निशि न कभी हो भोर।
क्या होगी इतनी उज्वलता
इतना वंदन-अभिनन्दन?

श्री अमृतलाल नागर के शब्दों में नियति ने मानों उनकी यही प्रार्थना सुनी। उन्होंने सब दुख झेलने की प्रतिज्ञा की और अन्त में यह आशा प्रकट की कि उनका जीवन-रथ अन्धकार को पार कर जायगा।

हो मेरी प्रार्थना विफल,
हृदय-कमल के जितने दल,
मुरझायें, जीवन हो म्लान,
शून्य-सृष्टि में मेरे प्राण
प्राप्त करें शून्यता सृष्टि की
मेरा जग हो अन्तर्धान,
तब भी क्या ऐसे ही तम में
अटकेगा जर्जर स्पन्दन?

"परिमल" में उनकी रचना है "पतनोन्मुख"। इसमें मानों आसन्न मृत्यु के दर्शन करके उन्होंने लिखा था—

मास मास दिन-दिन प्रतिपल
उगल रहे हो गरल अनल,
जलता यह जीवन असफल,
हिम हतपातों-सा असमय ही
झुलसा हुआ शुष्क निश्चल!
विफल डालियों से
झरने ही पर हैं पल्लव-प्राण—
हमारा डूब रहा दिनमान!

पल्लव-प्राणों के डालियों से विलग होने में अभी बहुत विलंब था। "आवाहन" में उन्होंने आराध्य देवी श्यामा से मृत्यु को पंजा लड़ाते हुए चित्रित किया।

भैरवी भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा।

स्पष्ट ही मृत्यु से संघर्ष करनेवाला व्यक्ति कवि स्वयं है। "परिमल" की ये कविताएँ १९२७-२८ के लगभग रची गयी थीं।

"गीतिका" के अनेक गीतों में उन्होंने मृत्यु को स्मरण किया है। उससे भय नहीं, उससे संघर्ष नहीं, वह आकर्षक हो गयी है। विश्व-सुन्दरी के हाथों में मरण और अमरता, दोनों वर विद्यमान हैं।

मृत्यु को अपने ही कर म्लान
कर दिया तुमने प्रिया सुघर।

मृत्यु के ज्ञान से प्रणय का आकाश खुल जाता है; मृत्यु के भीतर भी उसी विश्व सुंदरी का प्रकाश दिखाई देता है:

मृत्यु में पैठ भंग-भ्रू-लास-
रंग दिखलाती हो सत्वर।

एक अन्य गीत में वह इस सुन्दरी का आह्वान करते हैं। सघन अन्धकार है। आकाश ध्यान में डूबा है। नील कमल मुँद गये हैं।

यही नील-ज्योति-वसन
पहन नील नयन हसन,
आओ छवि, मृत्यु-दशन
करो दंश जीवन-फल।

"दे मैं करूँ वरण"—गीत में कवि ने मृत्यु को माँ के चरणों के राग से रंजित देखा है।

दे, मैं करूँ वरण
जननि, दुखहरण पद-राग-रंजित मरण।

इस मृत्यु-वरण का अर्थ जीवन का अन्त नहीं है; इस जीवन में ही मृत्युञ्जयी वीर संघर्ष में अजेय रहता है।

लाञ्छना इन्धन, हृदयतल जले अनल,
भक्ति-नत-नयन मैं चलूँ अविरल सबल
पार कर जीवन-प्रलोभन समुपकरण।

यह संसार समुद्र के समान है। उसकी लहरें शक्ति की तरंगें हैं। मृत्युञ्जयी वीर इन तरंगों को पार करता है।

'प्राणसंघात के सिन्धु के तीर मैं
गिनता रहूँगा न कितने तरंग हैं
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण।'

मृत्यु-संबंधी रचनाओं में निराला का स्वर "गीतिका" में सर्वाधिक उदात्त है। इस तरह की रचनाओं में ओज गुण का निर्वाह उनकी विशेषता है।

अपने चरणों के राग से मृत्यु को रंजित करनेवाली देवी ही रावण को अंक में लिये हुए राम को दर्शन देती है। शक्ति की साधना करके राम रावण पर विजय पाते हैं। सन् ३८ के एक गीत में मृत्यु और मुक्ति एक हो जाती हैं।

दिये थे जो स्नेह-चुंबन,
आज प्याले गरल के घन;
कह रही हो हँस—'पियो प्रिय,
पियो प्रिय, निरुपाय!
मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में आई हुई न डरो!'

सन् ३९ के गीत

उन चरणों में मुझे दो शरण।
इस जीवन को करो हे मरण।—
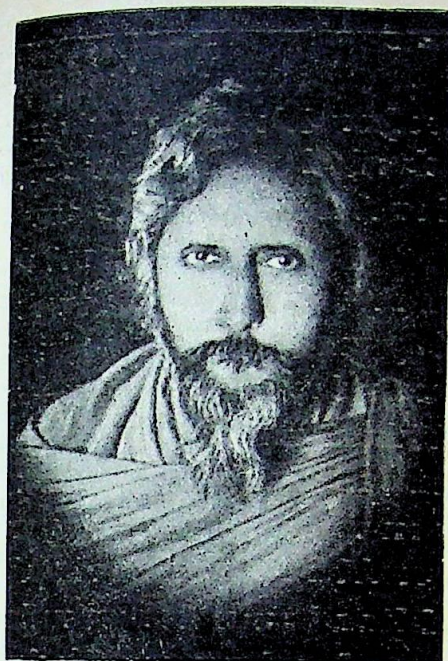
निरालाजी का एक छायाचित्र जो १९५८-५९ में लिया गया।
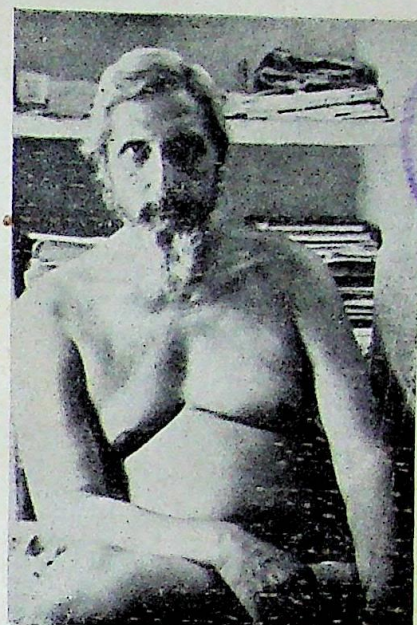
सन् १९६० में लिया गया निरालाजी का एक चित्र

निरालाजी का युवावस्था का एक चित्र

६०वें वर्षदिन पर निरालाजी का सम्मान। सेठ गोविंददासजी नारियल भेंट कर रहे हैं। निरालाजी और सेठजी के बीच में ब्रह्मर्षि जगन्नाथप्रसाद शुक्ल बैठे हैं।

निरालाजी मृत्यु की गोद में

फूलों से आच्छादित निरालाजी की अर्थी
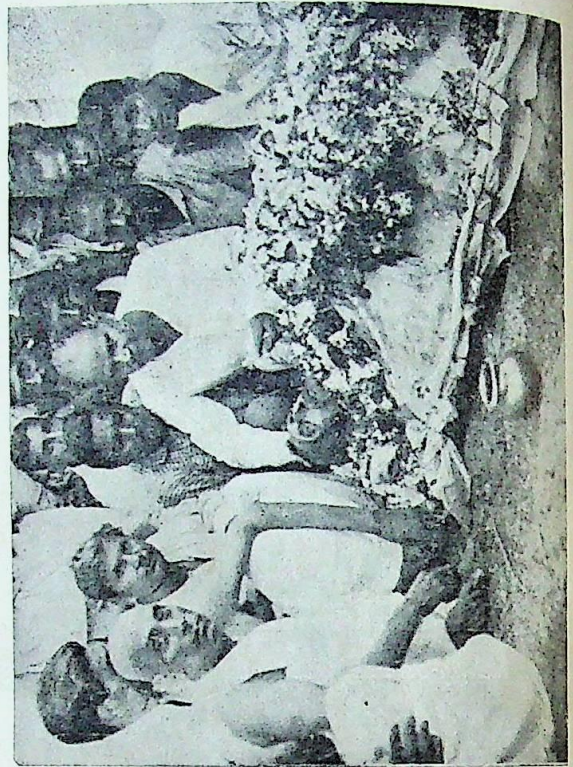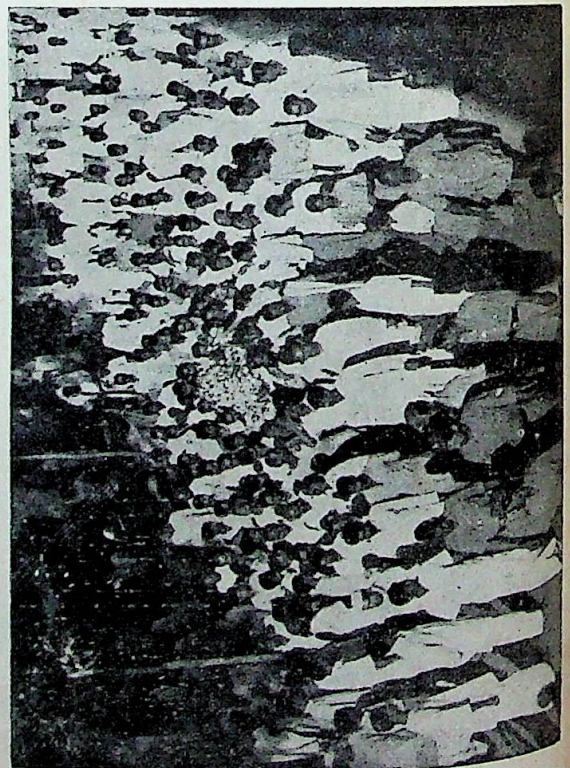
में उन्होंने एक सीमा तक गीतिका के "दे, मैं करूँ वरण" के भाव की आवृत्ति की है। गीत का अन्त इस प्रार्थना से होता है—

उठे सृष्टि से दृष्टि, सहज मैं
करूँ लोक - आलोक - सन्तरण।

सन् ४० में उन्होंने लिखा—

मैं अकेला;
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।

मृत्यु कल्पना की बात नहीं है। वृद्धावस्था के लक्षण प्रकट हो रहे हैं।

पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही
हट रहा मेला।

इस समय भी व्यंग्य उनका साथ नहीं छोड़ता। नदी, झरने पार कर लिये; अब जो पार करना है, उसके लिए नाव (भेला) नहीं है।

जानता हूँ नदी-झरने,
जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख
कोई नहीं मेला।

नाव के बिना मृत्यु की वैतरणी पार करनेवाले कवि का नाम है निराला सन् ४२ के गीत।

स्नेह निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।—

में मृत्यु का कुहासा घनीभूत हो गया है—

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को, निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा;
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।

इसी वर्ष उन्होंने एक दूसरा गीत लिखा जिसमें मृत्यु की निकटता पर अवसाद न प्रकट करके उन्होंने उससे जीवन का संबंध जोड़ा।

मरण को जिसने बरा है
उसीने जीवन भरा है।
परा भी उसकी, उसी के
अंक साथ यशोधरा है।

सन् ५० में उन्होंने अनेक गीत रचे जिनमें उन्होंने शान्तभाव से मृत्यु को स्मरण किया। अब वह अपने जीवन में मृत्यु की विकरालता का अनुभव कर रहे थे। जितना ही उनका शरीर विष से दग्ध हो रहा था, उतना ही स्वर कोमल और शान्त होता जाता था। "अर्चना" के पहले ही गीत में उन्होंने लिखा—

काटे नहीं कटी जो कारा
उसकी हुई मुक्ति की धारा,
वार वार से जो जन हारा,
उसकी सहज साधिका अरुणा।

अब उनके स्वर में चुनौती नहीं है, सहज विनती है—

प्यास लगी है, बुझाओ,
अमृत के घूंट पिलाओ।

मृत्यु की प्रथम आभा देखकर उन्होंने लिखा—

धीरे धीरे हँस कर आईं
प्राणों की जर्जर परछाईं।
छाया-पथ घनतर से घनतम,
होता जो गया पंक-कर्दम,
कता रवि आँखों से सत्तम,
मृत्यु की प्रथम आभा आईं।

अब कवि को कोई चुनौती देता है कि वह मर-मर कर जिये; फूल नष्ट हो जाय और फिर खिले, तब वह वास्तव में खिला।

क्या गले लगाना है बढ़ कर,
क्या अलख जगाना अड़-अड़ कर,
क्या लहराना है झड़-झड़ कर,
जैसे तुम कहकर मुसकाईं।

विष व्यापने पर भी जो देवी अविचल रहती है, वह कवि का ही प्रतीक है—

पिछले कुल खेल समाप्त हुए,
जो नहीं मिले वर प्राप्त हुए,
बीसों विष जैसे व्याप्त हुए,
फिर भी न कहीं तुम घबराईं।

अपनी रुग्णावस्था में भी निराला ही यह सब लिख सकते थे। शैली में उदात्त गुण लाने का किंचित् प्रयास नहीं है। फिर भी सहृदय पाठक के लिए गीतों में अगाध

करुणा का सागर लहराता है। कवि ने "राम की शक्ति पूजा" के पराजित राम के बारे में लिखा था ?

वह एक और मन रहा राम का जो न थका।

राम के मन के समान कवि का भी एक मन था जो कभी थका नहीं। वही मन शारीरिक और मानसिक व्याधियों पर विजय पाकर इस तरह के गीतों में प्रकट हुआ है। नरक-त्रास उनके इस मन को छू न पाता था। वे दूसरों के लिए प्रार्थना करते थे—

माँ अपने आलोक निखारो,
नर को नरक-त्रास से वारो।

इस नरक त्रास को कवि स्वयं कैसे झेल रहा था, इसकी झाँकी इस गीत में मिलती है।

भग्न तन, रुग्ण मन,
जीवन विषण्ण बन।
क्षीण क्षण-क्षण देह,
जीर्ण सज्जित गेह,
घिर गये हैं मेह,
प्रलय के प्रवर्षण।
चलता नहीं हाथ,
कोई नहीं साथ,
उन्नत, विनत माथ,
दो शरण, दोषरण!

यह गीत "गीतगुंज" के प्रथम संस्करण में दिया हुआ है। संपादकों के अनुसार पुस्तक का रचना-काल १९५३-५४ है। "गीत-गुंज" के दूसरे संस्करण में सन् '५६ का एक गीत है :

मधुर मधुर, मृत्यु मधुर
सफल जन्म, कम्पित उर।

इस प्रकार सन् '२४ से सन् '५६ तक—कवि-जीवन के आरंभ से प्राय: उसके अन्त तक—कवि की मृत्युंजयी साधना का इतिहास सुरक्षित है। निराला की रचनाओं में—गद्य और पद्य में—अनेक राग, रस, गुण और स्वर हैं। इन सबमें व्याप्त एक मूल स्वर है, उस अपराजित और अपराजेय मन का जो ऊपर के उद्धृत गीतों में स्पष्ट देखा-सुना जा सकता है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की साधना कोई क्षणस्थायी मनोविकार न थी। इस साधना का आधार था—उनके अन्तरतम की जीवन-आकांक्षा। कितने वर्षों तक यह साधना चली! कितने वर्षों तक—मास-मास, दिन-दिन, प्रतिपल—उन्होंने मृत्यु की वेदना को सहा! मृत्यु को उन्होंने मुक्ति कहा लेकिन वह मुक्तिवाली मृत्यु उनकी प्रार्थना आराधना के बहुत दिन बाद आयी। जिस मृत्यु का वह प्रत्यक्ष अनुभव करते थे, वह इस भौतिक जीवन की व्याधियों से उत्पन्न हुई थी। कितने कवियों ने इतने वर्षों तक मृत्यु की इस असह्य यंत्रणा को हँसते-हँसते सहा है? कितने कवि इस गरल को पीकर उसकी ज्वाला से झुलसते हुए अपनी रचनाओं में ओज और प्रसाद गुण उत्पन्न कर सके हैं? अपने अन्तिम दिनों में जब उनका तन जर्जर हो गया था, उनका अपराजेय मन मानों मृत्यु की झाँकी देख आता था और फिर इस जीवन में लौटकर अपनी अनुभूति की उलटवाँसी सुनाने लगता था। उनकी रचनाएँ सरल नहीं हैं; फिर भी सहानुभूति से पढ़नेवालों के मन पर यह छाप जरूर पड़ेगी कि निराला किसी ऐसी अनुभूति की बात कर रहा है जो सच्ची है और जो हमारे सामान्य अनुभवों से भिन्न है।

उनके संघर्षों का अन्त हो गया। जो मन से मुक्त थे, वह अब तन से भी मुक्त हो गये। हिन्दी में अभूतपूर्व विरोध पर उन्होंने विजय पायी। उन्होंने सहस्रों हिन्दी पाठकों के हृदय को आन्दोलित किया। जो उनकी चर्चा करता है वह मानों अपने सगे की, अपने निकटतम प्रियजन की चर्चा करता है।

निराला के उज्ज्वल कविजीवन का यह श्रीगणेश है। उनकी काव्य-प्रतिभा का प्रकाश दिन-दिन फैलेगा, अधिकाधिक पाठक उन्हें अपनायेंगे। जिन साधारण जनों को वह हृदय से प्यार करते थे, वे शिक्षित होकर विद्वानों की अपेक्षा निराला का महत्त्व अधिक समझेंगे। युगों-युगों तक वे हिन्दी-भाषी जनता के साथ रहेंगे और अपनी काव्य-शक्ति से जनजीवन को अनुप्राणित करते रहेंगे।

महाकवि निराला के प्रति

डा० रामविलास शर्मा

एक बार हो जाय क्षीण जलहीन भले ही धरती पर गंगा की धारा,
हे कवि! अमर रसवती है पर तेरी सरस्वती धरती की अन्तर्धारा।
पर्वत सा है अंधकार, दुख का विराट हिमवान हृदय को तमसा चापे;
कैसा दारुण दाह, हृदय में बाड़व जैसा तापे, अचल भी जिससे काँपे।
गलते हैं हिम-उपल, विफल जड़ता होती है सजल, टूटती है हिमकारा,
तोड़ तोड़ कर पर्त, धरा के गहन गर्त से, बहती है करुणा की धारा।
अमानिशा है, उगल रहा है अंधकार घन गगन और जीवन पथहारा,
चमक रहा है भारत का सौभाग्य अटल कवि! तेरे मानस का ध्रुवतारा।

तुमसे सीखे

श्री नागार्जुन

वह तमस्तोम--
वह विकट गुफा का अंतराल--
वह राहु-कवल--
वह अशुभ ग्रहों का पापचक्र--
मानी क्या तुमने कभी हार?
तुम रहे सदा ही दुर्निवार,
मरु-प्रांतर को तुमने अंतर का नीर दिया,
कविता-तपस्विनी को ज्योतिर्मय चीर दिया,
रह गये प्रतीक्षा में सारे दिक्पाल किन्तु तुम नहीं झुके,
तुम कड़ी साधना में दधीचि को जीत चुके।
आये कोई तुमसे सीखे--
वह द्वापरवाली शरशय्या की चुभन आज,
आये कोई तुमसे सीखे--
युग-युग का हालाहल पीना,
आये कोई तुमसे सीखे--यह रक्तदान,
आये, कोई तुमसे सीखे यह स्वाभिमान!

निरालाजी की अन्तिम कविताएँ

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी
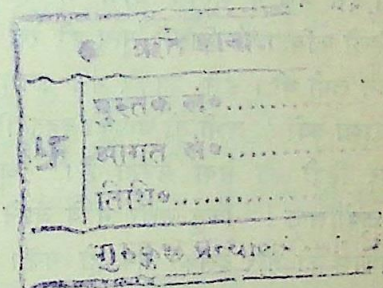
निरालाजी प्राय: तीन वर्ष से बीमार होकर शय्याशायी हो गये थे। डा० सम्पूर्णानंदजी को जब इसका पता लगा तो उन्होंने उनकी चिकित्सा की व्यवस्था कर दी थी। उन्होंने स्वयं भी बड़ा आत्मसंयम किया। डाक्टरों की सलाह से कई महीने निमक नहीं खाया। वे उस बार अच्छे तो हो गये किंतु यह समझ गये कि मेरे बलिष्ठ शरीर में घुन लग गया है और मैं बहुत दिनों नहीं चल सकता। सन् १९५८ के अंत में एक बार जब मैं प्रयाग गया तब उन्होंने अपने हाथ से लिखकर मुझे एक कविता दी। यह कविता सरस्वती के अक्टूबर के अंक में छपी है। निरालाजी के हाथ की लिखी इस कविता का ब्लाक बनाकर उसे इस अंक में अन्यत्र छापा जा रहा है। यह उनकी पहिली कविता थी जिसमें 'मृत्यु की रेख नीली' दिखलायी पड़ने लगी थी। इसे पढ़कर मैंने उनसे कहा भी कि यह निराशा क्यों? अभी तो आपको बहुत दिन जीवित रहना और हिंदी की सेवा करना है। "क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यम् त्यक्त्वोत्तिष्ठ!" किंतु उत्तर में वे अपने विशाल नेत्रों से आकाश की ओर देखकर चुप हो गये। मैं उनसे बराबर कुछ न कुछ लिखने के लिए कहता रहता था और चि० कमलाशंकर ने उन्हें एक सादी कापी लाकर दे भी दी थी, जिसमें वे कविताएँ लिखा करते थे। जब मैं प्रयाग जाता तब उनसे उस कापी को निकलवाकर देखा करता था कि कोई नयी कविता लिखी कि नहीं। अंतिम बार मैंने वह कापी २ अगस्त १९६१ को देखी। वे प्रत्येक कविता के ऊपर उसका अंक दे दिया करते थे। २ अगस्त को जब मैंने उसे देखा था तो उसमें अंतिम कविता का अंक ५९ था। उनकी मृत्यु के बाद मैंने उनकी वह कापी चि० कमलाशंकर से मँगवायी। मैंने देखा कि उसमें ६ कविताएँ और लिखी हैं। इन छ: कविताओं के अतिरिक्त आगे चलकर सादे पृष्ठों के बीच में एक कविता और लिखी है जिसे मैंने पहिले नहीं देखा था। वह भी इन्हीं पिछले दो महीनों की लिखी मालूम होती है। यह कहना कठिन है कि संख्या ६५ की कविता उनकी अंतिम कविता है या यह अंक-हीन कविता। मेरा अनुमान है कि किसी दिन अपना 'अवसान-समय' जानकर उन्हें अपने जीवन की आलोचना करने की तरंग आयी और उसी तरंग में कापी में जो पन्ना खुल गया उसपर उन्होंने वह कविता लिख दी। बाद में अंतिम संख्या ६५ की कविता उन्होंने प्रकृतिस्थ दशा में कापी में उपयुक्त स्थान पर क्रमिक संख्या लगाकर लिखी। यह निश्चय है कि ये दो कविताएँ ही उनकी अंतिम कविताएँ हैं। सब परिस्थिति पर विचार करके मेरा अनुमान है कि अंक-हीन कविता संख्या ६५ की कविता से पहिले लिखी गयी।

इस कापी में ६५ संख्या तक की कविताएँ हैं। कुछ दिनों तक वे कविता लिखने का दिनांक भी दे दिया करते थे। अंतिम दिनांकित कविता के नीचे "सौर फाल्गुण २५" लिखा है। उस दिन उन्होंने दो कविताएँ लिखीं। एक मुझे सरस्वती में प्रकाशित करने के लिए दी, और एक उनके भक्तों ने 'भारत' में भेज दी। ये कविताएँ संख्या ४६ और ४७ हैं। ४८वीं कविता में दिनांक नहीं है। वह 'आज' में छपने को भेजी गयी। वह कविता इस पंक्ति से आरम्भ होती है—"डमड डम डमड डम डमरू निनाद है।" इसके बाद से, अर्थात् ४९वीं कविता से दिनांक नहीं पड़े। २ अगस्त को जब मैं उनसे मिला था तब मैंने वह कापी देखी थी, और ५८वीं कविता की मुझे पूरी याद है, ५९वीं की उतनी स्पष्ट याद नहीं है। पर निश्चय ही साठवीं कविता से ६५वीं तक जो कविताएँ लिखी गयीं वे २ अगस्त के बाद की हैं। वे अक्टूबर के द्वितीय सप्ताह में एकाएक आँत उतर जाने के कारण बीमार पड़ गये, और चार-पाँच दिन की बीमारी के बाद स्वर्गवासी हो गये। अतएव सं० ५९ या संभवत: संख्या ६० से ६५ तक की कविताएँ २ अगस्त और अक्टूबर के प्रथम सप्ताह के बीच लिखी गयीं। अंकहीन कविता भी (जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है) इसी बीच लिखी गयी।

निरालाजी खड़ी बोली के कवि थे, किंतु उन्हें ब्रजभाषा के काव्य से बड़ा प्रेम था और उन्हें देव, पद्माकर, घनानंद आदि के सैकड़ों छंद याद थे। हितैषीजी के भी कितने छंद उन्हें याद थे। वे उन्हें 'सवैया का बादशाह' कहा करते थे। मैं ब्रजभाषाभाषी हूँ और मुझे ब्रजभाषा की कविताएँ प्रिय भी हैं। इसलिए कभी कभी जब तरंग में आते वे मुझे ब्रजभाषा के छंद सुनाया करते थे। उनके

कविता पढ़ने का ढंग बड़ा सुंदर था। उनकी विशेषता यह थी कि वे छंदों को केवल लय से ही नहीं, काकु से भी पढ़ते थे जिससे छंद का अर्थ और उसका सौंदर्य स्पष्ट होकर निखर उठता था। इसी बीच—पिछले दो-तीन महीनों में उन्होंने न मालूम क्यों मुझे एक दोहा सुनाया—

> भरित नेह नव जल हरित
> बरसत सुरस अथोर।
> जयति अपूरब घन कोऊ
> लखि नाचत मन मोर।

इसे सुनाकर वे बोले 'प्रेमघनजी ने कितना सरस दोहा लिखा है!' मैंने कहा—'आपका पाठ अशुद्ध है और यह प्रेमघनजी का नहीं, भारतेंदु का है।' निरालाजी एकाएक विरोधी बात नहीं मानते थे। बहस करने लगे। मैंने कहा—"बहस अनुमान पर होती है, तथ्य पर नहीं। आप इसे लिख लीजिए। मैं अगली बार चंद्रावली लेता आऊँगा और आपको दिखला दूँगा कि यह भारतेंदु ने लिखा है और इसका पाठ प्रथम पंक्ति में "भरितनेह नव नीर नित" है।" उन्होंने अपनी कविता की कापी खोली। संयोग से ५१ संख्या की कविता का पृष्ठ खुल गया। उसपर अपनी कविता के नीचे छूटी हुई जगह पर उन्होंने इस दोहे का अपना पाठ लिख लिया और नीचे लिख दिया—'बदरी-नारायण चौधरी 'प्रेमघन' मिर्जापुर।' इस प्रकार यह दोहा उनकी इस कापी में उन्हींके हाथों से लिख दिया गया। किंतु उसके बाद इस विवाद को आगे बढ़ाने का अवसर ही नहीं आया। इस दोहे के अतिरिक्त उस कापी में दूसरे कवि का एक छंद और लिखा हुआ है। इधर कई महीनों से वे पद्माकर का यह छंद बहुधा सुनाया करते थे—

कवित्त

> जयसों तूं मोकों नाँहि, नेकहू डेरात हुतो
> तैसें हौंहुँ तोंहि अब नेकहू न डरिहौं।
> प्रबल प्रचन्ड जो अखण्ड हू, परैगो आय,
> ठोंकि भुजडन्ड बरबन्ड तोसों लरिहौं॥
> चलो-चलु, चलो-चलु, बिचल न पथहू ते,
> कीच-बीच, नीच, तोंहि बेगिहि पछरिहौं।
> एरे दगावार, मेरे पातक अपार, तोंहि
> गंगा की कछार में पछार छार करिहौं॥

इसके लिखने का कारण यह हुआ कि एक-दो बार उन्होंने इसे कुछ पाठभेद के साथ पढ़ा था। बाद में शुद्ध करके उन्होंने इसे कापी में लिख लिया। मैं इसे उन्हींकी अखरौटी में (जो कहीं-कहीं निरालाजी के लिए विचित्र थी) और उन्हींके लगाये विराम-चिह्नों के साथ उद्धृत कर रहा हूँ।

२ अगस्त तक की लिखी अंतिम कविता की, जिसकी मुझे याद है, आरंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> कैसे आँखों को परिसर दे?
> कैसे ज्योतिष्कों को भर दे?
> जब इसी देश में पड़ा बहुत,
> जो और-न-जाना, बड़ा बहुत,
> तब उस तर के कैसे कर ले?

६०वीं कविता उन्होंने आरंभ की थी। वे शायद उसे बाद में पूरा करते। उन्होंने उसकी आरंभिक दो पंक्तियाँ लिखकर शेष पृष्ठ सादा छोड़ दिया था। वे दो पंक्तियाँ ये हैं:—

> ध्वनि में उन्मन उन्मन बाजे,
> अपराजित कण्ठ आज लाजे।

यह आत्मपरक कविता होती। खेद है कि वह अपूर्ण रह गयी।

६१वीं कविता विशेष महत्त्व की है जिसमें उनकी आस्थाओं की झलक मिलती है। यह भी पूर्ण नहीं कही जा सकती क्योंकि बीच बीच में स्थान छुटे हुए हैं। वे शायद कभी तरंग आने पर इसे दुहराकर सुधारते। वह कविता इस प्रकार है:—

> शंकर शुभंकर हुए जो न, तो क्या?
> अन्नपूर्णा बिना लो क्या व दो क्या?
> काशी बिना शान्ति का वास भी है?
> क्षिति नहीं तो अचल विश्वास भी है?

इसमें छः पंक्तियाँ और हैं।

६२वीं कविता भी आत्मपरक कविता की भाँति इस प्रकार आरंभ हुई है—

> छन-छन छल-छल जीवन प्रतिपल
> बहता निर्मल, गंगा का जल।
> सौरभ जैसे समीर मलय से
> विश्व-विजय के से लेखन फल।

इसमें आठ पंक्तियाँ और हैं।

६३वीं और ६४वीं कविताओं की चर्चा न करके हम

उनकी अंतिम (६५वीं) कविता को यहाँ उद्धृत करते हैं। यह कविता सरस्वतीजी पर है—

हाथ वीणा समासीना;
विशद वादन रत प्रवीणा।
घिरे बादल गगन-मण्डल,
तरल-तारक नयन अविचल,
तार के झंकृत सुकोमल
कराहत कर का नगीना।
राग सावन मनोभावन,
भामिनी के भवन पावन,
दीप्ति नयनों की सुहावन
नाक का हिल रहा मीना।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सरस्वती के वरद पुत्र ने अपनी अंतिम कविता वाग्देवी के सम्मान में लिखी।

किंतु उसीके लगभग उनकी लिखी निम्नांकित कविता ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसमें उन्होंने अपने जीवन का मानों सिंहावलोकन किया है।

पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है,
आशा का प्रदीप जलता है हृदय-कुंज में,
अन्धकार पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है
दिङ्निर्णय ध्रुव से जैसे नक्षत्र-पुंज में।

लीला का सम्वरण-समय फूलों का जैसे
फलों फले या झरे अफल, पातों के ऊपर
सिद्ध योगियों जैसे या साधारण मानव,
ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर।

स्निग्ध हो चुका है निदाघ, वर्षा भी कर्षित,
कल शारद कल्य की, हैम लोमों आच्छादित,
शिशिर भिद्य, बौरा वसन्त आमों आमोदित;
बीत चुका है दिक्चुम्बित चतुरंग, काव्य, गति-
यतिवाला, ध्वनि, अलंकार, रस, राग बन्ध के
वाद्य-छन्द के रणित गणित छुट चुके हाथ से—

क्रीड़ाएँ व्रीड़ा में परिणत। मल्ल मल्ल की—
मारें मूर्छित हुईं, निशाने चूक गये हैं,
झूल चुकी है खाल ढाल की तरह तनी थी।
पुनः सबेरा—एक और फेरा ही जी का।

इस कविता में अपना 'सम्वरण-समय' सामने देखकर उन्होंने अपने जीवन के ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसंत का सिंहावलोकन किया। अपने दिक्चुंबित चतुरंग काव्य की याद की। उनके लिए विरोधियों की मारें मूर्च्छित हो चुकी थीं क्योंकि अब उनसे हृदय पर चोट नहीं लगती थी। उन्हें अपना अवसान फूलों के झरने के समान मालूम होता था। उन्हें तो गिरना ही है—चाहें वे फल बन कर गिरें या फूल के ही रूप में। वह सम्वरण-समय सिद्ध योगियों के सम्वरण-समय के समान होगा या साधारण मनुष्यों के समान—इसे कवि इसी प्रकार देख रहा था जैसे शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। किंतु संवरण-समय का वर्णन होते हुए भी निराला की अजेय आत्मा निराश या अवसादसिक्त नहीं थी। उनके हृदय में आशा का प्रदीप जल रहा था। अज्ञात और अनन्त का अंधकारमय पथ एक ज्योतिकिरण से उसी तरह आलोकित था, और वह उसी प्रकार पथ सूचित कर रहा था जिस प्रकार नक्षत्र-पुंजों के बीच ध्रुवतारा दिशा का दर्शन कराता है। और मृत्यु के बाद भी उन्हें नवीन प्रभात—नये सवेरे का विश्वास था।

निरालाजी की ये अंतिम कविताएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उनके विचारों, आस्थाओं, विश्वासों के संबंध में ही नहीं, उनके मानसिक संतुलन के बारे में भी लोगों में बड़ा मतभेद है। न यह ऐसा अवसर है कि उनकी इन अंतिम कविताओं की टीका की जाय, और न मैं आलोचक ही हूँ। समर्थ आलोचक यथावसर इनकी व्याख्याएँ और मूल्यांकन करेंगे। एक घनिष्ठ मित्र और आत्मीय के नाते मुझे इन कविताओं में एक व्यक्तिगत आत्मीयता दिखलायी पड़ती है। निरालाजी ने हिंदी जगत् के हृदय में जो स्थान बना लिया है उसे आज—उनकी मृत्य के उपरान्त व्यक्त भावनाओं को जानने के बाद—बतलाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए निरालाजी के असंख्य भक्तों और उनकी कविताओं के अगणित प्रेमियों को यह जानने की उत्सुकता अवश्य होगी कि उनकी अंतिम कविताएँ कौन सी हैं। उनकी इसी कुतूहल को शांत करने के लिए मैंने उनकी इन कविताओं को तुरंत ही प्रकाशित कर देना उचित समझा। अवकाश मिलने पर उनकी कुछ और अप्रकाशित कविताओं पर लिखने का प्रयत्न करूँगा।

महाकवि स्व० श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
(जिनका गत १५ अक्टूबर को महाप्रयाण हो गया। यह चित्र सन् १९३९ में सरस्वती-संपादक को निरालाजी ने भेंट किया था)

श्रीलंका की प्रधान मंत्री श्रीमती श्रीमा भण्डारनायक

व्यंग (एक सच्ची घटना पर आधारित)

बम्बइया प्रोड्यूसर दिल्ली में !

श्री रमेशनारायण तिवारी

सरकार लगाती चुंगी जहर विदेशी पर,
तुम ज़हर बनाकर देशी सस्ती बेच रहे।
तुम फिल्म प्रोड्यूसर हो या तुम हो धन-पिशाच,
तुम नग्न वासना लिए सड़क पर बेच रहे।

× × ×

ओ बम्बइया बाबू, ओ फिल्म प्रोड्यूसर जी,
आओ दिखलाऊँ शान तुम्हारी तुम्हें जरा
भाभी को लेते आना अपने साथ मगर,
वह बच्ची भी गदराई है जो जरा जरा।

तुम आये ! आओ आज, घुमा दूँ मैं दिल्ली,
तुम देखो बच्चे होनहार कितने इसके;
कुछ रेख निकल आई है पीले चेहरों पर
फिल्मी हीरो की छाया-सी मुख पर जिनके।

तुम देख रहे यह नौजवान मुर्झाया-सा
जो मार रहा है आँख तुम्हारी बच्ची को ?
यों कालिज में पढ़ता है, पढ़ता खाक नहीं,
पर राजकपूरी डायलाग का माहिर जो।

पतलून देखते हो मोहरी कुछ ऊँची है
ज्यों कुछ ऊँची थी 'आवारा' के हीरो की;
यह चाल देखते हो बीमारों जैसी तुम ?
यह नहीं सहज है चाल, चाल है हीरो-सी !

क्या बुरा मानते हो ? क्यों पीछे आता है ?
बच्ची को क्यों है उल्लू जैसा घूर रहा,
मत डरो, उमर कमसिन है उसकी बहुत अभी,
वह नक़ल सहज है हीरो की कर रहा जरा।

पर देखो तो ! वह मानुष पूरे चालिस का,
माथे पर बिखरे बाल, लगे है छैला सा,
यों ताक रहा है रँगी-चुँगी-सी भाभी को,
जैसे मजनू फिल्मी ताके रुख लैला का।

भाभी शर्माती क्यों हैं, क्यों तुम क्रुद्ध हुए
क्या तुम्हें बुरा लगता है इनका रंग-ढंग ?
भाई, मत भूलो, ये हैं फिल्मी दीवाने,
जिनके दिमाग़ पर चढ़ी तुम्हारी फिल्म-भंग।

आओ, पैदल मत चलो, टैक्सी कर लें हम,
टी-हाउस ले चलता हूँ चाय पिलाने को
कुछ देर वहाँ बैठेंगे फुर्सत से हम तुम,
कुछ वक्त मिलेगा सुनने और सुनाने को।

पर यह क्या, यह ड्राइवर आह क्यों भरता है ?
दरवाज़ा खोल बिठाते लख उस बच्ची को,
आँखों में इसके भाव जागते हैं कुछ कुछ
फ़िल्मी 'विलेन' की बातें जैसे सच्ची हों।

यह टी-हाउस है, यहाँ शरीफों की बस्ती,
बाबू-व्यापारी ही इसमें आते-जाते,
पानी पीते हैं बहुत अगर, कुछ काफी भी
सकुचा कर कप दो-एक मगर हैं पी जाते।

देखो तो आवारों की टोली घुस आयी,
वह लौंडा आवारा भी उनके साथ-साथ
वह घेर हमारी टेबिल तो बैठे ही हैं,
गाते भी जाते हैं, आवारे साथ साथ !

गाते हैं गाना 'लाल गाल', बदमाश अरे,
गाते हैं 'यारो माफ़ करो पी कर आया !'
भाभी, बच्ची यदि सचमुच लाल हुई जातीं,
तुमको भी क्या गुस्सा सचमुच है चढ़ आया ?

तुम नहीं बैठना चाहो तो कुछ बात नहीं,
आओ हम सब उठ चलते हैं टी-हाउस से,
अब नहीं करेंगे महँगी कोई सवारी भी,
अब चले चलेंगे डी० टी० यू० की ही बस से।

बस आयी है, मत रुको, न कुछ तुम फिक्र करो,
चढ़ चलो तुम्हारा नम्बर अब भी पहला है,
कुछ रुके कि मौका गया हाथ से हरदम को,
'क्यू' नहीं यहाँ पर, न्याय नहले पर दहला है।

लो हम सब सकुशल चढ़ आये हैं इस बस में,
क्या हुआ ? शरम से लाल हुई क्यों बच्ची है ?
पर अरे, दुपट्टा कहाँ गया इस बच्ची का !
क्या इसी लिए सकुचाई-सी यह बच्ची है ?

भाभी ने देखा, बच्ची ने खुद भुगत लिया,
यदि तुमने देखा, फिर भी क्यों मुँह फेर लिया ?
फिल्म-स्टार सरीखा छैला बदतमीज,
बदमाशी फ़िल्मी करके कैसा खिसक लिया !

यह तो अड्डा है बस का, रहती भीड़ बहुत
इसमें तो यह सब कुछ होता ही रहता है,
फ़िल्मों में तुम दिखलाते हो जो कुछ भी,
अभ्यास यहाँ नित उसका होता रहता है।

अब गरम न हो यों तुम, भाई, उस छैले पर,
जो निपट दुपट्टे से लिपटा आहें भरता,
वह भी तो आखिर दर्शक है उन फिल्मों का,
जिनसे भरता है कोष तुम्हारे जैसों का।

ऐसा ही कुछ तो करते हैं फ़िल्मी हीरो,
ऐसे ही तो मिलती है उनको हीरोइन,
यदि बना रहे हो तुम नवयुवकों को हीरो,
क्यों हो मलाल यदि बच्ची बन ले हीरोइन ?

श्रीमा भण्डारनायक

महापंडित राहुल सांकृत्यायन

श्रीमाव श्रीमा (लक्ष्मी) का रूपान्तर है। लंका के प्रधान मंत्री का यही नाम है। लंका ने दुनिया में सबसे पहले यह काम किया, जो कि स्त्री को प्रधान मंत्री बनाया। शासन करनेवाली स्त्रियाँ (रानी) कितनी ही हुई हैं। चीन की कथाओं में स्त्री का प्रधान सेनापति होना भी सुना जाता है पर आज तक किसी देश में प्रधान मंत्री पद पर स्त्री बैठी नहीं देखी गयी। लंका ने युगों से चली आती परंपरा को सबसे पहले तोड़ा और एक करोड़ लंकावासियों की प्रधान मंत्री श्रीमा हुईं।

श्रीमा प्रधान मंत्री नहीं बनीं बल्कि उन्होंने अपने कामों से अपनी योग्यता सिद्ध कर दी। खासकर यह बात और मुश्किल थी क्योंकि वह अपने पति प्रधान मंत्री की उत्तराधिकारिणी थीं, जो असाधारण योग्य और वाग्मी थे, जिनकी आत्महत्या को तो सिंहल (लंका) भुला नहीं सकता, पर योग्य उत्तराधिकारिणी को पाकर उसको सन्तोष हुआ।

श्रीमा के ससुर सर सालोमन भण्डारनायक अँगरेजी शासन के एक बहुत प्रभावशाली सरदार थे। राज्य का उनके ऊपर इतना विश्वास था कि बड़े-बड़े अँगरेज अधिकारी–खुद गवर्नर भी, सर सालोमन की मित्रता का गर्व करते थे। ब्रिटिश शासन पदवी देने के लिए जितने अक्षर रखता था सभी उसने लंका के इस खानदानी सरदार को दे दिया। पर, ऐसे राजभक्त घर में प्रधान मंत्री भण्डारनायक जैसा व्यक्ति जो राष्ट्रभक्ति में डूबा हुआ था, पैदा हुआ।

अँगरेजी शासन ने मजबूर हो १९४७ में सिंहल द्वीप को स्वतंत्रता प्रदान की। सीलोन में भी भीतर आग तो सुलगती रही, पर भारत की तरह जोर का क्रान्तिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन वहाँ कभी नहीं हुआ। अँगरेजों ने इसे परखने में भूल नहीं की कि भारत और बर्मा को स्वराज दे देने पर सिंहल को उससे वंचित नहीं किया जा सकता। नहीं तो वहाँ भी क्रांतिकारी आन्दोलनों का जोर बढ़ जायेगा। उन्होंने यह भी समझा था कि ऐसा करने पर शायद हमको बहुत हानि नहीं होगी, क्योंकि हम जिनके हाथ में शासन सौंप रहे हैं वह सेनानायक और दूसरे पूरी तौर से हमारे पक्ष में रहेंगे। सचमुच ही अँगरेजों की जगह पर बैठनेवाले सिंहल सिर्फ चमड़े के रंग में अँगरेज नहीं थे, नहीं तो कपड़ा-लत्ता, रहन-सहन सब बातों में अँगरेज उनके आदर्श थे। वह अपने लोगों से उतनी ही दूर थे जितने कि अँगरेज। तरुण भण्डारनायक की शिक्षा-दीक्षा भी इँगलिश ढंग से हुई थी। आक्सफोर्ड में ही उन्होंने अपनी अँगरेजी की वाग्मिता की धाक जमा दी थी। काले साहेबों के मनसूबों को उन्होंने सफल होने नहीं दिया। सन् १९५६ के निर्वाचन में उनके नेतृत्व ने समाजवाद का नारा बुलन्द किया और काले साहब चारों खाने चित हो गये। उनकी विजय से अंगरेज पूंजीपति और उनके काले सहायक बहुत निराश हुए। भण्डारनायक ने इँगलैण्ड से सिंहल द्वीप में पैर रखते ही राष्ट्रीय पोशाक पहनी। कोट-पेंट अलग कर उसके बदले कुर्त्ता और दुपट्टा अपनाया। राज की बागडोर हाथ में आते ही अँगरेजी को हटा सिंहली को राष्ट्रभाषा बनाया। पाँच सौ वर्षों से बौद्धधर्म के लिए शासन की ओर से कोई सम्मान नहीं रह गया था, उसे राष्ट्र और शासन के सम्मान से विभूषित किया। आयुर्वेद को सरकारी प्रोत्साहन दिया। मजदूरों के वेतन को चारों ओर बढ़ाया। देश के बहुजनमानित धर्म को प्रोत्साहित करके कला और साहित्य के उन्नति के लिए राज में सांस्कृतिक विभाग स्थापित किया। दो बौद्ध विहारों के शिक्षणालयों को सरकारी विश्वविद्यालय का रूप दिया। कोलम्बो के बन्दरगाह को राष्ट्रीय बनाया और सारे द्वीप की मोटर बसों को राष्ट्रीयकृत किया। किसानों को प्रवासी जमींदारों के पंजे से मुक्ति दिलाई और रूस तथा चीन जैसे कम्युनिस्ट देशों के साथ राजदूत का संबंध स्थापित किया। सीलोन के स्वतंत्र होने पर भी अँगरेजों ने त्रिंकोमाली आदि स्थानों में अपने फौजी अड्डे बना रखे थे। भण्डारनायक ने उन अड्डों से अँगरेजों को हटाया और सिंहल को भारत की तरह निष्पक्ष राज्यों में लाकर खड़ा किया। यह सब काम भण्डारनायक ने केवल ढाई बरस में किये। इस बीच सीलोन के काले साहब और साम्राज्यवाद के पिछलग्गू चुप बैठे नहीं रहे। उन्होंने साम्प्रदायिक झगड़े भी खड़े किये जिनमें सफलता न होने पर उनको अपना सारा भविष्य अन्धकारमय दिखलाई देने लगा। एक ही कामना थी कि इस असाधारण पुरुष से कैसे छुट्टी मिले।

भण्डारनायक ने यह भी निश्चय कर लिया था कि सिंहल में शिक्षा का राष्ट्रीकरण करना होगा। उस दृढ़-प्रतिज्ञ आदमी से कैथोलिक ईसाइयों को बड़ा भय होने लगा क्योंकि लंका के विद्यालय प्रायः उन्हींके हाथ में थे। हर साल सहायता के रूप में उन्हें तीन करोड़ रुपया मिला करता था, जिससे बालक-बालिकाओं में प्रतिगामी भाव और अराष्ट्रीयता भरते थे। यदि यह आमदनी चली गयी तो उनकी क्या दशा होती? अन्त में १९५९ के सितम्बर का वह दिन आया जब कि २५ सितम्बर के सबेरे एक भिक्षु के हाथ में पड़ी कैथोलिक की पिस्तोल ने भण्डारनायक का काम तमाम कर दिया। काले साहबों को बहुत सन्तोष हुआ कि अब दुश्मन को हमने खतम कर दिया। सिंहल के साधारण लोगों के लिए भण्डारनायक एक क्षण में अमर बोधिसत्व और देवता बन गये। उनकी हत्या ने लंका की पद्मिनी को विधवा बना के वीर महिला बना दिया। इस विधवा ने अपनी पार्टी और संगठन को मजबूत किया। राष्ट्र की प्रार्थना पर श्रीमा ने अपने आँसुओं को पोंछा और नेतृत्व करने सामने आईं। उसने सारे राष्ट्र को नया जीवन प्रदान किया। प्रतिद्वन्द्वी काले साहब उसे "रोती विधवा" कहकर ताना मारते थे, लेकिन उससे कुछ नहीं होता। पहले चुनाव में श्रीमा की पार्टी के ४६ सदस्य पार्लियामेण्ट में आये, लेकिन काले साहबों की संयुक्त राष्ट्रीय पार्टी के ५० थे। सरकार बनाते वक्त भी उनके दाव-पेच चलते रहे और काले साहबों ने सोचा कि हमारी स्थिति मजबूत नहीं है, इसलिए गवर्नर से कहकर पार्लियामेण्ट खतम कर दी गई। जुलाई १९६० में नया चुनाव हुआ। इस चुनाव में काले साहबों की तरफ कैथोलिक चर्च का सारा प्रभाव और धन और विदेशी पूँजीपतियों का भी रुपया लगा। एक तरफ ब्रिटिश और अमरीकन धन एवं विदेशी पूँजीपतियों का भी रुपया लगा। एक तरफ ब्रिटिश और अमरीकन पूँजी और कैथोलिक चर्च काले साहबों की पीठ पर था दूसरी ओर श्रीमा। लेकिन श्रीमा के साथ अपार जनता थी। यही नहीं, सिंहल के सिंहली और अँगरेजी दैनिक समाचार-पत्र सारे कैथोलिकों के हाथ में थे, जो काले साहबों के पक्ष में बड़ी निर्लज्जतापूर्वक प्रोपोगण्डा करते थे। प्रोपोगण्डा में शिष्टता का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था। लेकिन सिंहल की साधारण जनता श्रीमा के साथ थी। उस पर कैथोलिकों के अखबारों और काले साहबों के भाड़े के टट्टुओं के प्रचार का कोई असर नहीं हुआ। लंका का स्वतंत्र दल श्रीमा के नेतृत्व में था और सेनानायक के पुत्र डडली सेनानायक के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्रीय पार्टी या काले साहबों का दल धुआँधार प्रचार कर रहा था। ४४ बरस की श्रीमा ने अपने जौहर दिखलाये और दो महीने के भीतर ९०० सभाओं में बोलीं। परिणाम पहले से भी बहुत अच्छा रहा।

श्रीमा ने अपने चुनाव के लिए एक भाड़े की कार ले रखी थी। अन्तिम दिनों में सिंहल जनता के भाव छिपे नहीं रह गये। ड्राइवर को भी पूरा विश्वास हो गया था और उसने कहा तीन दिन बाद आप प्रधान मंत्री होंगी। श्रीमा ने कहा यह तो देवताओं के हाथ में है। इस पर ड्राइवर ने कहा यदि हम जो चाहते हैं, वही देवता भी पसन्द करें, तो देवीजी क्या जब यह राज-महल में गवर्नर के बुलाने पर प्रधान मंत्री के पद लेने जायेंगी, तब क्या मुझे गाड़ी में ले जाने का मौका देंगी? श्रीमा ने मुसकरा कर स्वीकृति दे दी और गवर्नर जनरल के बुलाने के दिन वह ड्राइवर को न भूलीं। उसको कार के साथ बुलाया और अपने लड़के अनुरा के साथ गवर्नर जनरल के महल में गयीं।

यह श्रीमा रठवत्ते

जीवनी--श्रीमा रठवत्ते का मतलब है कि वह पिता की ओर रठवत्ते है। रठवत्ते स्वतंत्र सिंहल (अर्थात् सिलोन के पहाड़ी काण्डी प्रदेश के काल में) के प्रांत-अधिपति थे। उनकी माँ महावेलतेन्न के सामन्त की पुत्री थी। पहाड़ी सिलोन या काण्डी प्रदेश उन्हीं अवस्थाओं से गुजरा था, जिनसे मेवाड़। स्वाभिमान, देशभक्ति और वीरता वहाँके लोगों की नस-नस में भरी थी। महावेलतेन्न के तत्कालीन उत्तराधिकारी काण्डी दरबार में बहुत ऊँचा स्थान रखते थे। वह बड़े अध्ययनशील और संस्कृत-मस्तिष्क के पुरुष थे। सिंहली, पाली, संस्कृत ही नहीं बल्कि अँगरेजी और फ्रेंच भाषा का भी ज्ञान रखते थे। महावेलतेन्न का बगीचा आज भी मौजूद है। इस महल के बगीचे को देखने से मालूम होता है कि सामन्त साधारण सामन्त नहीं था। उस बगीचे में तरह-तरह के वृक्षों के नमूने लगे हुए थे, जिनसे अधिकारम् (सामंत) का वनस्पतिशास्त्र पर विशेष अधिकार मालूम होता है। दुष्प्राप्य वनस्पतियों को वहाँ उन्होंने जमा किया था। उनकी लाइब्रेरी में पुस्तकें

भी नाना भाषाओं की थीं। अँगरेजी, पाली, संस्कृत, सिंहली, जर्मन, चीनी, हिन्दी और बंगाली की पुस्तकें थीं, जो साहित्य, चिकित्साशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, वनस्पति शास्त्र से संबंध रखती थीं। बहुत सी पुस्तकें अपनी आलमारी से गायब हो गयीं जो बाकी बची थीं, उन्हें विद्योदय विश्वविद्यालय को हाल में दान कर दिया गया। सिंहली कविता और काण्डी के नृत्य पर अधिकारम् को विशेष स्नेह था। उनका दरबार सारे कलाकारों के लिए खुला था। बुलथगाम काण्डी के नर्तक अधिकारम् के विशेष कृपापात्र थे। महावेलतेन्न अधिकारम् ने विहारों और मन्दिरों को स्थापित करने में बहुत रुपया लगाया था। अमरपुर निकाय के भिक्षुओं को उन्होंने अपने सबरगमुह प्रदेश में बुलाकर रखा था। अधिकारम् की सबसे छोटी लड़की का ब्याह वारनेस रठवत्ते से हुआ था। यह भी काण्डी सामन्तों का एक परिवार था। इस प्रकार महावेलतेन्न और रठवत्ते ने श्रीमा को जन्म दिया। रठवत्ते के चार लड़के और दो लड़कियाँ थीं। लड़कपन में श्रीमा में कोई बौद्धिक असाधारणता नहीं दिखायी दी, पर शरीर सौन्दर्य तब भी था। उन्हें "सेन्ट ब्रीजेस्" के कान्वेन्ट में पढ़ने को भेजा गया जहाँसे उन्होंने मैट्रिक पास किया और कुछ समय इन्टर की भी पढ़ाई की। जब श्रीमा विवाह के योग्य हुईं, तो उनकी तरफ चाह रखनेवालों की कमी नहीं थी। भण्डारनायक तरुण बैरिस्टर थे और राज के मंत्री। उनके कानों में भी श्रीमा के रूपशोभा की बात पहुँची। वलनगोडा के वारनेस रठवत्ते से राजनीतिक बातचीत करने के बहाने भण्डारनायक वहाँ पहुँचे। भण्डारनायक को श्रीमा पसन्द आई। कुछ ही दिनों में बाहर तक खबर पहुँची कि रठवत्ते की कन्या से तरुण भण्डारनायक का विवाह होने जा रहा है। अँगरेजों के अन्तिम शासन काल में राज-परिषद् के नेता और मुख्य मंत्री डी० वी० जयतिलक भी सिंहल के सर्वमान्य नेता थे। उन्होंने भी इस विवाह को ऐतिहासिक घटना कहा।

वर सफेद खद्दर की पोशाक में थे, जो उनके अपने इलाके में तैयार किया गया था। पिता तथा दूसरे संबंधियों के साथ वह रत्नपुरा से आये और एक विशेष पन्डाल में कन्या पक्ष ने उनका स्वागत किया। वहाँसे जलूस के साथ वह वलौवा (महल) में ले जाये गये। हाथियों का झुण्ड और काण्डी के नर्तकों का समूह साथ-साथ थे। भण्डारनायक परिवार (फैमली) डचकाल (१८वीं सदी) में ईसाई हो गया था। लेकिन यहाँ विवाह के वे सारे रिवाज किये गये जो काण्डी के सामन्तों में प्रचलित थे। वर को इससे प्रसन्नता थी क्योंकि वह कई पीढ़ियों के बाद अपने बाप-दादा के धर्म में लौटा था। अष्टक पढ़े गये। वस्त्र-ताम्बूल और आभूषणों की अदला-बदली हुई। कन्या ने पति को किरवत—खीरभात—खीर भी खिलाई। शायद यह असली किरवत होगा। आजकल के सिंहली किरवत में किर... जरूरत नहीं पड़ती, सिर्फ भात नारियल के नरम गूदे के साथ पका दिया जाता है। बिना एक बूँद दूध के भी खीरभात बन जाता। कन्या ने नम्र नमस्कार करते हुये वर की ओर से दी हुई चीजों को स्वीकार किया।

सिंहल वीरता और कला का अन्तिम वासस्थान काण्डी के पहाड़ थे, जिन्होंने १८१४ ई० तक अपनी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखी। १८१४ में जब अँगरेजों ने अपनी सा... शक्ति तथा हिन्दुस्तान की अर्जित राज्य-शक्ति को लेकर लंका पर धावा बोला, तभी सारा सिंहल परतंत्र हुआ। इसलिए काण्डी प्रदेश के हर त्यौहार या व्यवहार पर सिंहल कला की छाप रहती। रठवत्ते परिवार को स्वभावतः ... पसन्द था कि सारा स्वदेशी शिष्टाचार पालन किया जाय। तरुण भण्डारनायक भी इससे सहमत था। समधी सर सालोमन भण्डारनायक ने लड़के को अपने को बौद्ध घोषित करते, स्वदेशी रीति रवाज को अपनाते देखकर सिर्फ "उपासक" कहकर सन्तोष कर लिया। वह भी पुत्र की राष्ट्रीयता में बाधक नहीं थे। बारात में गाना-बजाना और नाच सारा स्वदेशी था। कन्या सचमुच ही सिंहल की जनपद-कल्याणी या पद्मिनी थी जिसके रूप की चारों ओर प्रशंसा हो रही थी। उसमें नेतृत्व के गुण जो पीछे दिखलाई पड़े, वे उस समय नहीं सामने आये। पहले मंत्री और फिर प्रधान मंत्री की पत्नी के तौर पर श्रीमा ने घर की शोभा बढ़ाई और आने-जाने वाले विदेशी प्रधान मंत्रियों, भारत के राष्ट्रपति और दूसरे सम्माननीय मेहमानों का भयंगोडा के निवास-स्थान और होरगल्ला के वलौवा (महल) में स्वागत किया। यह भी कम प्रशिक्षण नहीं था कि श्रीमा जैकोस्लोविकिया के प्रधान मंत्री विलियम सिरोकी, कम्बोडिया के राजकुमार सिंहानोक, चीन के प्रधान मंत्री चो-एन लाई, जापान के प्रधान मंत्री किशी, अंगरेज प्रधान मंत्री मेकमिलन, युगोस्लाविया प्रधान तीतो के साथ मिलने, बात करने आदि

१९६१

करने का श्रीमा को मौका मिला। वह अपने पति के साथ संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, इँगलैण्ड, भारत और बर्मा हो आयी थीं। लेकिन यह सब जब कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वक्ता पति भण्डारनायक जिन्दा था। उनसे जनहित और समाजवाद की बहुत सी बातें सुन चुकी थीं।

जुलाई १९६० में दूसरा साधारण निर्वाचन हुआ जिसमें सबसे ज्यादा भाषण देनें का काम श्रीमा को मिला। उन्होंने अपनें दल को संगठित रखा। यह लड़ाई अँगरेजी के उत्तराधिकारी काले साहबों और सिंहल की साधारण जनता के बीच थी। उस समय काले साहबों को यह विश्वास ही नहीं था कि यह "रोती विधवा" उनकी रही-सही प्रतिष्ठा को भी खाक कर देगी। भण्डारनायक उड़ते हुए बादल की तरह सिंहल में आये थे जिनके शासन का कोई स्थायी प्रभाव नहीं हो सकता। उनका सपना क्षणिक था जो उनके जीवन के साथ समाप्त हो गया। काले साहबों की पार्टी संयुक्त राष्ट्रीय दल अपने को बहुत चतुर समझता था, वैसे ही जैसे कि भारत के नमरदली नेता गांधी के आगमन के पहले अपने को समझते थे। उनके पास सारे सिंहल के दैनिक पत्र थे धन की उन्हें कमी नहीं थी। राजकीय नौकर और विदेशी शक्तियाँ तथा उनके अपनें तत्कालीन मंत्री सब उनकी सेवा के लिए तैयार थे। कैथोलिक चर्च और अमेरिकन डालर की भी सारी शक्ति उधर लगी थी। पर सिंहल जनता को श्रीमा के दल ने अपनी ओर खींचा। वह शक्तिहीन, धनहीन थीं, तब भी जनता के वोट को अपनी तरफ खींच सकीं। दो महीने में ९०० व्याख्यान देना कोई साधारण बात नहीं थी।

जब निर्वाचन का परिणाम घोषित हुआ तब असाधारण बहुमत श्रीमा के दल नें पाया। गवर्नर नें श्रीमा को प्रधान मंत्री पद के लिए बुलाया और वे उसी किराये की गाड़ी में उसी ड्राइवर के साथ अपनें पुत्र अनुरा को लिये गवर्नर जनरल के पास गयीं। उन्होंनें प्रधान मंत्रित्व स्वीकार किया। जब लौटीं तो बहुत से लोग बधाई देनें के लिए उनके घर पर इकट्ठा हुए थे। लेकिन श्रीमा सबसे पहले उस जगह गयीं, जहाँ पति भण्डारनायक का फोटो था। सबसे पहला काम उन्होंनें उस फोटो के सामनें दण्डवत् करना पसंद किया।

मंत्रिमण्डल बन जानें पर श्रीमा उसके साथ सिंहल की पुरानी राजधानी अनुराधपुर गईं। वहाँ अशोक पुत्री संघ-मित्रा द्वारा लाई जयमहाबधि नामक पीपल के वृक्ष की पूजा की। अपनें पूर्वजों के नगर से आशीर्वाद लिया और फिर वहाँसे वे काण्डी आयीं जो सिंहल की अन्तिम राजधानी थी, और जिसे अँगरेजों ने १८१४ में जीता था। प्रधान मंत्री और उनके मंत्रिमण्डल के स्वागत के लिए वहाँ वार्षिक मेले जैसा एक बड़ा पेरेहेरा जैसा जुलूस जमा हुआ। उसी अष्टकोण गुम्बद से श्रीमा नें इस भारी जनसमूह को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया, जैसे कि काण्डी के राजा पहले कभी करते थे।

पार्लियामेण्ट-संसद् के उद्घाटन का समय आया। श्रीमा नें निश्चय किया कि उद्घाटन समारोह जय मंगल-गाथा के साथ आरंभ हो। बहुत से लोगों को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंनें कहा कि यह थिएटर का अनुकरण होगा। श्रीमा ने कहा मैंनें भी बहुत से थिएटर देखे हैं, पर कहीं जयमंगलगाथा नहीं गायी गयी। समारोह उसी तरह से किया गया जैसे कि प्रधान मंत्री ने निश्चित किया था। प्रधान मंत्री होते ही लोगों को पता लग गया कि यह दृढ़ स्त्री है, केवल कोमल नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि वे मंत्रि-मण्डल के सामूहिक कृत्य का तिरस्कार करतीं। बल्कि विरोधपक्षी पार्लिया-मेण्ट सदस्य को भी मंत्री विभागों की कमेटी में लिया, जिससे कि वे सुझाव दे सकें। सिंहल की जनता श्रीमा के इन सारे कामों को बड़े उत्साह के साथ देखती रही और उसको विश्वास हो गया कि उन्होंनें जिसको सर्वाधिक वोट देकर जितवाया, वह उनके हित के लिए काम करेगी।

अन्त में अपने भविष्य के कार्यों के लेखा-जोखा का समय आया। श्रीमा ने वह गवर्नर जनरल के लिखित भाषण में दे दिया था, जिसकी कुछ बातें थीं :—

१—हमारी सरकार दुनिया की राजनीति में किसी एक ब्लाक की ओर न होकर निष्पक्ष रहेगी, वह सह-अस्तिव के सिद्धांत को मानेगी।

२—भारतीय जो सिंहल में आ गये हैं, उनकी समस्या को भी सन्तोषजनक रूप से सुलझायेगी।

३—सरकार राष्ट्रभाषा के सिद्धांत को कार्यरूप में परिणत करेगी। सिंहल राष्ट्रभाषा बनायेगी, साथ ही तमिल को भी उसका स्थान दिया जायगा।

४—हमारी सरकार कानून और व्यवस्था का

पूरी तरह पालन करेगी। जनता के हित और शान्ति तथा भली सरकार के सारे नियम पालन करेगी।

५—सरकार ऐसे कदम उठायेगी जिसमें बहुसंख्यक जनता के धर्म—बौद्ध धर्म को उचित स्थान मिले, तो भी धर्म के कारण किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जायेगा। धर्मसंबंधी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में जो सुझाव दिये हैं उनको कानून के रूप में परिणत करके शासन (धर्म) की अभिवृद्धि के लिए शासन-मण्डल की स्थापना की जायेगी।

६—शिक्षा में सांप्रदायिकता को हटाकर राष्ट्रीयता स्थापित की जायेगी। स्वभाषा सिंहल भाषा के माध्यम और अँगरेजी के माध्यम में स्कूलों और कालेजों में कोई अन्तर न रखा जायगा।

७—पैरादेनिया—सिंहल विश्वविद्यालय और दूसरे स्कूलों के माध्यम को सिंहली बनाने में जल्दी की जायेगी। विद्योदय और विद्यालंकार विश्वविद्यालयों के विकास के लिए आवश्यक सहायतायें दी जायेंगी।

८—हमारी सरकार राष्ट्रीय सेवा की योजना बनायेगी जिसमें देश की सेवा के लिए राष्ट्रीय श्रम का उपयोग हो सके।

९—पश्चिमी चिकित्सा के साथ-साथ आयुर्वेदिक चिकित्सा का भी ध्यान रखा जायेगा।

१०—घरों की कमी को पूरा करने के लिए सरकारी मदद दी जायेगी। साधारण स्थिति के लोगों को दो हजार रुपये मकान बनाने का ऋण दिया जायेगा।

११—व्यापार में सहयोग समितियों और प्राइवेट व्यापारियों को प्रोत्साहित किया जायेगा।

१२—अगले साल के लिए निश्चय किया गया है कि हमारे देश में एक रबर टायर और ट्यूब की फैक्टरी और लोहा-फौलाद का कारखाना खोला जाय, जिसमें सोवियत संघ ने सहायता देने का वचन दिया है। यह भी निश्चय किया गया है कि देश में रासायनिक खाद के कारखाने खोले जायें।

१३—कृषि के संबंध में सरकार ऐसी योजना अपनायेगी जिससे जोती हुई भूमि की उपज बढ़े और नयी भूमि को भी खेत के रूप में परिणत किया जाय। वैज्ञानिक ढंग की खेती को प्रोत्साहन दिया जायगा। इसके लिए मशीनें और दूसरी चीजें सुलभ की जायेंगी।

१४—नाना-जल-विद्युत्, सिंचाई, बाढ़-नियंत्रण और भूमि-विकास की योजनायें महावेली गंगा, वलवेह गंगा, कलनी गंगा, कलूगंगा, मलवतुओया की उपत्यकाओं में कार्य रूप में परिणत की जायेंगी। तथा मिलवलगंगा, सहाओया, मीओया, देदुरूओया, कलाओया, यानओया, किरिन्दीगंगा और मेनिक गंगा में भी चतुर्मुखी योजनायें की जायेंगी। नदी उपत्यकाओं के अनुसार शासन भूमि की भी सीमा बनेगी।

१५—ट्रेड यूनियन के अधिकारों की रक्षा की जायेगी और श्रम-विभाग का विस्तार किया जायेगा।

१६—कड़े नियम बनाये जायेंगे, जिसमें देश में गैर कानूनी तौर से दूसरे आ न सकें।

१७—हमारी सरकार क्रमशः राष्ट्रीकरण की नीति को मानती है, जिसके अनुसार पहले जीवन बीमा कम्पनी को राष्ट्रीय बनाया जायेगा।

१८—एक कमीशन नियुक्त किया जायेगा जो भण्डारनायक की हत्या के राजनीतिक उद्देश्य की जाँच करेगा।

१९—इस साल के जुलाई महीने के साधारण निर्वाचन में सिलोन के संयुक्त समाचार-पत्र और टाइम्स ने जो रुख लिया है उसके लिये समाचार-पत्रों को एक नये आधार पर आधारित संगठन के हाथ में किया जायेगा। कानून इस बात को ध्यान में रखेगा कि पत्रों की जनतंत्रता को क्षति न पहुँचने पाये।

पीछे दो वर्षों में क्रमशः इन बातों को श्रीमा की सरकार ने हाथ में लिया और जो बाकी हैं उनकी ओर भी उसका ध्यान है। अपने स्कूलों और कान्वेन्टों के लिए कैथोलिक सरकार से प्रतिवर्ष तीन करोड़ रुपया अनुदान पाते थे। प्रायः सारी शिक्षण संस्थायें उनके हाथ में थीं। स्वर्गीय भण्डारनायक ने जब सारे स्कूलों को राष्ट्रीय बनाने की बात घोषित की, तो कैथोलिक चर्च बौखला गया। केरल में भी यही बात हुई और वहाँ हिन्दू सत्ताधारियों से एकता करके उन्होंने कम्युनिस्ट गवर्नमेण्ट को खतम कर दिया। सीलोन में बात और हुई। श्रीमा ने इस बात को और भी साफ तौर से रखा। काले साहबों के खिलाफ वह लड़ ही रही

थीं। कैथोलिक भी उसके विरोधी हुए और विदेशी थैलियाँ भी खुलीं। लेकिन परिणाम उल्टा हुआ। श्रीमा के दल ने भारी बहुमत प्राप्त किया। उसने पहला काम स्कूलों का राष्ट्रीयकरण हाथ में लिया। वहाँ भी बन्दर-घुड़कियाँ दी गयीं। लेकिन कैथोलिकों को मालूम था कि अगर उन्होंने अशान्ति का मार्ग लिया तो बौद्धों का नहीं कैथोलिकों का महाविनाश होगा। उन्हें जबरदस्ती शान्ति का पाठ पढ़ना पड़ा और कुछ ही दिनों में सिंहल के सारे स्कूल राष्ट्रीय बन गये। न कहीं गोली चली, न कहीं उपद्रव हुआ। यह बड़ी भारी विजय थी। सिंहल में रबर बहुत होता है, जिसे विदेशों में ले जाकर टायर आदि का रूप दिया जाता है। सिंहल में लोहे की खानें भी मिलती हैं, यद्यपि उनको कम मूल्य का बतलाकर अँगरेज लोहे-फौलाद में परिणत करने में उत्साह नहीं दिखलाते थे। सोवियत ने जहाँ तक संभव हो सभी देशों में उद्योग-धंधा बढ़ाने में सहायता देकर पूंजीपतियों के बाजारों को खतम करने का निश्चय किया है। जिसका लाभ लंका ने भी लिया और वहाँ टायर-ट्यूब का कारखाना और लोहे का कारखाना बनने जा रहा है। समय आयेगा जब कि कितनी मशीनें भी वहाँ तैयार होने लगेंगी और लंका क्रमशः एक उद्योगप्रधान देश हो जायेगा। १९६० के बजट में जो टैक्स बढ़ाया गया, इससे काले साहब बौखला गये, हालांकि वह टैक्स नये उद्योगों को जमाने के लिए लगाये गये हैं। श्रीमा की सरकार समाजवाद के कुछ प्रोग्रामों को अपने देश में व्यवहार रूप में लाना चाहती है। वह शान्ति की पक्षपाती है, यह उसने हाल के बैलग्रेड के अपने भाषण में कहा था। उसके विरोधी काले साहब इँगलैण्ड की ओर देखते हैं और कैथोलिक अमरीका से आशा रखते हैं। पर, श्रीमा का दल अपने उद्देश्य और बल पर दृढ़ खड़ा है।

पपीहे की पुरानी तान

श्री विश्वनाथ मिश्र

सुन पपीहे की पुरानी तान
बन गये हत-चेत थे जो, वे जगे फिर प्राण।
नींद पलकों में समेटे
ऊँघते तारे गगन में
है अमा अभिसार करती
उतर भू पर इस लगन में,
आ रहे कुछ दूर से हैं विरह के ये गान।
बन गये हत-चेत थे जो, वे जगे फिर प्राण।

विरह की घड़ियाँ उधर हैं,
मिलन की घड़ियाँ इधर हैं;
अश्रु की लड़ियाँ उधर हैं,
हास्य फुलझड़ियाँ इधर हैं,
आज दो बेमेल स्वर चुप, सुन रहे हैं कान।
बन गये हतचेत थे जो, वे जगे फिर प्राण।

यह नियति भी खेल कैसा
रच रही सूने क्षणों में;
विरह में कोई, किसी को
मोद मुक्ता के कणों में,
घट रही घटना विरोधाभास की अनजान।
बन गये हत-चेत थे जो, वे जगे फिर प्राण।

भारत के सर्वश्रेष्ठ गायक तानसेन

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

भारत ने बड़े-बड़े गवैये और संगीतज्ञ समय-समय पर पैदा किये हैं। लेकिन इन सबमें श्रेष्ठ तानसेन माने जाते हैं, यदि जिन्होंने उन्हें गाते हुए सुना, उनकी गवाही ठीक मानी जाये। 'आइन-ए-अकबरी' और 'अकबर-नामा' के लेखक का कहना है कि तानसेन-सा गायक पिछले हजार वर्षों में भारत में नहीं पैदा हुआ। यह शहादत अत्युक्तिपूर्ण समझी जाये तो तानसेन के सम-सामयिक और 'भानूदय' के लेखक ने जो बात तानसेन के विषय में कही, उसमें से काव्योचित अत्युक्ति निकाल देने के बाद भी यह मानना पड़ता है कि तानसेन अपने समय के सबसे बड़े गायक थे। तानसेन कम-से-कम दस वर्ष तक बान्धवगढ़ में रहे और बान्धव-नरेश के आश्रित 'भानूदय' को कई बार तानसेन के गायन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। 'भानूदय' के कवि ने तानसेन के गायन की प्रशंसा में पाँच श्लोक लिखे हैं, जिनमें से दो नीचे दिये जाते हैं:—

"भूतो भविष्यन्नपि वर्तमानो
न तानसेने सदृशो धरण्याम्।
तथा(ऽ)प्रसिद्ध्या त्रिदिवेऽपि मन्ये,
नतादृशः कोप्यनवद्यविद्यः।

(सारे संसार में तानसेन के से गानेवाला न तो भूतकाल में देखने में आया और न भविष्य में या वर्तमान काल में उसका-सा कोई गानेवाला दिखायी देगा। मेरी सम्मति में स्वर्ग में भी उसके समान गानेवाला नहीं हुआ, क्योंकि यदि कोई होता तो उसका नाम अवश्य सुनायी देता।)

"तत्रैव तत्रैव वचो विलासा, यत्रैव यत्रैव जनाश्चरन्ति।
यत्रैव यत्रैव वचांसि नूनम्, सा तानसेनोक्ति सदेति तत्र॥"

(जहाँ-जहाँ लोगों में आपस में बातें होती हैं वहाँ-वहाँ तानसेन के गीतों ही की चर्चा होती है।)

तानसेन के विषय में हिंदी में एक दोहा भी प्रसिद्ध है। इस दोहे के रचयिता का नाम कुछ लोगों ने अबदुर्रहीम खानखाना बताया है, और दूसरे इस दोहे की रचना का श्रेय सूरदास को देते हैं। रहीम, सूरदास या अन्य किसी कवि ने निम्न दोहे की रचना की हो, यह बात तो संदिग्ध है, लेकिन दोहे में कही गयी तानसेन-विषयक बात सोलह आने सार्थक है। दोहा इस प्रकार है:—

"बिधना अस जिय जानि के, शेषहि दिये न कान।
धरा मेरु सुन डोलती, तानसेन की तान।"

इस दोहे की दूसरी पंक्ति के पाठ में भेद है। कुछ लोग दूसरी पंक्ति में यदि यह पाठ पढ़ते हैं "धरा मेरु सुन डोलती" तो दूसरे लोग इसके स्थान में यह पढ़ते हैं "धरा मेरु सब डोलती।" हमारी समझ में यह दोहा न सूरदास का है, और न रहीम का; किसी परवर्ती कवि ने इसकी रचना की और अपने दोहे को प्रसिद्ध करने के लिए उसने सूरदास या रहीम का कहा हुआ दोहा इसे बताया। बात कुछ भी रही हो, इस दोहे में तानसेन-विषयक तथ्य इस बात को सूचित करता है कि उत्तर भारत में तानसेन की बाबत कितनी ऊँची धारणा थी। अपने समय के सबसे बड़े गायक, लोगों की दृष्टि में, तानसेन हुए, जिनकी जोड़ का दूसरा कोई गायक इस पृथ्वी पर न हुआ और न होगा।

इसी तानसेन का उर्स इस वर्ष के फरवरी मास के अन्तिम सप्ताह में ग्वालियर में मनाया गया, जिसमें हिन्दुस्तान के वर्तमान गायकों और गायिकाओं ने भाग लिया। इसी उर्स का लाभ उठाकर इस पत्रिका के पाठकों को तानसेन के जीवन के विषय में मैं कुछ सुनाना चाहता हूँ, ताकि इसी बहाने उनके हृदयों में तानसेन की स्मृति फिर ताजी हो जाये और इस लेख के लेखक को भी उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का सुअवसर प्राप्त हो सके।

तानसेन का जन्म कब और कहाँ हुआ? बहुत से लोगों का कहना है कि वह ग्वालियर से सात मील दूर बेहट नामक गाँव के एक गरीब ब्राह्मण के घर में पैदा हुए। उनके जन्म की तिथि १५३२ ई० बतायी जाती है। जन्म-तिथि और जन्म-स्थान के विषय में यद्यपि मतभेद है, लेकिन बहुमत ऊपर कही गयी दोनों बातों ही को सही मानता है। सूफी संत मुहम्मद गौस के आश्रय में बहुत दिनों तक तानसेन रहे। बाद में ग्वालियर के तोमर नरेश, राजा मानसिंह, द्वारा स्थापित 'संगीत विद्यालय' में वह भरती हुए। वहाँ संगीत की शिक्षा जब समाप्त हुई, तब तानसेन वृंदावन-वासी स्वामी हरिदास के पास गये। स्वामीजी अपने समय के बहुत

बड़े गायक थे। उनसे सीखने पर तानसेन की संगीत-शिक्षा एक तरह से समाप्त हुई। पर आजीवन तानसेन दूसरे गुणी जनों से मिलते और उनके गायन की विशिष्टताओं का अभ्यास करते रहे। इसके दो उदाहरण हैं—(१) स्वामी गोविंद से मिलना और (२) मुहम्मद अदली को संगीत का गुरु बनाना। इससे इनकी 'पूर्ण' गायक होने की लालसा का पता चलता है। तानसेन के जन्म, सूफी फकीर मुहम्मद गौस, और स्वामी हरिदास के सम्पर्क में आने, की बहुत-सी दंत-कथाएँ हैं जिनमें से कुछ का यहाँ पर उल्लेख कर देना अनुचित न होगा।

कहा जाता है कि ग्वालियर के पास बेहट नामक गाँव के एक गरीब ब्राह्मण के घर में तानसेन पैदा हुए। इनके पिता का नाम मकरंद मिश्र बताया जाता है और तानसेन का बचपन का नाम तन्ना या तन्नु मिश्र। उनका असली नाम कहते हैं, त्रिलोचन मिश्र था। बाद में तानसेन के नाम से उन्होंने ख्याति पायी। उनका बचपन का नाम या असली नाम लोग भूल गये। उन्हें तो तानसेन ही के नाम से हम जानते हैं। यह उनका असली नाम था या उपनाम, इस बात को ठीक-ठीक हम नहीं कह सकते हैं। जब पाँच वर्ष के तानसेन हुए तब कुछ लोगों का कहना है—वह बोल नहीं पाते थे। सूफी फकीर मुहम्मद गौस ने अपने मुँह का जूठा पान इस पाँच वर्ष के बालक के मुँह में रख दिया। तब से वह बोलने और शब्दों का शुद्ध उच्चारण करने लगा। कुछ लोगों का कहना है कि इन्हीं सूफी फकीर की दुआ का यह प्रताप था कि तानसेन पिता के घर पैदा हुआ। लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि तानसेन ने बचपन में इस सूफी फकीर मुहम्मद गौस से संगीत की भी शिक्षा पायी थी। यह बिलकुल गलत और मनगढ़ंत बात है, क्योंकि मुहम्मद गौस के वर्तमान वंशज का कहना है कि उनके खानदान में सदा से संगीत वर्जित रहा है। इस्लाम धर्म भी संगीत की कला का बहिष्कार करता रहा है। ऐसी दशा में यह मानना कि यह फकीर संगीत में पारंगत होगा, असंभव-सा लगता है। लेकिन इस मुस्लिम संत के विषय में तानसेन-सम्बन्धी इस किंवदन्ती का उल्लेख कर देना आवश्यक इसलिए था कि इससे न केवल इस किंवदन्ती की, बल्कि गौस-सम्बन्धी तानसेन-विषयक अन्य किंवदन्तियों की, निस्सारता की पोल बखूबी खुल जाती है।

तानसेन का भित्तिचित्र
(आकाशवाणी दिल्ली में)

लोग कैसी-कैसी किंवदन्तियाँ गढ़ते हैं, इसका यदि मजा लेना हो तो तानसेन की इन किंवदन्तियों को पाठक ध्यान से पढ़ें। इनमें उन्हें रस भी आयेगा और कल्पना के उड़ान की छटा भी उन्हें दिखायी देगी।

इसी तरह स्वामी हरिदास के संपर्क में तानसेन के आने की अनेक किंवदन्तियाँ हैं, जिनमें से दो का यहाँ उल्लेख करना अनावश्यक न होगा। कहा जाता है कि एक दिन स्वामी जी निधुवन से प्रातःकाल के झुटपुटे में जमुना-स्नान करने जा रहे थे। निद्रा-मग्न और अस-

हाय तानसेन से वह सहसा टकरा गये। इस प्रकार दोनों की एक दूसरे से भेंट हुई और परस्पर में संपर्क बढ़ा। इस घटना का समय अकबर के दरबार में तानसेन के जाने के बाद बताया जाता है। अकबर के दरबार में जाने के बाद तानसेन कैसे 'असहाय' हो गये, यह कुछ समझ में नहीं आता। दूसरी किंवदन्ती है कि "एक बार स्वामीजी जब बेहट गाँव से होकर जा रहे थे, तब बालक तानसेन की शेर की बोली सुनकर वह उनकी ओर आकृष्ट हुए।" पहली किंवदन्ती से यह दूसरी किंवदन्ती कहीं अधिक विश्वसनीय जान पड़ती है, यद्यपि तानसेन का शेर की बोली बोलने के कारण स्वामीजी का उनपर 'मुग्ध' हो जाना समझ में नहीं आता। लेकिन इस किंवदन्ती में स्वामी हरिदास से तानसेन की भेंट उस समय बतायी गयी है जब वह बालक थे। इसमें कल्पना की उड़ान कम है।

किसी सफल व्यक्ति के मरने के बाद उसके विषय में ऐसी किंवदन्तियों का प्रचार प्रायः हुआ करता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। "मेरे लाल की बड़ी-बड़ी आँखें।" गौस का संगीतज्ञ होना या तानसेन की स्वामी हरिदास से भेंट—ये मनोरंजक किंवदन्तियाँ वैसी ही निस्सार हैं, जैसी औरों के विषय में किंवदन्तियाँ निस्सार हुआ करती हैं। लेकिन इन किंवदन्तियों में सत्य का थोड़ा-सा अंश भी छिपा रहता है, और वह है यह कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" इन किंवदन्तियों का केवल इतना ही महत्त्व है कि जवानी में नायक को जो सफलता मिली, उसके लक्षण बचपन ही से लोगों को दिखायी देने लगते हैं। इससे अधिक इन या ऐसी किंवदन्तियों का मोल नहीं है। किंवदन्तियों में वर्णित घटनाएँ न ऐतिहासिक होती हैं और न उनका मूल्य मनोरंजन के अतिरिक्त कुछ भी होता है।

अब, आइए, मुस्लिम इतिहासकारों ने तानसेन के विषय में जो बातें लिखी हैं, उन पर हम एक दृष्टि डालें। अबुल-फजल ने अपने 'आईन-ए-अकबरी' में तानसेन का जिक्र इन शब्दों में किया है—

"प्रसिद्ध संगीतज्ञ और गायक तानसेन का आश्रयदाता था राजा रामचन्द्र बघेला। तानसेन की ख्याति अकबर के कानों तक पहुँच चुकी थी और (अपने राज्यकाल के) सातवें वर्ष (१५६२ ई०) में सम्राट् ने तानसेन को आगरा लाने के लिए जलालुद्दीन कुर्ची को बघेला राजा के पास भेजा। राजा रामचन्द्र ने अपने को अकबर की इच्छा ठुकराने में असमर्थ पाया और उन्होंने तानसेन को बहुत-सा पुरस्कार देकर गाजे-बाजे के साथ आगरा भेज दिया। अकबर के दरबार में जब पहली बार तानसेन ने अपनी कला दिखायी तब बादशाह ने उन्हें दो लाख रुपए इनाम में दिये। तानसेन अकबर के साथ रहे। उनके बहुत से पदों में अकबर का नाम है।"

इसी घटना का जिक्र अबुल-फजल ने अपने दूसरे ग्रंथ "अकबर-नामा" में इस प्रकार किया है:—

"इस साल (सन् १५६२ ई०) की घटनाओं में से एक थी (अकबर की) पाक मजलिस में तानसेन का पहुँचना। इस जमाने में तानसेन ग्वालियर का सबसे बड़ा कलावंत था। इसकी ख्याति बादशाह के सुनने में आयी और मालूम हुआ कि वह (तानसेन) दूर जाकर रियाज कर रहा था और पन्ना (बांधवगढ़) के राजा रामचन्द्र के दरबार में अपना वक्त काट रहा था। बादशाह ने हुक्म दिया कि दरबार के गवैयों में उसे शामिल कर लिया जाये। तानसेन को लाने के लिए राजा के पास जलाल खाँ कुर्ची, जिस पर हुजूर मेहरबान थे, फरमान के साथ भेजा गया। राजा ने फरमान ले लिया और राजदूत का भेजा जाना अपने लिए बाइस-ए-इज्जत समझा। उसने बहुत से मशहूर हाथी और जवाहिरात अकबर के पास बदले में भेजे। उसने तानसेन को भी जरूरी बाजे और इनाम देकर अपना ज़र-ख़रीद बना लिया। तानसेन (अकबर के दरबार में) हाजिर हुआ और उसे इज्जत बख्शी गयी। बादशाह (उसके आने से) खुश हुए और अपने पुरस्कारों से उसकी झोली भर दी। उसे सबसे ज्यादा इज्जत की जगह दी गयी। वह अच्छा और खुश-मिजाज था, लिहाजा वह लंबे अरसे तक बादशाह की खिदमत में रहा। उसने गाने और शायरी में बड़ी तरक्की की।"

आगे चलकर इसी "अकबर-नामे" में तानसेन सम्बन्धी एक दूसरा उल्लेख है—

"तानसेन की मौत अप्रैल, सन् १५८९ ई० में हुई। अर्थी में बादशाह अकबर शरीक हुए और उनके हुक्म से सभी गवैये गाते हुए कब्रिस्तान तक गये। बादशाह ने फरमाया कि तानसेन की मौत का अर्थ है गाने के इल्म का खात्मा।"

'आइन-ए-अकबरी' में अबुल-फजल ने यह भी लिखा है कि तानसेन का सा गानेवाला पिछले हजार वर्षों में हिन्दुस्तान में पैदा नहीं हुआ।

तानसेन की शायरी की तारीफ में बादशाह जहाँगीर ने अपने "जहाँगीर नामा" में लिखा है कि "इन कवियों में तानसेन कलावंत प्रमुख था, जो मेरे पिता की सभा में बेजोड़ था। (वास्तव में किसी काल में, किसी युग में उसकी समता का गायक नहीं हुआ।) अपनी एक रचना में उसने प्रेयसी के कटाक्ष की उपमा उस कमल से दी है जिस पर भौंरा आकर बैठ गया हो, एक तरुण के मुख की उपमा सूर्य से, और पलक खोलने की उपमा कमल के खिलने और भौंरे के उड़ने से दी है।"

ऊपर कहा गया है कि हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि तानसेन कब और कहाँ पैदा हुए। अबुल-फजल ने इन्हें ग्वालियर निवासी कहा है। ग्वालियर में इनका शव भी दफनाया गया जिसे आज भी हम देख सकते हैं। उनकी कब्र उनके गुरु, मुहम्मद गौस, की कब्र के पास है। बहुतों का कहना है कि वह ग्वालियर के पास एक गरीब ब्राह्मण के घर पैदा हुए। कब वह पैदा हुए, यह भी हमें ठीक नहीं मालूम। उन्होंने कहाँ शिक्षा पायी या स्वामी हरिदास के पास संगीत सीखा, यह भी हम नहीं कह सकते। सन् १५५२ ई० में तानसेन का बघेला राजा के दरबार में होना, 'भानूदय' काव्य के रचयिता बताते हैं। सन् १५६२ में वह अकबर के दरबार में आये। यह भी इतिहास-सिद्ध घटना है कि उनका देहावसान सन् १५८९ ई० में हुआ। उनकी मृत्यु आगरे में हुई और, उनकी इच्छानुसार, उनके शव को बादशाह अकबर ने ग्वालियर में उनके गुरु की कब्र के पास दफना दिया। इन तीन बातों के अलावा, तानसेन के विषय में हमें कुछ नहीं मालूम। कम से कम २० वर्ष की अवस्था में वह बघेल राजा के दरबार में दाखिल हुए। सन् १५५२ से लेकर सन् १५६२ ई० तक बघेल राजा के आतिथ्य-सत्कार का उन्होंने उपभोग किया। सन् १५६२ में वह आगरा आये और बादशाह अकबर के दरबार में २७ वर्ष तक रहे। इसीके आधार पर उनके जन्मकाल का निर्णय किया जाता है। बहुतों की राय में, जिससे मैं भी सहमत हूँ, ५७ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हुई। इस हिसाब से—यदि यह गणना सही है—उनकी जन्म-तिथि सन् १५३२ ई० बैठती है। कुछ लोग उनकी उम्र ८७ वर्ष की बताते हैं। इस हिसाब से उनका जन्म सन् १५०२ ई० में हुआ था। जो मियाँ तानसेन कलावंत के जीवन से परिचित हैं, वे इस बात को कदापि नहीं मान सकते कि तानसेन का-सा पियक्कड़ ८७ वर्ष तक जीवित रह सकता है। उन्होंने अपने एक पद में अपने विषय में खुद कहा है—

> **"दारु प्यावो कलाली अबहीं, दारु प्यावो कलाली।**
> **तानसेन को खुमारी भई है, अति बेहाली॥**
> **दुहाई साह जलाल की, प्याला भर-भर**
> **पियावउ हो लाल दुलाली॥**

जो शराब के नशे में इतना चूर रहता था, उसका ८७ वर्ष तक जीवित रहना कठिन जान पड़ता है।

कब वह हिन्दू से मुसलमान हुए, यह किसीको नहीं मालूम। उनके धर्म-परिवर्तन के विषय में कई किंवदंतियाँ हैं। कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुति के जो पद तानसेन ने रचे थे, वे उस समय रचे गये थे जब वह हिन्दू थे। इसमें हमें कोई तथ्य नहीं मालूम होता। स्वर्गीय अजमेरी या अन्य मुस्लिम गवैयों के परिचय का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त है, वे इस तरह के तर्क को गलत ही बतायेंगे।

इनका विवाह एक मुस्लिम महिला से हुआ। वह कौन थी, इसके विषय में भी मतभेद है। हम यह मानने को तैयार नहीं कि बादशाह अकबर ने किसी शहजादी से तानसेन का विवाह करा दिया। दूसरी बात हमें ठीक जँचती है कि दरबार के किसी मुस्लिम गवैये की लड़की से उनका विवाह हुआ।

कहा जाता है कि अकबर के दरबार में रहते हुए तानसेन कुछ समय के लिए बांधवगढ़ फिर पधारे, लेकिन बादशाह का हुक्म पाते ही वह वहाँसे आगरा लौट आये।

यह भी इतिहास से सिद्ध है कि बघेला राजाओं की राजधानी उस समय रीवाँ में न थी, जिस समय तानसेन बघेल दरबार में रहते थे। बहुत बाद में बघेल राजाओं की राजधानी रीवाँ में आयी। तानसेन के जमाने में तो वर्तमान सहडोल जिले में स्थित बांधवगढ़ नामक स्थान में बघेल राजाओं की राजधानी थी। इसी बांधवगढ़ में तानसेन सन् १५५२ से १५६२ ई० तक बघेल राजा के आश्रय में रहे।

एक मुस्लिम लेखक ने तानसेन को 'अताई' कहा है, यानी, उन्हें संगीत का शास्त्रीय ज्ञान न था; वह तो केवल गायक थे! तानसेन रचित 'रागमाला' या 'संगीत-सार' को जिन्होंने देखा है, वे इस मुस्लिम लेखक की बात को कभी न मानेंगे। जिन मुस्लिम लेखक की तानसेन के विषय में यह धारणा है, उनकी पुस्तक देखने से यह पता चलता है कि 'मानकुतूहल' का मुख्यतः फारसी अनुवाद है। इसके रचयिता अकबरकालीन फकिरउल्ला हैं। वह 'मानकुतूहल' ही को अधिकृत ग्रंथ मानता था। तानसेन ने जिन नये-नये रागों का आविष्कार किया, उनका 'मानकुतूहल' में कोई जिक्र नहीं है। इसीलिए इस लेखक ने तानसेन को 'अताई' कहा है।

तानसेन रचित नये रागों की पहचान यह है कि उनके पहले 'मियाँ' या 'दरबारी' पाया जाता है; जैसे, मियाँ की मल्हार, दरबारी कानड़ा। फकिरुल्ला के अनुसार, मियाँ तानसेन ने 'मल्हार' और 'कानड़ा' को मिलाया और 'कानड़ा' में 'कल्याण' मिला दिया। 'कानड़ा' का नाम 'दरबारी कानड़ा' तानसेन ने रखा। आजकल के संगीत-विशेषज्ञों की राय है कि इन आविष्कारों द्वारा पुराने रागों का पूर्व रूप लुप्त हो गया और तानसेन के आविष्कृत राग ही इतने लोकप्रिय हुए कि उनका आज तक प्रचार है।

इन दो पुस्तकों को लिखने के अतिरिक्त, तानसेन ने लगभग २५० पदों की रचना की। उनके देखने से तानसेन की कवित्व-शक्ति का पता चलता है, यद्यपि तानसेन संगीत को प्रधान और कविता को गौण सदा मानते रहे। एक जगह उन्होंने लिखा है--

"नाद उदधि के पार की केतक करी उपाय।
मज्जन के भय सरस्वती, तूँबी उर गहि लाय ॥"

इसी दोहे से यह सिद्ध है कि तानसेन की दृष्टि में संगीत सब कलाओं का राजा है, और उसके सामने कविता का पद गौण है। एक सज्जन लिखते हैं कि "यह माना जा सकता है कि काव्य-कला की अपेक्षा तानसेन ने संगीतकला में विशेष निपुणता प्राप्त की, लेकिन यह भी मानना पड़ेगा कि इन्होंने संगीत को अपनी काव्यकला द्वारा व्यापक और लोकप्रिय बनाया।" काव्य में आपके (तानसेन के) द्वारा जिन पदों, दोहों आदि का निर्माण हुआ, वे संगीत का परिधान पहनकर अत्यंत मनोरम और आकर्षक बन गये। संगीत का परिधान पहनकर कविता मनोरम हो सकती है, लेकिन संगीत में आत्मा को अनंत की ओर ले जाने की जो क्षमता है, उसे कवि नहीं पा सकते। यही तानसेन का भी मत था और यही मेरा भी मत है। संगीत सब कलाओं में प्रधान है; उसकी तुलना में कविता गौण है।

हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि स्वतंत्र भारत ने तानसेन का वह मान अभी तक नहीं किया, जो उसे प्राप्त होना चाहिए था। भारत की राजधानी, नयी दिल्ली में उनका स्मारक बनना आवश्यक है। रीवाँ के 'सरस्वती मंदिर' में उनके 'संगीत-सार' की जो पांडुलिपि है, उसको शोध कर प्रकाशित करने का काम किसी अकादमी को लेना चाहिए। इसी तरह उनके रचे हुए पदों का शुद्ध पाठ भी प्रकाशित होना परम आवश्यक है। इस ओर केंद्र के सूचना और प्रसार मंत्री का ध्यान हम विशेष रूप से आकृष्ट करते हैं। उन्हें संगीत से प्रेम है। उनके प्रयत्न से इस अभूतपूर्व गायक और संगीतज्ञ का मान यदि हो तो कलावंत तानसेन की याद स्वतंत्र भारत में फिर से ताजी हो जायेगी।
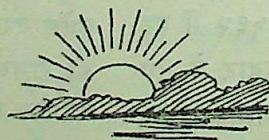
आधुनिक हिन्दी-कविता में—दीपमालिका

श्री अरविंद मिश्र

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—वाक्य भारतीय धार्मिक कृत्यों एवं संस्कारों के अवसर पर वैदिक काल से आज तक कहा जाता रहा है। किसी भी धार्मिक कृत्य और संस्कार के अनुष्ठान में बिना दीपक के कार्य नहीं चलता। इससे प्रकट है कि दीपोत्सव की परंपरा वैदिक काल ही में प्रारम्भ हो गयी थी। दीपमालिका का उल्लेख विविध ग्रंथों में हुआ है।

दीपावली के दिन लोग अपने घरों को साफ करने के साथ-साथ उसे अनेक प्रकार से सजाते हैं। बाजार की दूकानें खावा, लाई, बर्तन, मूर्तियों आदि से सजी रहती हैं।

सायंकाल लक्ष्मी का पूजन और इसके बाद बड़े उत्साह, हर्षोल्लास तथा सज-धज के साथ होता है—दीपमालिका का आयोजन। कुर्सी-मेज, इलमारी-भंडारी, संदूक, डेहरी, गगरी-कूंड़े, जाँत-काँड़ी, हौदी, पशुओं के खूंटे इत्यादि सभी दीप से विभूषित कर दिये जाते हैं। घर-द्वार का कोना-कोना दीपों से जगमगा उठता है। अपने खेत की मेड़ पर दीपक रखना तो भारतीय किसान भूलता ही नहीं। कातिक मास की अमावस की रात्रि में जब चारों ओर अंधकार छाया होता है, दीपमालिका आकाश के तारों के सदृश दृष्टिगोचर होती है।

दीपों के सामने ओझे-भुइहार, मांत्रिक-तांत्रिक क्रियाएं करते हैं। गृहणियाँ दीप से काजल पारती हैं। इस रात विद्यार्थी पठन के साथ रात्रि-जागरण करते हैं जिससे उनके मन में जो अंधकार की छाया है वह दूर हो जाय और उनका मन अध्ययन में पूरे वर्ष लगा रहे।

आधुनिक हिन्दी-कविता में—दीपमालिका पर बहुत कुछ लिखा गया है। सब कविताएँ तो लेनी असंभव हैं। थोड़ी-सी ही कविताओं को देखने से दीपमालिका की लोक-प्रियता जानी जा सकती है।

बाबू हरिश्चन्द्र ने दीपमालिका पर कई कविताएँ लिखीं। दीपमालिका के प्रति उनका न्यारा प्रेम है। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। वे ब्रज की वधुओं द्वारा दीपमालिका का आयोजन कराके दीपों की विशेषता बता रहे हैं :—

> आज तरनि-तनया निकट परम परमा प्रकट,
> ब्रज-वधुन मिलि रचो दीप-माला।
> जोति-जाल जगमगत दृष्टि थिर नहीं लगत,
> छूट छवि को परत अति बिसाला॥

घर-घर 'ज्योति-धारा' बह रही है। किस लिए? उत्तर महाकवि 'हरिऔध' की पंक्तियों में प्राप्त कीजिए :—

> बना काल को कलित कांतिधर
> अमा निशा को आलोकित कर
> पावन-जनित कालिकायें हर
> दमक दीपमालाओं में भर
> घर-घर बही ज्योति धारा!

श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद' का उद्गार स्मरणीय है :—

> देख नग्न सौंदर्य प्रकृति का
> निर्जन में अनुरागी हो,
> निज प्रकाश डालेगा जिसमें
> अखिल विश्व सम भागी हो।

संसार को ज्योतिर्मय कर नव्य जीवन का प्रवाह बहाने के हेतु महाकवि 'निराला' पद-गामिनी देवि से प्रार्थना कर रहे हैं। कविता दीपोत्सव से ही संबद्ध है :—

> प्रिय कोमल पद-गामिनी! मंद उतर
> जीवन्मृत तरु तृण गुल्मों की पृथ्वी पर
> हँस हँस निज पथ आलोकित कर
> नूतन जीवन भर दो!
> जग को ज्योतिर्मय कर दो!

'निराला' जी यहीं तक नहीं रुके रहे। उन्होंने और भी लिखा :—

> दुख हर दे शीतल-सर दे।
> वर दे! पावन उर को कर दे।
> शून्य कोष ओसों से भर दे।
> मौन तूलि को नग के उर वर दे!

आकाश में सितारे टिमटिमा रहे हैं। इन्हीं के साथ-

साथ कवियों की दीपों की पंक्तियाँ भी लग गयी हैं। इन 'पाँतों' के संबंध में कविवर पंत ने लिखा है :—

ये कवि के दीपों की पातें
शलभ प्रीति शोभा पंखों से,
चंचल मन कहती घातें।
प्राण वर्तिका जलस्न हो उज्ज्वल,
मिट्टी से उठ मिल लौ के बल
आलोकित कर भव रजनी को
करती हँस, तारों से बातें!

दीपक कहीं बुझ न जाय, कवयित्री महादेवी वर्मा उसकी रक्षार्थ संलग्न हैं :—

मेरे निश्वासों से द्रुततर,
सुभग, न तू बुझने का भय कर।
मैं अंचल की ओट किये हूँ
अपनी मृदु पलकों से चंचल,
सहज-सहज मेरे दीपक जल!

'बच्चन' जी अपने साथी के साथ दीपों की जगमगाती पातों को देख रहे हैं :—

आँख हमारी नभ मण्डल पर,
वही हमारा नीलम का घर,
दीपमालिका मना रही है,
रात हमारी तारों वाली!
साथी, घर-घर आज दिवाली!!

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' दीपोत्सव का मधुर पक्ष उद्घाटित कर रहे हैं :—

बहिना, आज सजा दो,
धीरे-धीरे दीप अवलियाँ
घनी साँझ बेला,
आलोकित हों जीवन की गलियाँ,
रूखे दीप तेल के प्यासे,
भर दो पलियाँ-पलियाँ
अंचल ओट करो खिल जाएँ
ये संध्या की कलियाँ!

कविवर शिवमंगलसिंह 'सुमन' दीपोत्सव एवं जन-जीवन की दरारों पर प्रकाश डाल रहे हैं :—

आज तुम दुहरा रहे हो प्रथा केवल,
आज घट-घट में नहीं है स्नेह संबल,
आज जन-जन में नहीं है ज्योति का बल,
आज सूनी वर्तिका का सुलगता गुल,
दीप बुझते जा रहे हैं, विवश ढुल ढुल!

'अज्ञेय' जी का गर्वभरा मदमाता दीप-पंक्ति के लिए समर्पित किया जा रहा है :—

यह दीप अकेला स्नेह भरा
गर्वभरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो!

श्री रामकुमार वर्मा दीपक और वैयक्तिकता का साम्य-प्रदर्शित कर रहे हैं :—

एक दीपक किरण कण हूँ।
सिद्धि पाकर भी, तुम्हारी
साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
उस तिमिर को नाश करने के लिए
मैं अखिल प्रण हूँ।
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी,
तुम्हारी ही शरण हूँ!

दीपोत्सव की शाश्वता श्री गिरजाकुमार माथुर ने प्रकट किया है :—

झिलमिलाती जलते दीप धरा के
सदियों से
सदियों से
जीवन की लौ उठती रहती
नगर, ग्राम, वन, नदियों से.....!

कवि रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' दीपों के मिस अपनी प्रेयसी का मधुर स्मरण कर रहे हैं :—

तेरी रूप शिखा में मेरे।
अंधकार के क्षण जल जाते।
तेरी सुधि के तारे मेरे।
जीवन को आकाश बताते।
आज बन गया हूँ मैं
इन दीपों का केवल तेरे नाते!

श्री गोपालसिंह नेपाली दीपों और तारों को संख्या में समान बतला रहे हैं :—

दीपावली दीपों का मेला
झिलमिलाती महल कुटी गलियारे

भारत-भर में उतने दीपक जलते,
जितने नभ में तारे!

श्री देवराज 'दिनेश' की दीपोत्सव पर अपनी अनूठी ही कल्पना है। रस लीजिए :—

आपस में इंगित कर तारे पूछ रहे,
मानव ने क्यों धरती आज सजाई है?
सघन अमावस का अँधियारा पीने को,
दीपों की मतवाली सेना आई है!

श्रीयुत भारत भूषण अग्रवाल दीपों के प्रकाश से कण-कोना कुछ भी शेष नहीं रखना चाहते। देखिए न :—

छज्जे पर भी चौखट पर भी,
पनघट पर भी मरघट पर भी,
भीड़ भरी इन चौपालों पर,
कुटिया के सूने आलों पर,
रह न जाय अँधियारा कहीं भी,
रानी ऐसे दीप जलाओ,
ऐसे दीपक पर्व मनाओ!

श्री अनन्तकुमार 'पाषाण' जी अपना नया ही रूपक प्रस्तुत करते हैं :—

विप्लव दीपक जगमग,
आलोकित नवयुग-मग,
शीतल जन-जन-मन-दृग—
दीप जले जुग-जुग तक!

श्री शांतिस्वरूप 'कुसुम' आलोकित दीपों और सपनों का संबंध जोड़ते हैं। बानगी लीजिए :—

दीप का लगा हुआ बाजार,
दीप से सजा हुआ घर बार,
दीप का यह मृदुतम व्यापार,
सुभग सपनों का पहरेदार,
दिवाली का पावन त्योहार!

दीप के सदैव जलते रहने की कामना श्री रघुनाथ-प्रसाद घोष करते हैं :—

सजग आरती पर
बही चेतनाएँ
निखर फूल मन के
सजल गीत गायें,
विहरता समीरण
परी रूप हेरे!
जलो दीप मेरे!!

दीपमालिका हमारे, आपके और सबके लिए है। वह अपनी झिलमिलाती, जगमगाती, चमकीली आभा से दुर्गुणों के अंधकार को दूर करने की प्रेरणा दे जाती है।
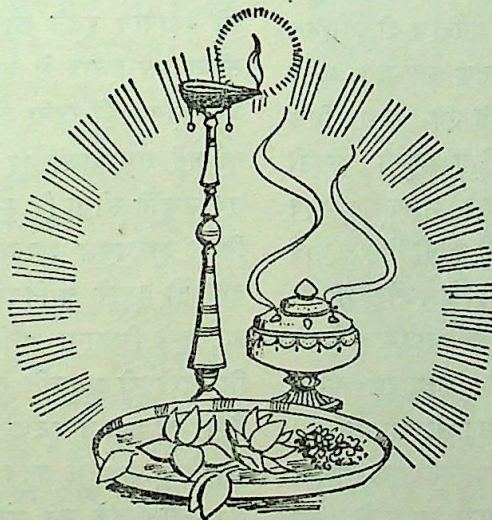
महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (९)

पंडित व्रजमोहन व्यास

सन् १९२१ की बात है। इधर कुछ समय से मालवीयजी चिन्तित रहते थे कि वह मालवीय समाज जिसमें आपस में खान-पान एवं विवाह सम्बन्ध प्रचलित है, बहुत छोटा है। इसकी परिधि बढ़ाई जानी चाहिए। सबसे कठिन समस्या तो लड़कियों और लड़कों के विवाह की थी। कहीं जन्मपत्र नहीं बनता, कहीं लड़का अच्छा मिल गया तो लड़की मंगली निकल गयी। और यदि कहीं 'छत्तीसों गुन' बन गये तो लड़की के भावी श्वशुर-गृह में भोजन का ठिकाना नहीं। समय तेजी से बदल रहा था। लोग युधिष्ठिर की सुख की परिभाषा को मानने के लिए तैयार न थे।

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो नरः।
अऋणी चाप्रवासी च स पृथिव्यां सुखी नरः॥

(दिन के आठवें प्रहर भी यदि रूखा-सूखा भोजन मिल जाय, ऋण न हो और परदेस मारे-मारे न फिरना पड़े तो वह मनुष्य सुखी है।) युधिष्ठिर की यह सीख गले तले नहीं उतरती थी। इसका उत्तर वे यह देते थे:—

जो अस्लो-नक़्ल से वाक़िफ है उसने दिल को है रोका।
मुबारक हो तुम्हीं को चाटना लड्डू के फोटो का॥

अकबर

परन्तु लाचारी थी। समाज की परिधि ही सीमित थी। छोटी सी गढ़ैया में बहुत देर तक छप-छप करने पर भगवत्कृपा से किसी बगुले को यदि एक दाना मिल भी गया तो उससे अन्य सैकड़ों बुभुक्षित बगुलों का तो पेट नहीं भर सकता था। और फिर वह भाग्यवान् पुरुष यह भी तो नहीं कह सकता था कि 'मोरी घानी निकल आई तेली का बरधा उपफर पड़ै' क्योंकि उसके और भी तो लड़कियाँ थीं। बिरादरी में ऐसे थोड़े से भाग्यवान् हैं जो इस कहावत को जबान पर ला सकें। साधारण मनुष्य प्रकृति से आलसी होता है। वह झंझट से भागता है। उदर-पोषण के लिए नौकरी तलाश करना एक झंझटी काम है। परन्तु उससे भी अधिक झंझट कन्या के लिए सुयोग्य वर का ढूँढ़ना है। मुझे अच्छी तरह से याद है कि एक बार मालवीयजी ने मुझे बुलवाया और कहा 'व्यास जी! मुकुन्द (उनके पुत्र) की दोनों लड़कियाँ बड़ी होती जा रही हैं। अपनी बहिन (उनकी बहू) से कहते नहीं कि उनके विवाह में ढिलाई न करें। आपको स्वयं इसकी चिन्ता होनी चाहिए।' मैं दक़ियानूसी खयालात का आदमी। मेरे मुँह से निकल पड़ा 'महाराज आप ही लोगों में इतनी शक्ति है कि आप इतने समय तक लड़की रोक सकते हैं। मेरी लड़की होती तो इससे बहुत पहिले, यदि वर न मिलता तो पीपल से व्याह देता।' मालवीय जी तुरन्त बोल उठे "श्रीराम! श्रीराम! ऐसी बात मुँह से न निकालिये। लड़की के लिए सुयोग्य वर तो मिलना ही चाहिए।" आजकल को देखते हुए लड़कियाँ कुछ ऐसी बड़ी नहीं हो गयी थीं। यही कोई बीस इक्कीस वर्ष की रही होंगी। आज दिन जब मैं स्वयं उस मसले को नहीं सुलझा पा रहा हूँ तो मुझे अपनी गर्वोक्ति पर कबीर का कथन याद आता है

कबिरा गर्व न कीजिये कबहुँ न हँसिये कोय।
अबहूँ नाव समुद्र में को जानै का होय॥

भगवत्कृपा और मालवीयजी की पुण्याई से उन दोनों लड़कियों का विवाह हो गया और वे सुखी हैं।

मालवीयजी दूरदर्शी थे। उन्होंने इस समस्या के सुलझाने का एक ही उपाय समझा। ज्ञाति की परिधि को बढ़ाना। इतने छोटे समाज में, जिसकी कुल जन-संख्या दस हजार से अधिक न हो, ऐसी समस्याओं का आये दिन खड़ी रहना और समय की तीव्र गति के कारण नई-नई समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। तब उन्होंने सोचा कि हम लोग मालवा से ५०० वर्ष हुए किसी कारणवश अपना देश छोड़कर चले आये थे। पर वहाँ तो हमारे ज्ञातिवर्ग अवश्य होगा। इसका अन्वेषण कर उन्हें मिलाना चाहिए। अतः उनकी प्रेरणा से और बिरादरी की अनुमति से दिसम्बर १९२१ में सात आदमियों का एक डेप्युटेशन, अन्वेषणार्थ मालवा भेजा गया। इस डेप्युटेशन में बहुत सोच-समझकर सदस्य रखे गये थे। उसमें बड़े छटे लोग थे। कुछ तो विद्वान् थे और कुछ चतुर। मैं भी उस 'डेप्युटेशन' का एक सदस्य था। मैं विद्वान् तो नहीं था, चतुर भले ही कह लें। मालवीय
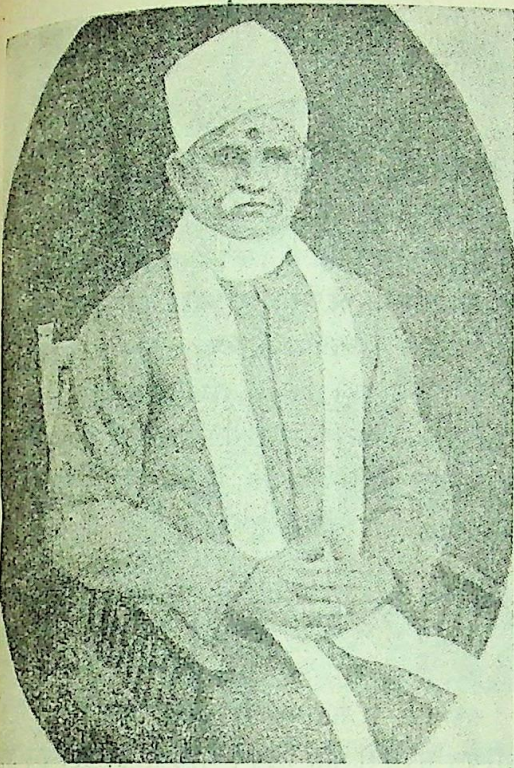
पं० रमाकांतजी मालवीय बी० ए०, एल्-एल० बी०
डेप्युटेशन के नेता

जी के ज्येष्ठ पुत्र, पण्डित रमाकान्त मालवीय 'डेप्युटेशन' के नेता थे। वपुः-प्रकर्ष और वेश-भूषा उनकी पैतृक सम्पत्ति थी। दूर से देखने से स्वयं मालवीयजी का भ्रम होता था। दूसरे विशिष्ट सदस्य थे, पण्डित पुरुषोत्तम दुबे, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् एवं मालवीयजी के स्नेहपात्र। यह सोचा गया कि सम्भव है, वहाँ कोई उस ओर का व्यक्ति सभा में संस्कृत में व्याख्यान देने लग जाय तो उसका उत्तर संस्कृत ही में देनेवाला होना चाहिए। दुबेजी इसके लिए पर्याप्त थे। उस डेप्युटेशन का विस्तार से वर्णन इस लेख की परिधि के बाहर है। अतः थोड़े ही में कहूँगा। 'डेप्युटेशन' खँडवा होता हुआ २४ दिसम्बर को इन्दौर पहुँचा। वहाँ दो-तीन दिन अन्वेषण का कार्य कर पीटा विल्लौद एवं धार होता हुआ उज्जैन गया। सभी जगह खूब सभाएँ हुईं। उज्जैन की सभा में एक बड़ी मनोरंजक बात हुई। उसके कहने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। सभा में लगभग दस हजार श्रोता उपस्थित थे। रमाकान्त मालवीयजी बड़े ठाठ-बाट से अपना व्याख्यान दे ही रहे थे कि एक उजड्ड सा आदमी उठ खड़ा हुआ और रमाकान्तजी से कहने लगा "आप मिलने-मिलाने का बहुत व्याख्यान दे रहे हैं, कहते हैं कि हम और आप एक है पर यह तो बताइये कि आपका उपकंठ क्या है।" रमाकान्तजी जब इसका उत्तर न दे सके तो वह व्यक्ति फिर उठ खड़ा हुआ और बोला "जब आपको अपना उपकंठ ही नहीं मालूम तो फिर मिलने-मिलाने की सब बात फजूल है।" मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ। मैंने कहा कि आप मुझसे पूछें। वक्ता महोदय दूसरे शास्त्र के पण्डित हैं। हमारा उपकंठ है 'कुड़हरा।' मेरा यह कहना था कि वह व्यक्ति भीड़ को चीरता हुआ आकर मुझे लपट गया, और जोर से चिल्लाकर कहा 'हम और आप लोग सब एक हैं।' इज्जत बाल-बाल बच गयी। 'डेप्युटेशन' के सदस्यों की बाछें खिल गयीं। एक व्यक्ति ने उठकर संस्कृत में व्याख्यान दिया। उसका जवाब दुबेजी ने ललित संस्कृत में दिया। सभा सफलतापूर्वक समाप्त हो गयी।

बाहर आते ही रमाकान्तजी ने पूछा "व्रजमोहन! यह उपकंठ क्या है और तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि तुम्हारा 'कुड़हरा' उपकंठ है? हमने कहा--'रमा! जहाँ विद्वान् मूक हो जाते हैं वहाँ चतुर आदमी काम आते

पं० व्रजमोहन व्यास डेप्युटेशन के सदस्य
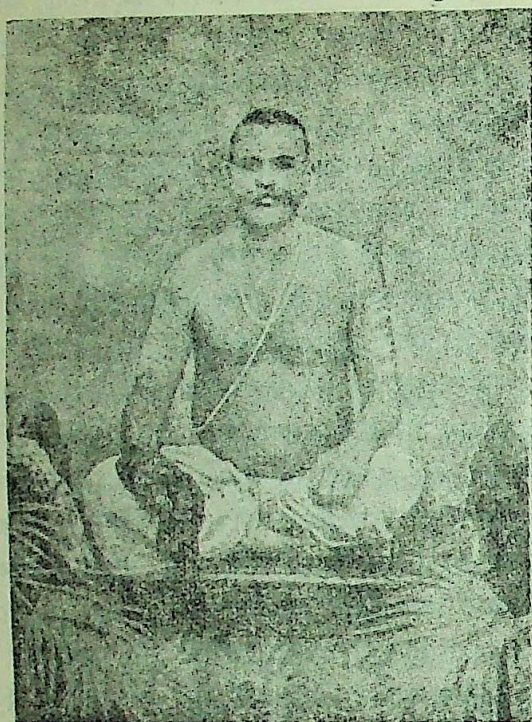
पं० पुरुषोत्तमजी द्विवेदी, स्वागताध्यक्ष, तथा उपसभापति, मालवीय सभा, प्रयाग

हैं। मालवीयजी ने मुझे निरर्थक थोड़े ही चुना था। जब १३॥ गोत्र के ब्राह्मण मालवा से भागे तो निर्दिष्ट स्थान पर निर्विघ्न पहुँच जाने के लिए उन्होंने रास्ते में 'पाड़े बाबा' की पूजा की। चूँकि पूस के महीने में भागे थे अतः पूस के महीने प्रतिवर्ष हर घर में पाड़े बाबा की पूजा होती है और उसे 'पाड़े पूसा' कहते हैं। जब हमारे यहाँ पूजा होती थी तो हमेशा हमारे पितामह पाड़े बाबा की वेदी के सामने यह मंत्र पढ़ा करते थे—"आशा, पूरा, रेणुका, कारे, गोरे, कोड़हरे के भैरवपूजनमहं करिष्ये।" उपकंठ उस स्थान को कहते हैं जहाँ के वे मूल निवासी हैं। हमारी देवी आशा, पूरा रेणुका, है और हमारा उपकंठ 'कोड़हरा' है जो उज्जैन से पाँच मील पर एक गाँव है। यह सुनकर रमाकान्तजी फड़क उठे और बोले 'यार तुम बड़े चाँई हो।'

जब 'डेप्युटेशन' प्रयाग लौटकर मालवीयजी से मिला और उन्होंने इस घटना को सुना तो बड़े प्रसन्न हुए। मुझसे अपनी मनमोहिनी हँसी में बोले 'शाबाश।' थोड़े दिन बाद मालवा के बहुत से लोगों को आमंत्रित कर मालवीयजी के सभापतित्व में एक महती सभा में सर्वसम्मति से निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—

यतो धर्मस्ततो जयः।

जाति और धर्म की रक्षा और उन्नति के लिए यह बात शास्त्रसंमत और न्याययुक्त है कि जो मालवीय गौड़ या श्रीगौड़ ब्राह्मण भिन्न-भिन्न प्रांत में बसे हैं और जिनका धर्मसम्बन्धी आचार और व्यवहार समान है उनमें परस्पर सजातीय सम्बन्ध अर्थात् भोजन और विवाह का सम्बन्ध किया जाय। यह प्रस्ताव अखिल भारतवर्षीय श्रीगौड़ मालवीय-सम्मेलन, प्रयाग, में मेरे सभा पतित्व में सर्वसम्मति से मि० वैशाख शुक्ल १० सं० १९९० को स्वीकृत हुआ।

५, मई सन् १९३३
प्रयाग

मदनमोहन मालवीय
सम्मेलन-सभापति

सम्मेलन के समाप्त होने पर मालवीयजी ने सब उपस्थित सज्जनों को, जिनमें मालवा से आये हुए बन्धु-जन भी थे, अपने निवासस्थान पर सहभोज के लिए निमंत्रित किया।

दूसरे दिन सायंकाल मालवीयजी के साथ सम्मेलन में उपस्थित सज्जनों की एक फोटो ली गयी और रात्रि में उनके निवासस्थान पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आये हुए मालवीय सज्जनों ने और प्रयागस्थ मालवीय भाइयों ने, जिसमें मालवीयजी भी सम्मिलित हुए, एक साथ भोजन किया। मुझे ठीक से याद नहीं कि वह ज्योनार 'कच्ची' (रोटी-चावल) थी या पक्की (घृत-पक्व पूड़ी)। यह ज्योनार हो पायी और बिना लाग बाँट हुए निर्विघ्न समाप्त हो गयी। इससे समझ लेना चाहिए कि वह अवश्य ही 'पक्की' रही होगी। क्योंकि जब हम लोग 'डिप्युटेशन' में इन्दौर गये थे तो वहाँपर उन लोगों से सहभोज के लिए निमंत्रित होने पर हम लोगों ने धुले हुए पीताम्बर पहिनकर 'सानी' खायी थी। 'सानी' में श्लेष के भ्रम को दूर करने के लिए यह बतला देना आवश्यक है कि 'दूध से सने हुए आटे की घृत-पक्व पूड़ी' को 'सानी' कहते हैं। खान-पान की बारीकियों के समझने में निष्णात, पण्डित रमाकान्त मालवीय के झंडे के नीचे, इससे कम में समझौता नहीं हो सकता था। परन्तु
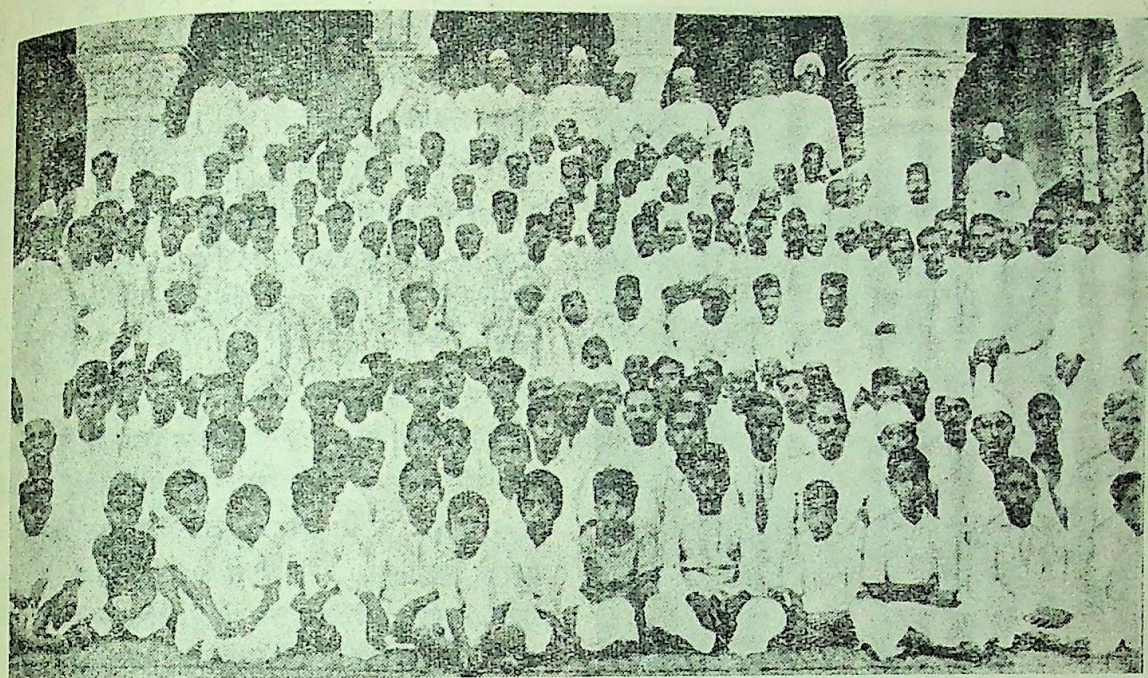
ग्रूप फोटू श्रीगौड़ मालवीय-सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९१३

'समय एव करोति बलाबलम्।' इस सम्मेलन में उन्हीं लोगों ने उन्हीं लोगों के साथ, केवल धुली हुई धोती पहिनकर मालवीयजी के नेतृत्व में सहभोजन किया! यह कोई साधारण मरहला नहीं था। जिस केनेडी संघ और ख्रुश्चेव संघ को मिलाकर शान्ति स्थापन में नेहरू जी अब तक असफल रहे, उस जटिल मसले को या तो आज से २५०० वर्ष पूर्व, अशेषवित् पाणिनि ने एक सूत्र के द्वारा 'श्वानं युवानं मघवानम्' में ऐक्य स्थापित कर दिया था या सन् १९३३ में मालवीयजी ने भिन्न-भिन्न दलों के विभिन्न मानसिक स्तरों के मनुष्यों से संयुक्त सशस्त्र दलों को मिला दिया।

प्रस्ताव तो पारित हो गया परन्तु उसको पुष्ट करने के लिए मालवीयजी ने, थोड़े ही दिन बाद, प्रयागस्थ मालवीयों की एक सभा बुलाई और ऐक्य एवं साथ में मिलकर काम करने पर उन्होंने एक सार-गर्भित व्याख्यान दिया। अन्त में मुझे धन्यवाद देने के लिए कहा गया। मैंने उन्हें सन्मार्ग दिखलाने के लिए धन्यवाद देते हुए कहा कि मालवीयजी ने जो कुछ कहा है उसका यह निचोड़ है कि :—

सामिल में पीर में सरीर में न राखै भेद
हिम्मत सों कपाट जो उघारै तो उघरि जाय।
ऐसो ठान ठानै तो बिनाहू जंत्र-मंत्र किये
साँप के जहर कों उतारै तो उतरि जाय।
'ठाकुर' कहत, कछु कठिन न जानों आज
हिम्मत किये ते कहौ काह ना सुधरि जाय?
चारि जने चारहू दिसा तें चारों कोन गहि
मेरु कों हलाइ कैं उखारैं तो उखरि जाय॥

मालवीयजी इसे सुनकर फड़क उठे और बोले 'शाबाश! इसे फिर पढ़िये।" मैंने फिर पढ़ा और सभा समाप्त हो गयी।

इस सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास हुआ था वह एक प्रकार से thin end of the wedge था (वह सलामीदार पच्चड़ जिसे ठोककर दरार को फैलाते हैं) क्योंकि उसमें अन्तर्जातीय विवाह का कोई विरोध न था। केवल ब्राह्मण होना और समान धार्मिक आचार-व्यवहार होना पर्याप्त था। अतः सर्वप्रथम मालवीयजी ने, उस प्रस्ताव का मान रखते हुए अपनी एक पौत्री का विवाह अन्तर्जाति के एक सम्भ्रान्त कुल में एक सुयोग्य वर से निश्चित किया। हर बिरादरी में प्रायः दो दल होते हैं। एक
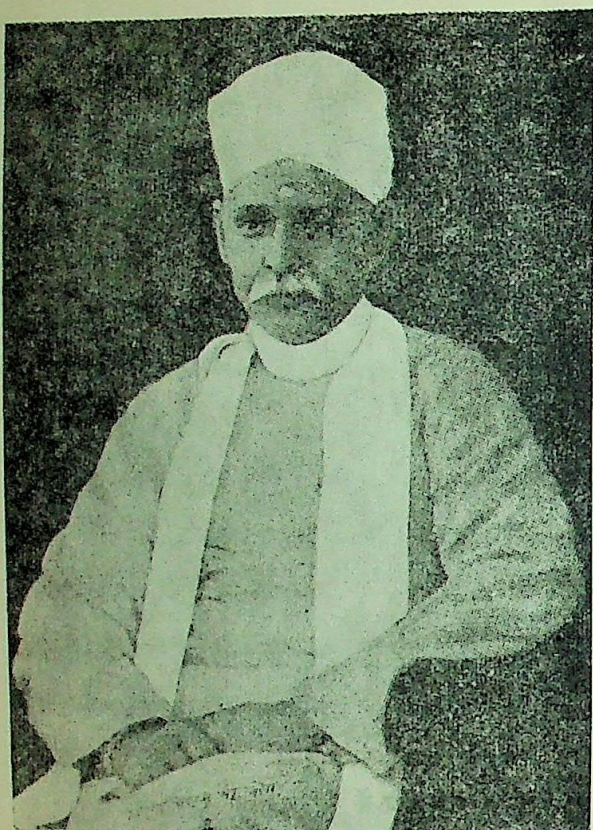
सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाऽथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन संमानार्हः सदा भव॥
मदनमोहन मालवीय, सम्मेलन के सभापति

दल ने इस सम्बन्ध का घोर विरोध किया। हमारे परिवार के न सम्मिलित होने की मालवीयजी को आशंका थी। कारण एक सिद्धान्त की बात पर। बहुत दिनों से मालवीयजी के रहते हुए दोनों परिवारों का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था और दोनों परिवारों के हिमायती दिग्गज सम्बन्धी दो दलों में विभक्त हो गये थे। थोड़े दिन यह चलता रहा। जब इस अन्तर्जातीय विवाह का प्रश्न उठा, मालवीयजी गंगा-किनारे स्थानीय शिवकुटी महादेव के निकटस्थ, राय बहादुर लालचरणदास के बाग में कायाकल्प कर रहे थे। मालवीयजी ने वहाँ मुझे बुलवाया। वे एक बँगलिया में रहते थे। बँगलिया के चारों ओर के बरामदे ईंट से चुन दिये गये थे। केवल भीतर जाने के लिए एक छोटा-सा हिस्सा खुला था। थोड़ा सा झीना प्रकाश ऊपर के रोशनदान से आ रहा था। मैं बरामदे में घुसा। आगे चलकर पूर्ण अन्धकार था। थोड़ा खड़े रहने से मार्ग दिखाई देने लगा। एक कमरे में जिसके प्रायः सभी दरवाजे बन्द थे, मालवीयजी एक चारपाई पर बैठे थे। सामने थोड़ी दूर पर एक चौकी पर एक लैम्प रखा था जिसकी चिमनी लाल थी जैसे फोटो खींचनेवालों के 'डार्क रूम' में होती है। मालवीयजी ने मुसकिरा कर मुझसे एक सामने रखी हुई कुर्सी पर बैठने के लिए इंगित किया। मेरे बैठ जाने पर वे गम्भीर हो गये और बोले "व्यासजी! आजकल मैं थोड़ा चिन्तित हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह अन्तर्जातीय विवाह जो मैं कर रहा हूँ, उसमें आपका परिवार मेरा साथ देगा या नहीं।" इस प्रश्न पूछने का कारण स्पष्ट था। मेरे उनके परिवार का सम्बन्ध-विच्छेद बहुत दिनों से चला आ रहा था और जिसका प्रारम्भ उन्हींके परिवार ने किया था। मैंने थोड़ा मुसकिराकर तुरन्त उत्तर दिया "महाराज! जब तक मेरा परिवार मेरे नेतृत्व में है, मैं अपने सम्बन्धी को किसी भी परिस्थिति में नहीं छोड़ सकता, वह चाहे मुझे छोड़ दे।" इस उत्तर में आदर तो था ही, थोड़ा सा उपालम्भ भी था, क्योंकि उन्हींके परिवार ने मेरे ऐसे घनिष्ठ सम्बन्धी को ताव में आकर एक छोटी सी बात पर, छोड़ दिया था। और यह तो बड़ी सी बात थी। मालवीयजी ने अवश्य ही इस व्यंग को समझ लिया होगा। वे बहुत प्रसन्न हुए और अपनी सुलभ मुस्कान से बोले "व्यासजी! मेरी चिन्ता दूर हो गयी। आपको और आपके परिवार को, ईश्वर सदा धर्म में दृढ़ रखे।" फिर उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जब मैंने पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं कायाकल्प दो कारणों से कर रहा हूँ। एक तो यह जानने के लिए कि इस आयुर्वेदिक प्रयोग में कुछ तथ्य है या नहीं। और यदि है तो अन्य लोग इससे प्रेरणा ग्रहण करें और मुझे अधिक स्वास्थ्य और समय देशसेवा के लिए मिले। और दूसरे यह कि यदि कुछ हानि हो तो वह मुझी तक सीमित रहे। फिर मैं चला आया।

निर्धारित समय पर मालवीयजी के यहाँ सर्वप्रथम यह अन्तर्जातीय विवाह हुआ। जैसा मैंने उन्हें वचन दिया था, मेरा सम्पूर्ण परिवार उसमें सम्मिलित हुआ। वैवाहिक उत्सव समाप्त होने पर मालवीयजी ने मुझे एक अत्यन्त स्निग्ध पत्र लिखा जिसमें उन्होंने यह भी लिखा कि "इस विवाह में आपके नेतृत्व में जो आपके

परिवार ने हम लोगों का साथ दिया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। अपनी माताजी से मेरा प्रणाम कहियेगा।"

इसके बाद तो फिर दरवाजा खुल गया। उनके परिवार में, मेरे परिवार में तथा बिरादरी के अन्य परिवारों में कई अन्तर्जातीय विवाह हुए।

कुमारी मालती की विवाह

इसे लिखते-लिखते एक बड़ी मृदुल घटना सहसा याद आ गयी जो इससे बहुत पुरानी है। परन्तु क्या किया जाय, संस्मरणों की यह प्रकृति ही है। ये पूर्वापर की अवहेलना करते हुए अनाहूत आते हैं। उनके इस अल्हड़पन ही में उनका सौन्दर्य है। यह बात मालवीयजी की एक पुत्री के विवाह की है। यह विवाहोत्सव मालवीयजी के, शहरवाले नये मकान में सम्पन्न हुआ था।

विवाह के दिन प्रातःकाल ही से घर में बड़ी चहल-पहल है। मालवीयजी सभी कार्य, विशेष कर मंगल कार्य, विधिवत् करते थे। 'सर्वार्थे अक्षताः समर्पयामि' वे कभी नहीं होने देते थे। जैसे-जैसे विवाह का मुहूर्त निकट आता जाता था, कर्मचारी लोग समस्त वैवाहिक वस्तुओं के सम्पादन करने में व्यस्त दिखाई देते थे।

केचिद्विधातुं विधिमुद्यतेभ्यः
क्रियासु दक्षाः कुशलेतरेभ्यः।
आच्छिद्य वैवाहिककर्मयोग्य-
वस्तूनि भृत्याः विदधुर्विधानम्॥

कुमारदास-जानकीहरण ७-४७

(भावार्थ :--काम करने में दक्ष और चतुर कर्मचारी, वैवाहिक सामग्री को जुटाने में बड़े उद्यत थे।)

अब वैवाहिक कृत्य आरम्भ हो गये। बन्धुवर्गों एवं मित्रमण्डल से घर ठसा-ठस भरा हुआ है। मालवीय जी स्वयं अपनी कन्या का दान करेंगे, इस पावन दृश्य को देखने के लिए सभी उत्सुक हैं। प्रांगण के बीच में विवाह-मण्डप के नीचे 'पियरी' पहिने मालवीयजी बैठे हैं। उस समय उनकी ऐसी शोभा हुई जैसे

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः
कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।
विदिद्युते बाडवजातवेदसं
शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः॥

माघ-शिशुपालवध-१-२०

(वे तपे हुए सुवर्ण के समान चमकते हुए वस्त्र पहिने थे) उनकी छवि पूर्णचन्द्र के लांछन के समान थी। इस प्रकार वे उस समुद्र के समान सुशोभित हुए जिसको बड़वाग्नि की ज्वाला लपेटे हो।)

उनके वक्ष की उपमा, जिस पर श्वेत पुष्पों की माला लटक रही थी तभी दी जा सकती है जब--

उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहा-
वाकाशगंगापयसः पतेताम्।
तेनोपमीयेत तमालनील-
मामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः॥

माघ-शिशुपालवध ३-८

(यदि व्योम में आकाशगंगा दो धाराओं में बहे तभी उनके तमाल-नीलवक्ष की जिस पर शुभ्र मोतियों का हार लटक रहा है, उपमा दी जा सकती है।)

मण्डप के नीचे वर-वधू ऐपन से पुते पीठों पर वेदी के निकट बैठे हैं। सामने हवन-वेदी से निकलता हुआ धूम वातावरण एवं उपस्थित जन-समूह के अन्तःकरणों को पवित्र कर रहा है। वेदी के चारों ओर कुशाग्रास बिखरी हुई है। सहसा शाकुन्तल का दृश्य आँखों के सामने नाच गया--

अमी वेदिपरितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्वंतः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः
वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु"।

कालिदास-शाकुन्तल ४-१०

(वेदी के आस-पास चारों ओर का स्थान, विभिन्न कार्यों के लिए निर्धारित है। एक ओर समिधा रखी है। वेदी के चारों ओर कुशा बिखरी है और यज्ञीय हवन वेदी पर जलती हुई हवि की गंध दिशाओं को पवित्र कर रही है। इस प्रकार के यज्ञ की अग्नि तुम्हें पवित्र करे।)

मैं मण्डप के एक कोने पर खोया-खोया सा मालवीयजी के सामने खड़ा इस सुधा-मधुर दृश्य को निर्निमेष आँखों से पी रहा था। मालवीयजी देख रहे थे कि इस समय मैं इस दृश्य से बड़ा प्रभावित हो रहा हूँ। परन्तु जब पुरोहित ने मांगलिक आभूषणों से युक्त कन्या का हाथ वर के हाथ पर रखा तो मेरे मुँह से सहसा निकल पड़ा--

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत् सुमुखि गौतमार्पितः।
अयमुद्गृहीतकमनीयकंकण-
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः॥

भवभूति-उत्तररामचरित

(रामचन्द्र सीता को उन चित्रों को दिखला रहे हैं जिनमें उनकी जीवन सम्बन्धी घटनायें चित्रित थीं। एक चित्र दिखलाकर राम कहते हैं:--हे सुवदने! यह वही समय है जब गौतम शतानन्द ने तुम्हारे कमनीय कंकणों से अलंकृत हाथ को मेरे हाथ में दिया था। उस समय तुम्हारा हाथ मूर्तिमान् महोत्सव लगता था।)

मालवीयजी भावुक तो हई हैं, मेरी ओर स्निग्ध दृष्टि से देखकर बोले 'वाह।' इस एक छोटे से शब्द में उन्होंने अपने हृदय में भरे हुए वात्सल्य को उडेल दिया और फिर मेरा श्लोक भी तो था 'लखटकिया।'

क्रमशः

अश्लीलता क्या, कहाँ, क्यों ?

श्री श्रीनाथसिंह

पिछले कई महीनों से सर्वोदय समाज के कार्यकर्ता अश्लीलता के विरुद्ध सत्याग्रह ठाने हुए हैं। इन-सत्याग्रहियों को आचार्य विनोबा का पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त है और इसका परिणाम यहाँ तक हुआ है कि केन्द्रीय सरकार इस बारे में एक कठोर विधान बनाने की सोच रही है।

मैं यह मानता हूँ कि भारत की सभी भाषाओं में आजकल ऐसे गंदे उपन्यास निकल रहे हैं जो पाठक के मन में विकार उत्पन्न किये बगैर नहीं रह सकते और जिनका देश के उठते नवयुवकों और नवयुवतियों पर बुरा असर पड़ सकता है। मैंने स्वयं ऐसे कतिपय उप-न्यासों की कटु आलोचनाएँ की हैं और उनके लेखकों का कोप-भाजन बना हूँ। ऐसे गंदे उपन्यासों की जरूर रोक-थाम होनी चाहिए।

परन्तु सर्वोदय समाज के कार्यकर्ता अश्लीलता के विरुद्ध सरकार और जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए जो आन्दोलन ठाने हुए हैं उससे मैं पूर्ण रूप से सहमत नहीं हो सका हूँ। और इसलिए इस लेख में मैं अपने विचार जनता के सामने रखना चाहता हूँ और खास तौर से आचार्य विनोबाजी और उनके अनुयायियों से विशेष रूप से निवेदन करना चाहता हूँ कि अश्लीलता-निवारण के नाम पर वे जो कुछ कर रहे हैं अथवा करना चाहते हैं वह सब उचित नहीं है और उनका कुछ कार्य तो ऐसा है जो जबरदस्ती और डाका तक कहा जा सकता है। कहीं ऐसा न हो कि भावी पीढ़ी, जिसका तनमन निश्चय ही स्वस्थ होगा, उनकी गिनती उन धर्मान्ध विदेशी आक्रमणकारियों में करे जो पुराणोत्तर काल में बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर यहाँ आते थे और भारत के सुन्दर-सुन्दर मूर्तियों से युक्त विशाल सुन्दर मन्दिरों को ढहाते थे और एक-एक मूर्ति को खंडित करते थे।

संत विनोबा की जयंती पर गत ११ सितम्बर को दिल्ली में जो अश्लील चित्रों, पोस्टरों और पुस्तकों आदि की होली जलायी गयी उससे उन विदेशी आक्रमणकारियों की आत्मा को अवश्य बड़ी शान्ति मिली होगी जो किसी समय में भारत में बड़ी-बड़ी संख्याओं में आते थे और सुन्दर-सुन्दर मूर्तियों को तोड़ते थे। निश्चय ही उनके उन मूर्तियों के तोड़ने का एक कारण यह भी रहा होगा कि वे अश्लील थीं। पता नहीं खजुराहो आदि के कलापूर्ण परन्तु अश्लील प्रदर्शनों से युक्त विशाल मंदिर, जिन्हें आज सारे संसार के लोग देखने आते हैं, उनके ध्वंसकारी हाथों से कैसे बच गये ? और देहली के उन सत्याग्रहियों से, जिन्होंने संत विनोबा की जयंती पर इस वर्ष यहाँ सुन्दर-सुन्दर चित्रों और कैलेण्डरों आदि की होली जलायी है, मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या वे संत की आगामी जयंती पर हथौड़ों आदि से लैस होकर खजु-राहो आदि जायेंगे और अपने पूर्वज विदेशी आक्रमण-कारियों के प्रहार से बची मूर्तियों को खंडित करने का यश और आनन्द अर्जित करेंगे ?

इस लेख में मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसको पाठक अच्छी तरह समझ सकें, इस दृष्टि से मैं यहाँ उस दिन दिल्ली में जो कुछ किया गया उसका संक्षिप्त विवरण पहले दे देना चाहता हूँ। इस बारे में प्रायः सभी दैनिकों में जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसका सारांश इस प्रकार है :

> "अश्लील पुस्तकें और पोस्टर जलाये गये।" इस शीर्षक के अन्दर कहा गया है—"देहली के सर्वोदय मंडल ने आज चाँदनी चौक में करीब ५ सेर रंगीन चित्रों, कैलेंडरों, सिनेमा-पोस्टरों, पुस्तकों आदि की होली जलायी। कामसूत्र के पृष्ठ फाड़-फाड़कर, इस जयघोष के साथ, जलाये गये—'संत विनोबा की जय हो।' और इस प्रकार भाषण हुए—"गंदे चित्रों और पुस्तकों की ऐसी होली हर मुहल्ले में जलाओ। राजधानी को पवित्र बनाओ।" आदि।

कामसूत्र अपने विषय की निराली प्राचीन पुस्तक है। शास्त्रीय ढंग पर लिखी गयी है। संसार की विभिन्न भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। यदि विवाह की प्रथा उठा नहीं देनी है और सन्तानोत्पत्ति का कार्य सर्वदा के लिए रोक नहीं देना है तो इस पुस्तक का पठन-पाठन वर्जित किया जाना अनुचित है। और फिर आचार्य

विनोबाजी अथवा सरकार इस पर रोक लगाती है तो संस्कृत और हिन्दी के ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के भी उन प्राचीन काव्यों का क्या होगा जो अश्लील वर्णनों से भरे पड़े हैं। तब तो महाकवि कालिदास के विश्वविख्यात नाटक "शकुन्तला" को ही नहीं, श्रीमद्-भागवत जैसे पौराणिक ग्रन्थों को भी जला देना होगा। और फिर सरकार की ओर से परिवार नियोजन के बारे में जो साहित्य प्रोत्साहित, प्रकाशित और वितरित किया जा रहा है, उसका क्या होगा ?

निश्चय ही हमें अश्लीलता की एक परिभाषा निर्धारित करनी होगी और उसके अनुसार पुस्तकों आदि का नियंत्रण करना होगा। संतानोत्पत्ति, संतान-निग्रह अथवा परिवार नियोजन सम्बन्धी साहित्य यों देखने में तो अश्लील प्रतीत होगा परन्तु उसकी उपयोगिता की ओर से भी आँख नहीं बन्द की जा सकती। ऐसे साहित्य को छोड़ देना होगा। गंदे उपन्यास, जो पाठक के मन पर बुरे असर डालते हैं, अवश्य जलाये जाने चाहिए और उनके लेखकों और प्रकाशकों को जेल भेजा जाना चाहिए। परन्तु इसके लिए कानून पहले ही से बना है। सर्वोदय समाज के कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे ऐसे उपन्यासों के बारे में कानूनी सलाहें प्राप्त करके उनके लेखकों और प्रकाशकों पर मुकदमे चलायें और ऐसी पुस्तकों को जब्त करायें।

हमारी राय में सर्वोदय समाज के कार्यकर्ताओं का बड़े-बड़े शहरों की सड़कों और गलियों में घूमना और दीवालों आदि पर लगे सिनेमा के पोस्टरों को उखाड़ना या उनपर स्याही छिड़कना उचित नहीं है। ऐसे पोस्टरों आदि का नियंत्रण भी कानून के अन्तर्गत सरकारी स्तर पर होना चाहिए, और इनके बारे में भी अश्लीलता क्या है और क्या नहीं है ? यह तै करना होगा। मेरा अपना ख्याल है कि स्त्री अथवा पुरुष के शरीर का केवल मात्र नग्न चित्र अश्लील नहीं माना जाना चाहिए। भारत में स्त्री अथवा पुरुष के शरीर को पूर्णतया ढककर रखने की प्रथा कभी नहीं थी। महावीर हनूमान के चित्र हमने जितने भी देखे हैं, कोपिन्दयुक्त नग्न शरीर के देखे हैं। पीताम्बरधारी कृष्ण और भगवान् राम के चित्र भी अधिकतर कटि प्रदेश पर काछनी के अतिरिक्त अन्य वस्त्रों से विहीन मिलते हैं। जैन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तो नग्न ही मिलती हैं। अनेक जैन साधु भी नंगे ही रहते हैं। भारत में नागा साधुओं का तो एक सम्प्रदाय ही है। हरद्वार और प्रयाग में ये नागा साधु कुम्भ के विशेष दिनों में नंगे ही जलूस बनाकर निकलते हैं और लाखों नर-नारी मार्ग के दोनों ओर खड़े होकर उनको निःसंकोच देखते हैं। आज जब कि मैं यह लेख लिख रहा हूँ, मेरे कमरे में महात्मा गांधी का एक चित्र टँगा है जिसपर बार-बार दृष्टि जाती है। गांधीजी एक कोपिन्द लगाये खड़े हैं। शेष शरीर नग्न ही है। जब पुरुष एक कोपिन्द लगाकर अपने शेष शरीर को नग्न रख सकता है तब स्त्री भी वैसा ही कोपिन्द लगाकर और एक कंचुकी पहनकर शेष शरीर को नग्न क्यों नहीं रख सकती ? विनोबा जयंती के शुभ अवसर पर दिल्ली में जो चित्र जलाये गये उनमें एक स्त्री शरीर का ऐसा भी चित्र था। वह चित्र अश्लील कैसे माना गया ? क्या विनोबाजी चाहते हैं कि स्त्रियाँ अपने शरीरों को पूर्णतया ढक कर रखें ?

स्त्री के हों अथवा पुरुष के पूर्णतया स्वस्थ और नग्न चित्र देखनेवाले के मन में वैसा ही स्वस्थ और सुन्दर बनने का भाव जाग्रत करते हैं। हो सकता है कि किसी विकारी मनवाले को वे अश्लील प्रतीत हों। तब क्या उसको विकार रहित बनाने का उपाय यह है कि शेष सभी के सामने से जीवन से पूर्ण आकृतियाँ हटा दी जायें ? वह स्वयं ही अपने आप पर नियंत्रण रखने का अभ्यास क्यों न करें ?

असल बात यह है कि यह प्रश्न अश्लीलता का उतना नहीं है जितना इस बात का है कि हम क्या देखने के अभ्यासी हैं और क्या देखने के नहीं हैं। दो वर्ष पहले जब मैं दिल्ली में आया था, कनाट प्लेस की दूकानों पर कंचुकियों का प्रदर्शन कुछ अजीब सा लगता था। अब मन उनका अभ्यासी बन गया है। आजकल देहली की अधिकांश स्त्रियाँ ऐसे ब्लाउज पहनती हैं जिनके भीतर से स्तन कसे हुए और उभरे हुए दिखते हैं और कटि प्रदेश लगभग ४ अंगुल तक खुला रहता है। कुछ लोगों को देहली की नारी का यह परिधान अश्लील प्रतीत हो सकता है ? परन्तु क्या उनकी रुचि-रक्षा के लिए देहली की नारी यह परिधान छोड़ देगी ? मुझे तो ऐसा नहीं लगता। फिर हम नग्न पशुओं को देखते हैं;

गायों को, भैंसों को, साँड़ों को, ऊँटों को और हाथियों को। कुत्तों का तो खुले आम उस परम अश्लील विशेष स्थिति में दिखाई पड़ जाना एक साधारण बात है। देहातों में गोपालक अपनी गायों को साँड़ों के पास ले जाते हैं और गर्भधारण की क्रियाएँ खुले आम होती हैं। माता, पिता, पुत्र, पुत्री, भाई, बहन, सम्पूर्ण परिवार इन क्रियायों को देखते हैं। कोई शहरी आदमी जो गोपालकों के बीच में नहीं रहा है, ऐसे दृश्यों पर आपत्ति कर सकता है; परन्तु क्या उसकी आपत्ति को कोई उचित मान सकता है? क्या सर्वोदय समाज के कार्यकर्ता चाहते हैं कि साँड़ों, भैंसों, घोड़ों और गधों को बस्ती में पतलून पहनाकर लाया जाये?

स्वस्थ और सुन्दर मानव आकृतियों से युक्त रंगीन सिनेमा के पोस्टर आदि नगरों की मनहूस दीवालों को आकर्षक बनाते हैं। बहुत से गरीब लोग, जो टिकट खरीदकर सिनेमाघरों के अन्दर प्रवेश पा सकने में असमर्थ होते हैं, उन रंगीन आकृतियों को देखकर अपना मन बहलाते हैं। क्या विनोबाजी चाहते हैं कि पैसेवाले लोग बन्द सिनेमाघरों में गुलगुले गद्दों पर बैठकर अश्लीलतम चित्र देखें और बाहर सड़कों पर फिरनेवाले उनकी एकआध झाँकी भी न देखने पावें? अगर कोई चित्र अश्लील है तो वह सिनेमाघर के अन्दर भी वर्जित किया जाना चाहिए। केवल उसके किसी अश्लील दृश्य को जो पोस्टर के रूप में बाहर प्रदर्शित कर दिया है, वर्जित करने से काम न बनेगा? फिर सिनेमा के चित्रों की रोक-थाम के लिए "सेंसर बोर्ड" हैं। अगर किसी चित्र को 'सेंसर बोर्ड' ने पास कर दिया है तब उसके प्रदर्शन या उसके किसी दृश्य के पोस्टर पर भले ही वह अश्लील जँचे, किसीको इस हद तक आपत्ति क्यों होनी चाहिए कि उसे नष्ट कर दे। यह तो कानून का अपने हाथ में लेना हुआ जो कदापि वांछनीय नहीं कहा जा सकता?

आचार्य विनोबा का मैं भक्त और प्रशंसक हूँ। भारत के ग्रामों में वे दूसरे गौतम बुद्ध की भाँति मानव-मात्र के कल्याण का सन्देश देते हुए विचरण कर रहे हैं। दुःखी मानवता उनकी ओर आशाभरी दृष्टि से देख रही है। गरीबी, बेकारी, बेरोजगारी, बीमारी, मक्कारी, अज्ञान, निरक्षरता, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, छुआ-छूत और हिंसा आदि से क्या उन्होंने जनता को मुक्ति दिला दी जो अब नगरों में अश्लील पोस्टरों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा है? ये रंगीन पोस्टर, शहरी जनता के लिए, वे श्लील हों या अश्लील, विकार-रहित बन गये हैं। उनके देखने के वे अभ्यस्त बन गये हैं। उनमें अगर कोई दोष है तो उसको दूर करने के लिए कानूनी उपाय मौजूद हैं। उनको उखाड़ने, बिगाड़ने और जलाने में सर्वोदय समाज के कार्यकर्ता अपनी शक्ति लगाते हैं तो कहना पड़ेगा कि उनके करने के लिए अब कोई काम बच नहीं रहा है? क्या उन्हें शहरों में नंगे-भूखे लोग दिखाई नहीं पड़ते? चलते-फिरते नंगे भूखे भाई-बहनों का तन ढकने के लिए वे कोई उपाय क्यों नहीं करते? उनकी ओर न देखकर वे दीवाल पर लगे निर्दोष चित्रों को क्यों फाड़ने दौड़ते हैं? यह कुछ समझ में नहीं आता?

आशा है, आचार्य विनोबाजी, उनके अनुयायी और सर्वोदय समाजों के शहरी कार्यकर्ता मेरी इन पंक्तियों पर विचार करेंगे और अपने कार्यक्रम की ऐसी योजनाएँ बनायेंगे और उन्हें करेंगे जिनसे उनका नाम सार्थक हो। अश्लीलता और आदर्श का नारा लगाकर जन-साधारण को डराना और उन्हें अपने पीछे चलाने का मोह उन्हें छोड़ देना होगा तभी वे वास्तव में कुछ कर सकेंगे।

आँगन के बीच—

क्या आपको पता है ?

१—क्या आपको पता है कि शारीरिक काम से मानसिक काम में अधिक थकान होती है ? आराम करने से शरीर की थकान तो जल्दी मिट जाती है पर मानसिक थकान को दूर होने में समय लगता है क्योंकि शारीरिक थकान में तो शरीर की थकी पेशियाँ (tissue) जल्दी ताजी हो जाती हैं परन्तु मानसिक थकान में क्षीण हुई स्नायु शक्ति को फिर से ताजा होने में समय लगता है। शरीर की थकान एक नींद में पूरी हो जाती है मानसिक थकान नहीं। इस कारण खेल-कूद में लगे बच्चे को आप भले ही जल्दी उठा कर बिठा दें परन्तु मानसिक चिन्तन में लगे बालक को उठाते समय इसका ध्यान रक्खें कि इसको पूरी आठ घंटे की नींद मिली या नहीं। थके मन से पढ़ा हुआ पाठ उसे याद न रहेगा। कोई भी मानसिक चिन्ता जो मन में अपना घर ही करके बैठ गयी है, आपको केवल इसलिए सदैव थकान का अनुभव कराती है, और आपके शरीर को गिरा-गिरा रखती है, क्योंकि उसमें आपकी जितनी स्नायु शक्ति का क्षय होता है वह आप की नींद पूरी नहीं कर पाती।

२—क्या आपको पता है कि दिन का सबसे आवश्यक भोजन कौन-सा है ? वह जिसे आप या तो करतीं ही नहीं या रात की दो बासीं पूड़ियाँ ही खाकर टाल देती हैं। प्रातःकाल का नाश्ता आपका मुख्य भोजन है। उसी पर आपके सारे दिन की काम करने की शक्ति निर्भर है—उसी पर आपके मिजाज का उतार-चढ़ाव निर्भर है। सहन-शक्ति का पेट के साथ अपना एक अलग सम्बन्ध है—जब जब पेट भोजन पाकर प्रसन्न दिखता है तो ऊपर चेहरे की मुद्रा भी प्रसन्न दिखायी पड़ती है। आपका शरीर प्रातःकाल के खाये हुए भोजन का पूरा उपयोग करता है।

३—क्या आपको पता है कि सबसे अधिक पौष्टिक भोजन तत्त्व क्या है ? सबसे अधिक पौष्टिक भोजन तत्त्व वह है जिसे हम 'प्रोटीन' कहते हैं—यह मांस, अंडा, मछली

आदि में अधिक होता है। शाकाहारियों को इसकी कमी मटर, सूखी फलियों, पनीर, छेना, बादाम, श्रीखंड आदि खा-कर पूरी करना चाहिए। यह पौष्टिक पदार्थ उतने ही खायें जितने कि आपकी पाचन शक्ति को सह्य हों। केवल पौष्टिक तत्त्व अधिक होने के कारण ही वे आपके शरीर को अधिक शक्ति नहीं दे सकेंगे। उनसे पूर्ण शक्ति पाने के लिए पहले आपके उदर को उनको पचाना भी पड़ेगा। जिन प्राणियों का रुधिर चाप कम होता है उनको ये पौष्टिक तत्त्व के भोजन विशेष लाभ पहुँचाते है।

४--क्या आपको पता है कि शरीर की थकान व गिरी हुई अवस्था का ५० प्रतिशत कारण शरीर नहीं वरन् मन है? मन के प्रसन्न होते ही आपका गिरा हुआ शरीर भी नाचने लगता है और मन दुखी होते ही आपका स्वस्थ शरीर भी मुरझा सा जाता है। इस कारण अपने मनको प्रसन्न रखिये।

क्या आपको पता है कि संतुलित जीवन के लिए क्या आवश्यक है? काम काज, खेल-कूद, प्रेम और भक्ति। इन चारों का सम्मिश्रण आपका जीवन संतुलित बनाता है। काम काज के बिना ढलुआ बैठा शरीर स्वयम् ही रोग का घर बन जाता है। खेल कूद शरीर को गन्दगी बाहर फेंकने में सहायता देता है व मन को हल्के काम में लगाकर उसमें भी नव-जीवन स्फूर्ति करता है, साथ ही शरीर में चुस्ती लाता है। प्रेम उसका मानसिक भोजन है उससे प्रेरित होकर वह जगत् में कार्य करता है। प्रेम के सभी पात्र 'माता-पिता, बीबी, बच्चे, भाई, बहन', पालतू पशु-पक्षी यदि हटा लिये जायँ तो बहुत से आदमी जोगिया पहने सड़कों पर खड़ताल बजाते, और यह कहते दिखायी पड़ें कि 'अपनी जान को इतना बहुतेरा है।' भक्ति वह है जो हमारे मानसिक स्तर को विकसित करती है और प्रेम को स्वार्थ में बदलने पर 'ब्रेक' लगाती है क्योंकि भक्ति द्वारा हम निस्वार्थ काम करना सीखते हैं। हनूमान्‌जी को पाँच पैसे का प्रसाद चढ़ाकर पाँच हजार के लाभ की इच्छा करना भक्ति नहीं है। भक्ति वह भावना है जिसमें भक्त उपास्य-देव के सम्मुख अपना इस भाव से आत्मसमर्पण करता है कि जो कुछ है वह तुम्हारा है। इस भाव के साथ किये गये आत्मसमर्पण से निस्वार्थ भावना उदित होती है--और स्वार्थ प्रेम को दूषित करके संकुचित नहीं बना पाता है। आपने इन चारों को अपने जीवन में उचित स्थान दे रक्खा है? यदि नहीं तो आपका जीवन एक न एक स्तर पर (शारीरिक व मानसिक) दूषित हो जायगा।

५--क्या आपको पता है कि आपकी चिन्ताओं का कारण क्या है? चिन्ता का सबसे व्यापक रूप है आर्थिक चिन्ता। देखा गया है कि आर्थिक चिन्ता एक ऐसी चिन्ता है जो कि वास्तव में प्राणी स्वयम् बनाता है वह होती नहीं है। धन किसी अन्य स्थान पर आवश्यकता से अधिक खर्च कर दिया--व्यवहार में हमारी धारणाएँ ऐसी हो गयी हैं कि हमने आवश्यकता से अधिक खर्च कर दिया, इसका हमें बोध नहीं होता--'क्या बिटिया का ब्याह रोज-रोज होगा!' (हालाँकि अब रोज-रोज ही होने लगा है) 'मकान तो एक ही बार बनता है' आदि हैं भुलावे हैं जो मन एक ओर हमारे बहलाने को उठा देता है तो दूसरी ओर पैसे की चिन्ता पैदा कर देता है। वास्तव में पैसे की कमी नहीं होती, पैसा व्यय करना हमें नहीं आता। दूसरे पैसे की कमी हमें प्रतीत होती है जब हम अपने स्वप्न पूरे करने लगते हैं। पैसा होता तो हम भी बड़ी लम्बी रोबदार कार खरीदते, वह हीरे का आभूषण खरीदते परियों सी सुन्दर वह साड़ी पहनते और पंखों (हवाई जहाज के पंख सही) में बैठकर क्षण भर में बम्बई पहुँचते पैसे की कमी की चिन्ता नहीं है। वास्तव में स्वप्न की आकांक्षाएँ हैं जिनके पूरे न होने की चिन्ता है। इस प्रकार देखा गया है कि अपने को आर्थिक चिन्ता से पीड़ित कहने वाले वास्तव में आर्थिक चिन्ता से बहुत कम पीड़ित होते हैं--वह पीड़ित होते हैं अपने मन की आकांक्षाओं से।

बाकी बचे ४० प्रतिशत प्राणी उन घटनाओं पर चिन्ता किया करते हैं जो कभी घटती ही नहीं! तीस प्रतिशत बीती घटनाओं पर दिमागपच्ची किया करते हैं और चिन्ताग्रस्तों की सूची में नाम लिखाने को व्यग्र दिखायी पड़ते हैं, और बीस प्रतिशित साधारण दैनिक घटनाओं पर ही चिन्ता किया करते हैं। अब सोच लीजिए कि वास्तविक चिन्ताजनक विषय पर कितने लोग चिन्ता करते हैं? आप भी अपनी चिन्ता पर जरा प्रकाश डालें--आपकी गणना कौन से प्रतिशत में आ रही है?

सुजनी

हाँ! अब सुजनी के दिन आ गये। पतली चादर में सर्दी लगती है और कम्बल अभी सुहाता नहीं। पहले कभी स्त्रियाँ सुजनी बड़े चाव से बनाया करती थीं। पर मानों अब बिनाई ने उसका स्थान ले लिया हो। अब जबसे कढ़ाई प्रतियोगितायें होने लगी हैं स्त्रियों का ध्यान फिर इसकी ओर जाने लगा है।

उपयोगिता और कला का जितना सुन्दर सम्मिश्रण सुजनी में मिलता है इतना दस्तकारी की कम वस्तुओं में मिलता है।

सुजनी बनाने की वास्तविक कला है कि वह दोनों ओर से भिन्न-भिन्न तरह की लगे। सुजनी बनाने में दो पुरानी साड़ियों की आवश्यकता पड़ती है—साड़ियाँ बहुत अधिक पुरानी न हों। दोनों साड़ियों को एक के ऊपर एक रखकर डोरे और सुई से सुन्दर नमूने डाल दिये जाते हैं। दोनों ओर से भिन्न लगनेवाली सुजनी में दोनों साड़ियों में अलग-अलग नमूने डालकर उनको फिर एक दूसरे पर रखकर फिर उनको परस्पर सीधे-सीधे डोरों से जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार दोनों तरफ नमूने भी दो आ जाते हैं और वे आपस में भली भाँति सिल भी जाती हैं।
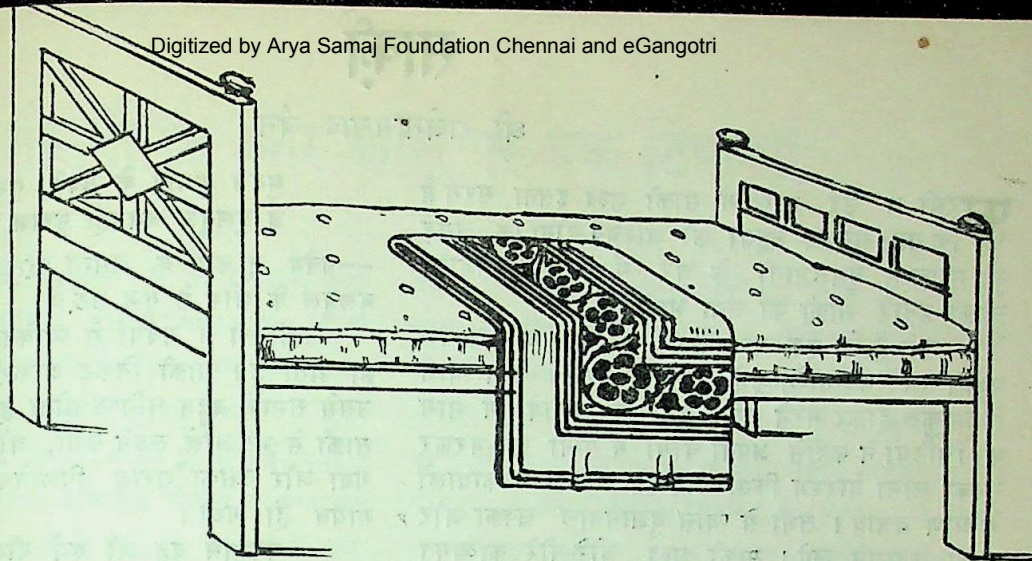
इस नमूने को भी आप दो भिन्न रूप से काढ़कर सुजनी में वही प्रभाव ला सकती हैं कि वे दोनों ओर से देखने में भिन्न लगें। इन नमूने को सुजनी के दोनों ओर उतार लीजिए। एक ओर रंगीन डोरे से (रनिंग स्टिच) साधारण सिलाई से भर दीजिए और दूसरी ओर इसी नमूने को ऊपर रखकर, उसी नाप के कपड़े काटकर (अपलिका वर्क) या पैच वर्क की तरह जोड़ दीजिए। और फिर परस्पर दोनों पर्त्तों को जिस प्रकार रजाई में डोरे डाले जाते हैं उस प्रकार जोड़ दीजिए। यह ध्यान रहे कि कढ़ाई का सीधा भाग दोनों ओर का बाहर रहे और दोनों को परस्पर जोड़ते समय गलती से अन्दर न आ जाय।

साक़ी
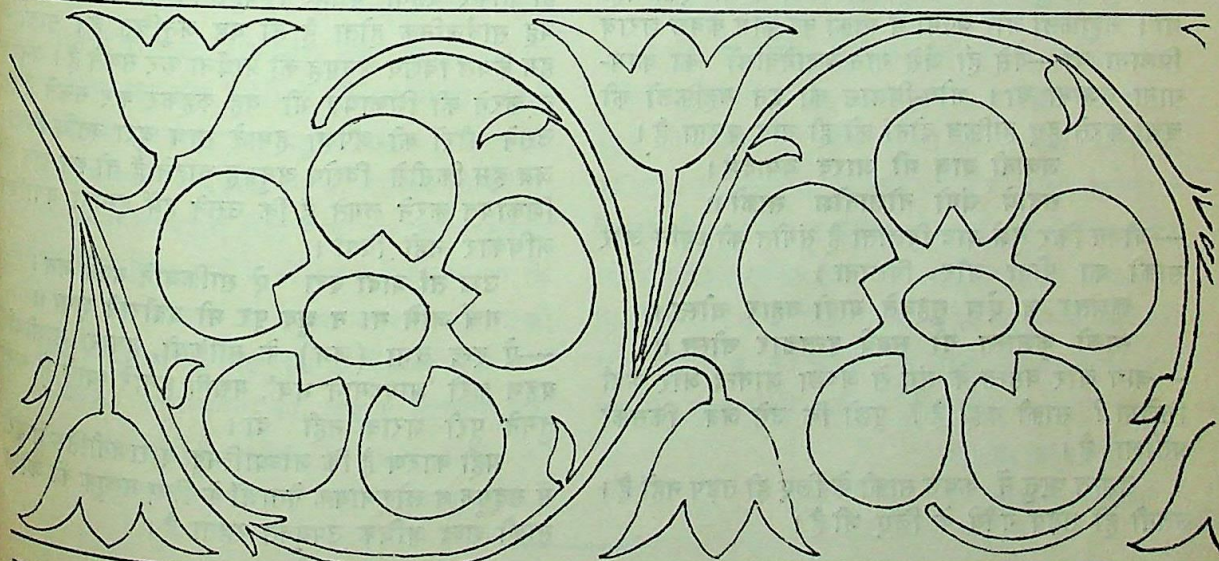
श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

फ़ारसी व उर्दू काव्य में साक़ी शब्द इतना सरस है कि यह सुनकर बहुतों को आश्चर्य होगा कि चमड़े की मशक से मुसलमानों के घर में पानी भरनेवाला सक्क़ा हमारे साक़ी का सगा भाई है।

कहते हैं कि एक बार अरब में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। सारे नद-नाले, कुएँ, ताल सूख गये। लोग प्यास से व्याकुल होकर मरने लगे। इस समय सक़ाये मुर्ग नाम की चिड़ियों ने कहींसे अपनी चोंचों में पानी भर-भरकर मक्का लाना प्रारम्भ किया और इस प्रकार मक्कावालों के प्राण बचाये। तभी से प्यास बुझानेवाले सक्क़ा और साक़ी कहलाने लगे। साक़ी शब्द धीरे-धीरे काव्यगत हो गया, और सक्क़ा धीरे-धीरे क्षुद्रत्व को प्राप्त हो गया। 'दो फूल साथ फूले, किस्मत जुदा जुदा है।'

'साक़ी' को अधिक कोमल बनाने के लिये कभी-कभी कवि लोग 'साक़िया' शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

ईरानी परम्पराओं के अनुसार साक़ी सदा पुल्लिंग होता है। यूनानी गाथाओं के अनुसार जुपीटर देवता ने सोते हुए गेनिमीड नाम के सुन्दर युवा का अपहरण कर लिया था। गेनिमीड को लेकर देवताओं में झगड़ा खड़ा हो गया जिसका निपटारा इस प्रकार हुआ कि गेनिमीड किसी एक का न होकर सभी देवताओं को शराब पिलाने का काम किया करे। इस प्रकार गेनिमीड देवताओं का साक़ी (प्याले से शराब पिलानेवाला) बना। परन्तु यूरोप का साक़ी यूरोपियन काव्य में कोई स्थान न पा सका। वह केवल होटल का बॉय (Boy) बनकर रह गया।

आजकल साक़ी और माशूक़ समान अर्थ के शब्द समझे जाते हैं, परन्तु प्रारम्भ में फारसी काव्य में भी ऐसा नहीं था। महफ़िलों और बज़्मों में साक़ी का काम केवल शराब पिलाना था—वैसे ही जैसे गाने-बजानेवालों का काम-गाना बजाना था। भोग-विलास की इन महफ़िलों की चर्चा करते हुए हाफ़िज दोनों को ही याद करता है।

जवानी बाज़ मी आरद बयादम।
सदाये चंगो नोशानोश साक़ी॥

—यौवन फिर मुझे याद दिलाता है संगीत की ध्वनि और साक़ी का पीना और पिलाना।

ख़ुशतर ज़ ऐश सुहबते बाग़ो बहार चीस्त।
साक़ी कुजास्त गो सबबे इन्तज़ार चीस्त॥

—बाग और वसन्त के संग से अच्छा आनन्द और कहाँ मिलेगा? साक़ी कहाँ है? पूछो कि उसे अब किसकी प्रतीक्षा है।

वसन्त ऋतु में केवल साक़ी के लिए ही तड़प नहीं है। उतनी ही तड़प गवैये के लिए भी है।

मुग़ने कुजाई के वक़्ते गुलस्त।
ज़ बुलबुल चमनहा पुराज़ ग़ुलग़ुलस्त॥

—गवैये, तू कहाँ है, वसन्त ऋतु आ पहुँची और बाग बुलबुल के शोर से गूँज उठे हैं।

महफ़िलों में गवैयों से व्यक्तिगत सम्पर्क बहुत कम हो पाता है। साक़ी निकट आकर शराब पिलाता है। उससे सम्पर्क बहुत घनिष्ठ होता है। इसलिए धीरे-धीरे साक़ी से भी आँखें लड़ने लगीं, और वह भी माशूक़ बन गया और उसका शराब पिलानेवाला वेतनभोगी रूप गायब हो गया।

बदस्तम दह ओ रूये दौलत बबीं।

—साक़ी, मेरे हाथ में शराब का प्याला दे और लक्ष्मी का दर्शन कर। यह कहते-कहते यह भी कहने लगे—

बदह साक़ी आँ तल्ख़ शीरीं गवार।
के शीरीं बुवद बादा अज़ दस्ते यार॥

—साक़ी, वह कड़वी मीठी चीज दे क्योंकि माशूक़ के हाथों से कड़वी शराब भी मीठी मालूम पड़ती है।

बर रुख़े साक़िये परी पैकर।
मौसमे गुल बनोश बादये नाब॥

—परीज़ाद साक़ी को सामने बिठा और फूलों के मौसम में शराब पी।

साक़ी माशूक़ बन गया। फिर भी साक़ी और माशूक़ में मौलिक अन्तर है। साक़ी मूलत: सार्वजनिक है। सभी को समान रूप से शराब पिलाना उसका कर्तव्य है। वह केवल हमारा ही रहे, यह इच्छा की जा सकती है; परन्तु उसे केवल अपना ही बनाना हमारी अनधिकार चेष्टा है। माशूक़ मूलत: व्यक्तिगत है। उसे केवल एक का ही होकर रहना चाहिए। वारांगनाओं के रूप में यदि वह सार्वजनिक होता है तो यह अनुचित है। साक़ी से हम केवल विशेष अनुग्रह की प्रार्थना कर सकते हैं। अनुग्रह न करने की शिकायत भी यह कहकर कर सकते हैं कि उसने औरों की अपेक्षा हमारे साथ बुरा बर्ताव किया। जब हम किसीसे विशेष अनुग्रह चाहते हैं तो इस बात की शिकायत करने लगते हैं कि उसने हमें हमारा यथोचित अधिकार नहीं दिया।

उम्र तॉं बादा दरा ऐ साक़ियाने बज़्मे जम।
गर्चे जामे मा न शुद पुर मी बदौराने शुमा॥

—ऐ इन्द्र सभा (जम) के साक़ियो, हमारा आशीर्वाद ग्रहण करो 'आयुष्मान भव', यद्यपि हमारे प्याले में कभी तुमने पूरी शराब नहीं दी।

यही कारण है कि आध्यात्मिक व राजनीतिक शायरी में सद्गुरु व लोकनायक नेताओं के लिए माशूक़ की अपेक्षा साक़ी शब्द अधिक उपयुक्त रहता है।

गीतगोविंद और आँसू पर एक टिप्पणी

आदरणीय सम्पादकजी,

सितम्बर मास की 'सरस्वती' में श्री रामदास गुप्त की 'आँसू' और 'गीतगोविन्द' शीर्षक रचना पढ़ी। 'गीतगोविन्द' से कवि प्रसाद के 'आँसू' की तुलनात्मक समीक्षा का उनका यह प्रयास स्तुत्य है, परन्तु एकाध स्थलों पर 'गीतगोविन्द' के संस्कृतपाठ का अर्थ करने में भूल हो गयी है जिसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित कराना मैं आवश्यक समझती हूँ। पृष्ठ १९४ पर वे कहते हैं, "जयदेव ने 'श्रमजलसिक्तकलेवरया' कहकर साधारण ढंग से कृष्ण के मुख एवं शरीर को श्रमजल से सिक्त दिखाया जो इतना हृदयग्राही नहीं।" 'गीतगोविन्द' का उक्त अंश तृतीया-विभक्त्यन्त स्त्रीलिंग समास है और इससे राधा की श्रम-सिक्त दशा का बोध होता है, कृष्ण की नहीं। बहुत संभव है कि यह लेखनी की भूल हो।

जयदेव ने जिस काल में गीतगोविन्दकाव्य लिखा वह रीतिकविता का उच्चतम विकास काल था, तथा उसकी काव्यपरक अपनी मान्यताएँ थीं। श्रृंगार की सभी अवस्थाओं का यथार्थ वर्णन उस समय मानी हुई बात थी जिसका सभी कवि आदर करते थे; काव्य के लक्षणग्रन्थ जिनमें इन बातों के वर्णन का स्पष्ट आदेश किया गया है इस सम्बन्ध में इस काल की रुचि और समालोचना की दिशा की ओर पर्याप्त संकेत करते हैं। भरत से लेकर सत्रहवीं सदी के अन्त में पण्डितराज जगन्नाथ तक इसी परम्परा का अनुसरण होता रहा और हिन्दी के कवियों ने तो अपनी रचनाओं में इसे पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। यदि हम इस सिद्धान्त को मान लें कि प्रत्येक युग की साहित्य की परीक्षा की अपनी-अपनी मान्यताएँ होती हैं जो एक दूसरे से सम्बद्ध होकर भी मूलतः भिन्न होती हैं तो लेखक के यह विचार कि "लेखक ने ('गीतगोविन्द' के लेखक जयदेव) श्रृंगार को स्पष्ट शब्दों में इस भाँति रक्खा कि उसमें अश्लीलत्व झलकने लगता है। कलात्मकता का अभाव खटकता है।" नितान्त असमीचीन हैं। जयदेव का ग्रन्थ संस्कृत की काव्यशैली में लिखा गया है जहाँ मूर्त के यथार्थ वर्णन में श्रृंगारात्मक अमूर्त और अपदर्थ कोमल भावनाओं की अनुभूति व्यंजना द्वारा प्राप्त होती है। प्रसाद के समय तक काव्य की शैली बदल गयी थी। रीतिकाल के अतिशय शारीरिक चित्रण से लोग उकता गये थे, जीवन में कठिनाइयों और निराशा के बाहुल्य से वे जीवन के मूर्त और स्थूल स्वरूप से डर भी गये थे और उससे भागने लगे थे। प्रेमिका के हाड़मांसयुक्त स्थूलरूप से भागकर वे किसी कल्पनातीत "जुही की कली" अथवा "विहंगिनी" प्रेयसी की कल्पना से अपनी तृषा को तुष्ट करने लगे थे। इसका फल यह हुआ कि छायावादकाल में रीतिकाल की मान्यताएँ विपरीत पड़ गयीं तथा अमूर्त, अस्पष्ट और कुहासे भरी कल्पनाओं के चित्रों को वाच्यरूप से कहकर कवि व्यंजना द्वारा स्थूल और यथा शरीर के आनन्द का सुख लूटने लगे। इस प्रकार काव्य में उन्होंने कल्पित शालीनता तथा छायापरक सुरुचि का आरोप किया। आजकल के मापदण्ड के अनुसार भी यदि ध्वनि को काव्य का प्रधान अंग मानें तो भी जयदेव का काव्य अश्लील नहीं है, वैसे अपने काल के मापदण्डों से तो वह कदापि अश्लील नहीं। दूसरे यदि जयदेव वास्तव में अश्लील होते तो प्रसाद जैसे सुरुचिपूर्ण, कलात्मक और भावप्रवण लेखक को कदापि प्रेरणा प्रदान न करते।

अन्त में मैं लेखक के इस विचार का समर्थन करती हूँ कि हिन्दी के लेखकों में बिना आधार के केवल अपना पाण्डित्य दिखाने के हेतु—योरोपियन साहित्य का प्रभाव ढूँढ़ने की प्रवृत्ति एक बेकार सा प्रयास है। लेखक के व्यक्तित्व तथा उसके अध्ययन की पूरी और सच्ची जानकारी के बाद ही यह निश्चित किया जा सकता है कि किन-किन स्रोतों से वह प्रभावित हुआ है। यह सुझाव भी ठीक है कि हिन्दी के अधिकांश विद्वान् लेखकों की मानसिक प्रेरणाओं और गतिविधि को समझने के लिए संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का समीक्षण उचित है।

आपकी अनुग्रहकांक्षिणी
कमला रतनम्

जाते हैं। इन गीतों की पंक्तियों में सम्बद्धता नहीं होती, किंतु गेय होती हैं। इसके प्रारम्भिक बोल इस भाँति के होते हैं—

'किकली कलीर दी,
पग मेरे वीर दी
दुपट्टा मेरे भाई दा,
फिट्टे मुँह जुवांई दा।''

यह 'किकली' किशोरियों का सौभाग्य का चिह्न है, जो विवाह के पहले कन्या के हाथ पर बांधा जाता है। 'मानवादा (पगड़ी) तो मेरे भाई की है। यह चूनर

मेरे भाई ने ही मुझे दी है। मैं उस पर बलिहारी जाती हूँ। दामाद को धिक्कार है।' ऐसा लगता है कि 'जुआई' शब्द तुक की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जाता है।

'किकली' नृत्य की कई मुद्राएँ होती हैं। एक मुद्रा में दो किशोरियाँ आमने-सामने बैठ जाती हैं। दोनों के सिर पर घड़ा रखा होता है। धीरे-धीरे नाचती हुई ये किशोरियाँ ऊपर उठकर पूर्ववत् नाचने लगती हैं।

दुम : श्री देवप्रिय गुप्त

अशोक वाटिका ध्वस्त करने के बाद हनुमान्‌जी रावण के सामने पेश किये गये। विचार होने लगा कि उन्हें कौन सा दंड दिया जाय। रावण ने कहा कि वानर को सबसे अधिक अपनी पूँछ प्यारी होती है, इसलिए इसकी दुम में लुत्ती लगा दो। पता नहीं रावण को वानर के मनोविज्ञान और पूँछ-प्रेम का परिज्ञान कैसे हुआ। हो सकता है कि उसने कभी किसी बंदर को पाला हो और अनचित्ते में पूँछ दब जाने से उसने काट खाया हो। इससे रावण ने यह नतीजा निकाल लिया हो। या यह भी हो सकता है कि रावण ने पशुमनोविज्ञान का विधिवत् अध्ययन किया हो और कोई पदवी हासिल की हो, और प्रयोगशाला चलाता हो। जो भी हो इतना स्पष्ट है कि वानरों की गतिविधि का रावण ने सूक्ष्म अध्ययन किया था और उसकी निरीक्षण शक्ति भी काफी तीव्र थी।

दुम के प्रति पशुओं का प्रेम अकारण नहीं है। किसी भी समय देखा जा सकता है कि मौज में आकर जानवर दुम हिलाने लगता है। कुत्ते की तरह दुम हिलाना एक मुहावरा हो गया था। दुम दबाकर भागना दूसरा मुहावरा है। इसका अर्थ भी यही है कि दुम प्यारी और रक्षणीय चीज है, तभी तो उसे दबाकर पशु भागता है। सारांश यह कि पशु-जगत् में दुम का महत्त्व बहुत है।

दुम के बालों का भी काफी महत्त्व है। हिंदी के जाने-माने कवि श्री विनोद शर्मा ने आधुनिक और प्राचीन दो प्रसिद्ध कवियों की तुलना में मूछ और पूँछ के बालों का सहारा लिया है और इस प्रकार पूँछ के बाल के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। ध्यान रहे कि मूछ के बालों का अब कोई महत्त्व नहीं रहा। उन्हें उड़ा दिया जाता है, जब कि पूँछ के बाल अपनी जगह बदस्तूर कायम हैं।

पशु और मनुष्य में क्या मूल फर्क है, इसपर कई मत हैं। कुछ का कहना है कि मनुष्य हँस सकता है, पर पशु नहीं। कुछ यह कहते हैं कि मनुष्य बोल सकता है, पशु नहीं बोल सकते, यही मूल फर्क है। पर इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि मनुष्य को दुम नहीं होती जबकि पशु को होती है। कहते हैं कि पहले मनुष्य को भी दुम होती थी। लाखों वर्ष के विकास-क्रम में यह घिस गयी और इसकी जगह अभी भी हड्डी का एक टुकड़ा मौजूद है, जो गर्भावस्था में बहुत साफ दिखाई देता है।

शायद इसी पुरानी याद के कारण मनुष्य को अभी शारीरिक दुम नहीं तो लाक्षणिक दुम से बहुत मोह है। अभी हाल में हिंदू विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार के पास एक विचित्र वेशधारी व्यक्ति पधारे। वे अपने को पाकिस्तानी-निवासी कश्मीरी बाबाजी कहते थे। उनका सवाल था कि मुझे तुरत पी० एच० डी० की डिग्री दो। रजिस्ट्रार महोदय के इनकार करने पर बाबाजी ने अपने झोले से बिल्ली की दुम निकाल कर दिखाई और कहा कि 'रखे रहो तुम अपनी पी० एच० डी०, मेरे झोले में ऐसी डिग्री पहले ही से धरी है।'

रजिस्ट्रार महोदय को बाबाजी की दुम जरा भी नहीं पसंद आई और वे पुलिस के सुपुर्द कर दिये गये, पर मैं सोचता हूँ कि बाबाजी ने बात तो पते की कही। पता नहीं बाबाजी के झोले में से पुलिस को और कितनी दुमें मिलीं।

मेरे खयाल से तो पी० एच० डी० के लिए बाबाजी ने बिल्ली की दुम तजबीजी तो डी० लिट्० के लिए बाघ या शेर की रखी होगी। इसी प्रकार और डिगरियों के लिए भी गुणधर्मानुसार दुमें तजबीजी जा सकती हैं। कुछ सुझाव नीचे दिये जाते हैं।

सियार की दुम——वकील के लिए।

बंदर की दुम——डाक्टर के लिए। इसका संबंध लूट-खसोट से नहीं बंदर के वनोषधि ज्ञान से है।

गधे की दुम——सेकेंडरी अध्यापक के लिए।

बैल की दुम——क्लर्क के लिए।

लोमड़ी की दुम——जन प्रतिनिधियों या मेंबरों के लिए।

कुत्ते की दुम——सनदयाफ्ता साहित्यिकों के लिए।

इन दुमों से अनेक लाभ हैं। सबसे बड़ा लाभ यह है कि डिगरियों की दुम केवल पढ़ी जा सकती है, किंतु ये दुमें देखी जा सकती हैं। फिर कागजी दुमों से विशेषता का बोध नहीं होता, बल्कि अनेक बार तो उनसे भ्रम पैदा हो जाता है। पता ही नहीं चलता कि कौन डाक्टर नाड़ी पकड़नेवाला है और कौन सा अनाड़ी वाला। इन दुमों के लगाने से यह झंझट मिट जायेगी।

यदि इन दुमों को काफी लंबा बनाया जाये तो चलते समय इनसे अपने आप सर्वोदय संस्कार होता चलेगा। विज्ञान के युग में इनमें ऐसा यंत्र लगा देना भी कठिन नहीं कि मोटर गाड़ी के शीशे के पोछक के समान ये भी डोलती रहें और मक्खी मच्छरों को भगाती रहें। इस प्रकार मलेरिया, फाइलेरिया और न जाने कितने छुतहे रोगों से रक्षा होगी।

यहाँ दुम के उपयोगों की ओर केवल इशारा भर किया गया है। मसलन दिल्ली में बस की प्रतीक्षा में खड़े खड़े पाँव दुखने लगते हैं, यदि दुमों में उपयुक्त सुधार कर दिया जाये तो क्रिकेट के अंपायर की छड़ी की तरह लोग इसे टेककर खड़े भी रह सकते हैं। बड़े आदमियों की ड्योढ़ी लगानेवालों को भी इस आविष्कार से बड़ी राहत मिल सकती है। खास कर आजकल टिकट बँटने का सीजन है। इस समय तो दुम के लाभ अनेक हैं। इसे हिला-हिलाकर हाई कमान को प्रसन्न किया जा सकता है, इसे टेककर उनके द्वार पर धरना दिया जा सकता है, इसे तानकर उनका जैकारा लगाया जा सकता है।

इँगलेंड में पुराने जमाने में रईस लोग सिरों पर नकली बाल लगाते थे। अदालतों के जज शायद अब भी इस प्रकार के विग लगाते हैं। पगड़ी और साफों के छोर, तुर्की टोपी के पुछल्ला, और नारी वर्ग की लंबी लटकती चोटियाँ, दुम के लिए मानव की इसी अत्यन्त आकांक्षा की प्रतीक हैं। साहित्यिक उपनाम, लंबी-लंबी उपाधियाँ और सरनेम गोपनाम या जातिनाम इसी आकांक्षा की लाक्षणिक अभिव्यक्तियाँ हैं। युग की आवश्यकता है कि अमूर्त को मूर्त किया जाय।

एक व्यंग्य-चित्र

नौकरी है, मज़ाक नहीं !

डॉ० श्यामसुन्दर व्यास

नौकरी, नोन-तेल-लकड़ी है। शायद इसीलिए नौकर की नाक नीची रहती है। वैसे नौकरी से नाक भी है और नाक का सवाल भी नहीं। नौकरी से नाक इसलिए कि चार भले आदमियों में साख रहती है। कमाऊ पूत घर में भी प्यारा, बाहर भी बेचारा नहीं ! फिर भी नौकरी, नौकरी है; मजाक नहीं। यों कहने को 'राम गुसाँई' ही सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं; पर वास्तव में नचाती नौकरी ही है। वह नाच, नाचना पड़ता है कि तबियत झक्क हो जाती है !

बालपन के बिछुड़ते-न-बिछुड़ते यह बबाल पीछे पड़ जाता है। चेहरे पर रेख फूटी नहीं कि बुजुर्गों के बोलों की हथौड़ी, मस्ती पर मेख ठोकने लगती है। पढ़ाने-लिखाने में गाढ़े पसीने की कमाई, इसलिए बहाई जाती है कि नौकरी से उसकी भरपाई हो ! पढ़-लिखकर बेकार बैठ जाओ तो सुनो--'इतना बड़ा ढोर हो गया, कमाई के लक्षण ही नहीं !' बड़े ढोर में कमाई के लक्षण याने नौकरी, और नौकरी याने बड़ा ढोर होने का प्रमाण !

हो सकता है कि भूले-भटके या जल्दी जवान होने के लिए हमने भी गलती से मुँह पर 'रेजर' घुमा लिया था याने नौकरी के हल में जुतने के लिए सुपात्र बनने की 'जुगाड़' लगाई थी। हल में बछड़ा नहीं जुतता; सींग निकलें तो बैल बने ! आदमी भी बड़ा ढोर तभी बनता है जब दाढ़ी-मूछों के सींग आ जावें। इसीलिए हमारा नुस्खा कारगर रहा। दाढ़ी-मूछों के सींग निकल आये, नौकरी का जूआ कंधे पर लद गया, जवाबदारी की जमीन जोतने लगे। मगर फसल के नाम पर फिस्स् ! पंचर गाड़ी पर ही सवार होकर 'पैंडल' लगाये जा रहे हैं क्योंकि नौकरी कर रहे हैं, मज़ाक नहीं।

नौकरी आज के युग की मुक्ति है। दाम, राम है। पढ़ाई-लिखाई राम-दरबार में दाखिल होने की साधना है। घड़ी मार्ग-दर्शक गुरु है। दफ्तर देवालय है। फाइलें माला के मन के और 'साहब' की मरजी सिद्धि है। चाटुकारिता भजन-पूजन, दीनता, धूप-दीप एवं नवनीत, नैवेद्य है। घिसा-घिसाई ही शुद्ध-भक्ति है। इस असिधारा-व्रत का निर्वाह हो जावे तो पौ बारह, वरना दाम-राम का दीदार दुर्लभ ! इसीलिए नौकरी करना मजाक नहीं।

रुपये का दस सेर दूध पीनेवालों ने भले ही कह दिया हो--'सँभाल अपनी घोड़ी, बन्दे ने नौकरी छोड़ी।' पर रुपये की दस प्याले चाय पीनेवाला बन्दा मूर्खता के इस चक्कर में नहीं पड़ेगा। पचपनसाला हो जाने के बाद भी अगर उससे घोड़ी माँगी जावे तो वह दीनतापूर्वक दाँत दिखा देगा--शायद साल-दो-साल के लिए और सईस-गिरी बढ़ जावे। यह सब इसलिए कि नौकरी, नौकरी है, मज़ाक नहीं !

नौकरी की 'लगी' बड़ी बुरी होती है। या तो लगती नहीं और लगती है तो आसानी से छूटती नहीं। नौकरी रहते दम छूट जावे तो गम नहीं। दम रहते नौकरी छूट जावे तो गम से दम निकल जावे। नौकरी है तो दम है, नौकरी नहीं तो दम नहीं। वास्तव में नौकरी दम का दम है।

चाकरी के चक्कर में पड़ने के बाद से, भले ही मौज-मस्ती की स्वाभिमानी जिन्दगी चौपट हो जावे; मगर पेट का चक्कर अच्छे अच्छों को घनचक्कर बनाकर चाकरी का चस्का लगा देता है। चस्का भी ऐसा कि जिन्दगी भर चाटते रहिए फिर भी दोना चाटने की नीयत बनी ही रहती है। शायद इसीलिए कहनेवालों ने कहा है--'चने, चाकरी और चाट का चस्का बुरा होता है !'

चाकरी की इतनी लम्बी महिमा का इसलिए गुण-गान कर रहा हूँ कि कल श्रीमतीजी ने बहुत ही बचकानी बात कह दी। तबादले की खबर सुनी तो बोरिये-बिस्तर बाँधने की चिन्ता ने उसे बौखला दिया। जमी-जमाई गृहस्थी को बार-बार बनजारों की तरह समेटते हुए एक गृहणी को दुःख तो होता ही है। उसी दुःख की झोंक में वह कह गयी--'आग लगे ऐसी नौकरी को।'

है न बचकानी बात ! नौकरी में आग लगना तो बहुत बड़ी बात है ! कोई अगर आग लगाने की बात ही करे तो तन-बदन में आग लग जाती है। नौकरी में आग लगाने का अर्थ है चूल्हे की आग बुझाना। एक बार घर

में आग लग जावे तो दस आदमी मदद भी कर देते हैं। नौकरी में आग तो दूर, धुआँ भी उठने लगे तो सौ आदमी जली जमीन पर पद्मासन जमाकर बैठने की सोचने लगते हैं। इसीलिए न कि नौकरी चूल्हे की आग है, और उस पर रोटियाँ सिकती हैं!

नौकरी, मध्यमवर्गीय बाबुओं की घर-गृहस्थी का सुहाग-बिन्दु है। इसमें चूड़ियों की खनक, पायजेब की झनक और झुमकों की झमक है। गृहस्थी माँग है; नौकरी पूर्त्ति का सिन्दूर! सच पूछा जावे तो नौकरी, मध्यमवर्गीय कुलवधू--मायूसी--का मंगल सूत्र है! बेचारी इस कुलवधू के पास सुहागिन कहलाने का इसके अतिरिक्त और क्या प्रसाधन है?

नौकरी पीहर नहीं ससुराल है। चाटुकारिता, रूप, जी हजूरी शील और अवगुंठन लज्जा है। नाखून निकले नहीं कि निर्लज्जता का 'फतवा' मिल जाता है। यह ऐसी चदरिया है जिस पर सास-ससुर और ननदिया की नजरें अटकी रहती हैं। नजरें झुकाइये, नजरों में रहेंगे। नजरें बिछाइये, नजरों में चढ़ जावेंगे। नजरें उठाना अपराध है। इधर नजर चढ़ी कि उधर नजरों से गिरे। नौकरी करना है तो नजर से नजर न मिलाइये; नजर से नजर बचाइये क्योंकि नौकरी, नज़रे-दौलत है, नजरें लड़ाना नहीं।

नौकरी सर का छप्पर, पेट का आटा और तन का कपड़ा है। यह बड़े-बूढ़ों का आशीर्वाद, पत्नी का प्यार और बच्चों का दुलार है। यह नगद-नारायण के नख से निकलनेवाली, बाँस रूपी ब्रह्मा के कार्यालय-कमंडल में अवस्थित वह आवश्यकता-अघ-हारिणी गंगा है जिसे भाग्य-रूपी-भगीरथ के प्रयत्न से ही प्राप्त किया जा सकता है। सांसारिकता के साठ लाख समस्या-सुतों की शाप-भ्रष्टता का निवारण यही पतित-पाविनी कर सकती है। नौकरी कलि-काल की कृपण काम-धेनु है!

नौकरी कन्हैया है, गरज गोपी। इस मोहक मुरलिया की तान पर हर गोपी जान देती है। मान-हरण के बाद ही कागज की कुंजगलियों में रास रचता है। गोपियों की गिनती नहीं और कन्हैया कम। इसलिए सब गड़बड़झाला हो जाता है। सौतियाडाह सताने लगता है। एक अनार और सौ बीमार! शायद इसीलिए चाकरदास कह गये हैं--

> "मरे महरिया, मिले हजार!
> गई नौकरी फिर ना यार॥"

अतः माँ-बाप, बीबी-बच्चे, बंधु-बांधव, संगी-साथी सभी छोड़े जा सकते हैं, नौकरी नहीं। सच मानिये नौकरी जिन्दगी का निवाला है--गर्म हो तो भी निगलना पड़ता है; ठंडा होने पर भी उगला नहीं जाता।

नौकरी ही माँ है, नौकरी ही बाप है, नौकरी ही बंधु है; पर नौकरी बेचारी बीबी नहीं। सौ सौ फेरों के बाद प्राप्त होनेवाली इस नाजुक मिजाज नाजनी के लिए सात फेरों की सहज-सुलभ साध्वी का जी भी दुखाया जा सकता है क्योंकि नौकरी, नौकरी है, मज़ाक नहीं!
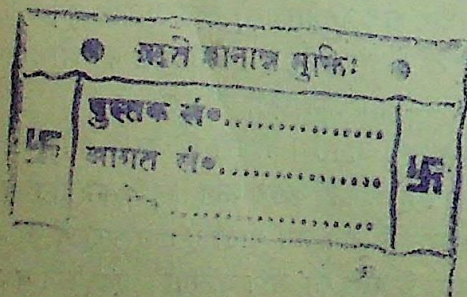
जमाना बदल गया !

श्री शकुंतला बोरगाँवकर

पात्र—
(१) रवीबाबू—एक आधुनिक सुशिक्षित सज्जन और अफसर।
(२) मीना—बाबूजी की शिक्षिता पत्नी जो किसी दफ्तर में नौकरी करती है।
(३) उनके दो छोटे बच्चे
(४) लक्ष्मी—नौकरानी
(५) रसोइये की बेटी
(६) मीना की दो सहेलियाँ
(७) रवीबाबू के मित्र—रमेश बाबू

(लक्ष्मी फर्निचर साफ करती है।)

(मीना अन्दर से आती है—आफिस जाने की तैयारी में है)

मीना—सब कुछ हो गया न लक्ष्मी ?

लक्ष्मी—हाँ, सब हो गया माँ जी !

मीना—(घड़ी की ओर देखकर) साढ़े नौ ! बाप रे ! अब तो चलना ही पड़ेगा। यह घड़ी तो भूत की तरह भाग रही है, और यह कम्बख्त रसोइया तो अभी तक नहीं आया। बच्चों को स्कूल जाना है। क्या करें ? ये नौकर तो आजकल बड़े बेईमान हो गये हैं !

(रवीबाबू हाथ में समाचारपत्र लेते हुए प्रवेश करते हैं।)

रवीबाबू—अरी ! देख तो सही, कैसी खौफनाक आग ! सारी झोपड़ियाँ खाक हो गयीं ! बेचारे ! हमारी सरकार तो घरों की ओर······

मीना—भाड़ में गयी वह आग और तुम्हारी वह सरकार ! मुझे क्या करना उनसे ! पेट की आग तो बुझानी है न ! मेरे तो आफिस का समय हो गया है और रसोइया अभी तक आया नहीं। तुम ही आज एक दिन घर का काम करो। आज छुट्टी भी ली है न ! वह तरकारी काट लो न जरा !

रवीबाबू—काम ! सब तरफ काम ही काम ! आफिस में साहब का काम और घर में बीबी का ! आज एक दिन छुट्टी ली तो क्या तुम्हारे काम के लिए ?

मीना—साहब के चपरासी का भी काम करोगे तुम, लेकिन अपनी औरत का काम करना बुरा लगता है न !

रवीबाबू—हाँ, सच है, मुझे तो बुरा ही लगता है ! अब तुम ही बताओ क्या तरकारी काटना पुरुष का काम है ? एक बार यदि कह दोगी बाजार से तरकारी ला दो तो ठीक पर··········

मीना—क्या बकवास कर रहे हो ? एक बार भी कभी मंडी से जाकर तरकारी लाये हो ? तुम पुरुष तो बिलकुल आलसी हो गये हो। हम स्त्रियाँ अब पढ़ लिख गयीं तो सारा काम हमारे ही सिर पर ! घर का देखना, बच्चों का देखना, बैंक में जाना और...और तुम्हारी जैसी मैं नौकरी भी करती हूँ समझे ?

रवीबाबू—नौकरी के लिए कौन तुम्हारे पीछे पड़ा है ? कौन तुमसे कहता है कि नौकरी करो, नौकरी करो ! मुझे तो काफी पैसा मिलता है।—छोड़ दो अपनी नौकरी।

मीना—(चिढ़कर) छोड़ दो। तो मैंने बी० ए० किसलिए पास किया ? तुम्हारे घर की रसोई पकाने के लिए ? मेरे पिताजी ने मुझे कालिज में क्यों पढ़ाया ? क्या तुम्हारे घर की मजूरिन का काम करने के लिए ?

रवीबाबू—मेरे कहने का यह मतलब नहीं है मीना ! तुम्हीं देखो, सारे दिन तुम घर से बाहर रहती हो ! घर में बच्चे क्या खाते हैं ? कहाँ खेलते हैं ? इसका तुम्हें कुछ पता है ? सारे घर में नौकरों का राज चल रहा है। और दूसरी बात···· तुम्हें भी कुछ आराम मिल जाएगा।········

(रसोइये की बेटी आती है)

लड़की—मेरा बाप बीमार हो गया है ! वह आज रसोई बनाने नहीं आ सकेगा, कल भी नहीं आयेगा। परसों अगर अच्छा हो गया तो आ जायेगा।

मीना—हाय राम ! आज ही वह बीमार पड़ गया क्या ! मुझे तो जाना ही चाहिए। (पति से)

देखो, आज मैं कुछ नहीं करूँगी। तुम्हीं आज एक दिन रसोई बना लो न! बच्चों को खिलाओ, और उन्हें स्कूल भेज दो।

रवीबाबू--(सिर झुकाकर) और कुछ आज्ञा हुजूर?

मीना--(हँसकर) और कुछ नहीं लेकिन जब मैं आफिस से आऊँगी तो मेरे लिए गरम-गरम चाय बना के रखना--बाय् बाय्.... (जाती है)

रवीबाबू--(स्वगत) what a problem (क्या विपत्ति है!) पानी की तरह पैसा बहाकर भी अच्छा नौकर नहीं मिलता, और ये स्त्रियाँ तो घर में एक पल नहीं रुकतीं। न बच्चों की चिंता न पति की! पहले जमाने में स्त्रियाँ घर की चारदीवारी से बाहर न निकलती थीं, इसीलिए लोगों ने उन्हें घर के बाहर लाने की कोशिश की। अभी पढ़-लिख गयीं, तो घर में रहने का नाम ही नहीं लेतीं। अब तो उन्हें घर लाने का मूवमेंट (आन्दोलन) चलाना चाहिए।

(बच्चों का प्रवेश)

मुन्नू--पापा, मुझे बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को तो दो, और यह देखो--(बहिन की ओर दिखाकर) मुझे चिढ़ा रही है।

बेबी--नहीं पापा, वही मुझे चिढ़ाता है, वह कहता है, (चोटी दिखाकर) यह घोड़े की पूँछ है।

रवीबाबू--देखो बच्चो! अभी झगड़ा नहीं करना। जो स्कूल जाने तक झगड़ा नहीं करेगा, उसे चाकलेट का एक डिब्बा मिलेगा।

मुन्नू--मैं नहीं झगड़ूँगा, पापा।

बेबी--मैं भी पापा (दोनों जाते हैं)।

रवीबाबू--(स्वगत) चलो भाई। क्या पकाया जाय! जमाना ही बदल गया है। चलें रसोई बनावें।

लक्ष्मी--(प्रवेश करके) तो, क्या आप रसोई पकायेगा? मेरा मर्द तो किसी भी काम कू हाथ नहीं लगाता। जब वो शाम कू मिल से आता है तो मैं उसे गरम गरम चाय देती हूँ। आपका मेमसाब आप कू कबी चाय देता है क्या?

रवीबाबू--तो तू बड़ी अच्छी औरत है री लक्ष्मी!

लक्ष्मी--हाँ, अगर हम ऐसा करेगा तो हमारा घर-वाला हमकू हकाल देगा और दूसरी औरत लायेगा। परसू शामकू घर जाने में जरा देरी हुई, ऐसा पीटा, ऐसा पीटा, अभी तक दर्द है, यहाँ .... (पीठ दिखाती है)

रवीबाबू--(आश्चर्य से) तो क्या तुम्हारा मर्द तुमको पीटता भी है?

लक्ष्मी--हाँ (लजाकर) पन वो प्यार बी बहोत करता है, मैं बताती बाबूजी......

रवीबाबू--क्या,

लक्ष्मी--आप भी मेमसाबकू (थप्पड़ मारने का नाट्य करती है) दो-चार जरा जमा दो। बिल्कुल नहीं सुनती, रात दिन बाहर ये क्या तमाशा!

रवीबाबू--मैं पीटूँगा? अरी एक दिन ऐसा आ जायेगा कि वही मुझे पीटना शुरू करेगी। अच्छा मैं अब जाता हूँ रसोईघर में रसोई पकाने, और अगर कोई आ जाये तो कह देना कि मैं घर में नहीं हूँ। समझी!

लक्ष्मी--जी हाँ--(बाबूजी जाते हैं।)

लक्ष्मी--(बाबूजी की ओर हाथ मटका के) पाँच सौ रुपया कमाता है और घर में चपातियाँ बेलता है। मेरा मर्द तो पच्चीस रुपिया कमाता है लेकिन रुआब तो देखो, जैसा कि साब।

(रमेश बाबू का प्रवेश--पहले दरवाजे पर खटखटाता है।)

लक्ष्मी--अरी कौन?--(दरवाजा खोलती है)

रमेश बाबू--क्या मिस्टर बोस हैं? जरा देख लो तो सही।

(लक्ष्मी देखकर आती है।)

लक्ष्मी--अजी, वे तो कहते हैं कि वे घर में नहीं हैं।

रमेश बाबू--(हँसकर) अच्छा बताओ तो सही वे क्या कर रहे हैं?

लक्ष्मी--सच बताऊँ? आज रसोइया नहीं आया। साब का और मेमसाब का झगड़ा हुआ कि रसोई कौन बनाये? आखिर मेमसाब चल दी(चलकर--)टॉक् टॉक् पैसा कमानेकू, और साब बेचारे बेल रहे हैं चपातियाँ। क्या आपकी मेम-साब भी ऐसा करती है?

रमेश बाबू--चुप! तुझे क्या करना उससे, उनसे कह दो (लक्ष्मी जाती है)--अरी ठहर! अभी नहीं

बाद में कि रमेश बाबू शाम को आवेंगे।

(हाथ में बेलन लिये हुए बाबूजी का प्रवेश)

बाबूजी--कौन आया था लक्ष्मी?

(लक्ष्मी उनकी पोशाक-एप्रेन-बेलन देखकर हँसने लगती है।)

बाबूजी--(गुस्सा होकर) कौन आया था लक्ष्मी?

लक्ष्मी--कोई रमेश बाबू आया था...कैसा लंबा।

(दो स्त्रियाँ, मीना की सहेलियाँ कमला, शीला आती हैं।)

कमला--मिसेस बोस हैं क्या घर में?

बाबूजी--(डर जाते हैं, बेलन हाथ से छूट जाता है।) जी नहीं।

कमला--(बाबूजी की ओर देखकर) तो क्या तू उनका रसोइया है?

लक्ष्मी--(अचरज से देखती है)....नहीं....

बाबूजी--(उसे हटाकर)....जीऽऽऽ मैं उनका रसोइया हूँ।

कमला--तो उनसे कह दो, कमला और शीला शाम को सात बजे आयेंगी।

बाबूजी--जीऽऽ

(सहेलियाँ जाती हैं)

बाबूजी--हाय! क्या भाग्य है! यह दिन भी देखना पड़ा। पाँच सौ कमानेवाला मैं आज एक मामूली सा रसोइया बन गया। (क्रुद्ध होकर) लक्ष्मी वह दरवाजा बन्द कर लो और वह खिड़की भी बन्द कर दो।

लक्ष्मी--शरम मालूम पड़ती है न? बाबूजी भी क्या करें? ऐसी औरत गले में पड़ गयी तो क्या करना? देखो बाबूजी ऐसा कहा गया है कि "दूध, औलाद और औरत एक बार बिगड़ गयी तो बिगड़ी ही।"

बाबूजी--(क्रुद्ध होकर) चुप! तुझे क्या करना है? जा, वह दरवाजा बन्द कर दे!

(बाबूजी रसोई घर में जाते हैं, और लक्ष्मी भी उनके पीछे जाती है। दूसरी ओर से मीना, कमला, शीला बातें करती हुई आती हैं।)

कमला--तो क्या तुम नौकरी करती हो? मुझे तो मालूम ही नहीं था। आज तुमने छुट्टी ली तो मिल गयी नहीं तो--

शीला--हमने तो तुम्हारे रसोइये से कह दिया था।

मीना--(अचम्भे में आकर) मेरा रसोइया! मेरे यहाँ तो एक बूढ़ा आता था, और वह भी आज बीमार है।

शीला--(खिड़की से दिखाकर) देखो तो सही, वह कौन है? कितनी अच्छी चपातियाँ बेलता है।

(मीना देखती है--तो एकदम चौंक जाती है।)

कमला--रियली यू आर वेरी लकी! भाग्यवान् हो कि अच्छा सा नौकर मिल गया है जो उसके हवाले घर छोड़कर चली जा सकती हो। मेरे यहाँ तो एक नौकर नहीं टिकता, रसोइया तो एक महीना नहीं रहता। (बाबूजी को खिड़की में से बुलाकर) अरे! इधर आ,--(मीना बड़ी परेशान हो जाती है,--बाबू जी रसोइये की पोशाक में आते हैं)--मुझे भी एक रसोइया चाहिए। तुम्हारा कोई दोस्त हो तो हमारे घर भेज देना, समझा?

बाबूजी--जी हाँ जरूर--(मीना के पास जाकर) मेमसाब, चाय माँगता है क्या?--(मीना कुछ नहीं बोलती--बिलकुल परेशान हो जाती है)

कमला--चाय तो अभी नहीं चाहिए। मैं तो सिर्फ तुम्हारा घर देखने आयी थी। फिर एक बार जरूर आऊँगी।

लक्ष्मी--(प्रवेश करके) मेरी मेमसाब तो बड़े नसीब की है, मेरी जैसी नौकरानी और (बाबूजी की ओर हाथ करके) ये रसोइया--

मीना--(चिढ़कर) तू इधर क्यों आयी, लतखोर कहीं की। बीच में बोलने की बुरी आदत तुझे लगी है, जा अन्दर (बाबूजी और नौकरानी जाती है।)

मीना--(सहेली से) अच्छा क्या हाल है तुम्हारी बम्बई का? यहाँ तो आजकल बहुत गरम हो रहा है।

कमला--बम्बई तो मुझे बहुत बहुत अच्छी लगती है, लेकिन आजकल यह नौकरों का प्रॉब्लेम--

मीना--जाने दो वे नौकर, तुम्हारा छोटा बच्चा कैसा है?

कमला——ठीक, (एकदम उठकर) अरी! कितनी देर हो गयी! अब तो चलना ही चाहिए, तुम्हारे पति से मिलना था (मीना परेशान होती है।) खैर। एक दिन शाम को आऊँगी। अच्छा नमस्ते——(दोनों चलने को होती हैं।)

कमला——(जाते-जाते) अपने रसोइये से जरूर-जरूर कहना कि अपना कोई साथी हमारे यहाँ भी भेज दे। भूल न जाना।

(दोनों सहेलियाँ जाती हैं।)

मीना——हरे राम! पूरा तमाशा हो गया। मेरा तो रोने का जी करता है। आफिस में गयी, तो सारा ध्यान घर में। वोस से पूछा और घर आयी तो इधर यह तमाशा——

(बाबूजी पीछे से उसकी बातें सुनते-सुनते आते हैं।——पोशाक रसोइये की ही है।)

बाबूजी——(दिल्लगी करते) तमाशा! आजकल के पुरुष बिल्कुल आलसी बन गये हैं। कुछ काम नहीं करते बस् साऽऽरा काम बेचारी औरतों के माथे पर ढकेलकर खुद आराऽम से सो जाते हैं। (कुर्सी पर गिर जाते हैं और सोने का बहाना करते हैं।)

मीना——(कुर्सी के पास आकर) दिल्लगी मत करो जी! यह मेरी नयी सहेली है। क्लब में आती है और वहीं इनसे भेंट हुई। आज घर देखने के लिए पहली बार आयी थी।

रवीबाबू——(गुस्सा होकर) तुम्हारी सहेली। पूछती है, तू उनका रसोइया है क्या? सुनते ही गुस्सा आ गया। जी चाहा कि कह दें कि मैं उनका रसोइया नहीं हूँ। आय एम हर हजबैंड!

मीना——इतना गुस्सा न करो। मैं हारी! अब अपनी नौकरी छोड़ दूंगी और घर का साऽऽरा काम करूँगी फिर तो नाराज न होगे लेकिन अभी पहले जाओ और ये कपड़े बदल आओ, नहीं तो और कोई आ टपका तो फिर और फजीहत होगी। चलो, मैं अभी तुम्हारे लिए गरम-गरम भजिया बनाती हूँ।

(दोनों जाते हैं)

धरती और मेघ

श्री कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह

तपन ग्रीष्म की छाई!
उतर गगन से यों त्रिनयन की
नयन-वह्नि ही आई!

जलने लगा जगत सचराचर,
लगे उबलने सरि, सर, सागर,
रवि-किरणों से कालकूट की
प्रलय-लहर लहराई!

सूना हुआ धरा का आँगन,
उजड़ा तन, मन, यौवन, जीवन,
हूक-लूक बन कर अंतर की
व्यथा चतुर्दिक छाई!

जागी विकल प्यास मरु-उर की,
दुःसह चोट विरह के शर की,——
उच्छ्वासों के दग्ध-दोल पर
डोल उठी पुरवाई!

जागी याद प्रिया की मन में,
नवगति विद्युत-सी क्षण-क्षण में——
दूर-प्रवासी बादल को फिर
धरती की सुधि आई!

जागे सुप्त गीत अंतर के,
बहे प्रखर हो निर्झर स्वर के,
प्रिय के नयनों में असाढ़ की
बाढ़ उमड़ कर छाई!

पाकर अश्रुसिक्त मधु-चुंबन,
पुलक-प्रकंपित प्रणयालिंगन,
मिलन-मोद से भरी धरा ने
हरी हरी छवि पाई!

विवश वाणी

श्रीमती निर्मला मित्र

कमला नेहरू पार्क के गेट पर रेवा ज्यों पहुँची त्यों ही उसे अतीन्द्र मिल गया। अनुयोगपूर्ण स्वर से बोला, "देखो रेवा, प्रतीक्षा की भी एक हद होती है, तुम्हें बुलाया कब था--और तुम आईं कब?"

रेवा हँस पड़ी। बोली, "तो इसमें भूल किसकी है, बुलानेवाले से कह दिया होता कि इतने धूप से तपे पार्क में और इतनी प्रखर दुपहरी में निहायत जरूरी काम से आप मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

अतीन्द्र तिलमिला उठा। बोला, "तुम्हारी यह जली-कटी बात मुझे कुछ ठीक नहीं जँचती रेवा, तुम अपनी इस आदत को सुधारो, नहीं तो जीवन दुर्वह हो जायगा। खैर, मैं यह कहने को आया था कि हमारा प्लेन कल शाम को सान्ताक्रूज से छूटेगा, और तुम जानती हो कि मैं विदेश जा रहा हूँ, अतएव जाने से पहले मैं अपने मन की खुराक अर्थात् कुछ सुमधुर पाथेय संचित कर लेना चाहता हूँ, ताकि प्रवास में मेरा हृदय और मन शान्त रहे।"

रेवा एक बेंच पर बैठ गयी। बोली, "तो कहिए कैसी वह खुराक और कैसा वह मधुर पाथेय? वैसे तो मेरे पास समय बहुत कम है, बरजोरजी के यहाँ पार्टी में पहुँचना है सात बजे, और अब तो पौने छः हो रहे हैं।"

लेकिन मुझे तो अपनी बात कहने में घण्टा भर लग ही जायेगा, क्योंकि जीवन भर का सवाल है।"

रेवा बेंच छोड़कर उठ पड़ी। बोली, "गेट तक पहुँचते-पहुँचते संक्षेप में जितना हो सके उतना ही कह दीजिए बस।"

अब तो अतीन्द्र की आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी। वह बोला, "रेवा, तुम सब कुछ जानते हुए भी अनजान क्यों बनती हो, तुम्हारे और हमारे माता-पिता ने तुम्हारी-हमारी शादी पक्की कर ली है। इसमें अब कतई किन्तु-परन्तु हो नहीं सकता। फिर भी मैं तुम-सरीखी रहस्यमयी पर पूरा भरोसा नहीं कर पा रहा हूँ, इसीलिए तुम्हारी एक पक्की स्वीकृति चाहता हूँ, ताकि मेरा मन विदेश में उद्वेग से विचलित न हो।"

रेवा अब बहुत गम्भीर हो उठी। कुछ क्षण तक कुछ सोचने के बाद बोली, "देखिए, मिस्टर वागची, आप यह तो समझते हैं कि क्षण-क्षण में परिवर्तनशील मानव के मन का कोई भरोसा नहीं है। सो कोई भी वादा, प्रतिज्ञा या 'प्रामिज़' चाहे ऊपरी तौर से कितना भी वज्र समान कठिन मालूम पड़ता है, अन्दर ही अन्दर वह वैसा ही खोखला होता जाता है जैसा कि घुन लगा बाँस। हृदय के इस अकाट्य सत्य को मैं झूठे प्रलेपों से ढकना पसन्द नहीं करती। अतएव, अभी इन सब बातों का बतंगड़ न बनाइए।"

अतीन्द्र का मन स्तब्धप्राय हुआ जा रहा था, फिर भी वह जोर देकर बोला, "गजब करती हो तुम भी! तुम्हारी इस 'थ्योरी' से तो जगत् की बड़ी से बड़ी प्रतिज्ञाएँ झूठ ही हैं।"

"अवश्य ही, विशेषकर नर और नारी के प्रेम-परिचय में यह प्रण और प्रतिज्ञाएँ तो बिलकुल ही गलत सिद्ध हो रही हैं। यद्यपि मानव अब सभ्यता के चरम शिखर पर पहुँच चुका है, फिर भी उसकी हृदयवृत्ति अभी भी आदिम युग की उस बर्बर की वृत्ति के समान ही है, जो कि लाखों वर्ष पहले पशु-मानव के मनःक्रिया में प्रतिभासित होती थी। फिर भी वह पशु-मानव आज के सभ्य मानव से कहीं अधिक उदार और अधिक सरल था, उसे जो लेना होता था, उसे वह अपने बाहुबल से लेता था, जिसमें वीरता का आभास भी रहा करता था, जब कि आज का सभ्य मानव-समुदाय लुका-छुपी और छल-कपट के कारण घृण्य और खतरनाक बनता जा रहा है।"

अतीन्द्र झुंझला उठा। बोला, "आखिर तुम कहना क्या चाहती हो? कुछ समझ में नहीं आता।"

"अफसोस! खैर, अब सुनिए उदाहरण से ही। मेरी एक बिल्ली थी, और एक थी मैना। मैं प्रत्येक दिन उन दोनों को एक कमरे में छोड़कर बिल्ली को अहिंसा का अभ्यास कराती थी। सहसा एक दिन देखा कि बिल्ली ने मैना का गला दबोच दिया है।"

अतीन्द्र अधीरता से बोला, "मतलब?"

"मतलब यह हुआ कि इस घटना से दो बातें सिद्ध हुईं। एक तो यह कि लोभनीय वस्तु पर मन नियंत्रण नहीं रख सकता, और दूसरी यह कि बड़े आदर से पाली हुई बिल्ली पर मेरा मन दारुण वितृष्णा से भर गया। मैंने उसी समय उसे अपनी मौसेरी बहन को दे डाला, घृणा ऐसी ही चीज होती है--समझे आप?"

अतीन्द्र समझ गया। रेवा केवल रहस्यमयी ही नहीं है—वह दारुण निर्दय और वज्र सी कठिन भी है। सो वह हतप्रभ सा होकर बोला, "अच्छा तो कम से कम मेरे लौटते तक तुम एम० ए० तो कर ही लोगी ?"

रेवा बोली, "उसका भी भरोसा क्या है ? आगे पढ़ाई में मन लगे तब न ?"

अतीन्द्र खीज पड़ा। बोला, "आगे तुम पढ़ोगी भी नहीं तो करोगी क्या रेवा ?"

"किसी आचार्य के पास जाकर ब्राह्मी और खरोष्टी लिपियों का पाठोद्धार करना सीखूंगी।"

असहाय सा अतीन्द्र बोला, "तुम्हारी आशा मैंने छोड़ दी रेवा।"

बस में चढ़ते हुए रेवा बोली "धन्यवाद!"

... ...

बस से उतर कर रेवा ने अपने गेट में प्रवेश करते ही देखा कि पुरोहित सा परिधान पहने एक नवागत गेट के सीकचों से सटकर खड़ा है। रेवा पहले तो समझी कोई रास्ता चलता आदमी लॉन के फूलों की शोभा से आकृष्ट होकर खड़ा हो गया है, किन्तु रेवा का भ्रम तब दूर हुआ जब उसने दोनों हाथ जोड़कर रेवा को नमस्कार किया।

रेवा नमस्कार करके बोली, "कहिए ?" संकोच से युवक बोला, "विशेष जरूरी काम से जरा रायबहादुर साहब से मुलाकात करनी थी।"

"किन्तु बाबूजी तो रात के वक्त किसीसे मुलाकात करते नहीं, खैर आप बैठक में चलकर बैठिए, मैं उन्हें खबर करती हूँ।"

रेवा के पीछे युवक हो लिया। चाँद निकल आया ताड़ के ऊँचे ऊँचे पेड़ के पत्तों की झिलमिली से उसका अर्द्ध-कलामय रूप प्रतिभासित हो रहा था। नीचे सड़क की दोनों बाजुओं की क्यारियों में तरह-तरह के फूलों की सुगन्ध बगीचे की रूप-श्री को मानों स्वर्ग के नन्दन कानन में पर्यवसित कर रही थी। सामने ही दूध-धवल राज-प्रासाद सा प्रासाद! युवक सोचने लगा, न जाने यह राजकन्या किस सुन्दर कक्ष में मुझे ले जाकर बैठायेगी; और मेरी हैसियत!" युवक मन ही मन लज्जा से कातर हो उठा।

रेवा ने युवक को ड्राइंग रूम की गद्देदार कुर्सी पर बैठा दिया। बोली, "कुछ विलम्ब हो ही जाय तो आप न जाइयेगा, मैं बाबूजी को खबर करती हूँ।"

और रेवा संगमरमर की घुमावदार सीढ़ियों से तड़-तड़ ऊपर चढ़कर पिता के कमरे में पहुँची। फिर बोली "बाबूजी, कोई मुलाकाती आपसे मिलना चाहते हैं। मैं उन्हें ड्राइंगरूम में बैठा आई हूँ।"

"भला, कौन है? किस काम से आये हैं? कुछ पूछा भी था?" रायबहादुर रुष्टता से बोले।

रेवा बोली "कुछ पूछा तो नहीं, मगर लगते हैं कि अपने देशवालों में से कोई हैं।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् साधारण धोती-कुर्तावाले सिवाय देश के इस बंबई शहर में कहाँ देखने को मिलते हैं।"

"तो तुमने कह क्यों न दिया कि इस समय मुलाकात हो नहीं सकती, कल सुबह आना।"

"किन्तु कोई जरूरी काम हो तो वे कैसे लौटाये जा सकते हैं ?"

घर और बाहर दोनों में ही सच और उचित बात कहने के कारण रेवा का दबदबा था। सो पिता कुछ दबते हुए बोले, खैर भई, तुम्हारी बात ही सही, मगर मैं तो इस समय नीचे उतरने से रहा। तुम्हीं जाकर उसे ऊपर लिवा लाओ। देखता हूँ महाशय देश से क्या संदेश लाये हैं।"

रेवा युवक को लिवाकर पिता के कमरे में गयी।

रायबहादुर के आलीशान कमरे में प्रवेश करके युवक ने नमस्कार किया। फिर कुर्ते के पाकेट से एक लिफाफा निकालकर काउच के ऊपर रखकर बोला, "मा ने यह पत्र आपके पास पहुँचा देने को लिखा था।"

"मगर कुछ पहचान तो बताओ, कौन तुम्हारी मा, और उनसे मेरा क्या सम्बन्ध ?"

इतने बड़े राजप्रासाद में प्रवेश करते ही युवक कुछ घबड़ा-सा गया था। फिर राजा के ही समान मनुष्य के सामने खड़े होने की एक हृदयगत कँपकँपी का भी वह अपने में अनुभव कर रहा था। सो परिचय देने की बात को ही वह भूल गया। अब लज्जित होकर बोला, "मैं सोनापुर का अम्बिका अधिकारी का लड़का हूँ। चार-पाँच रोज हुए पिताजी का देहान्त हो गया है।"

"ओह! तुम उनके लड़के हो? किसी समय हम दोनों एक साथ एक पाठशाला में पढ़े थे। खैर, क्या लिखा है तुम्हारी मा ने?"

"मुझे तो कुछ मालूम नहीं। पत्र जैसा लिफाफे में बन्द है, वैसा ही मैंने आपको दे दिया है।"

रायबहादुर ने पत्र खोला। पढ़कर बोले, "गाँव के सब यजमान मिलकर तुम्हारे पिता के श्राद्ध में आर्थिक सहायता दे रहे हैं। मुझसे भी कुछ सहायता देने को लिखा है। दूंगा, अवश्य ही दूंगा। 'न' नहीं करूँगा। मगर इस समय तो लाचार हूँ, क्योंकि रेवा की माँ बाहर गयी हुई हैं। न मालूम उनकी कैसी आदत पड़ गयी है, मेरे पास दस-पाँच रुपये की रेजगारी भी नहीं रख जातीं। अरे भई, जब नाम और यश दूर-दूर तक फैला हुआ है, तब ड्योढ़ी पर माँगनेवाले तो हमेशा ही आवेंगे। जो भी हो, कल सुबह तुम जरूर आना। मैं उनसे कहकर पाँच रुपये तुम्हें जरूर दिलवा दूंगा।"

युवक का मन क्षुब्ध होकर कहने लगा इससे तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना कहीं अधिक अच्छा था। उसको क्या मालूम था कि माँ के पत्र में कुछ भिक्षा की याचना थी। सो दारुण अवभावना से उसकी आँखों में आँसू भर आये।

और द्वार की आड़ में खड़ी रेवा तो जैसे लज्जा से गड़ ही गयी। वह सोचने लगी, छिः छिः, कंजूसी की भी एक हद होती है? स्थान, काल, और पात्र पर भी विचार करना होता है।

युवक नमस्कार करके लौट पड़ा, तो रायबहादुर "हैं--हैं", कर उठे। बोले, "ठहरो-ठहरो, अकेले तुम कभी नीचे तक पहुँच न सकोगे, यह मकान तो ऐसा बना है कि जैसे लखनऊ की भूल भूलैया। मैं ही कई दफा गड़बड़ाकर इधर का उधर हो जाता हूँ। अरे--ओ रेवा, गयी कहाँ? जरा इसे नीचे तक तो पहुँचा दे।"

रेवा जब तक आयी, रायबहादुर बोले, "अरे, हाँ, अपना नाम तो बता जाओ। गृहिणी को तुम्हारा परिचय तो देना पड़ेगा।"

युवक बोला "पुष्करनाथ।"

"और करते-धरते भी हो कुछ या केवल यजमानों पर ही निर्भर हो?"

अब फिर एक बार रायबहादुर की बात पुष्कर के हृदय में चुभ गयी। किन्तु जवाब तो देना ही पड़ेगा, सो बोला "पढ़ता था।"

"पढ़ते थे, सो कहो कि पढ़ना छोड़ दिया?"

"जी, एम० ए० करने के बाद—"

"ऐं,—तुमने एम० ए० कर लिया, इतनी थोड़ी उम्र में? वाह भई, कमाल किया। कहना पड़ेगा। खैर, अब लग पड़ो कहीं मास्टरी आस्टरी में।"

और पुष्कर के कुछ कहने के पहले ही रेवा आकर बोली--"चलिए।"

पुष्कर के साथ रेवा फाटक तक चली गयी। अब चाँद अपना परिपूर्ण आलोक फैलाकर उनके सिर के ऊपर हँस रहा था; रेवा अचानक पूछ बैठी, "कल आप आयेंगे?"

पुष्कर ने जवाब देने को मुंह उठाया, और अकचकाकर रह गया। उज्ज्वल चन्द्रालोक में रेवा की पलकें अश्रु-बिन्दुओं से सजल हो गयी थीं।

रेवा बोली, "वैसे आपको आना तो नहीं चाहिए, मगर आप आइएगा जरूर।"

"परन्तु—"

"परन्तु नहीं। मुझे आपकी जरूरत है। याद रखिएगा।" फिर नमस्कार कर के रेवा लौट पड़ी।

.. .. ..

दूसरे दिन पुष्कर का जी तो बिलकुल ही रायबहादुर के यहाँ जाने को नहीं हो रहा था, किन्तु ठीक तीसरे पहर पुष्कर ने अपने को तैयार पाया। न जाने कब उसने सफेद केन्विस के जूतों पर खड़िया पोतकर उन्हें दुरस्त कर लिया था। मूँगे का कुर्ता भी सनलाइट से धुला हुआ सफेद झक् सा अलगनी पर टँगा और सूखा मिला। पुष्कर को मालूम नहीं कि अन्तर की किस प्रेरणा से उसने यह सब कार्य किया, किन्तु किसी भद्र परिवार में जाने के लिए उसे यह सब आवश्यक वस्तुएँ तैयार मिलीं। फिर भी मन के नहीं-नहीं, करने पर भी वह ठीक तीसरे पहर घर से निकल पड़ा। और सोचने लगा कि 'भला क्यों बुलाया होगा रेवा ने, उतने बड़े आदमी की बेटी को मुझ अकिंचन से क्या काम? शायद पिता की कृपणता से लड़की कुंठित होकर माता को पढ़ाकर पाँच से कुछ ज्यादा बढ़ा देने का इरादा रखती हो', और पुष्कर का मन इस प्रकार भिक्षा की याद से क्षुब्ध हो उठा।

खैर, पुष्कर जब रायबहादुर के फ़ाटक पर पहुँचा तो उसने वहाँ छोकरा नौकर हरीश को खड़ा पाया। हरीश बोला, "आप ही का नाम पुष्कर बाबू है?"

पुष्कर के "हाँ" कहने पर बोला, "चलिए आपको ऊपर मा के कमरे में पहुँचा दूं। वहाँ मा बैठी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"और रेवा?" अचानक ही पुष्कर के मुँह से निकल पड़ा।

"ओह दीदी? मगर वे तो कालेज में हैं बाबू।"

अब वही घुमावदार सीढ़ियों से घुमाकर छोकरे ने पुष्कर को खास गृहिणी के कमरे में पहुँचा दिया।

गृहिणी प्रसन्नवदना महिला थीं, जिन्हें देखने मात्र से हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती थी।

पुष्कर को देखकर परम आत्मीयता से बोली, "आओ, आओ बेटा, बैठो।"

पुष्कर प्रणाम करके एक कुर्सी पर बैठ गया।

गृहिणी बोली, "रेवा कह गयी है, मुझे संस्कृत में सहारा देने के लिए मास्टर तो रखना ही पड़ेगा, सो मा पुष्कर को ही रख लो।"

रायबहादुर फट से कह बैठे, "मगर रेवा ने तो साइंस ली है!"

गृहिणी बोलीं, "इतना तो मैं नहीं जानती, रेवा का इरादा भर मैंने कह दिया; बस।"

पुष्कर अब अस्त-व्यस्त होकर बोला, "किन्तु माता-जी मेरे पास तो समय का अभाव है, जिसमें चौथे ट्यूशन की गुंजायश नहीं हो सकती—"।

रायबहादुर बोल उठे, "तो इसे जाने दो न, शहर में और भी संस्कृतज्ञ पड़े हैं। न होगा तो मैं पत्रों में विज्ञापन छपवा दूंगा।"

गृहिणी अब रुष्ट हो उठीं। बोलीं, "हाँ, लड़की कुछ सहज है न, वह ऐसे-वैसे के पास पढ़ने को राजी होती तो क्या अभी तक ट्यूटर नहीं रखा जा सकता था? पुष्कर के लिए खासकर—उसने इसलिए कहा कि पुष्कर देश का है, और अपना ही कुल-पुरोहित का लड़का है। सो पुष्कर की गिनती अपने लोगों में है। मास में जितने रुपये ट्यूशन में खर्च होंगे, वह बाहर न जाकर घर के ही उप-कार में लगें तो क्या हर्ज है? खैर, चलो बेटा, उस कमरे में चलकर जरा जलपान तो कर लो।"

पुष्कर परम लज्जित से बोला, "लेकिन मा, अभी तो मेरा अशौच चल रहा है।"

अब रायबहादुर बमक पड़े। बोले, "जितनी बूढ़ी होती जा रही हो, उतनी ही तुम्हारी बुद्धि मारी जा रही है। देश गाँव की लड़की होकर तुम्हें इतना नहीं मालूम कि पितृ-शौच में कोई किसीके यहाँ क्या निमंत्रण खाने बैठेगा?"

गृहिणी अब उबल पड़ीं। बोलीं, "तो यह सब नियमकर्म भुलाया किसने? रायबहादुरी के लालच से आज पार्टी, तो कल जलसा, परसों नगर भर के अँगरेजों का भोज इत्यादि कर करके तुमने तो मुराद हासिल कर ली; मगर हम घर भर की दशा तो त्रिशंकु जैसे बन गयी। अब न तो हम क्रिस्तान ही बने और न हिन्दू ही रहे। खैर, उठ तो बेटा—पुष्कर, तुझे दो-चार बातें समझा दूं।" फिर पुष्कर को साथ लेकर वे कमरे से बाहर चली गयीं।

तब रायबहादुर इस सोच में पड़े कि कहीं मा-बेटी मिलकर पुष्कर को अधिक वेतन न दे दें।

गृहिणी पुष्कर को साथ लिये लॉन में आ बैठीं, बोलीं "देखो बेटा, रेवा बहुत बेजोड़ लड़की है, बड़ी मुँहफट् और बड़ी कठोर है। पता नहीं तुम्हें देखकर वह कैसे मास्टर की बात कह गयी। वैसे आज तक उसने कभी मास्टर रखने का आग्रह नहीं किया। हो सकता है, मेरे भाभी दामाद के ही कहने पर उसका मन ज्यादा अच्छे प्रकार से परीक्षा पास करने को हुआ हो, अब तुम्हारा काम है उसे पढ़ने में सहायता देना।"

पुष्कर केवल विमूढ़-सा बैठा रहा।

गृहिणी ने पर्स खोलकर एक गड्डी नोटों की निकाली, फिर पुष्कर के हाथ में थमाकर बोलीं, "रेवा कह गयी है कि दो मास का अग्रिम वेतन तुम उन्हें जरूर दे देना। इस समय उन्हें रुपयों की बहुत जरूरत है।"

हतबुद्धि सा पुष्कर केवल धरती ताकता रहा।

गृहिणी बोलीं इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है पुष्कर! तुम अपने देश घर के होकर इतना उपकार कर दोगे तो अच्छा ही होगा। पिता श्री का पारलौकिक काम निपटाकर तुम शीघ्र चले आओ। हम तुम्हारी प्रतीक्षा में रहेंगे, समझे?"

आखिर पुष्कर को "हाँ" कहना ही पड़ा।

.. .. ..

वर्ष पूरा होने आया। रेवा की परीक्षा भी सन्निकट। पुष्कर दोनों समय एक-एक घण्टा उसको पढ़ाने लगा। आज भी आया, और रेवा को किसी दूसरे विषय की पुस्तक में लीन देखकर अत्यन्त क्षोभ से बोला, "तुम अगर ऐसा करती रहोगी तो मेरी दशा क्या होगी? जानती हो, रायबहादुर ने आज मुझे कितना डाँटा है!"

पुस्तक पर से मुँह उठाकर रेवा बोली, "क्या कह रहे थे?" "कह रहे थे, रेवा को अगर अबकी बी० ए० में आनर्स न मिला तो मास में इतना रुपया खर्च करके हम तो नुकसानी में ही रह जायेंगे। ऊपर से मेरा दामाद भी क्या सोचेगा?" किन्तु मैं क्या करूँ? यदि तुम फालतू किताबें लेकर बैठोगी तो क्या मैं तुम्हें विद्या घोलकर पिला दूंगा?"

रेवा मुस्कुरा पड़ी। बोली, "लेकिन प्राचीन काल में तो विद्या घोल कर ही पिलायी जाती थी।"

पुष्कर चुप हो गया। प्राचीन काल के काव्य-साहित्य से वह पूर्ण परिचित है, किन्तु विद्या घोल-कर पिलाने की बात तो उसने किसी भी पुस्तक में नहीं पढ़ी।

रेवा बोली, "समझे नहीं। प्राचीन काल के मुनि-महर्षि सब विज्ञानविद होते थे, सो वैज्ञानिक प्रक्रिया से अपनी विद्या बुद्धि शिष्यों के शरीर में पहुँचा सकते थे।"

पुष्कर परम आश्चर्य से बोला, "वह कैसे?"

"वह ऐसे कि सुबह उठकर गुरु का पादोदक प्रत्येक छात्र को पीना पड़ता था। अब इस प्रथा पर साइन्स की सूक्ष्मता से विचार कीजिए। पादोदक के द्वारा गुरु की विद्या बुद्धि सब छात्रों के रक्त में पहुँच जाती थी और वे दिग्गज विद्वान बनकर आश्रम से निकलते थे। अब आप जब सुबह आयें तब मैं भी चरण धोकर पादोदक ले लिया करूँगी, ताकि आपकी सरीखी मेधा···।"

"बस्-बस्-बस्, अब रहने भी दो रेवा, मुझे गरीब समझकर तुम मेरा मखौल करने लगीं?" आहत स्वर में पुष्कर ने कहा।

रेवा घबड़ाकर बोली, "नहीं, नहीं, नहीं, मैं केवल ...न्यवाद पर ही···।"

पुष्कर ने आतुरता से दोनों हाथ जोड़े। बोला "रेवा तुम मुझसे कई गुना अधिक ज्ञानी हो। तुम्हें पढ़ाना मेरे ...ते की बात नहीं है।"

रेवा हँस पड़ी। बोली, "तो आज से पढ़ाना बन्द?"

पुष्कर कुछ न बोला। कुर्सी छोड़कर चल पड़ा। वह जब तक द्वार के पास जाय कि रेवा आकर द्वार के पास खड़ी हो गयी, "सच ही क्या आप मुझे पढ़ाने नहीं आवेंगे?"

"नहीं, तुम्हारी आशा मैंने छोड़ दी रेवा!"

कातर आँखों से रेवा बोली, "नहीं, आप न छोड़िए, आपके बल से मैं कुछ तो भी अग्रसर हो रही हूँ।"

"नहीं तो?"

"नहीं तो इति-श्री।"

"मगर डी० लिट् की साध?"

"उसकी साध पूरी करने की मुझमें शक्ति नहीं है। ...ह मैं आज आपसे सच-सच ही कह रही हूँ।" कहकर ...वा बाहर बरामदे में निकल गयी।

.. .. ..

वर्ष समाप्त हो गया है। अबकी सबको भरोसा है कि रेवा आनर्स लेगी। एक दिन पुष्कर बिदा लेने आया तो रेवा न मिली। गृहिणी बोली, "वह तो अपने चाची के साथ माथेरान गयी है, और अब तो तुम शायद ...छुट्टियों के बाद ही लौटोगे?"

पुष्कर बोला "अब तो मेरा लौटना नहीं हो सकेगा ...ताजी! उसी तरफ एक संस्कृत महाविद्यालय में मुझे अध्यापक की जगह मिल गयी है, वहीं जाना पड़ेगा। पर रेवा के 'रिजल्ट' के लिए मैं बहुत उत्सुक रहूँगा। खेड़े ...व में अखबार पत्र तो समय पर नहीं मिलते।"

"किन्तु रेवा तो तुम्हें खुद ही लिखेगी।"

.. .. ..

दो मास बाद,

आज देश के मकान में पुष्कर का 'फूल-सेज' है। नव-वधू को घेरकर निमंत्रित महिलाएँ हास-परिहास से गृह मुखरित कर रही हैं। पुष्कर बाहर बरामदे में बैठा है। मन में उसके एक व्याकुलता रह-रहकर उमड़ रही थी। क्या रेवा का 'रिजल्ट' अभी तक नहीं निकला? चिन्ता से वह अपने छोटे भाई भास्कर को डाकखाना भेजकर उसकी ही प्रतीक्षा रहा था।

इतने में भास्कर आता दीखा। पुष्कर शीघ्रता से उसके पास पहुँचकर बोला, "इतनी देर क्यों लगायी?"

भास्कर पीछे कुली के सिर पर सब्जी से भरा टोकरा दिखाकर बोला, "यह सारा सामान भी तो लाना था।" फिर वह पुष्कर के हाथ में एक लिफाफा थमाकर चला गया। पत्र रेवा का था, पुष्कर आनन्दातिरेक से प्रफुल्लित हो उठा। निश्चय ही रेवा को आनर्स मिला है। नहीं तो रेवा के मिजाज की लड़की कभी पत्र लिखनेवाली है। पुष्कर ने क्षिप्र हस्त से लिफाफा फाड़ डाला, फिर पढ़ चला––

"मास्टर, दुनिया में जो लोग छीना-झपटी और लूट-खसोटकर अपनी इच्छा की पूर्ति करते हैं, दुनिया-वाले उन्हें बुरा कहते हैं, और जो लोग उपलब्ध सामग्री सामने सुलभ रहते हुए भी आँखें मूँदे रहते हैं, उन्हें साधु विशेषण से भूषित करते हैं। मेरी समझ में पिछला विशेषण आप पर 'फिट' बैठता है। बुरा न मानना, यह तो एक उदाहरण मात्र है। वाकई बात बहुत गहरी है। मैंने बाबूजी को सूचित कर दिया है कि मैं अतीन्द्र को पसन्द नहीं करती। अतएव उसके पल्ले से मुझे मुक्त कीजिए। अब साधु को सूचित करती हूँ कि घरवाले कहते हैं, कि "रेवा का मन पुष्कर ने डोलाया है।" सो मेरा भी अनुमान है, कि यदि रेवा का मन पुष्कर ने डोलाया है तो पुष्कर का मन भी अछूता नहीं रह सकता। अगर मेरा अन्दाज सच है तो आपही इसका निराकरण करें। मैं अपने को बहुत असहाय पा रही हूँ। हाँ, आपकी अनुकम्पा से मुझे आनर्स मिला है। पत्र की प्रत्याशा में––"रेवा।

और तब पुष्कर की आँखों में आज का हर्षोज्वल वातावरण पल भर में मानों प्रेतलोक में परिणत होकर अन्धकारमय हो गया। वह वहीं पगडंडी पथ पर धरती पकड़कर बैठ गया।

ठीक उसी समय रेवा अपने कमरे के टेबुल पर पड़े पुष्कर के विवाह के निमंत्रण-पत्र पर स्तब्ध आँखें टिकाये पत्थर-सी बनी बैठी थी।

देखा-सुना (६)

श्री मनमोहन गुप्त

हरेन दादा के हथकण्डे

गिरधारी जैसे बुड्ढे ने भी चक्षु विस्फारित करके 'हाँ' किया और मेरी ओर देखा। उसके हाथ बन्द हो गये। उसने कहा--"क्या कहा भैया! स्मशाननाथ! अरे! वे तो बड़े सिद्ध पुरुषों से ही मिलते हैं। बड़े-बड़े औघड़ों के अलावा वे तो किसीको दर्शन ही नहीं देते हैं।"

"--मगर मैंने उनसे बातें कीं। मैंने उनसे पूछा था कि मेरी अम्मा की मिरगी ठीक होगी कि नहीं। तो वे बोले......"

कहते-कहते मैं चुप हो गया। मैंने रुककर कहा--"हरेन दादा के घर में हैं....."

यानी अम्मा के पापवाली बात हजम कर गया। गिरधारी को शायद बात खूब जच गयी थी। वह मुझे खोदता हुआ बोला--"तो उन्होंने तुम्हारी माताजी के लिए कोई दवाई बतायी?"

सचमुच दवा की बात तो मैंने पूछी नहीं। मैंने परि-प्रश्न के रूप में कहा--"तो क्या उनसे दवा पूछते तो क्या वे दवा बताते?"

"--और क्या! जब दर्शन मिला तो तुम्हें चाहिए था कि उनके पैर पकड़ लेते और कहते कि बाबा जब दर्शन दिया है तो दवा भी दिये जाओ।"

गिरधारी को ऐसा कहते सुनकर मैंने कहा--"धत् बेवकूफ! उनके पैर होते तब न। अरे उनका चेहरा तो बिल्कुल गौड़जी के पास जो मोटी-सी किताब रक्खी है उसमें का-सा है। अरे आदमी की खोपड़ी की तरह। बस कान के छेद हैं और मुँह के गह्वर। कान से सुनते और मुँह से फिस-फिसाकर कहते हैं।..... मैंने कान में आहिस्ते से कहा और कान ही में सुना। एक लम्बी-सी ऊँची मेज पर रक्खे हैं। हाँ, काले कपड़े से मेज लपेटी हुई है। पता नहीं कि उन कपड़ों में उनके पैर छिपे हैं कि नहीं।"

सुनकर गिरधारी ने कहा--ओ हो! तब तो वे बिल्कुल जाग्रत् देवता हैं। भैया! मुझे भी ले चलो। बहुत दिनों से लड़का मेरा रंगून गया है। कोई पता ही नहीं। जरा उसका पता पूछूँगा।"

इसमें कहने की क्या बात थी? मैं तुरन्त तैयार हो गया। गिरधारी तुरन्त मेरे साथ चल दिया। सीधे हरेन दादा के घर में ले गया। दरवाजे पर पहुँचकर उसने कहा--"मैं यहीं हूँ। तुम पूछ आओ।"

ऊपर जाकर हरेन दादा से गिरधारी के आने का कारण बताया। वे बोले--"उसे यहीं लाओ।"

गिरधारी ने आकर बिल्कुल चौखट के पास से ही जमीन में सिर लगाकर हरेन दादा को प्रणाम किया। हरेन दादा बड़े गम्भीर भाव से बोले--"तुम स्मशान-नाथ से जो पूछना चाहते हो उसे ऐसे तो पूछा नहीं जायगा। तुम नहा-धोकर, धुली हुई धोती पहनकर दिया जलने के बाद, घर से उलटे चलकर, हाथ में धूप-दीप जलाकर आना। तभी स्मशाननाथ से बातचीत होगी।"

उस समय गिरधारी की यह हालत थी कि यदि उसे कहा जाता कि घर से यहाँ तक सर के बल आओ तो वह उसके लिए भी तैयार था। गद्गद चित्त से उसने कहा--"इसमें कौन-सी बड़ी बात है हुजूर, मैं आज ही आऊँगा। बस मेरे लड़के का पता लग जाय तो...... मैं ....मैं......."

कहते ही कहते वह भुकुर्-भुकुर् रोने लगा। हरेन दादा बड़े सिद्ध पुरुष की तरह सान्त्वना देते हुए बोले--"कोई चिन्ता की बात नहीं। बाबा स्मशाननाथ अगर चाहेंगे तो तुम्हारी मंशा पूरी होगी।"

अभी हरेन दादा की बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि गिरधारी उनके पैरों तले साष्टांग गिर पड़ा और पैर पकड़कर कहने लगा--"प्रभू! जब दर्शन दिलाने को कहा है तो मझधार में न छोड़ना।"

पैर छुड़ाते हुए हरेन दादा ने कहा--"घबड़ाओ नहीं। तुम्हारी मंशा पूरी होगी ही।.......अ..... अ.........लख् ..... निरंजन......!"

इस 'अलख् निरंजन!' को हरेन दादा ने ऐसे चीखकर कहा कि मेरे भी रोएँ खड़े हो गये। लगने लगा कि जैसे मुझमें और उनमें बड़ा अन्तर है। वे मुझसे बहुत ऊपर हैं। वे सिद्ध हैं! तपस्वी हैं और दुनिया में वे जो चाहें, सब कुछ कर सकते हैं। केवल उतना ही नहीं, जब गिरधारी घुटनों के बल उठकर बैठा और हाथ जोड़कर उसने उनके मुँह की ओर देखा तो वे आँखों को शिवजी की भाँति करके पता नहीं क्या बड़बड़ाने लगे। कुछ देर तक बड़बड़ाकर अचानक कंधे तक झकझोरते हुए वे बोले--"भेज। भेज! भेज बाबा स्मशाननाथ! गिरधारी के लड़के की खबर भेज।"

फिर थोड़ी देर चुप रहकर आँखें बंद किये रहे। फिर आपसे आप कहने लगे--"कुछ साँवला-सा... कान में कुछ छेद-सा है.....खूब मूछें आ गयीं.... ...हाँ .....वही-वही......है न?"

कहकर गिरधारी की ओर देखा। गिरधारी ने कहा--"नहीं हुजूर गोरा-गोरा है। देखने से मेरा लड़का लगता ही नहीं। हाँ, मूछें तो यहीं आ गयी थीं। अब सात साल से लापता है। मैं तो कान में छल्ला पहने हूँ, मगर उसकी माँ ने रामप्यारे का कान छेदने ही नहीं दिया। उसीसे तो वह भागा-भागा फिरता है।"

आगे कुछ कहने से पहले ही हरेन दादा ने कहा--"अरे! होगा गोरा-गोरा। सो तो इस देश के लिए गोरा-गोरा। मगर जिस देश में गया है, वहाँके लोगों के सामने वह बिलकुल साँवला है। कोई अँगरेजों की तरह गोरा थोड़े ही है? मैंने तो उसे उस देश के लोगों से ध्यान धर कर देखा है न?"

गिरधारी भी हाँ में हाँ मिलाने लगा। तब हरेन दादा ने कहा--"इसीसे कान में कोई साफ-साफ छेद नहीं दिखाई पड़ा। तो उसकी माँ ने कान छेदने ही नहीं दिया?"

"--नहीं हुजूर। उसकी माँ के बाप, यानी मेरे ससुर, कलक्टर साहब के अर्दली थे। कलक्टर साहब मेरी औरत को अपनी लड़की की तरह चाहते थे। उन्हींके बंगले के हाते में मेरे ससुर रहते थे। जब कान छेदने की बात चली तो उन्होंने मना किया था। मेरी औरत कलक्टर साहब के बच्चों के साथ बचपन से ही खेलती थी। वह हुजूर! इतनी अँगरेजी बोलती थी कि गौड़ साहब के अलावा उनके घर में कोई उससे अँगरेजी में बात नहीं कर पाता था। जो जरा पढ़ना भर सीख जाती तो गौड़ साहब कहते थे कि वह बड़ी पढ़ी-लिखी कहलाती। फिर हुजूर! मेरी शादी के बाद गौड़ साहब उसे इतना चाहते थे कि अपनी ओर से उसे तनख्वाह देते थे। दिन भर भैया, यानी गौड़ साहब के बच्चे को वही तो रखती थी। इन्हें उसीने तो अँगरेजी में बातें करना सिखाया। मेरा रामप्यारे और भइया छः महीने के छोटे-बड़े हैं। गौड़ साहब जब अपने बच्चे के लिए कपड़ा बनवाते तभी रामप्यारे के लिए भी। बस उन्नीस-बीस। जब गौड़ साहब ने पेंशन ली उससे दो साल पहले मैंने पेंशन ले ली थी। मगर गौड़ साहब ने मुझे छोड़ा ही नहीं। मैं भी अकेला आदमी पड़ा हूँ उनके दरवाजे।"

यानी गिरधारी ने अपनी सारी रामकहानी सुना दी। हरेन दादा बोले--"ठीक है। आज आना। तुम्हारे लड़के का पता लग जायगा। हाँ, थोड़ी रात को आना। उल्टा चलते-चलते कहीं कोई छू गया तो? इसीसे जब सब सो जायेंगे तब आना।"

दो-तीन बार हरेन दादा के पैर की धूल माथे लगा कर गिरधारी चल दिया। मैं भी पीछे-पीछे चला। कारण उस दिन मुझे कुछ भय सा लग रहा था। हरेन दादा ने कैसी आँखें बना ली थीं!

× × ×

उसी शाम की बात है। जब मैं लालपरी भाभी के घर पहुँचा तो वह खाना पका रही थीं। मुझे देखते ही कहा --"मैं तेरा रास्ता कब से देख रही थी। हाँ, तू था कहाँ?"

मैंने कहा--"मैं तो दोपहर को भी आया था। तुम ही तो सो रही थी।"

भाभी ने कहा--"नहीं। तब मैं सो नहीं रही थी। मैंने तेरी सारी बातें, जो तू गिरधारी से कह रहा था, सुनी हैं। फिर तू गिरधारी को साथ लेकर हरेन दादा के यहाँ गया। मैंने सब सुना। वहाँ कोई बाबा स्मशाननाथ हैं?"

आगे कुछ कहने से पूर्व ही मैंने कहा--"वह कोई आदमी थोड़े ही हैं। अरे बाप रे! एकदम मुर्दे की खोपड़ी-सी शकल है। मगर बातें खूब करते हैं। कोई भी सवाल करो, बस तुरन्त उत्तर ले लो। उन्होंने कहा

कि पूर्वजन्म के पाप कट जाते ही मेरी अम्मा ठीक हो जायेंगी।"

बीच में ही भाभी ने पूछा--"तुझे साफ सुनाई पड़ा?"

"--अरे साफ की तुम कह रही हो? बिलकुल साफ! मेरे कानों में साफ-साफ कहा। अब, आज गिरधारी को भी साफ-साफ बता देंगे। बस, समझो कि गिरधारी को लड़के का पता लग गया।"

भाभी, मेरी एक-एक बात को ऐसे सुन रही थीं कि मानों प्रत्येक बात को निगल रही हों। आगे मैंने कहा --"आज गिरधारी हाथ पाँव धोकर, स्नान करके, शुद्ध वस्त्र पहनकर, हाथ में धूप-दीप ले के, उलटे पाँव, स्मशाननाथ के पास जायगा। स्मशाननाथ उसे बता देंगे कि उसका लड़का कहाँ भाग गया है। अरे! स्मशाननाथ तो ईश्वर के बराबर हैं, हरेन दादा ने ही आँखें बन्द करके गिरधारी के लड़के को देख लिया। एक-एक बात उसके लड़के की बता दी। हाँ, तुम क्या हरेन दादा को कम समझती हो! वह चाहें तो सारी दुनिया को एक चुटकी में उड़ा दें। समझी भाभी! जब उन्होंने आँखें उलटकर ध्यान धरा तो मुझे लग रहा था कि.....लग रहा था कि....बस समझो कि ऐसा लग रहा था कि हरेन दादा जाने क्या हो गये। मेरे रोएँ खड़े हो गये थे। बस समझो कि हरेन दादा भगवान् बन गये।"

कहते-कहते सिहर उठा। भाभी भी सिहर उठीं। आहिस्ते से उनके मुँह से निकल गया कि--"तब तो हरेन दादा सब कुछ कर सकते हैं!"

--"तो क्या तुम मज़ाक समझती हो? मुझसे भी बाबा स्मशाननाथ से बातें करवा दीं। बाबा स्मशाननाथ ने कहा कि मेरी अम्मा ने अगले जन्म में पाप किया है। उसे पूरा करके ही ठीक हो जायेंगी। फिर मिरगी-उरगी कुछ न होगी। न अम्मा जब तब जल जाया करेंगी और न जब तब गिर पड़ा करेंगी। कैसा मजा होगा? है न भाभी?"

भाभी उस समय अन्यमनस्क-सी हो गयी थीं। मैंने प्रश्न किया तो उन्होंने कहा--"और क्या भैया! हम सब तो पिछले जन्म के पाप भोग ही रहे हैं।"

--"धत्! हम सब नहीं। खाली अम्मा। हम लोगों के लिए थोड़े ही कहा।"

सुनकर भाभी ने मुस्कराहट के साथ, किन्तु गम्भीर मुद्रा में, मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा--"अभी तू बच्चा है......नहीं समझेगा।"

कहते-कहते उठ गयीं। घर के काम में लग गयीं। मैंने लकड़ी के घोड़े की सवारी कुछ देर तक उन्हीं के आँगन में की, फिर घर चला आया।

दूसरे दिन, वही पिताजी के स्कूल चले जाने के बाद जब भाभी के पास पहुँचा तो भाभी ने कहा--"कल गिरधारी तो गया था। बड़ी रात को आया।"

सुनकर मैंने कहा--"तुमने देखा क्या?"

भाभी ने कहा--"आहिस्ते से बोल। गिरधारी को पता नहीं। ठीक जैसे तूने कहा था वैसे ही सब लोगों के सो जाने के बाद वह गया था। बहुत रात बीते वापस हुआ था। हाँ, मौका पाओ तो पूछना कि क्या हुआ? मगर मेरे बारे में कोई बात न करना।"

भाभी की जबानी इतनी बात सुनते ही मेरा पेट फूलने लगा। इधर-उधर की दो-चार बातें करके ही मैं पहुँचा गिरधारी के पास। देखा कि वह व्यस्त है अपनी कोठरी के सामान वगैरह ठीक-ठाक करने में। मुझे देखते ही कहा--"आओ भैया। तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। अब भैया को लेकर ही आऊँगा। कैसा आनन्द होगा? खूब, धूमधाम से शादी कराऊँगा। दुलहिन लाऊँगा। नाती खिलाऊँगा।"

पता नहीं कि क्या बकबक करता गया। बिलकुल उन्माद-सा प्रलाप करता रहा। साथ-साथ हाथ भी चलता रहा। उधर के कोने में बर्मा सिगार के पचासों डिब्बे एकत्र किये थे उन्हें दिखाते हुए कहा--"सबेरे से कोई कबाड़ी आया ही नहीं, वह सब बेच देना है। उधर कागज के भी ढेर लगाये हैं। सब बेच दूँगा। न आया तो सब तुम्हें दे दूँगा। तुम बेचकर लैयापट्टी खाना।"

उसके हावभाव देखकर मैंने सहज ही भाँप लिया कि वह कहीं जाने की तैयारी कर रहा है। मैंने आहिस्ते से पूछा--"गिरधारी तुम चले जाओगे?"

--हाँ, हाँ, भैया! सबेरे स्टेशन जाकर जान आया हूँ कि गाड़ी दो बजे जाती है। बस, अब भगवान् से प्रार्थना करो कि भैया से मिल जाऊँ। शहर का तो पता

लग ही गया। शहर के उत्तरी हिस्से में रहता है। एक-एक मकान छान डालूँगा। एक-एक गली देख डालूँगा। बाबा स्मशाननाथ ने चाहा तो जल्दी ही भैया को लेकर वापस होऊँगा। गाँव जाऊँगा। घर, जमीन सब ठीक कर लूँगा। भैया के लिए।"

कहते ही कहते उसकी आँखें नम हो उठीं। आवाज कँप गयी। वह चुप हो गया। उसके हाथ और तेज हो गये। उस समय वह आखिरी गठरी बाँध रहा था।

जब उसे भी बाँध लिया तो कहा--"चलो छुट्टी भई। अब साहब के पास चलें।"

कोठरी में ताला लगाया। चला गौड़जी के पास। पीछे-पीछे मैं भी चला। सीधे गौड़जी के कमरे में ही गया। उस समय गौड़जी वहीं चित लेटे अखबार पढ़ रहे थे। गिरधारी की आहट पाते ही आँख उठाकर बोले--"आज सबेरे से कहाँ रहे गिरधारी?"

पैर की धूल लेते हुए उसने कहा--"हुजूर! माई-बाप हैं। आज चला जाऊँगा। उसीकी तैयारी कर रहा था। मेरा लड़का मिल गया। बस, उसे लाना है।"

गौड़जी सम्हलकर बैठ गये। पूछा--"क्या कोई चिट्ठी आयी?"

--"हुजूर चिट्ठी से भी बढ़कर। समझिये भगवान् का आदेश......."

बीच में ही गौड़जी ने कहा--"क्या कहा? कहीं नशे में तो नहीं है रे?"

--"नहीं। हुजूर! मैंने कोई सपना थोड़े ही देखा। अपने कानों से सुना। बाबा स्मशाननाथ ने मुझसे स्वयम् कहा। मेरा लड़का मंडाले में, उत्तर की ओर है। लकड़ी के मकान में रहता है। किसी लकड़ी-वाले के ही यहाँ काम करता है। एक-एक बात का पता लग गया।"

अविश्वास के भाव से उन्होंने पूछा--"कितने रुपये खर्च किये?"

जीभ निकालकर कान पकड़ते हुए गिरधारी ने कहा --"अरे बाप रे! वे पैसा लेंगे? वे तो न मालूम कितनों का प्रतिपालन करते हैं। उन्होंने बड़ी दया की।"

इससे आगे बात करना गौड़जी के सामर्थ्य के बाहर की बात थी। अब उन्हींके प्रश्न की झड़ी लग गयी। यानी बाबा स्मशाननाथ का दर्शन कहाँ हुआ? उनकी शक्ल कैसी है, आदि आदि। गिरधारी ने हाथ-पैर हिलाकर, कभी भयावना चेहरा बनाकर, कभी कान पकड़कर, कभी हाथ जोड़कर; एक-एक बात सुना दी। मैं भी तो एक छोटा-मोटा चक्षुस गवाह था।

अन्त में गौड़जी ने प्रश्न किया--"तो अब तूने क्या ठीक किया?"

बिना कुछ हिचकिचाये, दृढ़ता के साथ गिरधारी ने कहा--"आज ही चला हुजूर। सबेरे ही मैं जाकर गाड़ी का समय भी जान आया। दो बजकर पैंतालीस मिनट पर गाड़ी, कलकत्ते की गाड़ी मिलेगी। कलकत्ते से रंगून और वहाँसे मंडाले। फिर हुजूर रामप्यारे को आपके चरणों में ला पटकूँगा। बुढ़ौती का वही तो सहारा है।"

कहते-कहते लम्बी साँस ली। हाथ जोड़े खड़ा रहा। गौड़जी ने कहा--"तो रुपये चाहिए?"

गिरधारी ने कहा--"नहीं हुजूर। पैसा बहुत है। खाली छुट्टी चाहिए।"

कुछ समय तक गौड़जी ने हिसाब लगाया, फिर कहा--हाँ, दो-ढाई महीने तो लग ही जायेंगे। अच्छा तू जा मैं मना नहीं करूँगा। लगता है कि अब ईश्वर ने तेरे ऊपर दया की "जरूर मिलेगा रामप्यारे।"

कहते-कहते उन्होंने भी बाबा स्मशाननाथ के उद्देश्य से प्रणाम किया। गिरधारी ने तो गद्गद् चित्त से गौड़जी के पैर पकड़ लिये।

प्रभु से भृत्य बिदा लेकर आया लालपरी भाभी के पास। उस समय भाभी खाना खाकर चौके का अन्य काम कर रही थीं। यानी, शायद महरी के लिए बर्तन आदि अलग कर रही थीं। दरवाजे के पास से ही प्रणाम करते हुए गिरधारी ने कहा--"अच्छा रानी बहू! मैं चला।"

--"चला क्या रे? कहाँ चला?"

उसके बदले मैंने ही सुनाना चाहा किन्तु गिरधारी ने बीच में ही बोलना आरम्भ किया। एक-एक बात को अवाक् होकर, पूर्ण विश्वास के साथ भाभी सुनने लगी। सब कुछ सुनने के बाद एक लम्बी साँस लेते हुए भाभी ने कहा--"अहा! आज कहीं रामप्यारे की माँ होती तो उसे कितना आनन्द होता। वह भी बिना साथ गये मानती नहीं।"

गिरधारी बच्चों का-सा फूट-फूटकर रोने लगा। रोता जाता था और कहता जाता था--"उसीसे तो मैं कहीं का नहीं रहा रानी बहू! आज कहीं वह होती तो मेरा लाल चला ही क्यों जाता? कुछ नहीं..... कुछ नहीं। मामूली बात। मैंने यों ही एक दिन जरा डाँटते हुए कहा था कि अब तू बड़ा हो गया, अब खेल-कूद छोड़कर नौकरी में लग जा। कलक्टरी में एक चपरासी की जगह भी मैंने ठीक कर ली है। कल चलकर भर्त्ती करवा दूँगा। बस इतनी-सी बात पर ही वह भाग गया। कहीं उसकी माँ होती तो इतनी-सी बात पर कहीं रूठकर चला जाता, या उसकी माँ ही छोड़ती?... आज कहीं उसकी माँ होती तो.... मेरा सजा-सजाया बाग उजड़ जाता? एक रानी बहू मेरे भी घर में होती। पोते, पोतियाँ होतीं। उजाड़-सा घर भरा होता। दिन-रात में कहीं फ़ुर्सत न होती।"

आदि-आदि कहते ही चला गया। उधर 'पोते, पोती' के नाम लेते ही भाभी सिहर उठीं। आँखों के कोने चमकने लगे। दूसरी ओर मुँह फेर लिया। थोड़ी देर और रो-धोकर गिरधारी अपने कमरे में आया। मैं तो उसके पीछे ही बालसुलभ स्वभाव के कारण लगा था, एवम् लगा था कि इस नाटक का कहाँ पर अन्त होता है उसे देखूं। केवल इतना ही नहीं, एक और बात थी। जब कभी कोई बाहर जाता था तो जाते समय यथाशक्ति ही कहिए; या यथायोग्य ही, उसे कह सकते हैं; लोग मेरा सत्कार करके जाते थे। शायद उसी मुहूर्त की प्रतीक्षा ने ही मुझे गिरधारी के पीछे लगा रक्खा था। किन्तु शोकातुर गिरधारी को इस अकिंचन के लिए व्यथा धरने का स्थान हृदय में हो तब न? जाते समय, नगद-नारायण का उल्लेख तक नहीं किया। यद्यपि कमर में मेरे सामने ही न मालूम कितने रुपये तथा नोट बाँधे। हाँ, अपना पुराना हुक्का तथा जमाने से बटोरे हुए बर्म्मा-चुरट् के डिब्बों को, कुछ शीशी-बोतलें, टीन के कुछ छोटे-बड़े डिब्बों को मुझे दिखाते हुए कहा--"सबको किसी कबाड़ी को दे देना भइया! दस-बारह आने मिल जायेंगे। न हो सूरत को बुलवाकर उसके सामने देना। वह ठीक-ठीक तय करवा देगा।"

धत् तेरे सूरत की! उस समय तो मेरी मूरत बद-सूरत हो रही थी। हाय रे गिरधारी! कहीं ताँबे का एक पैसा भी मेरे हाथ में धरा होता तो शायद उस समय अधिक सन्तुष्ट होता, एवम् बार-बार प्रार्थना करता कि लड़के को ढूँढ़ने तुझे इसी प्रकार से बार-बार जाना पड़े? यानी जिस प्रकार की दुआ कि हर होटल का हर 'बॉय', अर्थात् खाना परोसनेवाला नौकर, उन प्रत्येक ग्राहकों के लिए करता है, जो लोग कि नाश्ता या खाना खाने के बाद उन्हें कुछ न कुछ 'टिप्' करने के आदी हैं। इकन्नी-दुअन्नी या चवन्नी हाथ में धरकर उठने के आदी हैं। तथा उस 'बॉय' नामक जीव से संतोषजनक सर्विस के नाम पर 'बॉय' के जरिये होटल वाले की पेंदी खुरेदने की लत वाले हो जाते हैं। हर 'डिश' में नियम से कुछ अधिक चिकनाई या मिठास की अपेक्षा करनेवाले। अथवा यों कहिये कि घर के उन नौकरों की तरह कि जिन्हें जाते समय आये हुए मेहमानों से कुछ न कुछ इनाम इकरार मिलता है। उतनी दूर जाने की भी आवश्यकता क्या है? सीधे-सीधे समझिये कि घर में आनेवाले उन मेहमानों के लिए घर के बच्चे जैसा करते, कम से कम मैं भी वैसा ही करता, जो लोग कि किसीकी मेहमानी स्वीकार करके, जाते समय बच्चों के हाथ में कुछ न कुछ धर कर, तब ही टाँगें या रिक्शे पर स्टेशन के लिए रवाना होते हैं।

हाँ, तो अन्त तक बाबा स्मशाननाथ ने गिरधारी को समुन्दर पार कराकर ही छोड़ा। पूर्ण विश्वास के साथ गिरधारी ने गौड़जी के घर की चौखट से बिदा ली।

× × ×

[क्रमशः

१९०५ की सरस्वती

मक्का-तीर्थ

श्री पार्वतीनन्दन (श्री गिरिजाकुमार घोष)

जैसे हिन्दू लोग सैकड़ों रुपये खर्च करके और नाना प्रकार के शारीरिक श्रम उठाकर, तीर्थयात्रा करते हैं, ठीक उसी तरह हमारे मुसलमान भाई भी धर्म की प्यास बुझाने के लिए सैकड़ों हजारों रुपये बिगाड़ कर और अपनी जान खतरे में डालकर तीर्थदर्शन किया करते हैं। मुसलमानी धर्म का जन्म अरब में हुआ था। मुसलमानी धर्म के जन्मदाता हजरत मुहम्मद अरब के रहनेवाले थे। इसीसे मुहम्मद साहब का जन्म स्थान मक्का, तथा उनकी समाधि का शहर मदीना, मुसलमानों के सबसे बड़े तीर्थ हैं। हर साल पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक के हजारों धार्मिक मुसलमान मक्के मदीने की हज करने जाते हैं। मुसलमानी तीर्थयात्रा को हज कहते हैं। यात्री लोग हाजी कहलाते हैं।

जिस प्रेस में सरस्वती छपती है, उस प्रेस के एक कर्मचारी अभी हाल में हज करके लौटे हैं। उनके मुँह से मक्का के विषय में जो कुछ बातें सुनने में आई हैं, वही सरस्वती के वाचकों को हम भी सुनाते हैं।

मक्का जाने के लिए हिन्दुस्तान के मुसलमानों को पहले बम्बई जाना पड़ता है। वहाँ पर यात्री लोगों से जहाज पर आने-जाने के किराये के सिवा, घर लौट आने के लिए उनसे रेल का किराया तक वसूल कर लिया जाता है। अरब से लौट आने पर, खर्च चुक जाने से, पहले हाजी लोग, बहुधा, घर नहीं लौट सकते थे। खर्च के अभाव से उनको बड़ी बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती थी। यहाँ तक कि बहुधा सरकार को अपनी तरफ से रेल का किराया देकर ऐसे हाजियों को उनके घर तक पहुँचा देना पड़ता था। इसलिए अब पहले ही से, जहाज पर सवार होने के आगे, सब यात्रियों से उनके घर तक लौटने का किराया वसूल कर लिया जाता है। नहीं तो वे जहाज पर सवार ही नहीं होने पाते।

अस्तु, हमारे हाजी भी सतना तक का वापसी टिकट लेकर जहाज पर जा बैठे। रीवाँ में इनके भाई महाराजा के डाक्टर हैं इसलिए उन्होंने सतना तक, जो रीवाँ के लिए रेल का स्टेशन है वापसी टिकट खरीदा। जहाजों के नियम के अनुसार पाँच दिन तक सब लोगों को बम्बई में एक स्थान पर "क्वारनटाइन" में रहना पड़ा। अर्थात् पाँच दिन तक सरकार ने ठोक बजा कर सबको देख लिया कि कोई प्लेग या किसी दूसरे रोग से पीड़ित मनुष्य हज के बहाने यमलोक की ओर न चल दे, अथवा अपने पुछल्ले में दूसरे सैकड़ों हाजियों को बाँध कर न उड़ा ले जाय। यह प्रबन्ध रोग के रोकने के लिए है। सुनते हैं कि प्लेग पहले हिन्दुस्तान में नहीं था। जहाजों ही के द्वारा किसी समुद्र पार के देश से यहाँ पधारा है परन्तु तौभी, जहाँ तक बन पड़ता है, सरकार हर तरह से प्रजा की भलाई ही की चेष्टा करती है।

हाजियों का जहाज बम्बई छोड़ कर अनन्त नीले आकाश से घिरे हुए, पहाड़ों की तरह बड़ी-बड़ी लहरों से उमड़ते हुए, विशाल अरबसागर की छाती पर पंख मारते आगे बढ़ा। लहरों से टक्कर खाने से जहाज बहुत डाँवाडोल होता है। इसलिए, जो लोग पहले पहल जहाज पर सवार होते हैं, उनके उदर रूपी सागर के भीतर भी डाँवाडोल मच जाता है। लोग ऐसे बीमार हो जाते हैं कि क्षुब्ध हुए पेट रूपी प्रचण्ड सागर की लहरें मुँह की राह से उछल-उछल कर बाहर आने लगती हैं। चारों तरफ से 'व्हाक' 'व्हाक' की ध्वनि से यात्री लोग उन लहरों को बाहर बहाने लगते हैं परन्तु वह पीड़ा सिर्फ दो तीन दिनों में शान्त हो जाती है। मानवी शरीर का धर्म है कि मनुष्य चाहे कितना भी अनभ्यस्त क्यों न हो, वह शीघ्र ही नई प्रकृति के नियमों के वशीभूत हो जाता है। फिर जहाज पर शान्ति विराजने लगती है परन्तु जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे लोग बहुधा यह पीड़ा (अँगरेजी में इसे सी सिकनेस (Sea-sickness) कहते हैं) नहीं पाते। हमारे हाजी साहब ने एक दिन भी यह पीड़ा नहीं भोगी। उनका प्रशान्त उदरसागर अरब सागर की लहरों से भेंट करने को व्यग्र नहीं हुआ।

जहाज आठ दिन में अदन जा पहुँचा। वहाँ से लाल सागर होकर, दस दिन में वह कामरां नाम टापू के किनारे पहुँचा। उसी के पास से, उस समय, रूसियों का बाल्टिक बेड़ा जापानियों से कुश्ती लड़ने जा रहा था। परन्तु रात के समय दूर से जलती हुई रोशनी के सिवा और कुछ नहीं देख पड़ा। लाल सागर की चौड़ाई नक्शे में जरा सी जान पड़ती है पर जहाज पर से समुद्र के किनारे तक नहीं देख पड़ते।

कामरां से चलने पर दो दिन बाद जहाज जिद्दा के बन्दर में आ लगा। जहाज किनारे पर नहीं लगता। किनारा छिछला होने के कारण भारी जहाजों को गहरे पानी ही में लंगर डालना पड़ता है। हाजियों के जहाज के लंगर डालते ही किनारे से सैकड़ों नावों ने आकर उसे चारों तरफ से घेर लिया। सैकड़ों अरबी मल्लाह, डारविन साहब के पूर्व पुरुषों की तरह, रस्सी थाम-थाम कर ऊपर चढ़ आये। उस समय सन्ध्या हो गयी थी। इसलिए हाजियों के पंडों ने उनको उस समय किनारे उतरने की सलाह न दी। इससे उस रात के लिए सब लोग जहाज ही पर रहे। अरबी लोग बड़े चोर होते हैं। नाववाले मल्लाह भी चोरी की कला में एम० ए० पास कर चुके हैं। उनको अफसोस इस बात का है कि एम० ए० के आगे और कोई उससे भी बड़ा दरजा ही नहीं। नहीं तो वे उसे भी बात की बात में पास कर डालते। इसलिए जहाज के कप्तान ने पुलिस बुलवाकर सब मल्लाहों को जहाज पर से खींच-खींच कर दूर कर दिया। दो-चार मल्लाह लालच न सम्भाल सकने के कारण यात्रियों

में जाकर छिप बैठे थे। परन्तु पकड़े जाने पर पुलिसवालों ने डंडों से उन सबों की खूब अच्छी तरह खबर ली।

दूसरे दिन, सबेरा होते ही, हाजियों के जहाज से उतरने की धूम मच गई। जहाज पर से सीढ़ियाँ लटका दी गईं। उन्हीं सीढ़ियों से सब लोग नीचे नावों पर उतरे। उस दिन समुद्र शान्त था। परन्तु जिस दिन हवा चलती है, और समुद्र की लहरें चंचल होने से नावें हिलने लगती हैं, उस दिन सीढ़ी का भी मिजाज बिगड़ जाता है। तब जहाज पर से उतरना सहज नहीं होता है।

हिन्दू पाठकों को अच्छी तरह मालूम है कि तीर्थ के पण्डे कैसे लालची, कैसे दुखदाई होते हैं। हमने समझा था कि हिन्दुस्तानी पण्डे ही यात्रियों को तंग किया करते हैं। परन्तु मुसलमान पण्डे भी उनसे किसी बात में कम नहीं होते हैं। अरब के हर पण्डे के हिस्से में और-और देशों की तरह हिन्दुस्तान के भी कई जिलों की यजमानी बटी रहती है। हमारे हाजी जी बंगाली मुसलमान हैं। उनका घर चौबीस परगने के जिले में है। ऐसा जान पड़ा कि जो पण्डा चौबीस परगने के यात्रियों का अधिकारी है, उसीके हिस्से में इलाहाबाद भी है। परन्तु उस अभागे के भाग में हमारे हाजी साहब की एक कानी कौड़ी भी नहीं बदी थी। उन्होंने पहले ही से कई हैदराबादी भद्र पुरुषों का साथ कर लिया था। इससे हैदराबाद के अधिकारी पण्डा जी ही हमारे हाजी जी की जोंक बने। हाजी जी ने अपने साथियों का साथ छोड़ना न चाहा। उस दिन जिद्दा के बन्दर पर कम से कम १५० पण्डे मौजूद थे। पण्डों का अरबी नाम मुअल्लिम है।

तुर्की गवर्नमेंट की तरफ से जो हाकिम नियत रहता है उसे शरीफ कहते हैं। पर मुअल्लिम से शरीफ तक सब लोग ललची हैं। यदि सरकारी अफसर मुअल्लिमों से मिले हुए हों तो भी कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि कोई भी अफसर यात्रियों की शिकायत नहीं सुनता। सभी बात बात में हाथ पसारे रहते हैं। अँगरेज गवर्नमेंट की ओर से इलाहाबाद के रहने वाले एक डाक्टर साहब जिद्दा के कानसल हैं।

जिद्दा पहुँच कर यात्रियों से कई तरह के टैक्स लिये जाते हैं। जहाज पर से उतरते ही १।।।=) नाव, कुली इत्यादि के लिए देना पड़ा। उत्तर की तरफ रूम के राज्य से मदीने तक एक रेल बन रही है। उसके लिए १।।) लिया गया। परन्तु बहुतेरों ने इसे नहीं भी दिया। यात्रियों की रक्षा के लिए डेढ़ डेढ़ मील पर सौ सौ तुर्की सिपाहियों की चौकी रहती है। जिनके पालन-पोषण के लिए भी ६।।) देना पड़ा। मुसाफिरखाने का किराया प्रति मनुष्य ।) रोज है। जिद्दा से पूर्व की तरफ मक्का है। जिद्दा से वह ३६ मील दूर है। मुअल्लिम की सहायता से यात्रियों ने सवारी के लिए ऊँट मँगवाये। पीछे से मालूम हुआ कि यदि मुअल्लिम के द्वारा ऊँट न मँगाये जाते तो ३६ मील की सवारी में २०-२५ रुपये की बचत हो सकती थी। ३५) रु० की जगह १०) या १५) रुपये ही में ऊँट मिलना असम्भव न था।

परन्तु धर्म के नाम पर रुपये पैसे का इतना लालच करना अच्छा नहीं। और धन के बिना धर्म की राह भी कठिन हो जाती है। अकसर वह मिलती ही नहीं।

ऊँट आये। ऊँटों पर लोग सवार हुए। कैसे सवार हुए सो भी सुन लीजिए। किसी किसी ऊँट की कुबड़ी पीठ पर एक सीधी चारपाई बँधी रहती है। कोई उसी पर बैठ कर रेत रत्नाकर की लहरों पर कभी ऊपर, कभी नीचे हिलता हुआ दूसरी बार समुद्री बीमारी का ध्यान करता था। और कोई ध्यान करता था, 'सुख दुख' का। संसार सागर में गोता लगा कर सुख दुख का स्वाद किसने नहीं पाया है। परन्तु अरब के रेत सागर का 'सुख दुख' एक अपूर्व वस्तु है उसका अरबी नाम सुगदुप है। सुगदुप एक तरफ की सवारी है। अर्थात्, दो खटोलियाँ ऊँट की पीठ से उसके दोनों ओर लटकती रहती हैं। उन खटोलियों पर अरब रवि के तीखे किरणों से तनिक बचने के लिए छत की तरह कुछ छाया बनी रहती है परन्तु जो इस सवारी पर एक बार चढ़ा है, वही कहता है कि इससे जितना सुख मिलता है, उतना ही दुख। इसी से इसका नाम सुख दुख, वा सुगदुप पड़ा होगा। एक तरह की और भी खटोली होती है, उसका नाम छिबड़ी है। उस पर सुख दुख से कुछ अधिक दुख मिलता है संसार में दुख ही अधिक है। इसी बात की याद दिलाने के लिए शायद यह आविष्कार किया गया हो।

जिधर नजर उठाइए, मालूम होता है कि पृथ्वी अनन्त रेतीले मैदान ही से बनी है। रेत का न ओर देख पड़ता है न छोर। आगे रेत, पीछे रेत, अगल बगल में रेत, चारों तरफ रेत, रेत ही रेत, रेत.... रेत, बस, और कुछ नहीं। कहीं कहीं बीच बीच में ऊँट के कूबड़ों की तरह रेतीले मैदान के भी कूबड़ निकले हुए दिखाई देते हैं। रेतीले टीलों और पहाड़ियों को छोड़ कर इस विशाल रेत के मैदान में और दूसरी वस्तु नेत्रों के सामने नहीं देख पड़ती। पहाड़ियाँ मक्के की राह में कहीं पर कम हैं, कहीं पर अधिक परन्तु हैं वे भी रेत ही की। उनके पत्थर भी सब बालू के हैं।

अभी कल तक अनन्त अपरिमेय पानी के मैदान पर हाजी जी जा रहे थे। और अब उस लीलामय की लीला देखिए—वह पानी का मैदान सूख गया, पानी की जगह बालू भर गया। पानी पर जहाज कूद रह था। बालू पर ऊँट की पीठ कूद रही है। इस बालू रूपी समुद्र में डूबते मनुष्य के लिए ऊँट ही जहाज है। ऊँट न हो तो भरभूँजे के भाड़ में मनुष्य भी जल भुन जाय। अँगरेज लोग ऊँट को रेतसागर का जहाज (The ship of desert) कहते हैं ठीक है।

हाजी जी जिस दल में थे, उसमें ३०० ऊँट थे और तुर्की सरकार की ओर से ५० सिपाही उन लोगों की रखवाली के लिए एक चौकी से दूसरी चौकी तक जाते थे। अठारह मील पर, अर्थात् जिद्दा और मक्का के बीच में, एक पड़ाव है। सबेरे से सन्ध्या तक रेत के जहाजों ने सिर्फ १८ मील मैदान तै किया। अब सन्ध्या होते ही पहले दिन की यात्रा बन्द हुई। लोग ठहरे कहाँ? हिन्दू-तीर्थयात्री सम

होंगे कि वहाँ पर पण्डों के मकान होंगे, या सराय होगी, या कोई धर्मशाला होगी, या सरकारी पड़ाव के लिए कोई आम का बाग ही होगा। परन्तु नहीं, वहाँ पर न मकान थे, न सराय, न धर्मशाला न किसी पेड़ की छाया। नीचे वही रेत, वही बालू और ऊपर वही नीला स्वच्छ अरबी आकाश। हाँ, यात्रियों के ठहरने की जगह दो तीन हाथ लम्बी खजूर की डालियों की कतारों से घिरी हुई थी।

रात होते ही पड़ाववाले बार बार पुकारकर कहने लगे "खबरदार, इस हद से बाहर कोई न निकलना, यदि बाहर निकलोगे तो हम तुम्हारे जान माल के जिम्मेदार नहीं। बाहर निकले और बद्दुओं ने तुम्हारी जान ली। खबरदार, लक्ष्मण जी के इस धनुष-चिन्ह से बाहर पैर न बढ़ाना। बद्दू लोग यहाँ के लुटेरे डाकू हैं। ऐसा सुना जाता है कि वे हजरत मुहम्मद साहब की दासी के वंशधर हैं। इसी से उनका बड़ा प्रताप है। वे किसी से नहीं डरते। मौका पाते ही मुसाफिरों को मार कर वे उनका सर्वस्व छीन लेते हैं। आपको जैसे मच्छर मारने में दुःख क्लेश, परिश्रम कुछ नहीं होता, बद्दू भी उसी तरह, जिसको चाहते हैं उसी को, मच्छर की तरह मार डालते हैं।

परन्तु चोर डाकू बहुधा कायर होते हैं। बद्दू भी बड़े कायर हैं। बहादुरी इनमें जरा भी नहीं। दूसरे पक्ष का भारी दल देखते ही वे भाग जाते हैं। एक बार एक पंजाबी हाजी को बद्दूओं ने घेर लिया। उसने अपनी कमर से रुपये निकाल कर सामने रख दिये और ललकार कर कहा कि कोई माई का लाल हो तो इसे मेरे सामने से ले जाय। बद्दू लोग रुपया न ले सके, परन्तु पंजाबी ने चार बद्दुओं को तुरन्त ही जहन्नुम की सैर करने भेज दिया। बाकी बद्दू उस समय तो भाग गये परन्तु किसी और दिन उन्होंने पंजाबी को सोते हुए मार डाला।

दूसरे दिन सबेरा होते ही फिर कूच हुआ। इस दिन एक विशेष बात हो गई जिसका लिखना हम उचित समझते हैं। यात्रियों में से एक हैदराबादी सौदागर था। उसकी स्त्री और बम्बई के रहनेवाले दो नौकर भी उसके साथ थे। सौदागर के पास सात सौ अशर्फियाँ थीं। उसने रात के समय अशर्फियों को निकाल कर गिन डाला। परन्तु जैसे मिठाई का पता मक्खियों को लग जाता है उसी तरह अशर्फियों का पता लुटेरों को लग गया। ऊँटवाले ही बद्दूओं के भाई बिरादर होते हैं। सौदागर के ऊँटवालों ने उसको लूट लेने का सब बन्दोबस्त कर लिया। दूसरे दिन, पौ फटने के पहले, कुछ रात रहते रहते, उन ऊँटवालों ने सौदागर को जगा कर कहा, "आज बड़ी भीड़ होगी, बैठने के लिए अच्छी जगह का मिलना कठिन हो जायगा, इससे आप कहें तो हम लोग जरा आगे ही कूच कर दें। सौदागर उनकी बातों में आ गया और ऊँटों पर बैठकर वे लोग आगे बढ़े। एक ऊँट की पीठ से लटकती हुई खटोलियों पर सौदागर और उसकी स्त्री सवार हुए। और दूसरे ऊँट पर दोनों नौकर। वे लोग कोई आध ही मील दूर गये होंगे कि ऊँटवाले ने रस्सी काट दी और सौदागर और उसकी बीबी, दोनों, जमीन पर जा गिरे। इतने ही में १०-१२ आदमी, जो वहीं पर छिपे हुए थे, उन पर टूटे और सौदागर की सब अशर्फियाँ लेकर रफूचक्कर हो गये। परन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि चाहे, जल्दी से ही चाहे और किसी कारण से, किसी की जान उन्होंने नहीं ली। वे दोनों स्त्री पुरुष वहीं पड़े रहे।

इस समय बम्बई वाले नोकरों में से एक ने बड़ी बुद्धिमानी का काम किया। उस समय की वारदात उसकी समझ में आते ही वह अपने ऊँट पर से कूद पड़ा और उलटे पाँव दौड़ता हुआ सरकारी चौकी पर पहुँचा। वहाँ उसने सिपाहियों से सब हाल बयान किया। सिपाही लोग तुरन्त उसके साथ डाकुओं के पीछे दौड़े। कुछ दूर जाकर सबों ने देखा कि लुटेरे आपस में हिस्सा बाँटने के लिये खूब लड़ रहे हैं। फिर क्या था, सिपाहियों ने उनको जा घेरा और बिना किसी पूँछ पाँछ के उन पर गोलियाँ चलाईं। १४।१५ डाकू देखते-देखते यमलोक की तरफ कूच कर गये। यही अरब देश का न्याय है। कहाँ की गिरफ्तारी, कहाँ की कचहरी और कहाँ के हाकिम। अरब के गरमागरम न्याय का यही नमूना है। सौदागर ने अपने न्यायकर्त्ताओं को कुछ अर्शफियाँ पुरस्कार दीं और उस बहादुर नौकर को सौ रुपये दिये। अब, पाठक, सोचिए कि हाजियों को कैसी-कैसी मुसीबतें रात दिन झेलनी पड़ती हैं।

अभी पर साल की बात है कि भूपाल की बेगम को बद्दुओं के एक दल ने मदीने जाते समय घेर लिया। बेगम ने कहा कि हम मदीने से लौट कर तुम लोगों को बहुत सा धन देंगे। परन्तु मदीने से उन्होंने तुर्की सरकार को तार देकर बद्दुओं की बदमाशी की रिपोर्ट कर दी। वहाँ से उनकी रखवाली के लिये कड़ा इन्तजाम हुआ और कोई हजार आदमियों के काफिले के साथ बेगम साहबा लौटीं। पर बद्दू लोग बदला लेने में कभी नहीं चूकते। उन्होंने भी बड़ा भारी दल बादल लेकर बेगम साहब के दल पर आक्रमण किया और बेगम साहब की सवारी पर, जो बहुत बढ़िया थी और खूब सजी हुई थी, सैकड़ों गोलियाँ बरसाईं। परन्तु बेगम साहब ने पहले ही से उत्पात की आशंका करके अपनी सवारी छोड़ दी थी। साधारण यात्री की तरह एक और सवारी पर वे जा बैठीं, इसी से उनकी जान बच गई।

एक और कथा लिखकर हम बद्दुओं की चर्चा बन्द करते हैं। एक हिन्दुस्तानी मुसलमान किसी समय हज करने गया। उससे एक बद्दू ऊँटवाले से झगड़ा हो गया। वह झगड़ा इतना बढ़ा कि हाथाबाहीं की नौबत

आ गई और हिन्दुस्तानी ने ऊँटवाले को मार डाला। मार तो डाला, परन्तु थोड़ी ही देर में उसके हृदय में अनुताप की ज्वाला धधक उठी। उसने सोचा कि मैं सात समुद्र पार होकर आया धर्म करने, पर संचय किया मैंने अधर्म का। जरा सी बात पर तकरार करके मैंने एक आदमी की जान ले ली। अब मुझको इस पाप का प्रायश्चित करना चाहिए। यों सोच कर ढूँढ़ता-ढूँढ़ता वह उस मृत ऊँट वाले के पिता के घर पर पहुँचा और उससे सब बातें ठीक-ठीक कह कर बोला कि तू मुझे क्षमा कर। पाठक सोचिये तो मृत जवान के बूढ़े पिता ने किस तरह अपने पुत्रहन्ता को दण्ड दिया। वहाँ तो छुरी तलवार का चलना एक अत्यन्त प्राकृतिक और नित्य नैमित्तिक घटनाओं में से है। बुड्ढे ऊँटवाले ने अपने युवा पुत्र के मरने का दुःख उतना न माना जितना शायद कोई दूसरा मानता। किन्तु हिन्दुस्तानी की सत्यनिष्ठा ने उसके हृदय पर बहुत बड़ा असर किया। बुड्ढे ने सोचा कि ऐसे सच्चे और धर्म्मात्मा मनुष्य को न छोड़ना चाहिए। इसलिये उसने उस हिन्दुस्तानी को अपने यहाँ से न लौटने दिया। अपने बेटे के मारे जाने के कुछ ही दिन पहले उसने उसका विवाह कर दिया था। उसकी वह इस समय घर ही पर थी। बुड्ढे ने हिन्दुस्तानी के साथ अपनी बहू का निकाह करा दिया और उसी को अपना पुत्र बना लिया। वह हिन्दुस्तानी अब अरबी—अरबी ही नहीं, बद्दू बन गया है, परन्तु लूट मार नहीं करता। ऊँट हाँकता है, और अरबी, हिन्दुस्तानी आदि कई भाषायें जानने के कारण विदेशियों के लिए वह बहुधा द्विभाषिये का काम करता है।

मुसलमानी धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि ईश्वर को सन्तुष्ट करने के लिए हजरत इब्राहीम ने अपने पुत्र इस्माईल का बलिदान दिया था। जब इब्राहीम पुत्र को कुर्बानि करने के लिये ले जाने लगे, उस समय इबलीस, यानी शैतान, ने इब्राहीम को बहुत फ़ुसलाया और अनेक तरह से वह समझाने लगा कि तेरा बाप तुझे मारने को लिये जाता है परन्तु इस्माईल बड़े पोढ़े हृदय का धार्मिक था। उसने इबलीस की पाप की बातें न सुनीं। उसने कहा कि यदि यह शरीर जिसका नाश एक दिन होना ही है, ईश्वर के कार्य में आ जाय तो मैं अपना बड़ा भाग्य समझूँगा।

अस्तु, उसी कुर्बानी की प्रथा अब तक चली आती है। बकराईद के दिन सब धार्मिक मुसलमान किसी पशु का बलिदान देते हैं। मक्के में मीना और मुजदफा नाम के दो स्थान हैं। उन्हीं के बीच में इब्राहीम ने बलिदान दिया था। वहीं सब हाजी लोग अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार अब भी पशु मारते हैं। बलि के पशुओं का माँस इतना इकट्ठा हो जाता है कि उस सबका लेने वाला नहीं मिलता। इसलिये यात्रियों के हट आने पर उसे बद्दू उठा ले जाते हैं। उसे वे सुखाते हैं। फिर कूट पीस कर, आटे के साथ मिलाकर वे उसकी रोटी पकाते है।

यहाँ से आगे चल कर एक स्थान अरफात है। अरफात मुसलमानों का प्रयाग है, क्योंकि यहाँ पर यात्री अपना सिर घुटवा डालते हैं। हिन्दू लोग पुरुष और प्रकृति को मानते हैं मुसलमान आदम और हौवा को मानते हैं। आदम पृथ्वी में पहला पुरुष और हौवा पहली स्त्री थी। लोग कहते हैं कि इसी अरफात ही में आदम और हौवा की पहली मुलाकात हुई थी। ईसाई भी इस पहले स्त्री पुरुष के जोड़े को मानते हैं। पर वे कहते हैं कि आदम और हौवा ईडन के बाग में रहते थे। नहीं मालूम वह ईडन का बाग कहाँ है।

अरफात के सामने एक पहाड़ी के नीचे पृथ्वी के सब देशों से आये हुए हाजियों की मजलिस होती है। सब लोग मक्के की ओर मुँह किये हुए कतार बाँध कर बैठ जाते हैं। रूम से आया हुआ एक मुअल्लिम पहाड़ी पर खड़ा होकर कुछ आराधना करता है। कुरान की कुछ आयतें वह पढ़ता है। उसके पीछे हजारों मनुष्य बैठकर उसकी आराधना सुनते हैं। सुनते क्या हैं, एक मनुष्य का स्वर, इतनी दूर से, सुनाई देना असम्भव है। परन्तु खबर आ जाती है कि आराधना आरम्भ हो गई, या अन्त हो गई। आराधना हो जाने पर तीन बार तोप दागी जाती है। बहुत लोग तो मुअल्लिम की सूरत तक को नहीं देख पाते। वह क्या कहकर आराधना करता है उसका सुनना तो दूर की बात है। सुनते हैं, इस बार १,००,००० यात्री वहाँ गये थे।

यहीं पर तीर्थ का असली कार्य—हज—खतम हो जाता है। इसके बाद मक्का दर्शन। मक्का अरब में हिजाज सूबे का सबसे बड़ा शहर है। वह एक बलुई तराई में है। उसके आस पास पहाड़ भी है। शहर की

लम्बाई कोई ३५०० कदम और आबादी कोई ६०,००० है। मकान प्रायः पत्थर के हैं। कोई-कोई मकान चार-चार पाँच-पाँच खण्ड के हैं। रास्ते चौड़े परन्तु बेहद मैले हैं। पुराने जमाने में यहाँ पर एक अरबी का कालेज था, परन्तु अब वह नहीं है। कालेज की इमारत में अब लोगों के घर हो गये हैं। अब भी एक आध स्कूल वहाँ हैं। एक शफाखाना भी है। यात्रियों के रहने के लिए अनेक मकान और नहाने के लिए अनेक हम्माम हैं। मक्का में सुल्तान रूम का राज्य है और उनके अफसर भी वहाँ हैं। परन्तु सब नाम मात्र के लिए। मक्का के कर्ताधर्ता वहाँ के शेरिफ अर्थात् शरीफ ही हैं।

मक्का में महम्मद साहब का जन्मस्थान जियारत की जगह है और भी कई जगहें हैं जहाँ यात्री लोग बहुत भक्ति-भाव से जाते हैं। पर मक्का में सबसे अधिक प्रसिद्ध जगह वहाँ की विशाल मसजिद है। मुसलमानी धर्म फैलने के पहले भी मक्का पवित्र तीर्थ माना जाता था। उस समय अरब में जो लोग रहते थे वे मूर्ति-पूजक थे। जहाँ पर यह मसजिद है, वहीं पुराने मूर्तिपूजकों के मन्दिर इत्यादि थे। उनके भीतर की मूर्तियों को मुसलमानों ने तोड़ डाला। इसी मसजिद के अहाते में काबा नाम की एक जगह है। उसे मुसलमान बहुत पवित्र समझते हैं। यहाँ पर संगे-अरबाद नामक एक काले पत्थर का टुकड़ा है। यात्री लोग उसे चूमते हैं और हिन्दुओं की तरह उस स्थान की प्रदक्षिणा करते हैं। अँगरेज ग्रन्थकारों का मत है कि यह पत्थर पहले मूर्तिपूजकों की किसी मूर्ति के रूप में था। ६८३ ईसवी में आग लग जाने के कारण वह कई जगह से टूट गया था। इससे वह एक चाँदी के बन्द से बाँध दिया गया है। मुसलमानों का कथन है कि इस पत्थर को जिबराईल ने हजरत इब्राहीम को दिया था। मक्का की इस मसजिद में काबा को छोड़कर जमजम नाम का कुआँ भी एक प्रसिद्ध स्थान है। इस मसजिद की कई दफा मरम्मत हुई है। हज के वक्त मक्के में कोई एक लाख के करीब यात्री इकट्ठे होते हैं।

जो लोग चाहते हैं वे मक्का से जिद्दा लौटकर फिर जहाज पर बैठ, उत्तर को मदीने की यात्रा करते हैं। रेल बन जाने पर मक्का ही से सीधे उत्तर की तरफ रेल पर बैठ कर मदीने जाना सहज हो जायगा। रेल बन रही है।

अरब में मदीना भी एक बड़ा शहर है। वह बिलकुल मैदान में है। परन्तु इसके भी इर्द-गिर्द कुछ दूर पर पहाड़ियाँ हैं। पहाड़ियों से नदियाँ भी निकली हैं। इसके पास के पहाड़ ज्वालामुखी हैं। १२६६ ईसवी में इनमें से एक पहाड़ का स्फोट हुआ था। और गली हुई ईंट पत्थर और धातुओं की अग्निमय धारायें मदीना के पास तक बह आई थीं। मदीना के चारों तरफ शहरपनाह है। आबादी कोई बीस हजार के करीब है। जो दशा हमारे यहाँ प्रयाग, काशी और गया आदि तीर्थों की है, वही मक्का और मदीना की भी है।

मदीने में हजारों आदमी बे हाथ-पैर हिलाये यात्रियों के मत्थे मजे उड़ाते हैं। यहाँ पर एक किला है। उसमें तुर्की फौज रहती है। मकान यहाँ भी सब पत्थर ही के हैं। गलियाँ चौड़ी कम हैं, पर साफ हैं।

मदीना में महम्मद साहब का रौजा है। महम्मद, अबूबकर, उमर और फातिमा इत्यादि के मकबरे सब एक ही इमारत में हैं। मदीना का महत्व इसी रौजे के कारण है। पहले यह एक मामूली इमारत थी। जब से वह बनी तब से दो दफे वह फिर से नई बनाई गई। पर १२५६ ईसवी में वह जलकर बिलकुल ही बरबाद हो गई। इससे तीसरी दफा उसे बनाना पड़ा। इमारत बहुत अच्छी है। जो लोग महम्मद के साथ मक्के से मदीने भग गये थे, उनकी भी कबरें शहर के पश्चिम कुछ दूर पर हैं। इन मकबरों की हालत बहुत खराब हो गई थी। परन्तु अब किसी किसी की मरम्मत हो गई है।

मदीने से उत्तर करबला है। करबला शीया सम्प्रदायवालों का तीर्थ है। हमने एक अँगरेजी मासिक पत्र में पढ़ा है कि वहाँ पर धार्मिक मुसलमान छुरा मार-मार कर अपने शरीर से खून बहा कर कुर्बानी करते हैं।

कुछ और भी उत्तर की ओर जरूसालम है। यह हजरत ईसा का जन्मस्थान है। परन्तु मुसलमान भी वहाँ बहुत जाते हैं। हमारे हाजी जी भी वहाँ जाने की इच्छा रखते थे। पहले उनके भाई ने भी उनके साथ जाना चाहा था। परन्तु छुट्टी न मिलने से वे इस साल नहीं जा सके। इसीलिए हाजी जी ने अकेले इतनी दूर का यात्रा करना उचित न समझा। अपने भाई के साथ, फिर, इसी अगले दिसम्बर के महीने में, वे मक्का की यात्रा करने वाले हैं।

मनोरंजक संस्मरण

चोंचजी का चोज़

श्री श्रीविनोद शर्मा ने किसी समय (आज से प्रायः चालीस-पैंतालीस वर्ष पहिले) एक हास्यरस की पुस्तक लिखी थी—चोंच महाकाव्य। पुस्तक जी० पी० श्रीवास्तव के युग की थी और खूब चली। उसके कई संस्करण हुए। उसका एक प्रभाव यह हुआ कि काशी के हास्यरसाचार्य पंडित कान्तानाथ पांडे ने अपना उपनाम 'चोंच' रख लिया। उनमें आशु कवित्व की भी प्रतिभा है। पांडेजी में गंभीरता और हास्य दोनों ही का बड़ा विलक्षण संगम है। कभी वे एकदम गंभीर हो उठते हैं, और कभी उनका चोंचत्व एक-दम भड़क उठता है। गंभीर कविता भी बड़े ऊँचे दर्जे की लिखते हैं, और हास्य रस का तो कहना ही क्या है।

एक बार उन्हें रेडियो में जाने का शौक हुआ। बहुत समझाया कि यह विभाग आपके योग्य नहीं है, पर नहीं माने। हठ पकड़ गये। बड़ी कठिनता से उन्हें एक रेडियो स्टेशन पर "स्क्रिप्ट राइटर" की जगह दिलायी गयी। वहाँ उन्होंने भरसक सफल होने का प्रयत्न किया और काफी सफलता भी प्राप्त की। किंतु उनके समान "आजाद परिंदे" के लिए रेडियो की नौकरी पूरा योगाभ्यास था। कई महीने—प्रायः एक वर्ष—उन्होंने यह नौकरी करके आत्मसंयम का एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया। हमें आश्चर्य था कि वे वहाँ कैसे ठहरे हुए हैं। सो, वह होना ही था। एक दिन आये और बोले "आज मैंने रेडियो से त्याग-पत्र दे दिया है और आज ही काशी चला जाऊँगा।" हमने पूछा—"क्यों, क्या बात हो गयी?" उत्तर में उन्होंने एक कागज उठाया और हमारे प्रश्न के उत्तर में तत्काल यह छंद लिख दिया—

सरस बना के, क्यों बिठाया नीरसों के संग,
संभव कभी क्या मन मार के यों रहना?
कपट-विहीन को निपट कुटिलों के बीच,
शान्त हो पड़ेगा क्या समस्त शाप सहना?
किस क्रूरता का पहिना है परिधान तूने,
होता कारगर जो न एक भी उलहना?
वाह रे! विधाता! यह तेरा ही प्रताप जो कि
पड़ता गयन्द को गधे को बाप कहना!

हम समझ गये कि कविता जोर कर रही है। अतिशयोक्ति अलंकार इसका प्रमाण है। चोंचजी की रेडियो की नौकरी की अभिलाषा पूरी हो गयी।

(२)

हल्दीघाटी के कवि पं० श्यामनारायण पांडे चोंचजी के परम मित्रों में हैं। दोनों ही हरिऔधजी को गुरुवत् मानते हैं। इसलिए गुरुभाई भी हैं। श्यामनारायण सीधे और गंभीर हैं। चोंचजी अपने चोंचत्व के कारण उनकी सिधाई का फायदा उठाया करते हैं। एक बार नैनीताल में एक कवि-सम्मेलन हुआ। कवि-सम्मेलन के दूसरे दिन रानी साहिबा शेरकोट की कोठी पर एक कविगोष्ठी हुई। कविता पाठ के पहिले श्री एन०सी० मेहता ने कहा कि अच्छा हो यदि कवियों का परिचय दे दिया जाय। हमने कान्तानाथजी से यह कार्य करने को कहा। वे बड़े सुन्दर वक्ता हैं और उन्होंने उपस्थित कवियों का परिचय बड़े सुन्दर और गंभीर ढंग से देना आरंभ किया। जब पं० श्यामनारायण पांडे की बारी आयी तो चोंचजी ने कहा—"देवियो और सज्जनो! काशी की महिमा अपार है। जिस प्रकार काशी के कंकर शंकर समान हैं, उसी प्रकार वहाँका प्रत्येक व्यक्ति कवि है। वहाँके सभी वर्ग और सभी व्यवसाय के लोगों में महान् कवि उत्पन्न हुए हैं। आपने वहाँके प्रसिद्ध जर्दा और सुरती के व्यापारी सुँघनी साहु का नाम सुना होगा जिनके वंश में कामायनी के कवि श्री जयशंकरप्रसादजी हुए जो छायावाद के आदि कवियों में माने जाते हैं और जिनकी टक्कर के कवि आधुनिक युग में कम ही हुए हैं। उसी प्रकार ये सज्जन जो आपके सामने विराजमान हैं, पं० श्यामनारायण पांडे हैं। इनकी भाँग और गाँजे की खानदानी दुकान अलईपुर स्टेशन के पास है। ये भी बहुत बड़े कवि हैं। हल्दीघाटी नामक प्रसिद्ध काव्य के ये ही यशस्वी लेखक हैं।" उस गोष्ठी में बड़े गण्यमान्य सज्जन और महिलाएँ थीं। हम लोग जो वास्तविकता जानते थे, खुलकर हँस भी नहीं सकते थे। बेचारे श्यामनारायण पांडे की बोलती बंद थी। चोंचजी गंभीर मुद्रा से धाराप्रवाह उनकी कीर्ति का इसी प्रकार बखान कर रहे थे। उन दिनों श्यामनारायणजी काशी के एक संस्कृत विद्यालय में अध्यापक थे।

(३)

इसके कुछ दिनों बाद दिल्ली में एक कवि-सम्मेलन हुआ। यह कवि-सम्मेलन वहाँ के हिंदू कालिज में हुआ था और वह इतना सफल हुआ था कि दिल्ली के जिन लोगों ने उसे सुना था वे उसे अब तक याद करते हैं। वहाँ भी अन्य कवियों के साथ ये दोनों भी गये थे। सम्मेलन समाप्त होने के बाद एक छात्रा चोंचजी के पास आयी और अपनी हस्ताक्षर पुस्तिका में हस्ताक्षर करने की प्रार्थना करने लगी। चोंचजी ने हस्ताक्षर कर दिये। तब उसने कहा "कविता की कुछ पंक्तियाँ भी लिख दीजिए।" चोंचजी ने तत्काल लिख दिया—

"अलईपुर में जिसका मकान
जिसकी है गाँजे की दुकान
दिल्ली में वह है वर्तमान
हल्दीघाटी का कवि महान!"

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिंटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
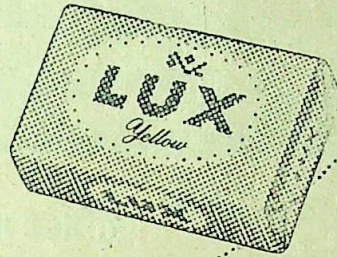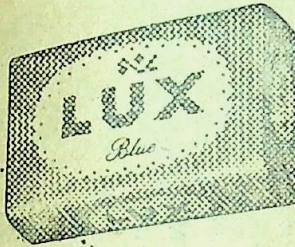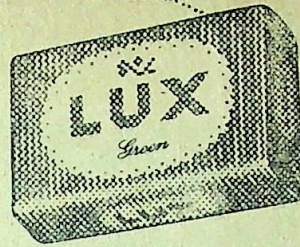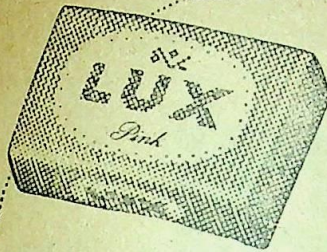
LUX
Pink
LUX
Green
LUX
Blue
LUX
Yellow
दीवाली!
'मेरा मनपसंद लक्स
इंद्रधनुष के
४ रंगों में
और सफ़ेद भी!'
आशा पारिख कहती हैं
चित्र तारिकाओं का शुद्ध,
मुलायम झागवाला सौंदर्य साबुन
LUX
TOILET SOAP
LTS.105-X52 HI
हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम हैं। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

- समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
- पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
- चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
- सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
- रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
- मेरा संघर्ष—लेखक गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०
- दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
- वंशानुक्रमविज्ञान—लेखक शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

- समस्या का हल
- मृत्युलोक की झाँकी
- लाल दूत
- अनन्त की ओर
- वंशानुक्रम विज्ञान
- मशीन के पुर्जे
- रूपान्तर
- रूस की क्रान्ति
- धरती माता
- इत्सिंग की भारत-यात्रा
- परलोक-रहस्य
- लखनऊ की शहजादियाँ

- घर का भेदिया
- अग्रणी
- नीमचमेली
- जीवन-शक्ति का विकास
- साथी
- निष्कलङ्किनी
- पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
- समस्या
- च्याँगकाई शेक
- हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
- तीन नगीने
- पूर्व के पुराने हीरे

मिलने का स्थान

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

पाँच संस्मरणात्मक ग्रन्थ

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओत प्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मेरी अपनी कथा

विद्यावाचस्पति पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचि-पूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ चुने हुए उपन्यास तथा नाटक-प्रहसन

नाटक प्रहसन

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे कुछ चुने हुए उपन्यास

सरस्वती
दिसम्बर
१९६१

बड़े दिन के उपलक्ष्य में अनुपम अनुवाद साहित्य

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पैसे।

१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २·५० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन
अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन
मूल्य २·७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप शक्ति की युक्तियों के विकास का पूर्ण सार इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

(यह चित्र रेक्टेंगुलर हाट प्लेट का है)

साइण्टिफिक इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिजाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)
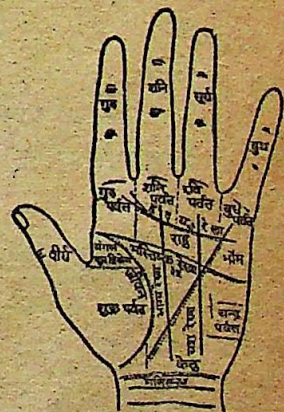
देखिये :—डा० एस० सी० जैन, एम० डी० एम० आर० पी० (लन्दन), एम० आर० सी० पी० (एडिनबर्ग) फिजीशियन, मेडिकल कालेज, लखनऊ ता० १२जून १९५६ क्या कहते हैं :—

मुझे यह लिखते हुए हर्ष हो रहा है कि ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के एक विख्यात ज्योतिषी हस्तरेखा-विशारद और तांत्रिक हैं। लगभग सात वर्ष हुए जब श्री सिंह जी ने मेरे भविष्य जीवन के सम्बन्ध में अनेक भविष्यवाणियां की थीं और वे सभी ही आश्चर्य रूप से सत्य सिद्ध हुईं। यहाँ तक कि मास और दिनों तक में उनकी बताई हुई, मेरे विवाह, समुद्र-यात्रा तथा कार्यलाभ की, तिथि आश्चर्य रूप से ठीक निकली।

केश विन्यास
की पूर्णता
के लिये . . .
गोल्डेन आमला
केश
तैल
बंगाल केमिकल
कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

उमेश योग दर्शन

(प्रथम भाग)

चार भाषाओं में अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती व मराठी

(लेखक : श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी)

योग की यथार्थ व्याख्या पर बेजोड़ पुस्तक जिसके द्वारा आप अपनी पाचन क्रिया, स्नायुविक क्रिया, श्वास तथा मूत्र सम्बन्धी तथा अन्य शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखना सीख लेंगे ! पुस्तक में १०८ आसनों के वास्तविक चित्र पूरी तरह से दिखाये गये हैं जिनके द्वारा आप विभिन्न रोगों तथा शारीरिक अव्यवस्थाओं की पूर्ण चिकित्सा योग, प्राकृतिक चिकित्सा, क्रोमोपेथी, साइकोथिरेपी इत्यादि के द्वारा जान लेंगे ।

स्त्रियों व पुरुषों, युवक, वृद्ध, स्वस्थ तथा अस्वस्थ, सब के लिए समान रूप से लाभदायक ! प्रत्येक घर अस्पताल और पुस्तकालय में रखने योग्य ।

मूल्य : १५ रु०, डाकखर्च २ रुपया अलग। वी० पी० पी० नहीं भेजी जाती ।

योग आसन चार्ट

चमकदार आर्ट पेपर पर छपा हुआ चार्ट जिस पर आकर्षक चित्र बने हुए हैं, प्राप्य है। उनमें दिखाये गये आसनों का अभ्यास आप अपने घर पर कर सकते हैं। इससे आप सदा स्वस्थ रहेंगे।

यौगिक कक्षायें

यौगिक कक्षायें भी सुबह-शाम श्री रामतीर्थ योगाश्रम में लगती हैं। स्त्रियों के लिये विशेष कक्षायें लगती हैं तथा स्त्रियों को अध्यापिकायें शिक्षा देती हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तैल (स्पेशल नं० १ रजिस्टर्ड)

झड़ते हुए बालों के लिये एक अमूल्य टानिक है। वैज्ञानिक रीति से मूल्यवान औषधियों से निर्माण किया जाता है। जिससे मस्तिष्क ठंडा रहता है तथा मीठी नींद आती है। शरीर मालिश के लिये आदर्श है। सभी के लिये प्रत्येक मौसम में लाभप्रद है। मूल्य बड़ी बोतल ४.५० छोटी बोतल २.२५ हर जगह मिलती है।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर (मध्य रेलवे) बम्बई—१४ फ़ोन ६२८९९

शुद्ध, मुलायम झाग वाला
लक्स
इंद्रधनुष के
४ रंगों में
और आप का मनपसंद सफ़ेद भी
LUX
हरा
नीला
LUX
LUX
गुलाबी
बसंती
LUX
'हर रंग में
अद्भुत आकर्षण—
मुझे ये सभी पसंद हैं!'
वैजयंती माला कहती हैं
देखिये! लक्स के छबीले रंग और उन्हीं रंगों के छबीले आवरण! और सफ़ेद भी! रंग अनेक, साबुन एक, आप का मनपसंद शुद्ध लक्स—आप के रंग रूप की रौनक़!
LUX
चित्र तारिकाओं का
शुद्ध, मुलायम झागवाला
सौंदर्य साबुन।
हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन
L. 86-X52 HI
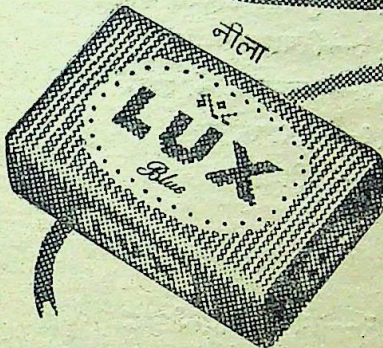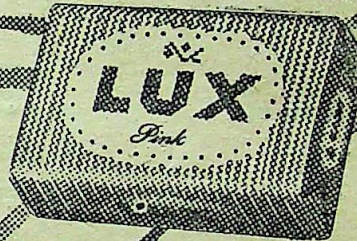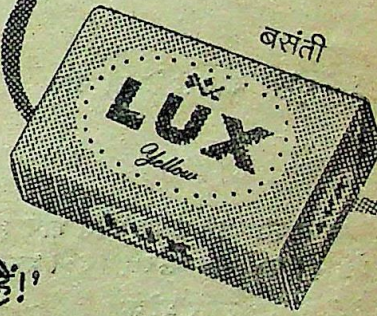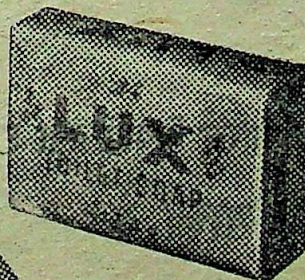
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश के महत्वपूर्ण प्रकाशन

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के महत्वपूर्ण प्रकाशन प्रत्येक व्यक्ति और संस्था के लिये उपयोगी हैं। कृपया इन्हें क्रय करके अपने पुस्तकालय का महत्व बढ़ावें और अपने ज्ञान में वृद्धि करें।

हिन्दी

१—वाजिदअली शाह और अवध राज्य पतन ४·५०
२—स्वतंत्र भारत की एक झलक ४·५०
३—गदर के फूल ४·५०
४—चन्द्र सखी के लोकगीत और भजन २·००
५—उत्तर प्रदेश के लोकगीत २·५०
६—राष्ट्रीय कवितायें ०·५०
७—समाजवाद ०·७५
८—भारतीय बुद्धजीवी ०·७५
९—अमीर खुसरो ०·२५
१०—उत्तर प्रदेश में लोकनृत्य १·००
११—बुद्ध चित्रावली ६·००
१२—दिव्य ज्योति ०·६२
१३—निर्माण के स्वर
१४—बापू और हरिजन
१५—स्फुट विचार
१६—भारतीय समाजवाद आर्थिक संयोजन और विकेन्द्रीयकरण
१७—अलखनन्दा मन्दाकिनी के दो तीर्थ
१८—बुन्देली कहावत कोष
१९—विधायन प्रणाली
२०—राज्यपाल की डायरी से
२१—नाना साहब
२२—समिधा

उर्दू

१—उर्दू में कौमी शायरी के सौ साल ५·००
२—नगमये आजादी

अंग्रेजी

१—फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश भाग १, २, ३ प्रत्येक १० रु०, भाग चार १४ रु०। भाग पांच १६·००
२—ग्लोरीज आफ उत्तर प्रदेश ८·००
३—स्पार्क्स फ्राम ए गवर्नर्स एनविल भाग १, ५ रु० भाग २ ८·००
४—वर्ड्स दैट मूव्ड ६·००
५—लीव्ज फ्राम ए गवर्नर्स डायरी भाग १, ४ रु०, भाग २ ४·००
६—म्यूजिसियन्स आई हैव मैट ३·००
७—दि सिटी आफ ताज
८—थाट्स आन एजूकेशन एन्ड सम एलाइड प्राबलम्स
९—दि ट्रायल आफ आवर डेमोक्रेसी
१०—इन्डियन इन्टेलेक्च्युअल्स
११—दिस मैन आफ गाड ट्राड दि अर्थ
१२—लेजिसलेटर्स हैण्ड बुक
१३—रेन्डम थाट्स

कृपया व्यापारिक नियमों तथा पुस्तकों के लिये इन पतों पर लिखें

१—बिक्री शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

२—सूचना साहित्य, सूचना केन्द्र, हज़रतगंज, लखनऊ।

कमखर्ची से आपको कोई परेशानी न होगी

यदि आप नियमित रूप से थोड़ी बचत करते रहे तो इससे आपको कोई परेशानी नहीं होगी। इसके विपरीत ऐसा करने से आपको अपनी कठिनाइयों पर विजय पाने में सफलता मिलेगी। सच पूछिये तो आपकी 'बचत' आर्थिक तंगी के विरुद्ध एक बचाव है जो न केवल आपकी बल्कि आपके बच्चों की जीवन संबंधी जरूरतों को पूरा करने की गारंटी है।

उदाहरण के, लिये, सावधिक बढ़ने वाली बचत योजना के अन्तर्गत जमा किया गया आपका धन, शुरू में बहुत कम हो सकता है, किन्तु धीरे-धीरे वह इतनी बड़ी राशि हो जा सकती है कि उसे देख कर आपके आनन्द की सीमा न रहे। राष्ट्रीय बचत योजना के अंतर्गत धन जमा करने में आपको कोई त्याग नहीं करना पड़ता किन्तु फायदे हजार हैं।

बचत योजना के लिए ऐजेन्ट चाहिये कृपया जिला संघटनकर्ता से सम्पर्क स्थापित करें।

राष्ट्रीय बचत विभाग के लिये, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित
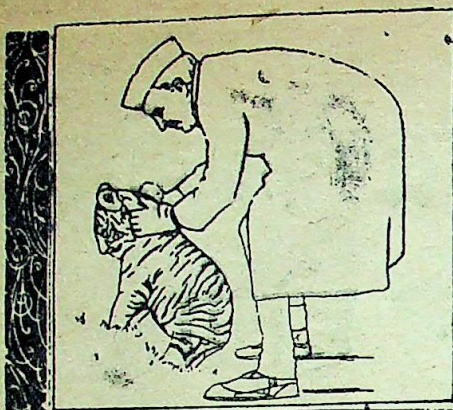
भारत के प्राण

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

की

७३ वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य

में

हिन्दी संसार को अनुपम भेंट

मानवता का प्रहरी

ले० पी० डी० टंडन पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १॥) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

रवीन्द्र-प्रतिभा पुष्प

कवीन्द्र रवीन्द्र की शताब्दी न केवल बंगाल या भारत में धूमधाम से मनाई गई बल्कि योरप, रूस और अमरीका तक में इसका अपूर्व आयोजन हुआ और कवीन्द्र की प्रतिभा की विजय-दुन्दुभि निनादित हुई। उन्हीं कवीन्द्र के कुछ ग्रन्थ यहाँ विज्ञापित हैं। कवीन्द्र का मुख्य क्षेत्र कविता था; पर उन्होंने कहानियाँ, छोटे-बड़े उपन्यास, देश-भ्रमण, साहित्य आदि विविध अंगों पर ऐसी विचित्र रचनाएँ की हैं कि संसार शतमुख से उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाता। उनकी विख्यात रचनाओं का अध्ययन और मनन करके पाठक समझेंगे कि रवीन्द्र बाबू का संसारव्यापी इतना आदर क्यों है।
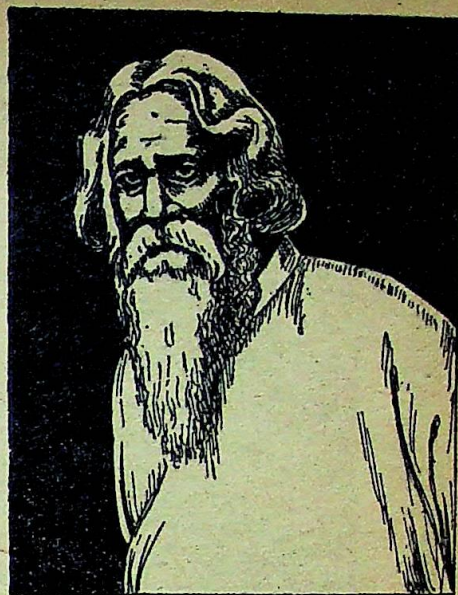
बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२.२५	गीताञ्जली	१.५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२.५०	मुकुट	०.५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५.००	विचित्र प्रबन्ध	२.२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१.५०	प्राचीन साहित्य	१.५०
विश्व-परिचय	२.००	गल्प गुच्छ भाग १	१.२५
मास्टर साहब	०.५०	गल्प गुच्छ भाग २	१.५०
योगायोग	४.००	गल्प गुच्छ भाग ३	१.५०
विचित्र वधू रहस्य	२.००	गल्प गुच्छ भाग ४	१.५०
रूस की चिट्ठी	१.५०	व्यंग कौतुक	१.२५
मेरा बचपन	२.००	हास्य कौतुक	१.२५
आश्चर्य घटना	२.५०	राजर्षि	२.००
चार अध्याय	१.५०	डाकघर	०.७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विद्यायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक पृष्ठ २१२ मूल्य ५), खंड दो, पृष्ठ ३६४ मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

संस्कृति-केन्द्र उज्जयिनी

स्वर्गीय पंडित व्रजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में उज्जयिनी के व्यापक महत्त्व, धार्मिक महत्त्व, उज्जयिनी के इतिहास, उज्जयिनी के मुख्य नर-पतिगण, विक्रमादित्य और उनके नवरत्न, कालिदास के मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी और उज्जयिनी से सम्बन्धित महान् व्यक्तियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है। पुस्तक में २५ चित्र हैं। अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापे गये सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ३।) या ३ रु० २५ नये पैसे।

प्रसंगिक कथा-कोष

सम्पादिका : श्रीमती गुलाब मेहता

रामायण, महाभारत और पुराण आदि की अन्तर्कथाओं का ऐसा रोचक और उपयोगी संग्रह, जिनके लिए विद्यार्थियों को ही नहीं, बल्कि अनेक अध्यापकों को भी इधर-उधर भटकना पड़ता है। अकारादि क्रम से इस कोश में प्रायः उन सभी प्रमुख अन्तर्कथाओं का समावेश है, जिनका उल्लेख धार्मिक और पौराणिक कहानियों तथा कविताओं में रहता है। कोश के अन्त में कुछ कही-सुनी बातों का विश्लेषण और संख्या-कोष का भी परिचय दे दिया गया है।

अनेक चित्रों से विभूषित इस कथा-कोश की पृष्ठ-संख्या ३५६ है। मूल्य २'५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती सीरीज नये रूप रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा और छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का केवल एक रुपया पचास नये पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर जनता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

- समरकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
- पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
- चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
- सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
- रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
- मेरा संघर्ष—लेखक गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०
- दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
- वंशानुक्रमविज्ञान—लेखक शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल दस आने या ६२ नये पैसे में प्रत्येक पुस्तक, जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

- समस्या का हल
- मृत्युलोक की झाँकी
- लाल दूत
- अनन्त की ओर
- वंशानुक्रम विज्ञान
- मशीन के पुर्जे
- रूपान्तर
- रूस की क्रान्ति
- धरती माता
- इत्सिंग की भारत-यात्रा
- परलोक-रहस्य
- लखनऊ की शहजादियाँ

मिलने का स्थान
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

- घर का भेदिया
- अग्रणी
- नीमचमेली
- जीवन-शक्ति का विकास
- साथी
- निष्कलङ्किनी
- पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
- समस्या
- च्यांगकाई शेक
- हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
- तीन नगीने
- पूर्व के पुराने हीरे

विषय-सूची

चित्र : १ रंगीन, ६ सादे।

महामना मालवीयजी

—श्री विष्णुनारायण भार्गव के सौजन्य से।

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६२ पूर्ण संख्या ७४४ | इलाहाबाद : दिसम्बर १९६१ : मार्गशीर्ष २०१८ | खण्ड २ संख्या ६

सम्पादकीय

महामना मालवीयजी की जन्म-शती—इस मास रा देश महामना मालवीयजी की जन्म-शती मना रहा । उनका जन्म २५ दिसंबर सन् १८६१ को हुआ था । रस्वती ने इस वर्ष उनके प्रिय पात्र पं० व्रजमोहन व्यास उनके संस्मरण लिखवाकर उनकी जन्म-शताब्दि मनायी और इस अंक में हम उन पर कई महत्त्वपूर्ण लेख काशित कर रहे हैं। ये लेख उन लोगों ने लिखे हैं जिन्हें, सजी की तरह, महामना के निकट सम्पर्क में आने का ाग्य प्राप्त हुआ था । इस अंक में हम इंदौर के प्रसिद्ध कार श्री देवलालीकर का बनाया हुआ उनका एक त्वपूर्ण रंगीन चित्र भी प्रकाशित कर रहे हैं । अपने निवास से दो-चार वर्ष पूर्व मालवीयजी स्वास्थ्य लाभ ने के लिए मसूरी गये थे और वहाँ कुछ दिनों रहे। समय श्री देवलालीकर ने वहाँ जाकर यह चित्र कित किया था ।

सन् १८९७-९८ में हमारे पूज्य पिताजी की नियुक्ति ाग के एक सरकारी कार्यालय में हुई, और हमारा वार प्रयाग आया। वहाँ जो पहिला घर किराये पर मिला वह मालवीयजी के घर के पास ही—दस-पांच गज पर था। उनका दफ्तर भी निकट ही था। इस प्रकार पांच-छः वर्ष की अवस्था में ही हमें उनके भव्य और दिव्य दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो गया था। हमारे पिताजी से उनकी घनिष्ठता भी हो गयी थी। उस समय प्रयाग में एक 'सनातन धर्मप्रवर्द्धिनी सभा' नाम की संस्था थी। मालवीयजी उसके सभापति थे। हमारे पिताजी कई वर्ष उसके मंत्री रहे। इसी पड़ोस के एक 'गुरु' की पाठशाला में (जो स्वयं भी मालवीय ब्राह्मण थे) हमने कुछ दिनों 'नागरी' और 'महाजनी' की आरंभिक शिक्षा पायी। अतएव बालकपन ही से मालवीयजी हमारे लिए एक आदरणीय आदर्श व्यक्ति रहे और उनकी महत्ता की जो छाप उस समय हमारे मानस पटल पर अंकित हो गयी वह उत्तरोत्तर गहरी होती गयी ।

कुछ दिनों बाद हम लोग दारागंज नामक मोहल्ले में चले गये थे जो गंगाजी के किनारे है। यहाँ सुसंयोग से हमारा घर मालवीयजी के गुरु, पुण्यश्लोक प० आदित्य-

राम भट्टाचार्यजी के घर के निकट था। उनके दो भतीजे हमारे सहपाठी थे। मालवीयजी कभी कभी अपने गुरु के दर्शन करने आते थे। उनकी अपने गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा थी, उसका एक उदाहरण व्यासजी ने अपनी 'संस्मरण' माला में दिया है। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना पर वे कुछ दिनों के लिए उन्हें काशी ले गये थे और उनके सम्मान में वहाँ 'आदित्य नगर' नामक ग्राम बसाया।

बाद में, प्रौढ़ता प्राप्त करने पर, हमें मालवीयजी के अनेक कार्यक्षेत्रों को जानने का अवसर मिला, जैसे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, हिन्दी-आन्दोलन, सेवा समिति, बॉय स्काउट संस्था आदि। उनके राजनीतिक कार्यों से भी परिचय हुआ। ज्यों-ज्यों उनको अधिक जाना, त्यों-त्यों उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती गयी। यह कहना कठिन है कि वे किस क्षेत्र में महान् नहीं थे। उनकी महत्ता का कुछ आभास पाठकों को सभी क्षेत्रों में मिलेगा। किन्तु संयोग-वश बचपन के संस्कारों के कारण हमने उन्हें व्यक्ति की दृष्टि से ही सदैव देखा। अँगरेजी में एक कहावत है कि No man is hero to his valet अर्थात् अपने निजी नौकर के लिए कोई व्यक्ति आदर्श पुरुष नहीं हो सकता। किन्तु मालवीयजी चरित्र के इतने महान् और निर्दोष थे कि उनके अत्यंत निकट रहनेवाला व्यक्ति भी उनमें कोई बनावट, दम्भ या दुर्गुण नहीं पा सकता था।

इस जन्म-शती के अवसर पर हम उस महान् पुरुष का विनम्र वंदन करते हैं जिसने देश में उस नैतिकता और उच्च चरित्र का जीवंत उदाहरण रखा जिसकी आज हमें सबसे अधिक आवश्यकता है, जिसने हिंदुओं को अपना स्वरूप पहिचानने के योग्य बनाया, जिसने उनमें स्वाभिमान उत्पन्न किया, जिसने युग के अनुरूप चलते हुए भी हिंदुओं में धार्मिक आस्था, आस्तिकता, श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न किया और जिसने मातृभूमि और हिंदी के प्रति हमें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कराया, जो करुणा की मूर्ति थे, जिनका हृदय करोड़ों देशवासियों के साथ स्पंदित करता था, अनय और क्षुद्रता जिनके पास भी नहीं फटक सकती थी,—उन आधुनिक महर्षि मालवीय के प्रति 'सरस्वती' श्रद्धा से नत है।

चीन के लिए यह नर्मी क्यों ?—हम श्री कृष्ण मैनन के विरोधी नहीं रहे। इसके विपरीत हम उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, मेधा, स्पष्टवादिता और अनुपम भाषणशक्ति के प्रशंसक ही रहे हैं। कई वर्ष पहिले हमने उन पर एक प्रशंसात्मक और सहानुभूतिपूर्ण लेख भी प्रकाशित किया था। देश में उनका जो विरोध है, उससे भी हम परिचित रहे हैं, पर राजनीति में विरोध सदैव तर्कसंगत ही नहीं होता। यह जानते हुए कि वे प्रधान मंत्री के विश्वास-भाजन हैं, हमें उन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं था। किन्तु हमें यह देखकर निराशा होती है कि चीन के मामले में वे बहुत दबकर बोलते हैं और जिस देश ने हम पर आक्रमण करके हमारी बारह हजार वर्गमील धरती दबा ली है उसके लिए उनके शब्द-तूणीर से कोई तीखे वाग्बाण नहीं निकलते। वे राष्ट्रसंघ में भारत के मुख्य प्रतिनिधि ही नहीं, देश के प्रतिरक्षा-मंत्री भी हैं और भारत की सीमा की सुरक्षा उनका प्रथम कर्त्तव्य है। भारत सरकार के उत्तरदायी शासकों ने बारह हजार वर्गमील खोने के बाद यह घोषणा की कि अब चीन को एक इंच आगे नहीं बढ़ने दिया जायगा। किन्तु संसद की कार्यवाही से पता चलता है कि चीनियों ने फिर हमारी कुछ धरती और दबा ली, और हमारे शासकों की उपर्युक्त दर्पोक्ति के बावजूद हमारी सेना ने चीनियों के बढ़ाव को रोकने की कोई समुचित कार्यवाही नहीं की। हमारी सरकार केवल औपचारिक विरोध-पत्र देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठी। यही नहीं, राष्ट्रसंघ में भाषण करते हुए श्री कृष्ण मैनन ने यह तक कह डाला कि "हमारी धरती के कुछ भाग पर चीनी तत्त्व आ गये हैं (पर) कोई सक्रिय शत्रुता नहीं है।" (There are Chinese elements on a part of our territory; there is no active hostility) इसे पढ़कर हम अवाक् रह गये। जिस देश ने हमारी बारह हजार वर्गमील धरती दबा ली है, और इतने पर भी हमारे शांत रहते हुए जो फिर हमारे देश में घुसकर और धरती दबा ले, तो यदि उसका यह कार्य 'सक्रिय शत्रुता' नहीं कहा जायगा तो क्या कहा जायगा ? पुर्तगाल ऐतिहासिक कारणों से शताब्दियों से चीन द्वारा अपहृत भूमि से कहीं कम भूमि पर राज्य करता आ रहा है। देश उसे भी आक्रमण (aggression) समझता है और आज भारत और पुर्तगाल के बीच अविज्ञापित शत्रुता है। हमारे ये ही नेता आये दिन उसके विरुद्ध धुंआधार भाषण करते हैं जिससे देश सहमत है। किन्तु पुर्तगाल ने पिछले सौ वर्षों में भी हमारे किसी नये भाग पर आक्रमण नहीं किया। इसके विपरीत, चीन ने उन दिनों जब 'पंचशील' के इकतर्फा प्रेम से प्रेरित होकर हम "हिंदी-चीनी भाई-भाई" के नारे लगा रहे थे और जब हमने तिब्बत की राजनीतिक हत्या करने पर भी उसकी भर्त्सना नहीं की, तब ऊपर से मित्रता का स्वांग करते हुए उसने विश्वासघात करके हमारे बारह हजार वर्गमील पर चुपके से अधिकार कर लिया। यही नहीं अब जब हम इतने पर भी निष्क्रिय हैं, उसने फिर कुछ और धरती पर अधिकार कर लिया। यह "सक्रिय शत्रुता" नहीं तो क्या है ? हमारी सेना, जिसकी बाग-डोर प्रतिरक्षा-मंत्री के हाथ में है, इस बीच क्या करती रही, और उसने कैसे चीनियों को इस अतिरिक्त भूमि पर अधिकार करने दिया ? और इसके बाद श्री मैनन ने यह कहकर जले पर नमक छिड़क दिया कि चीन और हमारे बीच 'सक्रिय शत्रुता' नहीं है ! इन बातों की देश में जो प्रतिक्रिया हुई है, उस पर सरकार को गंभीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए। इनसे प्रतिरक्षा-मंत्री के विरुद्ध देश में तीव्र भावना उत्पन्न हो गयी है। देश को इस बात

जानने का अधिकार है कि चीन के इस नये आक्रमण को न रोकने का उत्तरदायित्व किसका है। चीन के प्रति इस नरम नीति से काम नहीं चलेगा। देश विरोध-पत्रों से ऊब गया है। वह सुरक्षा-मंत्री से सक्रियता चाहता है। सुरक्षा में वाक्शूरता से काम नहीं चलता। वहाँ अधिक शक्तिशाली शूरता की आवश्यकता है। राष्ट्र की रक्षा अंत में शस्त्र ही कर सकते हैं––कहा भी है, 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे।' यह नहीं सुना गया कि 'शब्देन रक्षिते राष्ट्रे।'

दसलखा अणुबम––अणुबम इतने संहारक हैं कि उनके उपयोग, बनाने और नये प्रकार के अणुबमों के परीक्षण पर रोक लगाने की माँग संसारव्यापी है। संसार में कुछ दिनों पहले तक केवल तीन देश अणुबम बनाते थे––रूस, अमरीका और इँग्लैण्ड। अब फ्रांस भी उन्हें बनाने लगा है। तीनों देशों के पास छोटे-बड़े हजारों अणुबम तैयार रखे हैं। पर विज्ञान प्रतिदिन नये ढंग के अधिक संहारकारी अणुबम बनाने की तरकीबें निकालता जा रहा है। जब कोई नये ढंग का बम बनाया जाता है तो उसकी सफलता शक्ति और प्रभाव को जाँचने के लिए उसका परीक्षण किया जाता है। संसार की जनता वर्तमान ढंग के अणुबमों ही से त्रस्त है। वह उन्हें भी नष्ट करना चाहती है। किन्तु अणुबमों वाले देश उनका उपयोग न करने के लिए वचन नहीं दे रहे हैं। तब यह माँग की गयी कि कम से कम नये और अधिक भयंकर अणुबम न बनाये जायँ। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, नये बमों का उपयोग करने के पहिले उनका परीक्षण आवश्यक है। अतएव संसार के जनमत ने यह माँग की कि नये अणुबमों का परीक्षण कोई देश न करे। किसी देश ने इसे नियमित रूप से स्वीकार नहीं किया, किन्तु व्यावहारिक रूप से एक प्रकार का समझौता-सा हो गया कि अब कोई देश नये बमों का परीक्षण न करेगा। तदनुसार रूस, अमरीका और इँग्लैण्ड ने कई वर्षों से कोई परीक्षण नहीं किया। किन्तु हाल ही में रूस ने, बिना किसी उपयुक्त कारण के, अणुबमों का परीक्षण आरंभ कर दिया। उसने उत्तरी ध्रुव प्रदेश के पास कई छोटे-बड़े अणुबमों का परीक्षण किया, किन्तु अमरीका कहता है कि पचास बम छोड़े गये। जो भी हो, रूस के इस कार्य की सर्वत्र निन्दा हुई और भारत की तरह वे राष्ट्र भी, जिनकी उससे सहानुभूति है, उसके इस काम से असंतुष्ट हैं। मालूम होता है कि अणुबमों के परीक्षणों की रोक की अवधि में वह अनेक नये ढंग के अणुबम बनाता रहा। जब तक वे सब तैयार नहीं हुए, तब तक उसने परीक्षण न करने के अनौपचारिक समझौते को माना, किन्तु जब वे सब तैयार हो गये, तब उसने संसार के जनमत की पर्वाह न करके उनका परीक्षण आरंभ कर दिया।

उसके इन परीक्षणों में जिस अणुबम की सबसे अधिक चर्चा हुई है वह है पचास दसलखा बम (५० मीगाटन बम)। पाठकों को मालूम है कि चट्टान तोड़ने के लिए उसमें डाइनामाइट का एक छोटा-सा टुकड़ा लगा कर उसका विस्फोट किया जाता है। यह टुकड़ा पाव भर के लगभग भारी होता है। उस छोटे से टुकड़े में इतनी शक्ति होती है कि उससे सैकड़ों मन की चट्टान टूटकर गिर जाती है। डाइनामाइट की तरह एक विस्फोट होता है जिसे टी० एन० टी० कहते हैं। बमों के विस्फोट की शक्ति की तुलना करने या नापने के लिए एक टन टी० एन० टी० का विस्फोट मानक (स्टैण्डर्ड यूनिट) माना जाता है। एक टन में प्रायः २८ मन होते हैं। पाव भर डाइनामाइट की शक्ति हम देख चुके हैं। अतएव हम कल्पना कर सकते हैं कि २८ मन डाइनामाइट के विस्फोट में कितनी शक्ति होगी। ऐसे दस लाख टन डाइनामाइट की शक्तिवाले बम को दसलखा टनी (मीगाटन) बम कहा जाता है। रूस ने जिस भयंकर अणुबम का परीक्षण किया वह ५० दस लाख टन टी० एन० टी० की शक्ति का था। अर्थात् उसके विस्फोट में इतनी शक्ति थी जितनी १४ करोड़ मन डाइनामाइट के विस्फोट में हो सकती है। रूस ने जो दसलखा टनवाला बम छुड़ाया, वह वास्तव में ५० दसलखा टन से अधिक शक्ति का था। लोगों का अनुमान है कि वह ७० या ७५ दस लाख टन का था। १०० दसलखा टनवाला अणुबम भी बनाया जा सकता है। हमारे लिए उसके विस्फोट की भयंकरता का अनुमान करना भी असंभव है। अमरीकन वैज्ञानिकों और अणु-विशेषज्ञों का कहना है कि १०० दसलखे टनी अणुबम के विस्फोट से जहाँ वह गिरेगा उसके आसपास के एक हजार वर्गमील क्षेत्र में प्रत्येक वस्तु नष्ट हो जायगी। इसके अतिरिक्त उससे इतनी गर्मी पैदा होगी कि उससे लगे हुए प्रायः साढ़े ग्यारह हजार वर्गमील के क्षेत्र में आग लग जायगी। वायु में दो गैसें होती हैं: आक्सिजन और नाइट्रोजन। आक्सिजन वह पदार्थ है जिससे हम साँस लेते हैं और जिसके कारण आग जलती है। जब हम साँस लेते हैं तब हमारे फेफड़ों में जाकर वह रक्त में मिल जाती है और उसे शक्ति देती है। वहाँ वह शरीर के कार्बन से मिलकर कार्बन डाई-आक्साइड नाम की गैस बनाती है जिसे हम साँस द्वारा बाहर निकाल देते हैं। अँधे कुओं में यह गैस भरी होती है। इसी कारण आक्सिजन न मिलने के कारण लोग उनमें जाकर दम घुटने से मर जाते हैं। जब आग जलायी जाती है तब वायु का आक्सिजन उसमें जलता है और कार्बन डाई-आक्साइड गैस बनती है। १०० दसलखा टनी अणुबम से इतनी गर्मी पैदा होगी और इतनी आगें लगेंगी कि प्रायः साढ़े ग्यारह हजार वर्गमील के क्षेत्र की वायु का आक्सिजन जल जायगा और उसकी जगह कार्बन डाइ-आक्साइड ले लेगा। इससे उस क्षेत्र के प्राणियों का दम घुट जायगा।

यह परिणाम तो इतनी शक्ति के साधारण बम के विस्फोट से भी हो सकता है, किन्तु अणुबम के विस्फोट का एक और भयंकर परिणाम होता है। उससे अति सूक्ष्म रेडियो सक्रिय पदार्थ उत्पन्न होता है जो अति सूक्ष्म

धूल-कणों में घुल जाता है। वह विस्फोट के बाद वायु-मंडल में ऊपर उठता है और सैकड़ों-हजारों मील फैलकर नीचे पृथ्वी पर गिरने लगता और वायु में, जल में तथा अन्य पदार्थों में अदृश्य रूप से मिल जाता है। उसके थोड़े से कण भी साँस या अन्य किसी प्रकार से शरीर में पहुँचने पर मनुष्य को भयंकर रोग हो जाते हैं। उसका रक्त या हड्डी गलने लगती है। उसकी प्रजनन-शक्ति नष्ट हो जाती है। जिनकी प्रजनन-शक्ति नष्ट नहीं भी होती उनकी संतान को इसी तरह के रोग हो जाते हैं। अणु-बमों के परीक्षणों से भी इस प्रकार के रेडियो सक्रिय पदार्थ उत्पन्न होकर संसार में फैलते हैं। यदि उनकी मात्रा एक निश्चित सीमा से अधिक हो जाय तो वे लोगों में ये रोग उत्पन्न कर देंगे। अतएव यदि अणु-युद्ध न भी हो, और ये परीक्षण बराबर होते रहें, तो भी संसार के प्राणियों को बड़ा खतरा है। यह एक अन्य कारण है जिससे संसार का जनमत अणुबमों के परीक्षणों के विरुद्ध है। किन्तु संहारकारी विज्ञान में उन्नति करनेवाले और इन संहारकारी अस्त्रों के बनाने के लिए अरबों रुपया खर्च करने में समर्थ ये मदांध देश मानवता के कल्याण से एकदम उदासीन होकर इन परीक्षणों को कर रहे हैं। शांति तथा मानव-कल्याण की बात करनेवाले ये देश 'मुँह में राम, बगल में छूरी'-वाली कहावत के मूर्त उदाहरण हैं। विज्ञान ने मनुष्य के हित में बहुत कुछ किया, किन्तु उसने इन संहारी बमों को बनाकर अपने कल्याणकारी कामों पर हरताल फेर दी। भारत तथा अन्य देश इसके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा रहे हैं, पर नक्कारखाने में अभी तूती की आवाज का कोई विशेष प्रभाव नहीं मालूम पड़ता। यदि इन मदांध देशों ने इन भंयकर अणु-अस्त्रों का परित्याग न किया तो एक दिन इनका विनाश निश्चित है, किन्तु इनके साथ मानवता का भी नाश होगा—ये लोग 'आप डूबेंगे, और यार को ले डूबेंगे!'

मुहम्मद तुग़लक के चरण-चिह्नों पर—दिल्ली में एक समय एक बादशाह राज करता था। उसका नाम मुहम्मद तुग़लक था। वह पागल समझा जाता है क्योंकि उसने कई बे-सिर-पैर के काम किये थे, यद्यपि वे उसे बड़े तर्कसंगत मालूम होते थे। एक बार उसने सोचा कि राजधानी राज्य के मध्य में होनी चाहिए। दिल्ली प्रायः एक कोने में है। अतएव उसने आज्ञा दी कि राजधानी दिल्ली से उठकर दौलताबाद चली जाय। दिल्ली के सब निवासियों को शाही हुक्म हुआ कि दौलताबाद चलो। उसके आतंक से भय-भीत दिल्ली के स्त्री-पुरुषों, बाल-वृद्धों, धनी-निर्धनों को अपना सारा सामान लेकर दौलताबाद में बसने के लिए यात्रा करनी पड़ी। लाखों आदमियों को एक साथ इतनी दूर की यात्रा करने से जो कष्ट हुआ, उसकी कल्पना की जा सकती है। जब मरते-गिरते इनमें से आधे-पौने व्यक्ति दौलताबाद पहुँच गये तो मालूम हुआ कि इतने बड़े जन-समूह के लिए वहाँ घरों की कौन कहे, पानी भी पर्याप्त नहीं था। फिर शाही हुक्म हुआ कि दिल्ली लौटो। अतएव अपार कष्ट सहता हुआ यह बचा-खुचा जनसमूह दिल्ली लौटा। आने-जाने की यात्राओं में कष्टों और बीमारियों से हजारों नर-नारी मर गये। यह है मुहम्मद तुग़लक के पागलपन का एक उदाहरण।

हमारी सरकार पर भी, मालूम होता है कि, कभी कभी मुहम्मद तुग़लक की आत्मा उतर आती है। अँगरेजों के समय में अँगरेजी तीसरे दर्जे से पढ़ायी जाती थी। दस-बारह वर्ष हुए, बड़े बड़े शिक्षा-विशारदों की सलाह से उसका पढ़ाना छठवें दर्जे से आरंभ किया गया। जो एकता सम्मेलन भारत में एकता करने के लिए किया गया था उसने संसार से भारत की एकता करने के लिए तथा अँगरेजी की परवरिश करने का निश्चय करते हुए यह प्रस्ताव किया कि उसे फिर तीसरे दर्जे से पढ़ाना चाहिए। अन्य राज्य सरकारें तो अभी तक निष्क्रिय रहीं, पर हमारी उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने पूरक बजट में (जिसमें साधारणतः नीति संबंधी नयी बातें आरंभ नहीं की जातीं) उत्तर प्रदेश के स्कूलों में अँगरेजी को तीसरे दर्जे से पढ़ाने के लिए पाँच लाख रुपये की स्वीकृति करा ली। इसके लिए राज्य में न कोई माँग थी, न कोई आंदोलन था, और न शासन ने इसका कोई संकेत ही किया था। मानों शिक्षा के प्रांगण में निरभ्र आकाश से एकाएक बिजली टूट पड़ी।

अँगरेज अपने दासों को अँगरेजी संस्कृति में ढालकर उनमें मानसिक दासता उत्पन्न करना चाहते थे। वे देश में एक ऐसा वर्ग बनाना चाहते थे जो अँगरेजी पढ़ा लिखा हो, जिसे शासन में अच्छे पद दिये जायँ जिससे वे सदैव अँगरेज और अँगरेजी-परस्त बने रहें। इसलिए उन्होंने दो काम किये: एक तो शिक्षा में वर्गभेद किया। उन लोगों के लिए जिन्हें वे शासक वर्ग में रखना चाहते थे, उन्होंने एंग्लो-वर्नाक्यूलर नामक वर्ण-संकरी शिक्षा आरंभ की। शासित प्रजा के लिए निम्न स्तर की वर्नाक्यूलर शिक्षा चलायी जिसको प्राप्तकर शासक वर्ग में नहीं घुला जा सकता था। दूसरा काम यह किया कि अँगरेजी को प्राइमरी स्तर से (अर्थात् तीसरे दर्जे से) पढ़ाना आरंभ किया जिससे उनमें अँगरेजी के संस्कार छुटपन से ही उत्पन्न हो जायँ। इन एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूलों में अँगरेजी को इतना महत्त्व दिया गया कि वह भाषा इन हिंदुस्तानी बच्चों की "फर्स्ट लेंग्वेज" (प्रथम भाषा) कही जाने लगी। उनकी मातृभाषा उनकी 'सेकंड लेंग्वेज' हो गयी! सारे संसार में मातृभाषा की शिक्षा पर बल दिया जाता है। प्राइमरी कक्षाओं में केवल मातृभाषा की शिक्षा दी जाती है। मातृभाषा ही सब स्तरों पर शिक्षा का माध्यम है। संसार में जो लोग कोई विदेशी भाषा पढ़ना चाहते हैं वे पहिले मातृभाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्तकर ही उसे सीखते हैं। पर अँगरेजों को तो भारतवासियों को अँगरेजी-परस्त बनाना था। इसलिए वह कक्षा तीन से पढ़ायी जाती थी। मातृभाषा को सप्ताह में कठिनाई से छः घंटे, तो अँगरेजी को १२ घंटे दिये जाते थे। इस प्रकार अँगरेजों ने भारत में अँगरेजी

भाषा का, और अँगरेजी भाषा के द्वारा अँगरेजी सभ्यता का प्रचार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस देश में एक वर्ग पैदा हो गया जो अँगरेजी भाषा और साहित्य के अध्ययन के कारण 'काला अँगरेज' हो गया। हमें याद है कि उन दिनों इन काले अँगरेजों की चरम महत्त्वाभिलाषा यह होती थी कि उनका लड़का अँगरेजी 'एक्सेंट' से अँगरेजी बोले। वे इँगलैंड को 'होम' कहा करते थे। बचपन में "ट्विंकल ट्विंकल 'लिटिल स्टार' नामक कविता याद करते, फिर 'साम आफ लाइफ' और "डेफ़ोडिल' रटते और अंत में शेक्सपियर, मिल्टन, कीट्स, शेली आदि पढ़कर अपनी अँगरेजी मानसिकता को पुष्ट करते।

जब तिलक, लाजपतराय, गांधीजी आदि ने यहाँ के लोगों को अपना स्वरूपज्ञान कराया तब अँगरेजी की विषाक्त और राष्ट्रीयतानाशक शिक्षा की बुराइयाँ लोगों की समझ में आयीं। एकदम अँगरेजी का विरोध तो नहीं हुआ, पर मातृभाषाओं की जो अवज्ञा और अवमानना हो रही थी उसके विरुद्ध भावना उत्पन्न हो गयी। भारतीय शिक्षा-शास्त्रियों ने सारे संसार की शिक्षा-पद्धतियों का अध्ययन कर दो बातों पर जोर दिया (१) प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर केवल मातृभाषा की शिक्षा दी जाय, और (२) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। इन सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई बुद्धिसंगत तर्क नहीं दिया जा सकता था। अतएव सारे देश की सरकारों ने निश्चय किया कि प्राथमिक शिक्षा-स्तर में अँगरेजी न पढ़ाई जाय। कक्षा एक से कक्षा पाँच तक प्राथमिक शिक्षा का स्तर माना जाता है। इसलिए कक्षा ३ से अँगरेजी का पढ़ाना बंद किया गया और उसको आरंभ करने का निश्चय (एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूलों में) माध्यमिक स्तर की आरंभिक कक्षा (अर्थात् कक्षा ६) से किया गया। वर्नाक्यूलर और एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूलों का भेद भी समाप्त किया गया, तथा यह भी स्वीकार कर लिया गया कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। उत्तर प्रदेश में तदनुसार ये सुधार हुए :

(१) एंग्लो-वर्नाक्यूलर और वर्नाक्यूलर शिक्षाओं का भेद मिटा दिया गया। सब स्कूलों में एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाने लगी।
(२) अँगरेजी का पढ़ाना कक्षा तीन और चार में बंद कर दिया गया और वह कक्षा छः से पढ़ाई जाने लगी।
(३) शिक्षा के माध्यम के लिए इंटर (कक्षा १२) तक हिंदी स्वीकार कर ली गयी तथा सिद्धान्ततः यह स्वीकार कर लिया गया कि विश्वविद्यालयों में भी शिक्षा का माध्यम हिंदी कर दी जाय। इलाहाबाद और लखनऊ विश्वविद्यालयों ने इसे मान लिया।

अँगरेजों ने जो अँगरेजी-परस्त लोग उत्पन्न किये थे वे इन बातों से स्तब्ध रह गये। उन्होंने विश्वविद्यालयों में हिंदी माध्यम न होने दिया, और धीरे-धीरे उन लोगों ने अपने को संगठित कर अँगरेजी की पुनःस्थापना का अभियान आरंभ किया। हमारे दुर्भाग्य से विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर, नौकरशाही के अधिकारी और हमारे मंत्रियों तथा नेताओं में बहुत से अँगरेजी-परस्त हैं। ये पदारूढ़ हैं। इनके हाथों में सत्ता और अधिकार है। इन्हें अँगरेजी समाचार पत्रों का समर्थन प्राप्त है। हाल में विश्वविद्यालयों के वाइस-चांसलरों का सम्मेलन हुआ। उसने विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के लिए अभी बहुत दिनों तक अँगरेजी को अनिवार्य बतलाया। हमारे अँगरेजी-परस्त नेता भी यही चाहते थे। 'एकता सम्मेलन' हुआ। उसमें इन अँगरेजी-परस्त नेताओं ने 'एकता' की टट्टी में अँगरेजी की गोली से देशी भाषाओं का शिकार खेला। सम्मेलन में कहा गया कि भाषाएँ तभी अच्छी तरह सीखी जा सकती हैं जब वे बचपन से पढ़ायी जायँ, अतएव अँगरेजी कक्षा तीन से पढ़ायी जानी चाहिए। उन्होंने अहिंदी प्रान्तों में हिंदी के लिए भी यह रस्मी सिफ़ारिश की। पर अहिंदी प्रान्तों में से कई में तो माध्यमिक स्तर पर भी हिंदी अनिवार्य नहीं है। अहिंदी प्रान्तों में हिंदी को प्राइमरी की कक्षा ३ से आरंभ कराना हमारी सरकार के बस की बात नहीं है, किंतु हमारे अँगरेजी-परस्त प्रभुगण अँगरेजी को अवश्य ही सारे भारत में कक्षा तीन से आरंभ करा कर ही मानेंगे। अकबर इलाहाबादी ने एक बार कहा था :

बूट डासन ने बनाया, मैंने एक मज़मूँ लिखा।
मुल्क में मज़मूँ न फैला, और जूता चल गया !

सो संविधान द्वारा स्वीकृत हिंदी तो प्राइमरी कक्षाओं में न चलेगी, अँगरेजी सारे 'मुल्क' में चल जायगी।

उत्तर प्रदेश के शिक्षा-मंत्री ने कहा है कि कक्षा तीन से अँगरेजी उन्हीं स्कूलों में आरंभ की जायगी जहाँ उसकी माँग होगी। अर्थात् वह राज्य के सारे प्राइमरी स्कूलों में नहीं पढ़ायी जायगी। अतएव राज्य में एक तो वे प्राइमरी स्कूल होंगे जिनमें अँगरेजी पढ़ायी जायगी, और दूसरे वे जिनमें वह नहीं पढ़ायी जायगी। अर्थात् बिना वह पुराना नाम दिये एंग्लो-वर्नाक्यूलर और वर्नाक्यूलर स्कूलों का भेद, कम से कम प्राइमरी स्कूलों में, हो जायगा। आगे चलकर यह भेद जूनियर हाई स्कूलों में होना अनिवार्य है।

परिणाम यह है कि हमने शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीयता-आंदोलन से प्रेरित होकर अब तक जो सुधार किये थे और उपलब्धियाँ प्राप्त की थीं, उन सब पर हड़ताल फिर जायगी, और अँगरेजों के समय में हम जहाँ थे, वहीं फिर पहुँच जायँगे। दिल्ली से दौलताबाद गये, पर शाही हुक्म के अनुसार फिर दिल्ली लौट आये !

हम राज्य के इस निर्णय को शिक्षा के क्षेत्र में एक अत्यंत प्रतिक्रियावादी कार्य समझते हैं। इससे हिंदी के हित को धक्का लगेगा। अभी तक अँगरेजी के घने और छतनार वट-वृक्ष ने देशी भाषाओं के अर्द्धविकसित पौधों को इतना घेर और दबा रखा था कि उनकी बाढ़ रुकी हुई थी। इस वट-वृक्ष की कुछ डालियाँ काट दी गयी थीं जिससे देशी भाषाओं रूपी पौधों को साँस लेने और बढ़ने का कुछ अवसर मिलने लगा था। किंतु हमारे प्रभुओं ने उस वट-वृक्ष को फिर से सींचना आरंभ कर दिया है। उसकी

छतनार शाखाएँ फिर देशी भाषाओं को दबा कर उनकी वृद्धि को रोक देंगी। हमें खेद है कि हम सरकार के इस कार्य को देश, राष्ट्रीयता और देशी भाषाओं के लिए हानि-कारक और घातक समझते हैं।

निराला संस्थान—बैसवारी में एक दोहा बहुत चलता है—

जियत बाप का लातन मारें और खवावैं बहुरी।
मरे बाप का पिंडा तारें, बाह्मन खाँयँ कचउरी॥

आशय यह है कि जीते-जी तो बाप की अवमानना की, और मरने पर बड़ा सम्मान दिखाया। हिंदी संसार में यही बात निरालाजी की मृत्यु के बाद देखने में आ रही है। निरालाजी सब मिलाकर सत्रह-अठारह वर्ष प्रयाग में रहे। पिछले बारह वर्षों से तो वे एक ही स्थान में रह रहे थे। अंतिम तीन वर्ष वे रोगशय्या पर पड़े रहे। इन तीन वर्षों में जो लोग उनका स्वास्थ्य देखने या उनसे समवेदना प्रकट करने भी नहीं आये, वे उनकी मृत्यु के बाद उनके सबसे बड़े 'सार्वजनिक' प्रशंसक हो गये हैं। उनकी मृत्यु के साथ ही इन लोगों के ज्ञान-चक्षु खुल गये, और वे निरालाजी की महत्ता को समझने लगे। हमें यह जानकर विनोदपूर्ण कुतूहल हुआ कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुछ प्राध्यापक निरालाजी की महानता से इतने अभिभूत हो गये हैं कि उन्होंने उनकी स्मृति में एक 'निराला शोध-संस्थान' स्थापित करने की योजना बनायी है। यह भी सुना गया है कि (जैसी कि विश्वविद्यालयों की प्रथा है) इसके लिए भारत सरकार से आर्थिक सहायता के लिए लिखा-पढ़ी भी आरंभ कर दी गयी है। इस विश्वविद्यालय में अभी तक निरालाजी की क्या कद्र थी? बी० ए० में उनकी केवल चार कविताएँ पढ़ायी जाती थीं। एम० ए० में उनके 'तुलसीदास' को "सहायक पाठ्य पुस्तक" होने का (मुख्य पाठ्य पुस्तक होने का नहीं) 'गौरव' दिया गया था। यह भी सुनने में आया है कि कुछ वर्ष पहिले वहाँके एक विद्यार्थी ने अपनी डाक्टरेट के लिए 'निरालाजी के काव्य' को अपना विषय चुना था, पर उसे निरालाजी पर शोध करने की अनुमति नहीं दी गयी। विश्वविद्यालय के 'प्रास्पेक्टस' के देखने से पता लगता है कि हिंदी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष की सात पुस्तकें, और वर्तमान अध्यक्ष की आठ पुस्तकें बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं, जब कि निरालाजी की केवल एक पुस्तक 'सहायक पुस्तक' के रूप में चमक रही है। हाईस्कूल की पाठ्य पुस्तकों में भी निरालाजी की दो-एक कविताएँ पढ़ाई जाती हैं। किन्तु प्रयाग विश्वविद्यालय ने बी० ए० में उनकी 'चार' कविताओं से अधिक पढ़ाने की आवश्यकता नहीं समझी। जिस विश्वविद्यालय ने दो-तीन वर्ष पहिले उनके काव्य पर शोध करने की अनुमति नहीं दी, वही अब सहसा निराला को इतना महत्त्वपूर्ण समझने लगा कि उनके नाम पर 'शोध संस्थान' बनाने की बात कर रहा है! किमाश्चर्यमतः परम्! तब निराला पर शोध निरर्थक थी, अब निराला शोध-संस्थान सार्थक है! अब मृत निराला के नाम पर भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा कलकत्ता-बम्बई के सेठों से रुपया मिल सकता है, दो-एक "प्रोफेसरों" की नियुक्ति की जा सकती है, चार-पाँच 'शोध वृत्तियाँ' देने का अधिकार प्राप्त हो सकता है। यह यश भी कमा लिया जायगा कि विश्वविद्यालय ने उपेक्षित निराला का सम्मान किया है। निराला का कृतित्व कल का नहीं है। किंतु जिन लोगों ने उनके काव्य को इस योग्य भी नहीं समझा कि वे स्वयं उस पर ढंग का एक निबंध भी लिखें, वे आज उनके काव्य को इतना महत्त्वपूर्ण समझने लग गये हैं कि उसकी शोध के लिए एक संस्थान बनाने जा रहे हैं। क्या विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग शोध-कार्य नहीं करता? यदि करता है, तो निराला पर शोध करने में उसे क्या बाधा है? क्या वह प्रसाद और पंत पर भी शोध तभी करेगा जब उनके नाम से अलग संस्थान बन जायँगे? यदि संस्थान के द्वारा ही शोध हो सकती है तो अब तक विश्वविद्यालय के हमारे मित्रों ने 'तुलसीदास शोध-संस्थान' क्यों नहीं स्थापित किया? या वे तुलसीदास के कृतित्व को इतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझते कि उस पर शोध करने के लिए 'निराला-संस्थान' की तरह एक संस्थान बनावें? यदि तुलसीदास पर बिना संस्थान स्थापित किये शोध हो सकती है, तो निराला पर क्यों नहीं हो सकती? हम इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 'निराला शोध-संस्थान' के प्रस्ताव का कोई व्यावहारिक उपयोग या उसकी आवश्यकता नहीं समझते। उसके द्वारा शायद उसे सरकार और जनता से लाख-दो लाख रुपया मिल जाय, उसके हिंदी विभाग को कुछ आर्थिक लाभ हो जाय, प्रोफेसरों के लिए एक-दो जगहें हो जायँ, और उनके निर्मित 'शोध ग्रंथों' से लेखकों को कुछ लाभ भी हो जाय, किंतु उससे जनता का कोई विशेष लाभ न होगा। निराला का स्मारक बनाने का नैतिक अधिकार उन प्रोफेसरों को नहीं है जिन्होंने उनके जीते-जी सदैव उनकी उपेक्षा की। निराला हिंदी-जनता के व्यक्ति थे, और उनका स्मारक उसीके द्वारा बनना चाहिए। ये प्रोफेसर अपने को हिंदी जनता से अलग समझते हैं और अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाना चाहते हैं। यदि उन्हें निरालाजी में वास्तविक आस्था है तो उनका अध्ययन करें और करावें, तथा जिस प्रकार अन्य कवियों पर शोध करते और कराते हैं, उसी प्रकार उन पर भी शोध करें, और उनके स्मारक के लिए अपनी थैलियाँ खोलें क्योंकि 'हिंदी-जीवियों' में अपेक्षाकृत वे ही सबसे धनी हैं। इसके बाद यदि देखा जाय कि विश्वविद्यालय सामान्य विधि से उन पर शोध करने में अक्षम है, तब एक अलग विभाग की बात सोची जा सकती है। इस समय तो लोग यही समझेंगे कि निरालाजी के नाम पर ये हिंदी विभाग अपनी ही वृद्धि कर रहे हैं।

हमारी यह "शिक्षा"—सितंबर में हमें रीवा जाना पड़ा। वहाँ एक 'गजेटेड आफिसर' से परिचय था। उनसे

भी मिलने गये। उनकी तीन-चार वर्ष की नन्हीं बच्ची वहाँके किसी देशी "नर्सरी स्कूल" में पढ़ती है। अफसर साहब ने उससे स्कूल में सीखे किसी गीत को हमें सुनाने को कहा। जो गीत उसने सुनाया वह यह था :

लिटिल बेबी Little baby सो जा
लाल पलँग पर सो जा
मम्मी डैडी (Mummy Daddy) आवेंगे
खूब खिलौने लावेंगे।

सुनकर हम कृतार्थ हो गये। हमने पूछा, किसने सिखाया? उत्तर मिला "आंटी ने"। बाद में मालूम हुआ कि उस स्कूल में मुख्य अध्यापिका 'मदर' और अध्यापिका 'आंटी' (Auntie) कह कर पुकारी जाती हैं। संयोग की बात, दो-तीन सप्ताह हुए लखनऊ में हमसे मिलने वहाँके राजकीय विद्यालय के एक अध्यापक आये। उनके साथ उनकी तीन-चार वर्ष की पौत्री भी थी। उन्होंने भी अपनी पौत्री से उन गीतों को सुनवाया जो उसने इस महानगर के एक "नर्सरी स्कूल" में सीखे थे। उनमें से एक यह था :

ममी और डैडी की लड़ाई हो गयी
चीन की भारत पर चढ़ाई हो गयी!
मम्मी ने बिस्तर बाँधा जाने के लिए
मैं तो समझाने गयी
मुफ्त में पिटायी हो गयी।
डैडी! हमारी ममी को रुलाया न करो
रोज रोज पिक्चर (Picture) दिखाया करो!

इसे सुनकर दिमाग 'सही' हो गया।

क्या भावपूर्ण ढंग से उस नन्हीं बच्ची को यह गाना सिखाया गया था! लखनऊ की तुलना में रीवा बहुत छोटा है। इसलिए लखनऊ में सिखाया गया 'गीत' रीवा के गीत से अधिक प्रगतिशील होना ही चाहिए, और इस 'कुरुचि' के युग में उसका अधिक 'कुरुचिपूर्ण' होना भी आवश्यक है!

ये संस्कार हैं जो हमारे बच्चों में डाले जा रहे हैं। यह भाषा है जो हमारे बच्चों को सिखायी जा रही है, और हमारे शिक्षा-मंत्रीगण, हमारे शिक्षा-संचालक, हमारे विद्यालय-निरीक्षक और निरीक्षिकाएँ तथा अध्यापक विद्यालयों और विद्यार्थियों के लंबे चौड़े आँकड़े देकर शिक्षा की "उन्नति और प्रसार" पर अपनी पीठें ठोंका करते हैं। यदि इनसे कोई कह दे कि आप हिंदी नहीं जानते, तो बिगड़ जायँगे। उनका कहना है कि वे हिंदी क्षेत्र में पैदा हुए हैं इसलिए वे हिंदी जानते हैं––चाहे उन्होंने हिंदी कभी पढ़ी भी न हो। और यदि स्कूल में पढ़ी भी हो, तो चाहे पाठ्य पुस्तकों के बाद कभी कोई हिंदी की पुस्तक उलटी भी न हो। भाषाबोध या भाषाचेतना से वे अछूते हैं। अँगरेजीपरस्ती के कारण हिंदी में अँगरेजी शब्दों को अनावश्यक रूप से घुसेड़ने में उन्हें आपत्ति नहीं। सुरुचि के वे पास नहीं फटकें। वे "हिंदी-निरपेक्ष," "सुरुचि-निरपेक्ष" और "काव्य-निरपेक्ष" हैं। पूर्णरूप से साहित्य-संगीत-कलाविहीन हैं। शिक्षाशास्त्री ऐसे हैं कि वे 'साक्षरता' को 'शिक्षा', और 'सूचना' को 'ज्ञानोपार्जन' समझते हैं। 'चरित्र' और सुसंस्कृति के लिए उनकी योजना में गुंजाइश ही नहीं है। आज बिहार की बाढ़ की तरह उन्होंने 'शिक्षा' की ऐसी बाढ़ पैदा कर दी है जो इस देश की रहीसही संस्कृति, सुरुचि और भाषाबोध को उखाड़ कर बहाये दे रही है। सुरुचि और संस्कृतिरूपी जल से सींचकर धीरे धीरे व्यक्तित्व, चरित्र और बुद्धि का विकास करना, और ऐसे 'संतुलित' व्यक्तित्व का निर्माण करना जो, कन्फ्यूशियस के शब्दों में, ठीक समय पर ठीक काम ठीक तरह से कर सके, उनकी कल्पना के बाहर है। हिंदी में पिछले पचास वर्षों से विद्याभूषण 'विभु,' 'स्वर्ण सहोदर', सोहनलाल द्विवेदी, निरंकारदेव सेवक आदि कोड़ियों प्रतिष्ठित कवि बच्चों के लिए अत्यंत सुंदर, सुरुचिपूर्ण और मनोरंजक कविताएँ लिख रहे हैं। बच्चों की कविताओं की सैकड़ों सुंदर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। किंतु हमारे "हिंदी-निरपेक्ष" तथा 'भारतीय संस्कृति-निरपेक्ष', 'अँगरेजीपरस्त शिक्षा के विधाता-गण उनसे अपरिचित हैं। परिणाम सामने है। हम महान् राष्ट्र के निर्माण की कामना करते हैं, किंतु क्या इस प्रकार की शिक्षा पाये हुए बच्चे बड़े होकर "सुशिक्षित" और सुसंस्कृत नागरिक हो सकेंगे? तीसरे नंबर की ईंट और मरी हुई सीमेंट से प्रथम श्रेणी का भवन नहीं बनाया जा सकता। किंतु हम इसी प्रकार की शिक्षा देकर भारत को महान् बनाने की कल्पना कर रहे हैं! प्रचार, दिखाऊ काम, आँकड़ेबाजी, भाषणबाजी में ही सारी शक्ति समाप्त की जा रही है। ऐसे लोगों के हाथों में पड़ी शिक्षा हमें कहाँ ले जायगी? खेद तो यह है कि शिक्षा के प्रसार की बात तो सब करते हैं, किंतु उसके गुण और शील पर ध्यान देनेवाला आज कोई शक्तिसम्पन्न माई का लाल नहीं दिखायी पड़ता। किसीको देखने का अवकाश नहीं। किसीको सुनने की भी फ़ुर्सत नहीं है। यह सब देखकर चोट लगती है। इससे कभी कभी कहने को विवश हो जाते हैं, नहीं तो हम सामान्यतः उस सीख को याद रखते हैं जो किसी संस्कृत कवि ने कोकिल को दी थी, और जिसका अनुवाद पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने इस प्रकार किया था :––

कोकिल मीत! न बोल कछू;
कहु, मूढ़न ने गुन जान्यो कितैं, कब?
यातें रहौ चुप होय कछू दिन
सूखे पलाश के कोटर में दबि।
ऊँचे सरोरुह की फुनगीन पै
बोलत काक कठोर रवै अब;
ये पतझार के द्यौस हैं रे,
तुहू बोलियो फेरि वसंत लगै जब!

"ये पतझार के दिवस" हैं। इस देश में शायद कभी सुसंस्कृति और ज्ञान का वसन्त भी आवे!

निराला हिन्दी भवन--२९ अक्तूबर को लखनऊ में डा० सम्पूर्णानंदजी की अध्यक्षता में निरालाजी की मृत्यु पर शोक प्रदर्शन करने के लिए एक विराट् शोक सभा हुई थी। उसमें उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री चंद्रभानु गुप्त जी भी पधारे थे, और उसमें उन्होंने यह घोषणा की कि निरालाजी की स्मृति में सरकार लखनऊ में एक निराला हिंदी भवन का निर्माण करेगी। यह भवन सरकार और जनता के सहयोग से बनेगा। हम उत्तर प्रदेश सरकार के इस प्रशंसनीय निर्णय के लिए उसके मंत्रिमंडल, विशेषकर मुख्य मंत्रीजी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

प्रयाग, वाराणसी, आगरा, जौनपुर, फिरोज़ाबाद आदि अनेक नगरों में किसी न किसी नाम से हिंदी भवन हैं जहाँ हिंदीप्रेमी एकत्र होकर साहित्य-चर्चा करते, हिंदी पुस्तकों का अध्ययन करते और भाषा-संबंधी समस्याओं पर विचार-विनिमय करते हैं। आगत विद्वानों के हिंदी भाषण सुनने के भी वे केंद्र हैं। किंतु लखनऊ में कोई हिंदी भवन नहीं है। मुख्य मंत्रीजी के कार्यभार ग्रहण करने के कुछ सप्ताह बाद ही हमने उन्हें एक पत्र लिखकर लखनऊ के इस अभाव की ओर उनका ध्यान दिलाया था। आज जनता उसके निर्माण के लिए धन एकत्र नहीं कर सकती। इसलिए हमने उनसे निवेदन किया था कि सरकार ही उसका निर्माण करे। हमने यह सुझाव भी दिया था कि उसमें पुस्तकालय, सभाभवन आदि के अतिरिक्त शासन द्वारा स्थापित हिंदी-समिति का कार्यालय भी रहे। मुख्य मंत्री जी ने अपने उत्तर में हमारे सुझाव पर विचार करने की बात कही थी। हमें आशा नहीं थी कि सचिवालय की लाल-फीताशाही की भूलभुलैया में हमारे सुझाव पर निकट भविष्य में कोई निर्णय हो सकेगा। इसलिए हमें मुख्य मंत्रीजी की घोषणा से साश्चर्य प्रसन्नता हुई, और उस भवन के साथ निरालाजी के नाम को जोड़ने से हमारी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी।

अपव्यय का कीर्तिमान--भारत दरिद्र देश है। हमारी सरकार हमसे बराबर कहती रहती है कि देश के विकास के लिए हमें अपव्यय से बचना और कष्ट सहना चाहिए। हम पर दिनोंदिन करों का भार बढ़ता जाता है, और कर यह कह कर बढ़ाये जाते हैं कि देश के विकास के लिए वे आवश्यक हैं। किंतु हमारा शासकवर्ग हमारे त्याग और कष्टों से उपार्जित धन को किस हृदयहीनता से लुटाता और फेंकता है इसका उदाहरण अभी हाल में अमरीका के एक मुकदमे से लगा। वहाँ हमारे एक उच्च अधिकारी राष्ट्रसंघ में भारत के प्रतिनिधि हैं। वे जिस मकान में रहते थे उसकी मालकिन से उनका झगड़ा हो गया और मामला न्यायालय में गया। उस मुकदमे में पता लगा कि हमारे गरीब देश के प्रतिनिधि अपनी और अपनी पत्नी के रहने के लिए जो कुछ कमरे लिए हुए थे वे उनका किराया ७६८० रुपया (१६०० डालर) मासिक दे रहे थे! यह 'मानो न मानो' की श्रेणी की बात है। यह किराया वे अपनी गाँठ से नहीं देते थे। वह हमारे-आपके--भारत की जनता के--माथे जाता था। इसीको कहते हैं--माल मुफ्त, दिल बेरहम। यह हमारे शासकवर्ग के 'उत्तर-दायित्व' का नमूना है। यदि उन सज्जन को अपनी गाँठ से किराया देना होता तो वे कितना किराया देते? जो लोग इस प्रकार गरीब जनता का धन लुटाते हैं, और जो इसे स्वीकृत करते हैं, उनको जनता से देश के विकास के लिए कष्ट सहन करने और अधिकाधिक कर-भार वहन करने का उपदेश देने का साहस किस प्रकार होता है?

हिंदी के संबंध में डाक-विभाग की हठधर्मी--हमने एक बार पाठकों का ध्यान इस ओर दिलाया था कि डाक-विभाग अब जो नये स्मारक टिकट निकालता है उन पर उनका नाम लिखने में हिंदी की प्रायः उपेक्षा करता है। अब भी उसकी हिंदी के प्रति उपेक्षा जारी है। गत मास उसने तीन स्मारक टिकट प्रसारित किये। इनमें एक तो बाल दिवस (१४ नवंबर) पर था, दूसरा दिल्ली में हो रहे उद्योग मेले पर, तथा तीसरा भारतीय वन विभाग की शती पर। बाल दिवस के टिकट निकालने की प्रथा उस समय आरंभ हुई जब डाक-विभाग में स्मारक टिकटों पर हिंदी की उपेक्षा नहीं की जाती थी। अतएव एक बार जो उस पर हिंदी में 'बाल दिवस' लिखा जाना आरंभ हुआ, वह चला जा रहा है। किंतु उद्योग मेले और वन विभाग की शती के स्मारक टिकटों पर केवल अँगरेजी में उनके नाम लिखे गये हैं। हिंदी देश की संविधान-सम्मत राज्यभाषा है। किंतु अँगरेजीपरस्त डाक-विभाग (जिसके मंत्री श्री सुब्बारा-यन हैं) भावी सहयोगी राज्यभाषा को देश की एकमात्र राज्यभाषा समझता है। संविधान में अँगरेजी के "सहयोगी राज्यभाषा" स्वीकृत होने पर ये अँगरेजीपरस्त देश की मुख्य राज्यभाषा हिंदी के साथ कैसा व्यवहार करेंगे, और उसे कितना चलने देंगे, इसका कुछ आभास नये स्मारक टिकटों पर एकमात्र अँगरेजी के उपयोग से मिल सकता है। साधारण टिकटों पर तो अँगरेजी चलती ही है, किंतु इन औपचारिक और विशेष अवसरों पर संविधान द्वारा स्वीकृत राज्य-भाषा का उपयोग आरंभ कर दिया गया था जिसे डाक-विभाग के वर्तमान अधिकारी अब छोड़ रहे हैं। यदि संविधान में स्वीकृत राज्यभाषा का उपयोग ऐसे औपचारिक कामों में भी नहीं किया जाता तो प्रशासन में उसके उपयोग की क्या आशा की जा सकती है? मालूम होता है कि हमारे अधि-कारारूढ़ अँगरेजीपरस्तों ने तय कर लिया है कि इस देश में अँगरेजी ही चलावेंगे। जब केंद्र के कुछ अधिकारियों की ऐसी मनोवृत्ति है तब भारत सरकार में हिंदी के चलने की कोई आशा नहीं दीखती।

महर्षि मालवीयजी

पं० सीताराम चतुर्वेदी

योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है--

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा,
तत्तदेवावगन्तव्यं मम तेजोंशसंभवम् ॥

[संसार में जो भी विभूतिमान्, श्रीमान् और ऊर्जित दिखाई पड़े उस सबको मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न समझो।]

भगवान् कृष्ण के इसी परम तेजोमय स्वरूप का दिव्यांश ग्रहण करके २५ दिसंबर, सन् १८६१ को प्रयाग के लालडिग्गी मुहल्ले में परम भागवत, अत्यन्त सत्य-निष्ठ, निर्लोभ तथा परम सन्तोषी विद्वान् पंडित ब्रजनाथ व्यासजी के घर परम सौभाग्यवती कल्याण-मूर्त्ति माता मूनादेवीजी की पुण्य कुक्षि से पं० मदनमोहन मालवीयजी का जन्म हुआ। भौतिक अकिंचनता के साथ सात्विक, सन्तोषमय, पवित्र और धर्मनिष्ठ गृहस्थी में पोषण प्राप्त करके मालवीयजी ने उन सभी उदात्त गुणों का कल्प सिद्ध कर लिया जो किसीको भी महापुरुष बनाने के लिए सदा सब युगों में समर्थ आधार रहे हैं।

अपने भागवत-व्यास पिताजी से और अपनी धर्म-निष्ठ माताजी से उन्होंने परम अमृतमयी सुसंस्कृत वाणी प्राप्त की थी। अपनी उस ओजस्विनी, तर्कपूर्ण और मधुर वाणी के प्रभाव से ही सर्वप्रथम कलकत्ता कांग्रेस में उपस्थित श्री ह्यूम तथा राजा रामपालसिंह जैसे तत्का-लीन दिग्गज प्रभावशाली नेताओं को उन्होंने इतना मंत्र-मुग्ध कर दिया था कि उन्होंने उसी समय उनके लिए यह भविष्यवाणी कर दी कि ये निश्चय ही भारत के सम्मान्य और सर्वमान्य नेता होंगे। उनका भाषा का संस्कार बड़ा अद्भुत, विलक्षण, मधुर और सटीक था। वे प्रारंभ से ही अपनी भाषा को अत्यन्त शुद्ध बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। संस्कृत, हिन्दी, अँगरेजी और उर्दू चारों भाषाओं पर उनका समान और अप्रतिम अधिकार था। वे जब बोलते थे तो मानो उनके मुख से मोती झड़ते थे, फूल बरसते थे। उन्हें बोलते हुए सुनना स्वयं अत्यन्त आनन्द और आह्लाद का विषय होता था। उनकी वाणी में इतनी शालीनता और दूसरे के प्रति इतना शील भरा होता था कि कोई भी उनकी वाणी से मर्माहत नहीं हो सकता था। इसीलिए शत्रु भी उनकी वाणी का लोहा मानते थे, समान आदर करते थे। उनकी वाणी में सरस्वती का वास था। सुन्दर प्रभावशाली शब्दों को अत्यन्त मनोहारी, उचित स्वर के आरोह-अवरोह से प्रस्तुत करने की उनकी तर्क-शैली इतनी अद्भुत थी कि वे अपनी वाणी के सहारे चाहे जिस व्यक्ति या समाज को क्षण में हँसाते-हँसाते लोट-पोट करा दें या क्षण में करुण-रस बरसाकर आँसुओं में डुबो दें। जब मुल्तान में हिन्दू-मुसलिम दंगा हुआ था उस समय मुसलमानों की सभा में जिस प्रवाहशील, प्रभावपूर्ण और प्राञ्जल उर्दू में उन्होंने भाषण दिया था उसने वहाँ उपस्थित समस्त मुसलिम श्रोताओं को इतना द्रवित और अभिभूत कर दिया था कि उन्होंने वहीं खड़े होकर प्रतिज्ञा की--हम अपने सभी अस्त्र-शस्त्र आपके चरणों में लाकर समर्पित कर देंगे और हिन्दू गृहस्थों के घर में से जो कुछ माल लूटा गया होगा वह उन्हें वापिस करा देंगे। रौलेट बिल (काले कानून) पर जो उन्होंने अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था उसके संबंध में उसी समय यह कहा गया था कि मालवीयजी ने बड़ी कोमलता के साथ ब्रिटिश सरकार पर जो कठोर और निर्दय प्रहार किया है उसके आगे वारेन हेस्टिंग्ज़ को सदोष सिद्ध करने के लिए ऐडमन्ड बर्क का प्रहार भी नगण्य था। गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन के प्रवाह में गोरखपुर जनपद के चौरी-चौरा नामक स्थान में पुलिस चौकी जलाने के अभियोग में अभियुक्तों की ओर से मालवीयजी महा-राज ने प्रयाग हाईकोर्ट में जिस संवेदनशील और भाव-पूर्ण युक्ति के साथ उनका पक्षवाद किया था उसकी सराहना करते हुए निर्णायक महोदय ने अत्यन्त भाव-गंभीर तथा प्रशंसा-संवलित शब्दों में कहा था कि इन अभियुक्तों को मालवीयजी महाराज का कृतज्ञ होना चाहिए जिनकी अमृतमयी वाणी की कृपा से ही इनको मुक्ति मिल सकी है।

मालवीयजी महाराज की भाषा तो स्वच्छ, निष्क-लंक और सुन्दर थी ही, किन्तु वे दूसरों की भाषा भी सदा टोक कर ठीक करते रहते थे। एक बार तुलसी-जयन्ती के अवसर पर मैं उन्हें अध्यक्षता के लिए निमंत्रित करने पहुँचा और भूल से मेरे मुँह से तुलसी-जयन्ती के बदले तुलशी-जयन्ती निकल गया। तत्काल उन्होंने टोककर

पूछा—'क्या कहा ?' मैंने फिर उसी झोंक में दुहरा दिया 'तुलशी-जयन्ती।' तब उन्होंने टोककर ठीक किया—'नहीं, तुलसी-जयन्ती।' वे सभी को अपने साथ अँगरेजी कोष रखने, उसका उपयोग करने और उसमें उच्चारण देखते रहने की सम्मति दिया करते थे। वे स्वयं अपने साथ सदा अँगरेजी का छोटा कोष भी रखते थे और अपने उच्चारण में सावधान रहते हुए जो उनके सम्पर्क में आता, तत्काल उसका उच्चारण भी ठीक कर देते थे और साथ-साथ यह भी कह देते थे कि 'अँगरेजी भाषा ही ऐसी बीहड़ है।' भाषा की इतनी सावधानी रखने पर भी उनके उच्चारण की कुछ विचित्र संस्कारगत विशेषताएँ भी थीं जो उन्होंने अपने गुरुओं से प्राप्त की थीं। वे स्टूडेन्ट शब्द को स्ट्यूडेण्ट कहते थे। मेरी नम्र जिज्ञासा पर उन्होंने बताया कि "मेरे गुरु पंडित आदित्यराम भट्टाचार्यजी स्ट्यूडेण्ट ही उच्चारण करते थे।" इस सम्बन्ध में वे कोष में दिया हुआ उच्चारण नहीं मानते थे क्योंकि पं० आदित्यराम भट्टाचार्यजी ने जिन अँगरेज प्राध्यापकों से पढ़ा था उन्होंने उन्हें यही उच्चारण ठीक बताया था। इसी प्रकार हिन्दी में भी 'सोचना' और 'छोड़ना' शब्दों का उच्चारण वे 'सोंचना' और 'छोंड़ना' करते थे। यह संस्कार उन्हें अपने पिताजी से प्राप्त हुआ था और संभवतः प्रयाग की भाषा में भी यह संस्कार विद्यमान है। इसी प्रकार वे 'आप' के साथ क्रिया में 'हो' या 'करो' का प्रयोग करते थे, 'हैं' या 'करें' का नहीं। इसीलिए वे कहते थे—'क्या आप चाहते हो कि हमारे अछूत भाई जल न ग्रहण करें ?'

वे हिन्दी भाषा को बहुत संस्कृतनिष्ठ बनाने के पक्ष में नहीं थे। इसीलिए जब वे कालाकाँकर से प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दुस्थान' पत्र के सम्पादक हुए तब उन्होंने 'आश्चर्य' के बदले 'अजरज', 'प्रविष्ट होना' के बदले 'पैठना' आदि लोक-प्रचलित सरल तथा तद्भव शब्द-रूपों का अधिक प्रयोग चलाया, यहाँ तक कि वह भाषा ही 'मालवीयजी की हिन्दी' के नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी।

मालवीयजी महाराज सात्विक रूप से परम धार्मिक थे। वे ईश्वर में अखंड विश्वास करते थे। वे मानते थे कि ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं हिल सकता और मनुष्य चाहे जितना परिश्रम करे किन्तु वह तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उस पर ईश्वर की कृपा न हो या वह तपस्या करके ईश्वर का [illegible] न बन जाय। जिस समय हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का उन्होंने संकल्प किया उस समय उन्होंने केवल चन्दा माँगने का ही प्रयास नहीं किया वरन् भागीरथी और कालिन्दी के पुण्य संगम पर स्थित महावीरजी के मंदिर में जाकर अत्यन्त हार्दिक निष्ठा के साथ गायत्री का पुरश्चरण किया। वे सदा कहा करते थे कि हिन्दू विश्वविद्यालय का निर्माण केवल भगवान् विश्वनाथ की कृपा से ही हो पाया है, किसीके परिश्रम या प्रयास से नहीं। इसलिए हिन्दू विश्वविद्यालय की आधारशिला के लेख का श्रीगणेश हुआ है 'प्रसादाद्विश्वनाथस्य' (भगवान् विश्वनाथ के प्रसाद से) शब्दों से। ईश्वर और धर्म में उनकी इतनी अविचल निष्ठा थी कि उन्होंने आचार और विचार दोनों दृष्टियों से धर्म को भाव-सिद्ध कर लिया था। मनु ने धर्म के जो दस लक्षण बताये हैं उनकी वे साकार एकस्थ मूर्ति थे। उनका धैर्य अतुलित था। लोग उनके पास आ-आकर उनका समय नष्ट करते थे। निरर्थक, निराधार, अप्रासंगिक बातें सुनाते रहते थे किन्तु वे शान्तिपूर्वक, धैर्यपूर्वक सुनते रहते थे, थाह भी लेते रहते थे पर कभी किसीको यह नहीं कहते थे कि 'अच्छा, अब आप जाइये।' कभी-कभी तो अच्छे पढ़े-लिखे लोग भी और यह जानते हुए भी कि मालवीयजी महाराज को कहीं जाना है, जमकर बैठे बात करते रह जाते थे और उन विचार-मूढ़ लोगों के इस अत्याचार को मालवीयजी महाराज अत्यन्त धैर्यपूर्वक सहन करते रहते थे। क्षमा के तो वे साक्षात् अवतार ही थे। उनका हृदय करुणा और दया का अथाह महासागर था। 'लीडर' के लोकप्रसिद्ध सम्पादक स्व० श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा था कि मालवीयजी नीचे से ऊपर तक हृदय ही हृदय है। यह बात सत्य भी थी। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में सहस्रों विद्यार्थियों ने उन्हींकी करुणा के सहारे ऊँची-ऊँची परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लीं और आज ऊँचे-ऊँचे पदों पर सुशोभित हैं और अत्यन्त भावाभिभूत हृदय से उनकी कृपा का गुणगान करते हैं। हिन्दू-विश्वविद्यालय में ही चीनी मिट्टी के निर्माण-विभाग में पंजाब के एक अध्यापक थे जिन्हें ऐसा दुरभ्यास था कि वे अपने सहयोगी अध्यापकों, सेवकों और लिपिकों को बहुत गन्दी-गन्दी गालियाँ देते थे। कई बार मालवीयजी महाराज से उनके विरुद्ध कहा भी गया और मालवीयजी महाराज ने उन्हें समझाया भी, पर कोई परि-

णाम न निकला। एक दिन वे बिरला छात्रावास के आगे टहलते हुए आ रहे थे। मैं भी साथ में था। इतने में उस विभाग के एक बंगाली कर्मचारी ने आकर फिर यह आरोप लगाया कि आज पुनः उक्त प्राध्यापक महोदय ने गालियाँ दी हैं। मालवीयजी महाराज ने लम्बी साँस ली और उससे कहा 'अच्छा, हम समझा देंगे'। उस कर्मचारी के चले जाने पर मुझसे कहने लगे—'देखो, यदि हम उसे निकाल दें तो उसके बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे क्योंकि उसे और कहीं ठिकाना नहीं मिल सकता।'

बहुत से राजनीति और धर्म-प्रचार के क्षेत्र में काम करनेवाले लोग उनकी उदारता और सरलता का लाभ उठाकर उन्हें ठगते भी रहते थे और वे सब कुछ जान-बूझकर ठगाते भी रहते थे। एक बार ऐसे ही एक सज्जन अत्यन्त करुणाजनक रूप बनाकर आये। मालवीयजी महाराज ने कहा 'इन्हें रुपये दिला दो।' जब मैं दिलाकर लौटा तो मेरी व्यग्रता उन्होंने ताड़ ली और कहा—'मैं जानता हूँ, यह झूठ बोल रहा है पर रुपये की तो आवश्यकता इसे है न?' मैं मौन होकर देखता रह गया। मैंने उनकी उस अगम्य गरिमा के आगे सिर झुका दिया। मेरे उस मौन द्वन्द्व को दूर करते हुए उन्होंने जीवन-सूत्र भी बता दिया—ठगा जाना बुरा नहीं है, ठगना बुरा है। यह थी उनकी अपूर्व और अगाध क्षमा। आत्म-दमन का उदाहरण तो उनका सारा जीवन ही था। अतः, उस सम्बन्ध में कुछ कहना ही निरर्थक है।

जहाँ तक पवित्रता की बात है वह उनकी वाणी और उनके प्रत्येक आचार और व्यवहार में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती थी। वे अत्यन्त धौले चिट्टे वस्त्र पहनते थे। पगड़ी भी बाँधते थे तो बड़े करीने से, एक-एक तह जमाकर अत्यन्त शांति के साथ बड़ी सुन्दरता के साथ समय लगाकर बाँधते थे। हड़बड़ी और शीघ्रता करना तो वे जानते नहीं थे। काम भले ही देर से हो, पर सुन्दर हो। चन्दन भी लगाते थे तो उसे भी भली प्रकार गोल करके बैठाते थे। किसी कपड़े पर किसी प्रकार का कोई छोटा-मोटा धब्बा भी लग जाय तो वह वस्त्र छोड़ देते थे। यदि नौकर सोया रहता था तो उसे जगाते नहीं थे, स्वयं अपने कमरे में झाड़ू देने में संकोच नहीं करते थे। कोई वस्तु उनके कक्ष में अव्यवस्थित नहीं रक्खी रह सकती थी। यदि किसी ने कोई पुस्तक किसी प्रकार टेढ़ी रख भी दी तो जब तक वे उसे सीधा नहीं कर लेते थे तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिल पाती थी। अपने भीतर के कक्ष से जब वे बाहर निकलते थे तो अपने सब वस्त्र अर्थात् पाँचों पोशाक पहनकर निकलते थे। अपने वेश के सम्बन्ध में वे बड़े सावधान रहते थे और सबको सुवेश रखने के सम्बन्ध में समझाते भी रहते थे। एक बार उन्होंने अपने पौत्र स्व० श्रीधर मालवीय को पासवाली कोठी में हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति राजा ज्वालाप्रसादजी के पास किसी काम से भेजा। वह केवल एक गञ्जी पहने हुए वहाँ जाकर लौट आया। लौटने पर मालवीयजी महाराज ने पूछा—'तुम ऐसे ही गये थे?' स्वीकार करने पर उन्होंने समझाया कि 'देखो, अधूरे वेश में कहीं नहीं जाना चाहिए। जब समुद्र-मन्थन हुआ था उस समय विष्णुजी तो बड़े ठाट-बाट से गये थे, इसलिए उन्हें लक्ष्मी मिली, कौस्तुभ मणि मिला, शंख मिला, किन्तु जब शंकरजी नंग-धड़ंग पहुँचे तो उन्हें काल-कूट विष मिला। इसलिए सदा सुवेश रहना चाहिए।' काला रंग उन्हें अप्रिय था। वे काले रंग को शनिश्चरी रंग मानते थे और कहते थे कि 'वैज्ञानिक दृष्टि से भी काले रंग में सब रंग मर जाते हैं और श्वेत रंग में सब रंग चमकते रहते हैं। यह काले रंग के वस्त्र तो अँगरेजों ने चलाये हैं।'

खान-पान में तो वे पूर्ण संयत थे ही। गौहाटी कांग्रेस में वे असम के नेता श्री टी० फूकन के यहाँ ठहराये गये। उनके साथ जो सेवक गया था उसने मालवीयजी की मालिश के लिए तेल रखने को बोतल माँगी और उसमें तेल भर लिया। जब वह बोतल मालवीयजी ने देखी तो तत्काल कहा कि तेलसहित यह बोतल किसी ऐसे स्थान पर फेंक आओ कि कोई देख न पावे क्योंकि वह मदिरा की बोतल थी। वे गोलमेज परिषद् के अवसर पर लन्दन भी हो आये पर उनका आचार वहाँ भी शिथिल न हुआ। आचार के ही समान वे अपने विचारों में भी बड़े दृढ़ थे। जो बात धर्म-बुद्धि से ठीक समझते थे उसे कहने में कभी संकोच नहीं करते थे। जब गांधीजी के सुपुत्र देवदास का विवाह श्री राजगोपालाचारी की पुत्री से हुआ और मालवीयजी से आशीर्वाद माँगा गया तो उन्होंने आशीर्वाद भेज दिया किन्तु साथ ही यह भी लिख दिया कि मैं ऐसे विवाह से सहमत नहीं हूँ। जब गांधीजी ने अंतिम बार अपना २१

दिन का अनशन प्रारंभ किया था तब मालवीयजी महाराज ने गांधीजी को लिखा था कि इस प्रकार का अनशन नहीं करना चाहिए, इससे अभिमान बढ़ता है। तपस्या का भी अभिमान श्रेयस्कर नहीं होता। जिस समय गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन या अछूतोद्धार आन्दोलन प्रारंभ किया उस समय भी मालवीयजी ने स्पष्ट रूप से उनका विरोध किया और उन्होंने लोकमत की उपेक्षा करते हुए भी अपने विचार का निर्भीकतापूर्वक प्रतिपादन किया था। जब कलकत्ते में दंगा हुआ और मालवीयजी महाराज वहाँ जाने लगे तब सब ने समझाया कि वहाँ जाना बड़ा संकटपूर्ण है किन्तु उन्होंने 'यदि समरमपास्य नास्ति मृत्युः' वाला श्लोक सुनाया और निर्भीकता के साथ वहाँ चले गये। मैं आज भी उनकी वह पौरुषपूर्ण वाणी सुन रहा हूँ—

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।

अर्जुन की दो प्रतिज्ञाएँ हैं—न किसीके आगे दीनता दिखाऊँगा, न पीठ दिखाकर भागूंगा।

वे विद्वानों और अध्यापकों का बड़ा सम्मान करते थे। वे कहा करते थे कि विद्वान् रहते नहीं हैं, रक्खे जाते हैं। जैसे बड़े नाज से बुलबुल पाली जाती है वैसे ही मनस्वी विद्वान् भी रक्खे जाते हैं। अब वैसा गुण-ग्राहक रह कहाँ गया है? 'पंडिताः खंडिताः सर्वे मालवीये दिवंगते'। मालवीयजी के उठ जाने पर विद्वान् निराधार हो गये, विशेषतः इस युग में जब विद्वानों और प्राध्यापकों के साथ मजदूरों का सा व्यवहार किया जाने लगा है। एक बार हम लोगों ने एक गायनाचार्यजी के विरुद्ध मालवीयजी महाराज से कुछ कह दिया था। उन्होंने तत्काल गायनाचार्यजी को बुलवा भेजा। हम लोग बड़े प्रसन्न हुए कि अब गायनाचार्यजी पर डाँट पड़ी। किन्तु उनके आते ही मालवीयजी महाराज ने हम लोगों को कहा—'इनके पैर छुओ और क्षमा माँगो और आज से प्रतिज्ञा करो कि अपने गुरु के विरुद्ध कभी कोई बात नहीं कहेंगे।' हम हक्के-बक्के रह गये, रो दिये। हमें अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

मैंने लगातार २३ वर्षों तक अपने पूर्वजन्म के सुकृत के फलस्वरूप ऋषि-कल्प, परमपूज्य मालवीयजी महाराज का परम सान्निध्य और उनकी परम कृपा प्राप्त की है। मैं इस युग के अनेक महापुरुषों के व्यक्तिगत और निकट सम्पर्क में रह चुका हूँ, किंतु मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच या भीति नहीं है कि इतना पवित्र, उदार, क्षमाशील, गुणग्राही और कर्मठ महापुरुष कई शताब्दियों से संसार में दूसरा कोई नहीं हुआ जो मन, वचन और कर्म से इतना निष्कलंक और सर्वमान्य हो। इसलिए उस प्रसिद्ध श्लोक में तनिक-सा परिवर्त्तन करके में कह सकता हूँ—

नरपतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्त्ता द्विष्यते पार्थिवेन्द्रैः।
इति महति विरोधे वर्त्तमाने समाने
नृपति-जन-हितैषी मोहनो मालवीयः॥

[राजाओं का हित करनेवाले का जनता आदर नहीं करती, जनता का हित चाहनेवाले का राजा नहीं आदर करते किन्तु इस विरोध के होते हुए भी मालवीयजी को शासक और जनता दोनों का आदर प्राप्त था।]

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय
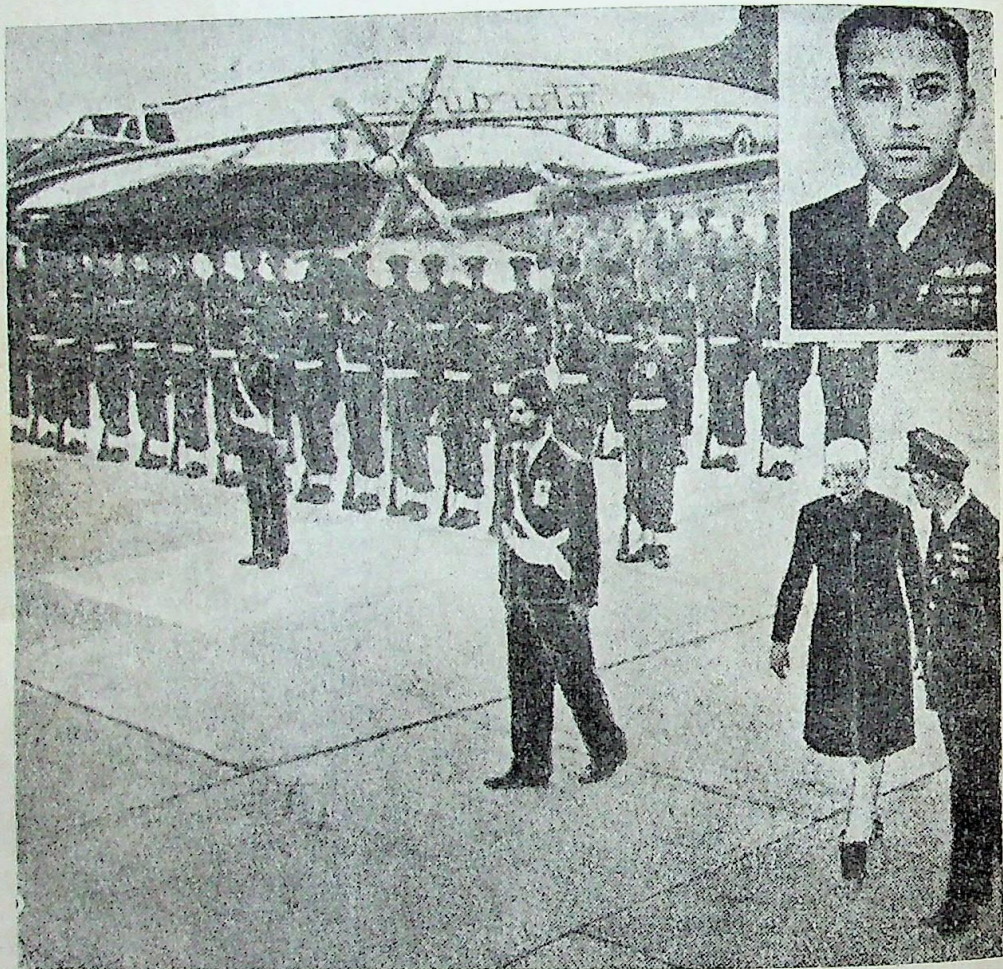
भारत में पहिली बार माल ले जानेवाला वायुयान कानपुर में बनाया गया है। उसका नाम वायुसेना के अध्यक्ष स्वर्गीय सुव्रत मुकर्जी के नाम पर 'सुव्रत' रखा गया है। उसकी पहिली उड़ान का उद्घाटन गत मास प्रधान मंत्री ने किया।

महामना मालवीयजी के कतिपय संस्मरण

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

धर्मात्मा या महामना ?——काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय में एक बार बोलते हुए 'लीडर' के प्रसिद्ध संपादक स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि ने अपने भाषण में कहा कि मालवीय-जी के नाम के आगे 'धर्म्मात्मा' शब्द जोड़ना उचित होगा। उनकी दलील थी कि यदि मोहनदास कर्मचंद गांधी के नाम के आगे 'महात्मा' शब्द जोड़ा जाता है तो मदनमोहन मालवीय के नाम के आगे 'धर्म्मात्मा' जोड़ना उचित होगा। उनके जीवन-काल ही में गांधीजी के नाम के आगे 'महात्मा' शब्द जुड़ने लगा, पर देश में श्री चिन्तामणि के प्रस्ताव की ओर किसीका ध्यान न गया। भारतवासियों ने उन्हें 'महामना' की उपाधि से विभूषित करना उचित समझा। क्यों देश के रहनेवालों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया? इसमें हिंदूपने की गंध आती थी और देश में धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना होनी थी ? कारण कुछ भी रहा हो, मालवीयजी के नाम के आगे 'महामना' जोड़ने का देश भर में चलन हो गया है। अतएव इस वार्ता में मैं 'महामना मालवीयजी' ही के नाम से उन्हें संबोधित करूँगा, यद्यपि चिन्तामणिजी के सुझाव में बहुत कुछ सत्य का अंश निहित है। मालवीयजी आजीवन हिंदू धर्म्म के विधि-विहित नियमों का पालन करते रहे। उन्हें पुराण-पंथी, कट्टर हिंदुओं को धीरे-धीरे ठीक पथ पर लाना था। पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि मरने के समय तक उनकी श्रद्धा, आस्था और निष्ठा हिंदू धर्म्म में थी। जिस समय देश में गांधीजी के नेतृत्व में मंदिर-प्रवेश का आंदोलन की धूम मची हुई थी, उस समय महामना मालवीयजी ने स्मृतियों से प्रमाण जुटाकर हिंदू पंडितों की एक सभा की और शूद्रों और अंत्यजों को दीक्षा देने की बात उठायी। इसे सुनकर पंडितों में हो-हल्ला मच गया। किंतु जब पंडितों के व्याख्यानों को सुनने के बाद महामना-जी ने अपना मृदु और मधुर भाषण दिया तो पंडितों ने सर्वसम्मति से मालवीयजी का कहना मान लिया और माल-वीयजी महाराज लगे शूद्रों और अंत्यजों को मंत्र देने। आजकल अस्पृश्यता-निवारण की माँग अंत्यज कर रहे हैं। यदि इस समय मालवीयजी जीवित होते, तो वह क्या करते, कहना कठिन है, पर इतना कहा ही जा सकता है कि वे क्रांतिकारी उपायों द्वारा समाज को सुधारने के प्रति-कूल थे। वे समाज में परिवर्तन करना चाहते थे, पर इतनी तेजी के साथ नहीं जितनी तेजी से वे अब हो रहे हैं। क्रांति के नहीं, वह विकासवाद के पुजारी थे। हौले-हौले समाज में सुधार लाने के वे पक्षपाती थे। उग्रता उनके स्वभाव में नहीं थी। इसीलिए सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी, वे देश के अग्रणी नेता न हो सके। दूसरों के प्रदर्शित पथ का अनुसरण करना ही उनके भाग्य में लिखा था। इसे हरीच्छा पर छोड़कर वह अपने पथ पर जीवन भर चले। उनकी आत्मा और धर्म्म ने जिस बात के करने की आज्ञा उन्हें दी, उसे करने में कभी वह नहीं हिचके। सचाई की वे साक्षात् मूर्ति थे। ऐसे महापुरुष को यदि हम धर्म्मात्मा कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

प्रथम दर्शन——सन् १९०८ के आरंभ की यह बात है, जब महामना या धर्मात्मा मालवीयजी के पुण्य दर्शनों का पहली बार मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। बी० ए० की परीक्षा की तैयारी करने के लिए मैं कानपुर से प्रयाग गया था और वहाँ मैक्डानल्ड हिंदू बोर्डिंग हाउस में स्वर्गीय निगम का अतिथि बना। उन दिनों प्रयाग विश्वविद्यालय में एल० एल० बी० के विद्यार्थी थे श्री गोविंदवल्लभ पंत, और वे भी उसी बोर्डिंग हाउस में रहते थे, जिसमें अतिथि के रूप में मैं रहता था। उन दिनों प्रयाग के नव-युवकों के नेताओं में श्री पुरुषोत्तमदास टंडन का नाम सुनायी देता था। जिस समय की बात मैं कह रहा हूँ, उस समय मालवीयजी प्रतिदिन सायंकाल बोर्डिंग हाउस में जाया करते थे। उन्होंने इसे चन्दे से बनवाया था, और उस समय वे उस ट्रस्ट के सचिव के पद पर आसीन थे, जो उसकी देख-रेख के लिए जिम्मेदार था। मालवीयजी की वह भव्य मूर्ति मुझे आज भी याद है। श्वेत वस्त्रधारी गौर वर्ण, कद मँझोला, ललाट पर बिंदी, छड़ी हाथ में, वह महापुरुष वहाँ पधारा और मुझे उसके पुण्य दर्शनों का पहली बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। कानपुर कालेज में पढ़ने के समय मैंने अपने गुरु से अनेक बार मालवीयजी की ख्याति सुनी थी, पर जब उनके साक्षात् दर्शन हुए तब आपसे आप इस ब्राह्मण को देखकर उसके सामने मैं नत-मस्तक हो गया, और वर्षों से जिस बात की लालसा थी वह पूरी हो गयी। हम सब विद्यार्थी उन्हें घेरकर खड़े हो गये और सबसे उन्होंने अलग-अलग पूछा कि आपको कोई कष्ट तो नहीं है। सबने एक स्वर से उत्तर दिया कि

हमें इस बोर्डिंग हाउस में कोई कष्ट नहीं है, केवल उनके वरद-हस्त की कामना सबके हृदयों में थी। विद्यार्थियों के मुख से यह बात सुनकर मालवीयजी प्रसन्न हुए और बोले—'तुम सबको व्यायाम करना चाहिए। कसरत बड़ी लाभकारी होती है। दुर्बल होना पाप है। तुम सबको पुरुष होना चाहिए। बी ए मैन (Be a man)। नृशंस हो रावण की तरह। वह उस आदमी से कहीं अच्छा था जो अपनी दुर्बलता के कारण दूसरों के सामने घिघियाता है। यदि पुरुषार्थ के साथ सद्‌गुण भी हों तो सोने में सुहागा है। इसलिए पुरुष बनो। बिना व्यायाम के शरीर में बल नहीं आ सकता। इसलिए व्यायाम नित्य प्रति करने की जरूरत है।' व्यायाम के साथ हरि के नाम की चर्चा भी उन्होंने देर तक की। घेरे हुए विद्यार्थियों को उनकी बातों में जो आनंद आता था उसका क्या कहना ? लेकिन उनकी बातों का उनपर क्या प्रभाव पड़ा, सो हमें मालूम है। इसके बाद मालवीयजी वहाँसे पधार गये और हम सब अपने कमरों को लौट आये। दूसरों की तो मैं जानता नहीं लेकिन उस रात्रि में घंटों तक मैं इस पुण्य दर्शन की याद करता रहा और जब नींद आयी तब स्वप्न में भी महामना के दर्शनों का सुख-सौभाग्य बार-बार प्राप्त करता रहा। औरों के लिए तो यह नित्य की बात थी पर मेरे लिए तो यह नया अनुभव था।

मालवीयजी के बहुत से संस्मरण इस समय मुझे याद आते हैं, लेकिन यहाँपर मैं कुछ थोड़े से ही संस्मरणों की चर्चा करना चाहता हूँ।

मालवीयजी का विभिन्न भाषाओं पर अधिकार:

द्वितीय कांग्रेस-अधिवेशन में मालवीयजी का जो भाषण हुआ, कुछ लोग कहते हैं कि उसने महामना के जीवन को मोड़ दिया और उनकी अभिरुचि राजनीति में हो गयी। ह्यूम का वर्णन मालवीयजी के व्याख्यान के विषय में मैंने पढ़ा है और मालवीयजी के भाषण को भी पढ़ा है। मालवीयजी में बोलने की शक्ति नैसर्गिक थी। उनका अँगरेजी में बोलना जितना मधुर था उतना शायद ही किसी अन्य का रहा हो। लार्ड रीडिंग ने डा० सप्रू से एक बार कहा कि पंडितजी (महामनाजी) का परिमार्जित अँगरेजी पर आश्चर्यजनक अधिकार है। वह उस भाषा को जब बोलते हैं तब मानों फूल बरसते हैं। इसी तरह मालवीयजी को उर्दू के ऊपर भी अधिकार था। मैंने लखनऊ में प्रान्तीय कान्फ्रेन्स के अधिवेशन में एक बार बोलते सुना। उन्होंने उस समय जो व्याख्यान दिया वह उर्दू भाषा में था, जिसे सुनकर लखनऊ के पढ़े-लिखे मुसलमानों का कहना था कि इसके पहले वे नहीं जानते थे कि मालवीयजी में इतनी बलागत (उर्दू में वाग्मिता) और फसाहत (प्रवाह) है। जिसने उस भाषण को सुना, वे ही मालवीयजी के उर्दू पर अधिकार को देखकर दंग रह गये। इसी तरह, कहते हैं, मालवीयजी को बंगला और संस्कृत भाषाओं पर समान रूप से अधिकार प्राप्त था। इन दोनों भाषाओं में वे उसी तरह व्याख्यान देते या बात करते थे जिस तरह हिंदी में वे बात करते या बोलते थे। इसीलिए हमने कहा है कि विभिन्न भाषाओं पर महामना मालवीयजी का अधिकार नैसर्गिक था। कहाँ से उनमें यह शक्ति आयी, यह कहना कठिन है; लेकिन उनमें यह अद्‌भुत शक्ति थी, यह निर्विवाद है।

कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में मालवीयजी का भाषण:

मालवीयजी को बोलने की आदत शुरू से ही थी और उनका कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन में जो भाषण हुआ, उसको उस समय के कांग्रेसियों में इस रूप में देखा कि स्वराज्य के गगन में किसी नये तारे का प्रादुर्भाव हुआ। लेकिन मालवीयजी की ख्याति इसके बहुत पहले हो चुकी थी। 'हिन्दुस्तान' के संपादक की हैसियत से हिंदी और हिन्दुस्तान की जो सेवा उन्होंने की वह अनमोल है। उस समय के लोग जो देश के मामलों में अभिरुचि रखते थे, वे मालवीयजी का लोहा पहले ही से मानने लगे थे। अतएव यह कहना पड़ेगा कि कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में मालवीयजी के बोलने का महत्त्व केवल इतना है कि उनकी धाक उस समय के कांग्रेसियों पर जम गयी।

मालवीयजी राजनीतिक पुरुष:

मालवीयजी का कार्यक्षेत्र भारत के लिए स्वराज्य-प्राप्ति और हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्थापित करना था। और सब बातें गौण थीं। उन्होंने जो कुछ किया, वह सब इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया। इन दो उद्देश्यों में भी वे स्वराज्य की प्राप्ति को प्राथमिकता देते थे। मालवीयजी जन्म से राजनीतिक पुरुष थे और मरने तक उनका सारा प्रयत्न इस ध्येय की सिद्धि की ओर लगा रहा। कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में उनका भाषण इसी उद्देश्य की साधना की एक

है। उसको अत्यधिक महत्त्व देना मालवीयजी के अन्याय करना है।

दया और सेवा की मूर्ति :

प्रयाग के प्रसिद्ध दैनिक 'लीडर' ने मालवीयजी को की मूर्ति कहा था। उसने लिखा था कि life is a sermon on self-sacrifice" यह विशिष्ट गुण था—और जीवन भर उनमें गुण रहा कि उनमें आत्मत्याग की अपूर्व क्षमता थी, एक बार नहीं अनेक बार उन्होंने अपने जीवन अनुकरणीय उदाहरण हमारे सामने रखे। स्वर्गीय कृष्ण गोखले ने एक बार बातों-बातों में कहा कि भारत के पंडितजी (मालवीयजी) का आत्म- अनुपम है। उनके पास गेंद आया लेकिन उसपर पदाघात नहीं किया। तीन हजार रुपये की मासिक को लात मारकर हिंदू विश्वविद्यालय के लिए चंदा में जुट गये।

एक बार मैं मालवीयजी के साथ रेल की यात्रा कर था। भोजनोपरांत मालवीयजी की आज्ञा हुई कि कुछ सुनाऊँ। मैंने हाथ जोड़कर उनसे निवेदन किया मुझे सिर्फ कबीरदास के कुछ दोहों के सिवाय और कुछ याद नहीं। उन्होंने कहा कि अच्छा, कबीर ही सुनाओ। कबीर के कुछ दोहे सुनाए। अंत में कबीरदास का दोहा मैंने पढ़ा :—

मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोंहि न आवत लाज॥

दोहे को सुनकर उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। की आज्ञा हुई कि उनको मैं इस दोहे को फिर सुनाऊँ। मैंने वह दोहा पढ़ा और उनके आँसुओं का ताँता जोरों से बँध गया। उनकी आज्ञा हुई कि फिर इस को सुनाओ। तीसरी बार मैंने उन्हें यह दोहा सुनाया। आँसू और जोर से बहने लगे। मैंने कहा कि मैं अब न सुनाऊँगा। आपको रुलाने के लिए मैं इन दोहों का नहीं करूँगा। मधुर भाषा में उन्होंने जवाब दिया—पागल, यह आनंद के आँसू हैं; रोने के आँसू नहीं।' कहा कि मैं अब आपको कबीर के दोहे नहीं सुनाऊँगा, आपके आनंद के ही आँसू क्यों न हों। मालवीयजी आत्मत्याग की कहानी कबीरदास ने पाँच सौ वर्ष पहले लिख दी थी पर इस अवधि में मालवीयजी के अतिरिक्त कोई दूसरा माई का लाल पैदा नहीं हुआ जिसका जीवन आत्मत्याग का बना हो। दधीचि की कथा हम सब सुनते और पढ़ते आये हैं। उन्होंने केवल अपनी हड्डियों का दान एक बार किया था लेकिन आजीवन उनका भी आत्मत्याग हमें कहानी में नहीं मिलता। मालवीयजी का त्याग दधीचि से कहीं बढ़कर था। वकालत से वह बहुत सा धन कमा सकते थे, उच्च से उच्च पद पर वे पहुँच सकते थे, लेकिन इस प्रलोभन को लात मारकर, आयी लक्ष्मी को त्याग कर, उन्होंने गरीबी का बाना ओढ़ा और जन-सेवा की। ऐसे महापुरुष का, ऐसे अनुपम त्यागी पुरुष का गुणगान करना वक्ता और श्रोता दोनों को आत्मबल प्रदान करता है।

यह तो हुई उनके आत्मिक त्याग की बात। अब, आइए, दूसरी घटना का वर्णन मैं करूँ जो आप-बीती है अतएव उसमें मिलावट का कोई खतरा नहीं। गुजरानवाला में श्री मोतीलालजी, स्वामी श्रद्धानन्द और मदनमोहन मालवीयजी के साथ में भी खालसा कालेज को देखने के लिए चला जिसपर, कहा जाता है, अँगरेजी सैनिकों ने हवाई जहाज से गोली चलायी थी और उन गोलियों के निशान उस समय तक कालेज की इमारत पर साफ दिखाई देते थे। हम लोगों के साथ बहुत बड़ी भीड़ थी। जून की दोपहर का समय; आकाश में सूर्य प्रचण्ड रूप से तप रहा था। इन तीनों नेताओं के पास छाते थे। मेरे पास कोई छाता न था। तीनों नेताओं के साथ मैं भीड़ के आगे चल रहा था। पहली दृष्टि मुझ पर स्वामी श्रद्धानंद की पड़ी। उन्होंने कहा—'सवा रुपये का छाता मिलता है। तिवारीजी, उसे आप क्यों नहीं खरीद लेते ताकि ऐसे अवसरों पर वह काम दे जाये।' यह कहकर स्वामीजी महाराज आगे बढ़ गये। उसके बाद मोतीलालजी नेहरू की दृष्टि मुझ पर पड़ी। उन्होंने कहा—'तिवारीजी, आप खुदकुशी करना चाहते हैं?' इन दोनों नेताओं की बातों को मालवीयजी ने सुन लिया लेकिन वह मौन रहे। मैं क्या देखता हूँ कि धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए वह मेरी ओर चले आये और अपना छाता मेरे सिर पर लगाकर चलने लगे। मैं ज्यों-ज्यों उनके छाते से दूर भागता गया त्यों-त्यों वह मेरे पास ही आते गये और मेरे सिर पर अपना छाता लगाये रहे। मैंने कई बार प्रतिवाद किया कि 'महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं?

मुफ्त में मुझे पाप का भागी आप बना रहे हैं।' उसका एक ही उत्तर उन्होंने दिया--'तुम उस सेवा-समिति के मंत्री हो, जिसका सभापति मैं हूँ। क्या मुझे सेवा के धर्म से बिलकुल ही वंचित तुम करना चाहते हो ? तुम बहुत सी सेवा जनता की कर रहे हो, तुम्हारी सेवा कर तुम्हारे पुण्य का भागी मैं होना चाहता हूँ।' इतना सुनने के बाद मैं खामोश हो गया और मालवीयजी महाराज उस समय तक मेरे सिर पर छाता लगाये रहे, जब तक कालेज से हम लौटे नहीं।

तीनों नेताओं का यह चित्र जब कभी मैं मनन करता हूँ तब मालवीयजी की सेवा-निष्ठा का अजस्र स्रोत हृदय में फूट निकलता है। उन्होंने सेवा-समिति को यह मूल मंत्र दिया था, जो भारत भर में प्रसिद्ध हो गया है :--

न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गं, नापुनर्भवम्,
कामये दुःखतप्तानाम्, प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

मालवीयजी की करुणा का एक उदाहरण :

दूसरों के दुःख को देखकर कई बार मैंने मालवीयजी को दुःखित होते देखा और उनकी जो कुछ भी सहायता कर सकते थे वे उसे तुरंत देते थे। इसका एक ही उदाहरण देना समीचीन होगा। जब पंजाब में मार्शल ला का दौर-दौरा था तब जिन परिवारों के रोटी कमानेवाले निहत्थों की मृत्यु डायर के सैनिकों की गोलियों से हुई थी, उनकी खोज-खबर लेना और उन्हें सहायता पहुँचाना देश के किसी बड़े नेता को न सूझा। यह बात सूझी तो अकेले महामना मालवीय को। प्रयाग की सेवा-समिति के द्वारा न जाने कितने परिवारों को मालवीयजी के प्रयत्नों के द्वारा सहायता पहुँची। बहुत से परिवारों को तो मासिक सहायता भी देने का प्रबंध उन्होंने कर दिया।

स्वामी श्रद्धानंद ने मालवीयजी के अनुरोध पर प्रयाग की सेवा-समिति के उप-सभापति होना अस्थायी रूप से स्वीकार कर लिया था और मेरे द्वारा पंजाब के पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का काम, स्वामीजी के तत्त्वावधान में, महीनों तक होता रहा। बहुत से स्वयंसेवकों के सहयोग से यह कार्य सुचारु रूप से संपन्न हुआ। उन्हींको इसका श्रेय है कि जलियानवाला बाग में तीन सौ पचास से ऊपर हतों की संख्या का पता लग सका। मालवीयजी का यह काम अनुपम है। इतने ही से उन्होंने संतोष नहीं किया। पंजाब के जो नेता मार्शल ला के अनुसार कैदी थे और जिनकी चल और अचल सम्पत्ति की जब्ती का मार्शल ला की अदालत ने हुक्म दिया था उन एक-एक से मालवीयजी महाराज मिले और उन्हें यह आश्वासन दिया कि वह तब तक चैन से नहीं सोयेंगे जब तक उनके क्लेश और विपदा का अंत नहीं कर लेंगे। केन्द्र की कौन्सिल में बोलते हुए मालवीयजी ने पंजाब के हिन्दुस्तानियों पर हुए अत्याचार की करुण कहानी चार घंटे के व्याख्यान में कह सुनायी। उसके पहले और उसके बाद किसी और ने इतना लंबा भाषण नहीं दिया। उनके इस व्याख्यान से पंजाब में अत्याचार का जो नंगा नाच अँगरेजों ने खेला था, उसकी कथा सारे देश में फैल गयी और देश की प्रतिक्रिया से अँगरेजी सत्ता का सिंहासन हिल गया। सब नेताओं की अपीलें उन्होंने प्रीवी कौंसिल में करायीं और उनको छुड़ाने का जो प्रयत्न मालवीयजी ने किया, वह अब इतिहास की बात हो गयी है। मालवीयजी का पंजाब के निवासियों के ऊपर जो ऋण है, उसके यहाँ आँकने की कोई आवश्यकता नहीं है। इतना कहना काफी होगा कि पंजाब के जन-जन के हृदय पर मालवीयजी का उपकार अंकित था और उस उपकार का बदला उस समय के पंजाबियों ने अनेक प्रकार से दिया।

इस एक घटना से पर-दुःख-कातर मालवीयजी की करुणा और दया की एक छोटी सी झलक मिलती है। लेकिन वह इतनी प्यारी है कि उसे बार-बार देखने की इच्छा होती है।

मजाक या व्यंग्य का पूर्ण रूप से अभाव

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि भाषण करने की आदत मालवीयजी में थी लेकिन जो कुछ वे बोलते थे, उसे वे गंभीर मुद्रा में कहते थे और दूसरे के व्यंग्य को जानते हुए भी जो जवाब देते थे उसमें भी मधुरता के साथ गंभीरता होती थी। दूसरों के व्यंग्य का भी वे सीधा-सीधा अर्थ लगाते थे और उसका उत्तर वैसे ही देते थे जैसे उनके कथन में कोई व्यंग्य न हो। इस विषय पर आदरणीय लेखकों ने--श्री व्रजमोहन व्यास और श्री 'सुमन' जी ने--बहुत कुछ लिखा है। इन दोनों लेखकों की राय में मालवीयजी के भाषणों में हास्य-रस की कमी थी। मैं विनम्रता के साथ उनके इस मत से सहमत नहीं हूँ। उन्होंने कांग्रेस के कानपुरवाले अधिवेशन की एक घटना का उल्लेख किया है, जिसमें श्री मोतीलालजी नेहरू और महामना मालवीयजी में कुछ खटपट हो गयी थी। इस एक घटना से इतना बड़ा परिणाम निकालना मैं अनुचित समझता हूँ। असल में बात यह है कि मालवीयजी व्यंग्य को भी व्यंग्य न मानकर गंभीरता से उसका उत्तर देते थे।

महामना मदनमोहन मालवीय

जीवन और व्यक्तित्व

श्रीभगवती चरण वर्मा

(१)

आज से एक सौ वर्ष पहले का भारतवर्ष १८५७ की असफल राज्यक्रान्ति से श्रीहत, विदेशियों से शासित और अपमानित, जड़ और अचेतन, और उसी भारतवर्ष में प्रयाग के एक छोटे से मुहल्ले के एक छोटे से मकान में एक असम्पन्न मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में २५ दिसम्बर १८६१ में मालवीयजी का जन्म हुआ था। मालवीयजी के पिता पण्डित व्रजनाथ व्यास धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, कथा कहकर तथा पूजन-पाठ करके वह अपना जीवन निर्वाह करते थे, उनका जीवन आचार-विचार का जीवन था।

मदनमोहन मालवीय इसी आचार-विचार एवं धार्मिक वातावरण में पले। उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत और हिन्दी की मिली—पर मदन मोहन में बहुत कुछ ज्ञान असाधारण था, उस समय के बालकों से सर्वदा भिन्न। वैसे बालक-सुलभ चपलता उनमें भी थी, जीवन के प्रति अनुराग था। पर इस सबके पीछे एक कर्मशील गंभीरता से युक्त, महान् साहसी व्यक्तित्व भी था उनमें। उनमें जैसे सरस्वती का निवास था। ज्ञान और कर्म का एक उन्मुक्त स्रोत उनके अन्दर था। उनकी उस बाल्यकाल की प्रतिभा को उनके अध्यापक पण्डित देवकीनन्दन ने स्पष्ट रूप से देखा, और जब वह सात वर्ष के बालक थे, एक दिन माघ मेला में पं० देवकीनन्दन ने बालक मदन-मोहन से एक व्याख्यान भी दिलवा दिया।

१८५७ की असफल राज्यक्रान्ति के बाद अँगरेजी राज्य ने भारतवर्ष में अपने पैर जमा लिये थे और अँगरेजी की शिक्षा का प्रबन्ध प्रायः सभी नगरों में हो गया था। जीवन में आगे बढ़ने के लिए तथा सफलता प्राप्त करने के लिए अँगरेजी शिक्षा का पाना अनिवार्य समझा जाता था। इलाहाबाद उस समय युक्त प्रान्त की राज-धानी थी, वहाँ भी अँगरेजी का हाई स्कूल खुल गया था। बालक मदन मोहन अपनी छोटी-सी अवस्था में ही अपने लिए सोचने-समझने लगे थे। उन्होंने अँगरेजी पढ़ने का आग्रह किया और डिस्ट्रिक्ट हाई स्कूल में भरती हो गये। हाई स्कूल पास करने के बाद वह म्योर सेन्ट्रल कालेज में भरती हुए, वहाँसे उन्होंने एफ० ए० (इन्टरमीडिएट) और बी० ए० पास किया।

अपने विद्यार्थी काल में गम्भीर मनन और चिन्तन के साथ-साथ कर्म की प्रबल-प्रेरणा भी उन्होंने अपने अन्दर अनुभव की। पर धर्म और आचार पर पूर्ण आस्था के कारण उन्हें अपना कार्यक्षेत्र निर्धारित करने में कठिनाई भी पड़ी। उनका कार्यक्षेत्र स्वभावतः धर्म और आस्था के नियमों से बँधा होने के कारण उन्हें धर्म के प्रचार और समाज में सुधार एवं परिष्कार का मार्ग ही दिखा। उस समय गुलामी की अक्षमताओं से युक्त देश की सामाजिक परिस्थिति एक तरह से मालवीयजी के लिए वरदान ही साबित हुई। उनकी सात्विक चेतना के लिए एक विशाल कार्यक्षेत्र था।

नवयुवक मदनमोहन के सामने स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठ खड़ा होता था कि हिन्दुस्तान गुलाम क्यों है! यही नहीं, वह हिन्दुस्तान को हिन्दू धर्म और सभ्यता का प्रतीक भी मानते थे। अँगरेजों की गुलामी में पड़ने के पहले हिन्दुस्तान को कई सौ वर्षों तक मुसलमानों की गुलामी भी करनी पड़ी थी। और इस गुलामी का कारण उन्हें हिन्दुओं की चरित्रहीनता तथा आस्थाहीनता में दिखा। उन दिनों हिन्दुओं में पुनर्जागरण की एक लहर सी-आ गयी थी। कुछ लोग ऐसा समझते कि हिन्दू-धर्म में समय के साथ जो कुरीतियाँ आ गयी हैं उनका आमूल परिवर्तन करना चाहिए, कुछ लोग हिन्दू-धर्म में सुधार करके उन कुरीतियों को धीरे-धीरे हटाना चाहते हैं। उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध हिन्दू-समाज में इस मानसिक मंथन के लिए उल्लेखनीय है। राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज, दक्षिण में जन्म लेनेवाला प्रार्थना समाज, स्वामी दयानन्द का आर्य समाज इसी मानसिक मंथन के द्योतक हैं जिन्होंने हिन्दू समाज को नष्ट होने से बचाया। और जहाँ यह क्रान्तिकारी कदम उठानेवाली विद्रोहात्मक संस्थाओं का सृजन हो रहा था वहीं इन सब विद्रोहों और क्रान्तियों को अन्ततोगत्वा अपने में लय कर लेनेवाले परम्परागत सनातन हिन्दूधर्म को सक्षम और समर्थ बनाने के लिए सुस्पष्ट न दिखनेवाला एक आन्दोलन भी चल रहा था।

मदन मोहन मालवीय ने अपने विद्यार्थी जीवन के काल में ही अपने को इस आन्दोलन का प्रतीक बना लिया था। इसमें मालवीयजी को निर्देशन मिला म्योर कालेज के संस्कृत के प्राध्यापक पण्डित आदित्य राम भट्टाचार्य से जिन्हें यदि मालवीयजी का पथ-प्रदर्शक कहा जाय तो अनुचित न होगा।

सन् १८८० में जब मालवीयजी म्योर कालेज में पढ़ रहे थे, कई लोगों के प्रयत्नों से, जिनमें आदित्य राम भट्टाचार्य भी थे, भारतवर्ष में हिन्दू समाज नामक संस्था की स्थापना हुई जिसका मुख्य उद्देश्य था हिन्दू समाज को सुसंगठित बनाना, उसके अन्दर की कुरीतियों को दूर करके तथा हिन्दू समाज में नवीन चेतना का सृजन करके। मदन मोहन मालवीय की अवस्था उस समय कुल १८-१९ वर्ष की थी, लेकिन इस सभा में वे सक्रिय भाग लेने लगे।

बी० ए० पास कर लेने के बाद मालवीयजी इस जन-सेवा के कार्य में लग जाना चाहते थे, लेकिन उनके परिवार की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। मालवीय जी का विवाह भी १८८१ में हो गया था——परिवार बढ़ता ही जा रहा था। उन दिनों बी० ए० पास कर लेनेवाले भारतीय नवयुवक के लिए सम्पन्नता के द्वार खुले हुए थे, हिन्दुस्तानियों को जो ऊँची से ऊँची नौकरियाँ प्राप्त थीं उनमें से कोई भी मालवीयजी को मिल सकती थी। परिवारवालों के आग्रह को वह नहीं टाल सके, लेकिन उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र निर्धारित कर लिया था और इसलिए वह इलाहाबाद के हाई स्कूल में अध्यापक हो गये।

अध्यापकी करते हुए वह हिन्दू समाज का काम निरन्तर करते रहे। सन् १८८४ में उन्होंने प्रयाग में उत्तर भारतीय हिन्दू समाज संस्था की स्थापना की। २३ वर्ष के नवयुवक के लिए अपने बल और भरोसे पर इतना बड़ा काम उठा लेना बड़ी असाधारण बात थी। महाराज बनारस की कोठी में यमुना के किनारे उन्होंने इस संस्था का प्रथम अधिवेशन बड़ी धूम-धाम के साथ किया जिसमें उत्तर भारत के प्रायः सभी प्रतिष्ठित विद्वान् और धर्माचार्य आये थे।

उन्हीं दिनों कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह विलायत से लौटे थे। राजा रामपाल सिंह भी नवयुवक थे, उनके अन्दर देश और समाज के कल्याण की भावना थी। वह भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। उस समय के सामंतवादी समाज में राजाओं और ताल्लुकदारों का बड़ा मान होता था। राजा रामपाल सिंह उद्धत स्वभाव के थे, विदेश यात्रा से लौटे हुए। नई चेतना तथा जागृति का एक प्रकार का अभिमान भी था उनमें, वह अपने को उस सभा पर आरोपित करना चाहते थे। मालवीय जी ने उनको इससे रोककर यह प्रदर्शित कर दिया कि उनमें एक प्रबल व्यक्तित्व है। राजा रामपाल सिंह को मालवीयजी का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा, पर वह सभा मालवीयजी ने आयोजित की थी इससे वह कुछ कह नहीं सके। राजा रामपाल सिंह ने विलायत से लौटने के बाद हिन्दुस्थान नाम का एक पत्र निकाला था, उसमें उन्होंने अपना रोष अवश्य प्रकट किया था। लेकिन राजा रामपाल सिंह के व्यक्तित्व में कहीं महानता भी थी——मालवीयजी के व्यक्तित्व ने उन्हें प्रभावित भी काफी किया था।

(२)

उस समय तक भारतवर्ष में राजनीतिक चेतना का नितान्त अभाव था। सन् १८८५ में कांग्रेस की नींव बम्बई में पड़ी थी और उस समय मालवीयजी की अवस्था २४ वर्ष की थी। कांग्रेस की नींव डालनेवाले प्रायः सभी प्रौढ़ और परिपक्व व्यक्तित्व थे, और उनमें अधिकतर बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि उन्नत और जाग्रत स्थानों से आये थे। सन् १८८६ में कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। कांग्रेस का यह अधिवेशन क्रिसमस की छुट्टियों में रक्खा जाता था क्योंकि उन दिनों मौसम अच्छा होता है, तथा अँगरेजी शासन काल में क्रिसमस की छुट्टियाँ भी लम्बी होती थीं। पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य ने 'एक पंथ दो काज' वाली कहावत को मानों चरितार्थ करने के लिए कलकत्ता कांग्रेस में जाना निश्चित किया। मालवीयजी को भी वह अपने साथ ले गये।

उस कांग्रेस के अधिवेशन में मालवीयजी को एक नई दुनिया दिखी। हिन्दू समाज में सुधार के साथ-साथ राजनीतिक आन्दोलन भी भारत की स्वतंत्रता में सहायक होगा, उन्हें ऐसा लगा। अधिवेशन के तीसरे दिन मालवीयजी से न रहा गया। उन्होंने आदित्यराम भट्टाचार्य से यह इच्छा प्रकट की कि वह भी उस अधिवेशन में कुछ बोलना चाहते हैं। और आदित्यराम भट्टाचार्य ने

कलकत्ता अधिवेशन के सभापति दादा भाई नौरोजी के पास एक चिट भिजवा दी। मालवीयजी को बोलने के लिए बुलाया गया, और जो व्याख्यान उस दिन उन्होंने दिया उसकी धूम मच गयी। कांग्रेस की नींव डालनेवाले श्री ह्यूम ने उस वर्ष की कांग्रेस अधिवेशन की रिपोर्ट की प्रस्तावना में लिखा था :

"लेकिन शायद हरेक व्यक्ति पर उस वक्तृता का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा जो कोमल आकृतिवाले, बौद्धिकता और सहज प्रेरणा से युक्त, गौरवर्ण के उच्चकुलीय ब्राह्मण पंडित मदन मोहन मालवीय ने दी थी, और जिसने अनायास ही सभाध्यक्ष की बगल में एक कुरसी पर खड़े होकर सुमधुर स्वर में धारा-प्रवाह बोलना आरम्भ कर दिया था। उस युवक की ओजस्विता और वाक्पटुता से सारी सभा तन्मय हो गयी थी।"

मालवीयजी की कीर्त्ति सारे देश में फैल गयी। राजा रामपाल सिंह मालवीयजी की इस प्रतिभा पर मुग्ध हो गये। अध्यापक की हैसियत से मालवीयजी को उन दिनों ६०) प्रतिमास वेतन मिलता था। राजा साहेब को अपने पत्र के लिए एक सुयोग्य सम्पादक की आवश्यकता थी। उन्होंने बड़े प्रेम और आग्रह के साथ मालवीयजी को हिन्दुस्तान का सम्पादन भार ग्रहण करने को आमंत्रित किया, वेतन था २००) प्रतिमास। मालवीयजी के मन में भी राजा साहेब के प्रति स्नेह था, लेकिन वह सामंतवादी परम्परा की विकृतियों से भी परिचित थे। उन्होंने हिन्दुस्थान का सम्पादक होना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि जब राजा साहेब शराब पिये होंगे तब न वे मालवीयजी को बुलावेंगे, न उनसे कोई बात करेंगे। १८८७ में मालवीयजी हिन्दुस्तान के सम्पादक बन गये। और दो-ढाई वर्ष तक अपने ऊपर अधिक से अधिक संयम रखकर राजा साहेब ने अपनी शर्त निबाही भी, अर्थात् शराब पीकर उन्होंने मालवीयजी के साथ कभी कोई अशिष्टता नहीं की। पर १८८९ में एक दिन राजा साहेब चूक गये—नशे में धुत। उन्होंने प्रयाग के पण्डित अयोध्यानाथ के सम्बन्ध में कुछ अपशब्द कह दिये। मालवीयजी को यह अच्छा नहीं लगा। जब राजा साहेब संयत हो गये तब उन्होंने अपनी शर्त की याद दिलाकर हिन्दुस्थान से सम्बन्ध विच्छेद का निर्णय उन्हें बतलाया। राजा साहेब ने जो कुछ कहा था वह नशे में कहा था। उन्होंने मालवीयजी से क्षमा माँगी, लेकिन मालवीयजी ने निश्चय कर लिया था। राजा साहेब ने भरे हृदय से मालवीयजी को विदा किया, इस शर्त पर कि वे वकालत पढ़ेंगे और वकालत पास करके वकालत करेंगे। इसके लिए उन्होंने मालवीयजी को सौ रुपया महीना देने का भी आग्रह किया।

१८९१ में वकालत पास करके मालवीयजी ने वकालत आरम्भ कर दी। वह एक सफल और प्रसिद्ध वकील हो गये। पर उनका मन वकालत में नहीं लगता था। उनका ध्यान तो हिन्दू समाज के संगठन तथा देश की स्वतन्त्रता की ओर था। कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में उनकी गणना होने लगी थी। दूसरी ओर मालवीयजी का ध्यान हिन्दी की हीन अवस्था की ओर भी गया। स्वयं वह हिन्दी के अच्छे कवि थे, लेकिन अपने सार्वजनिक जीवन के कारण वह सृष्टा साहित्यकार नहीं बने। हाँ, हिन्दी को उसका अधिकार मिले—इस प्रयत्न में वह लग गये। उन दिनों अदालतों में हिन्दी का कोई स्थान नहीं था, उर्दू चलती थी वहाँ पर। सौभाग्य से उन्हीं दिनों युक्त प्रान्त के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर होकर सर एन्थोनी मैकडानल आये जो पहले मध्यप्रान्त में थे, और मध्यप्रान्त में अदालतों की भाषा हिन्दी थी। मालवीयजी ने बड़े परिश्रम के साथ तीन वर्षों की खोज के परिणामस्वरूप हिन्दी की स्थापना के लिए एक आवेदनपत्र तैयार किया—और १८९८ में उर्दू के समकक्ष देवनागरी भी अदालतों की लिपि हो जाय, इसकी घोषणा हो गयी। यह मालवीयजी के प्रयत्नों का ही परिणाम था।

उन्हीं दिनों इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की स्थापना हुई। इसके पहले सारा युक्त प्रान्त और बिहार कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आता था। प्रयाग विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ इलाहाबाद में कई होस्टल भी बने। मालवीयजी को ऐसा लगा कि हिन्दू विद्यार्थियों के लिए भी एक होस्टल बने जिसमें हिन्दू-विद्यार्थी अपना आचार-विचार निबाहते हुए विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर सकें। १९०१ में यह विचार उनके मन में आया, और इस योजना के लिए उन्होंने धन एकत्रित करना आरम्भ कर दिया। सन् १९०३ में उन्होंने इलाहाबाद में हिन्दू-होस्टल बनवाया। यद्यपि वह होस्टल मालवीय जी के प्रयत्नों से बना था, पर हिन्दी की स्थापना में सर

एन्थोनी मैकडानेल्ड की सहायता के आभार प्रदर्शन के रूप में उन्होंने उस होस्टल का नाम मैकडानेल हिन्दू-होटल रक्खा।

सन् १९०३ में मालवीयजी प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए। कौंसिल में रहकर उन्होंने देश और समाज की सेवा में अपने को तन्मय कर दिया। वकालत तो उनकी नाम मात्र की थी, उनका जीवन सार्वजनिक कामों के अर्पित था।

(३)

कांग्रेस धीरे-धीरे शक्तिशाली बन रही थी। इस कांग्रेस के प्रभाव को कम करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू-मुसलमानों में भेद नीति अपनाना ही कल्याणकारी समझा। सन् १९०५ में बंग भंग की घोषणा के बाद देश भर में एक तरह का तहलका मच गया। उधर सर सैयद अहमद के प्रयत्नों से अलीगढ़ में मुसलमानों की शिक्षा के लिए बहुत बड़ा मुस्लिम कालेज खुल गया था। मालवीय जी के जीवन का श्रीगणेश ही अध्यापक की हैसियत से हुआ था, हिन्दू होस्टल के निर्माण के बाद वह इस शिक्षा-पद्धति के प्रति सजग हो गये थे। ब्रिटिश भेद नीति का उत्तर वह बहुसंख्यक हिन्दू समाज को शक्तिशाली बनाकर देना चाहते थे। इस हिन्दू समाज को शक्तिशाली बनाया जा सकता था शिक्षा द्वारा। सन् १९०५ में मालवीयजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की एक योजना बना डाली जिसे उन्होंने बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्तुत किया था। लेकिन कांग्रेस उस समय तक कोई सकर्मक संस्था तो थी नहीं, वह एक ऐसा मंच था जिस पर साल भर में लोग एक दिन एकत्रित होकर अपने विचार व्यक्त करते थे और प्रस्ताव पास करते थे। उस योजना को लोगों ने पसन्द किया।

योजना को कार्यान्वित करना––इसका भार मालवीय जी ने उठाया। १९०६ में सनातन धर्म सभा के अधिवेशन में जो जगद्गुरु शंकराचार्य की अध्यक्षता में हुआ था, मालवीयजी ने अपनी योजना फिर रक्खी और इसके बाद वह हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के काम में जुट गयें। दस वर्ष तक अथक परिश्रम किया मालवीयजी ने इस विशाल विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए साधन जुटाने में। वकालत उन्होंने छोड़ दी, अपना जीवन अर्पित कर दिया इस काम के लिए। सारे देश का दौरा किया उन्होंने हाथ में भिक्षापात्र लेकर। और उनकी निष्ठा, उनकी तपस्या, उनके त्याग के प्रताप से उन्हें हर जगह अभूतपूर्व सफलता भी मिली। धन कुबेरों और देशी नरेशों एवं ताल्लुकदारों की थैलियाँ खुल गयीं। अकेले अपने बल पर उन्होंने १९१६ में काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव डलवाई। इस विश्वविद्यालय की गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में होती है। ब्रिटिश पार्लमेंट के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य कर्नल वेजउड ने एक बार कहा था :––

"भारतीय शिक्षा मालवीयजी की कितनी ऋणी है, योरोप में यह सर्वविदित है, लेकिन मैंने काशी हिन्दू विद्यालय ऐसी कोई संस्था, जिसका निर्माण एक व्यक्ति ने किया हो, विश्व में पहले कभी नहीं देखी। अगर पण्डित मालवीय राजनीतिज्ञ न भी होते तो दुनिया में उन्हें सबसे बड़ा शैक्षिक नेता स्वीकार किया जाता। और अगर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को उन्होंने जन्म न दिया होता तो वह बहुत बड़े राजनीतिज्ञ माने जाते।"

पर मालवीयजी की जीवन-शक्ति और प्राण-शक्ति इतनी प्रबल थी कि इस काम को करते हुए भी वे बराबर जन-सेवा और समाज-सेवा के काम में लगे रहे। सन् १९०९ में लाहौर कांग्रेस के मनोनीत सभापति सर फिरोज शाह मेहता ने अधिवेशन से छै दिन पहले अधिवेशन में आने से असमर्थता प्रकट कर दी। कांग्रेसवाले बड़े चक्कर में पड़ गये कि अब क्या किया जाय। और उस समय लोगों की नजर मालवीयजी पर पड़ी। मालवीयजी से अनुरोध किया गया कि वह लाहौर कांग्रेस के सभापति बनें। मालवीयजी ने स्वीकार कर लिया। उन दिनों––और यह परम्परा आज भी कायम है, यद्यपि वह किन्हीं कारणों से शिथिल पड़ गयी है––सभापति का भाषण बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। मालवीयजी के पास इतना समय नहीं था कि वह सभापति का भाषण लिखते और लिखकर उसे छपवाते। इसलिए उन्होंने मौखिक भाषण दिया। पर वह भाषण इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसकी धूम मच गयी।

सन् १९१० में भारत के वाइसराय के पद पर लार्ड हार्डिंग आये। लार्ड हार्डिंग बड़े नेक और शरीफ आदमी थे। मालवीयजी की प्रतिभा, उनकी योग्यता एवं ईमानदारी, उनकी निष्ठा और साधना से प्रभावित होकर लार्ड हार्डिंग ने १९१० में आते ही मालवीयजी को केन्द्रीय एसेम्बली का सदस्य नियुक्त कर दिया और सन् १९३० तक मालवीयजी इस एसेम्बली के सदस्य बने रहे।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ मालवीयजी ने प्रयाग छोड़ दिया और बनारस में रहने लगे। विश्वविद्यालय को स्वावलम्बी तथा स्थायी बनाने के लिए उन्होंने अपना जीवन ही विश्वविद्यालय को अर्पित कर दिया। उसकी स्थापना से लेकर जब तक मालवीयजी वृद्धावस्था में बीमारी से पूर्णरूप से अशक्त नहीं हो गये, तब तक वह हिन्दू विश्वविद्यालय के उप-कुलपति बने रहे। लेकिन उन्होंने विश्वविद्यालय से कभी कोई वेतन नहीं लिया।

सन् १९१८-१९ से महात्मा गांधी के आगमन के बाद भारतीय राजनीति में एक नवीन अध्याय का श्रीगणेश होता है। सन्, १४-१८ के महायुद्ध में भारतीयों ने अँगरेजों का सहयोग किया था, इस आशा से कि उन्हें सुधार मिलेंगे, लेकिन १९१८-१९ में यहाँ दमन चक्र आरम्भ हुआ। इस दमन चक्र का मुकाबिला करने के लिए महात्मा गांधी आगे बढ़े, कांग्रेस अब समर्थक संस्था बन गयी। देश के सभी नेता, जिनमें मालवीयजी भी थे, ब्रिटिश सरकार की इस नीति से क्षुब्ध थे। और इसके फलस्वरूप १९२० का असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन आरम्भ किया गया।

मालवीयजी ने इस आन्दोलन में कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। इस पर कुछ लोगों को आश्चर्य हो सकता है, और इसलिए यहाँ मालवीयजी के दृष्टिकोण को भी समझ लेना पड़ेगा। मालवीयजी सुधारक थे, वे विद्रोही जीवन में कभी भी नहीं रहे। सुधार सहयोग से ही सम्भव है, असहयोग विद्रोह का रूप है। मालवीयजी कभी भी राममोहन राय, दयानन्द, तिलक और गांधी की परम्परा को मन से नहीं स्वीकार कर सके। इसके अलावा मालवीय जी खिलाफत आन्दोलन को भी कभी नहीं समझ पाये। खिलाफत आन्दोलन को उठाना ही देश के मुसलमानों की एेसी सत्ता को स्वीकार करना था जिसकी जड़ें देश के बाहर हैं। और इसीलिए महात्मा गांधी तथा कांग्रेस की हिन्दू-मुसलिम समझौते की नीति से भी उनका मौलिक मतभेद था। मुसलमानों को रिश्वत के रूप में विशेषाधिकार और विशेष सुविधाएँ देकर उन्हें राष्ट्रीय बनाने में मालवीय जी का विश्वास नहीं था। १९१९-२० के बाद हिन्दू-मुसलिम प्रश्न पर मालवीयजी का महात्मा गांधी से मतभेद रहा, और यह मतभेद अन्त तक बना रहा।

(४)

असहयोग और खिलाफत आन्दोलन के असफल हो जाने के बाद ब्रिटिश सरकार की नीति हिन्दू-मुस्लिम भेद की स्पष्ट रूप से हो गयी और देश भर में साम्प्रदायिक दंगों की एक लहर-सी छा गयी। मालवीयजी की अवस्था ६० वर्ष के ऊपर पहुँच गयी थी——विक्षुब्ध और मर्माहत वे वह यह सब देखते रहे। कांग्रेस में स्वयम् दो मत हो गये। मालवीयजी ने कौंसिल में रहकर कांग्रेस नेताओं को अपना सम्पूर्ण सहयोग दिया। मतभेद होते हुए भी मालवीयजी ने कभी महात्मा गांधी का या कांग्रेस का विरोध नहीं किया, इन दोनों को वह अपना सहयोग ही देते रहे।

अँगरेजों ने अपनी भेद नीति में अछूतों को भी घसीटा। महात्मा गांधी ने इस नीति को सक्रिय कदम उठाकर व्यर्थ करने का प्रयत्न किया, और इस ओर मालवीयजी उनसे पहले ही सतर्क हो चुके थे। वह जानते थे कि अछूत लोग हिन्दू-समाज के बहुत कमजोर अंग हैं, और अछूतों के प्रश्न को लेकर यदि हिन्दू-धर्म में सुधार नहीं किये जाते तो हिन्दू-जाति का भयानक अहित हो जायगा। जिस समय महात्मा गांधी ने इस ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया उसी समय मालवीयजी ने इस समस्या का निदान पाने का सक्रिय कदम उठा लिया। अपने प्रभाव से मालवीयजी ने सनातन धर्म महासभा में यह प्रस्ताव पास करा लिया कि अछूतों को मंत्र दीक्षा दी जा सकती है और सन् १९२७ में महाशिवरात्रि के दिन मालवीयजी ने काशी में दशाश्वमेध घाट पर अछूतों को मंत्र दीक्षा दी। ब्राह्मण से चाण्डाल तक दीक्षित हुए थे उस दिन। इस काम को मालवीयजी ने और आगे बढ़ाया, सन् १९२९ में कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर। वहाँ उन्होंने गंगा तट पर अछूतों को मंत्र दीक्षा देने की घोषणा कराई। कलकत्ता में मालवीयजी का वर्णाश्रम धर्मवालों द्वारा बहुत अधिक विरोध हुआ।

और एक दिन तो एक गुण्ड ने छूरे से उन पर प्रहार करने का प्रयत्न भी किया। पर मालवीयजी ने अपना काम जारी रक्खा।

मालवीयजी का कांग्रेस से मतभेद केवल हिन्दू-मुस्लिम समस्या को लेकर था, असहयोग के मामले में उनके विचार धीरे-धीरे बदलते गये। १९२८ में जब कांग्रेस ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया तब मालवीयजी ने भी लाहौर में ३० अक्टूबर १९२८ के दिन साइमन कमीशन के खिलाफ एक जलूस का नेतृत्व किया था।

सन् १९३० में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन उठाया। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के बाद सरकार ने दमनकारी आर्डिनेंस बनाये। इन आर्डिनेंसो के विरोध में मालवीयजी ने केन्द्रीय कौंसिल से इस्तीफा दे दिया। यही नहीं, १ अगस्त १९३० के दिन उन्होंने बम्बई में स्वयम् सत्याग्रह किया जिसमें वह गिरफ्तार करके छोड़ दिये गये। अब मालवीयजी भी पूरे तौर से सक्रिय राजनीति में आ गये। २७ अगस्त को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक जब दिल्ली में डाक्टर अंसारी के यहाँ हो रही थी उस समय मालवीयजी अन्य नेताओं के साथ फिर गिरफ्तार किये गये और वहाँसे वह नैनी जेल में भेज दिये गये।

नैनी जेल में मालवीयजी के ऐसे आचार-विचार-वाले आदमियों के लिए समस्त सुविधाओं के रहते हुए भी कष्ट तो था ही। जाड़े के दिनों में वहाँकी सर्दी वे सहन नहीं कर सके और बीमार पड़ गये। और इसके बाद वह छोड़ दिये गये। उस समय उनकी अवस्था भी लगभग सत्तर वर्ष की थी।

सन् १९३० के आन्दोलन के फलस्वरूप ब्रिटेन में राउण्ड टेबिल कानफरेंस बुलाई गयी। भारतवर्ष के अन्य विविध दलों के प्रतिनिधिगण बुलाये गये——मालवीयजी भी उनमें एक थे। कांग्रेस की ओर से केवल महात्मा गांधी गये थे। राउण्ड टेबिल कान्फरेंस में उन्हें एक प्रकार की निराशा ही दिखी। मुसलमानों के प्रति ब्रिटेन के पक्षपातपूर्ण रुख से वह बहुत असंतुष्ट थे तथा जिन्ना की साम्प्रदायिक और अराष्ट्रीय नीति से वह बहुत क्षुब्ध थे। सन् १९३२ में जब महात्मा गांधी देश में लौटे भी न थे, ब्रिटिश-सरकार ने देश के कांग्रेस नेताओं को सत्याग्रह आन्दोलन फिर से आरम्भ करने पर विवश कर दिया। भारतीय अँगरेजी सरकार इस बार आन्दोलन को दबाने के लिए पूरी तरह तैयार थी——जैसे ही आन्दोलन आरम्भ हुआ वैसे ही देश के सब कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये, भारत लौटते ही महात्मा गांधी भी गिरफ्तार हो गये।

मालवीयजी से कांग्रेस की यह दुर्दशा न देखी गयी और उन्होंने छिन्न-भिन्न कांग्रेस का नेतृत्व अपने हाथ में लेकर कांग्रेस के अस्तित्व को कायम रक्खा। १९३२ की

दिसम्बर में मालवीयजी दिल्ली कांग्रेस के सभापति बनाये गये। अधिवेशन में भाग लेने के लिए जाते हुए वह दिल्ली के पास एक छोटे से स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये। आन्दोलन शिथिल पड़ गया था, पर मालवीय जी उसे किसी प्रकार चलाये जा रहे थे। १९३३ में फिर जब कलकत्ता कांग्रेस के वह सभापति बनाये गये, कलकत्ता जाते हुए आसनसोल में गिरफ्तार कर लिये गये। १९३४ में कांग्रेस ने साम्प्रदायिक बटवारे को स्वीकार कर लिया। मालवीयजी इससे बहुत क्षुब्ध और हताश हुए। उन्होंने कांग्रेस छोड़कर १९३४ में श्री अणे के साथ कलकत्ता में स्वतंत्र नेशनलिस्ट पार्टी बनायी।

इस समय मालवीयजी की अवस्था ७३ वर्ष की हो गयी थी, नये सिरे से फिर किसी आन्दोलन को उठाना उनकी सामर्थ्य के वाहर था। जिस संस्था के जन्मकाल से वह उसके साथ रहे, जिस संस्था को उन्होंने अपने अथक परिश्रम और अपनी अटूट निष्ठा के साथ बनाया, भावना के आवेग में भले ही उन्होंने उसका विरोध कर दिया, पर यह विरोध कायम नहीं रह सका। १९३५ में कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गयी। सर्वप्रथम वयोवृद्ध कांग्रेस नेता पण्डित मदन मोहन मालवीय से प्रार्थना की गयी कि वह बम्बई में जहाँ प्रथम कांग्रेस हुई थी वहाँ कांग्रेस की स्मृति-शिला स्थापित करें। उनके अन्दरवाला सारा विरोध मानों उस अवसर पर धुल गया। १९३६ में वह अन्तिम बार कांग्रेस के फैजपुर सम्मेलन में गये। अब वह ७५ वर्ष के हो गये थे--उसी वर्ष उन्होंने सदा के लिए कांग्रेस से और राजनीति से विदा ले ली।

१९३६ से मालवीयजी का जीवन एक प्रकार से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की चहारदीवारी में सीमित हो गया। लेकिन उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता रहा। अक्टूबर १९३९ में ७८ वर्ष की अवस्था में अस्वस्थता के कारण वाइस-चांसलर का पद भी मालवीयजी ने छोड़ दिया, लेकिन रहते वह वहीं रहे। जीवन में अन्तिम बार वह १९४१ में हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत-जयन्ती के अवसर पर सार्वजनिक रूप से जनता के समक्ष आये। और सन् १९४६ में उनका देहान्त हो गया।

(५)

मालवीयजी भारतवर्ष के महान् ऋषियों की परम्परा के प्रतीक थे--उनका जीवन सार्वजनिक सेवा और तपस्या का था। उनके कार्यों के तीन क्षेत्र स्पष्ट दिखते हैं राजनीतिक, धार्मिक और शैक्षिक। लेकिन इन तीनों क्षेत्रों में उनका व्यक्तित्व पूरी तरह दिखता है।

मालवीयजी का व्यक्तित्व शुद्ध, निश्छल और निष्कपट था। वे आस्तिक और आस्थावान व्यक्ति थे, वे धर्म के पालक थे। उन्होंने अपना जीवन ही परार्थ अर्पित कर दिया था। महात्मा गांधी ने उनके सम्बन्ध में कहा था :

"उनका व्यक्तिगत जीवन पवित्रता का उदाहरण था। दया और शील का उनमें निवास था। उनका धार्मिक ग्रंथों का ज्ञान महान् था। परम्परा से ही वह धर्मोपदेशक थे। उनकी स्मरण-शक्ति आश्चर्यजनक थी और उनका जीवन उतना ही स्वच्छ था जितना सादा था। उनकी राजनीति और उनकी अन्य सार्वजनिक सेवाओं का उल्लेख मैं नहीं करूँगा। जिसका जीवन निःस्वार्थ सेवा पर अर्पित हो और जिसमें अनगिनती गुन हों उसका कर्मक्षेत्र व्यापक और असीम तो होगा ही।.... हिन्दू धर्म को सत्य, सकर्मक, आदर्श बनाने में वास्तविक सहायता वही लोग कर सकेंगे जो मालवीयजी के जीवन की सत्यनिष्ठा, पवित्रता और सरलता का अनुसरण करेंगे।"

मालवीयजी का यह व्यक्तित्व कितना महान् था, वह इँगलैंड के प्रसिद्ध पत्रकार श्री एडगर स्नो ने भारतवर्ष का अपना दौरा करने के बाद मालवीयजी के सम्बन्ध में जो लिखा था, उससे स्पष्ट हो जाता है :--

"भारतवर्ष के स्वतंत्रता-संघर्ष के वयोवृद्ध नेताओं में न्यायनिष्ठा, सत्यनिष्ठा और सांस्कृतिक महानता की दृष्टि से मुझे जितना अधिक प्रभावित मालवीयजी ने किया उतना किसी और ने नहीं किया। उनका व्यवहार मोहक गुणों से युक्त और लुभानेवाला है, उनकी मुद्रा शान्त, ओजयुक्त, संयम से युक्त तथा आर्योचित गरिमा से युक्त है। उनका मुख मण्डल सुन्दर है और उसमें एक विचित्र ढंग से युवावस्था प्रतिविम्बित है। बातचीत में अत्यधिक संयत हैं, फिर भी वह स्पष्टवादी हैं। यह एक ऐसा गुण है जिसकी प्रायः लोग पूर्वीय राजनीतिज्ञों में आशा नहीं करते। उनके व्यक्तित्व में अबोध शिशु की कोमलता और सादगी का प्रकाश है, फिर भी उनके शब्दों में जीवन के एक निर्धारित दर्शन के विश्वास और आस्था की शक्ति है।"

मालवीयजी का यह व्यक्तित्व इतना महान् था कि उनके समकालीन अकबर कवि ने उनपर कहा था :

तेरे कदम से रौनके शहरे प्रयाग है,
यानी तेरे ही दम से बुतों का सुहाग है!

और मालवीयजी के व्यक्तित्व को सरोजिनी नायडू के इन शब्दों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है :

"अपने समय का सबसे महान् हिन्दू, और युगों-युगों के समस्त महान् हिन्दुओं में अति महान्, पण्डित मालवीय का जीवन हिन्दू धर्म के उन महान् सार्वभौमिक आदर्शों का प्रतिबिम्ब था जिनमें जाति और वर्ग की असमानता नहीं स्वीकार की जाती।"

पूज्य बाबूजी के साथ

पं० पद्मकान्त मालवीय

"सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः"

उन दिनों मैं बनारस हिन्दू स्कूल में पढ़ता था और वहीं पूज्य बाबूजी (मालवीयजी) के साथ वाइसचांसलर्स लॉज में रहता था। पूज्य मालवीयजी के सबसे छोटे पुत्र, मेरे चाचा, पं० गोविन्द मालवीयजी भी साथ ही रहते थे। मालवीयजी की तबीयत काफी खराब थी और डाक्टरों ने उन्हें किसीसे मिलने-जुलने तथा बातें करने की सख्त मनाही कर दी थी। यों तो वह किसीकी माननेवाले न थे इसलिए गोविन्द चाचा ने मकान के सबसे पिछले ऊपरी हिस्से के एक कमरे में उनके रहने का प्रबन्ध किया। एक दिन कुछ मद्रासी भाई मालवीयजी के दर्शनों की अभिलाषा से बँगले पर आये। गोविन्द चाचा उन्हें मिलने से रोक रहे थे और वह लोग कहते थे कि बिना दर्शन किये हम जायेंगे नहीं। दर्शनार्थी जोर-जोर से चिल्लाकर बातें करने लगे। आवाज बाबूजी के कानों तक पहुँच गयी। उन्होंने मुझे बुलाया और पूछा कि मामला क्या है? मैंने बतला दिया। उन्होंने कहा, "बुलाओ गोविन्द को।" मैं बुला लाया। आते ही गोविन्द चाचा पर बाबूजी नाराज होने लगे। बोले, "मुझसे मिलने आनेवालों को रोकने का तुम्हें क्या अधिकार है? यह बँगला जनता का है, मेरी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं। मैं जनता की सेवा करता हूँ इसीलिए यहाँ रहता हूँ। जनता को अधिकार है कि वह जब चाहे अपने सेवक से सेवा ले सकती है। उन लोगों को बुला लाओ।" गोविन्द चाचा भी नाराज हो गय। कुछ तर्क-वितर्क करने लगे। बाबूजी का धैर्य छूट गया। उन्होंने बिगड़कर कहा, "गोविन्द, मैं तुमसे तर्क नहीं सुनना चाहता। यदि तुम्हें इन बातों से कष्ट होता है तो अच्छा हो तुम अपने रहने का प्रबन्ध किसी दूसरी जगह कर लो। इस मकान पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। यहाँ रखकर तुम्हें मैं अपने और जनता के बीच में आने का अधिकार कदापि नहीं दे सकता। बच्चा,* तुम जाओ और उन लोगों को यहाँ बुला लाओ। बेचारे इतनी दूर से आते हैं। बार-बार आने का पैसा बेचारे गरीबों के पास कहाँ? और गोविन्द! वे चाहते क्या हैं? कुछ नहीं, केवल अपने सेवक का दर्शन! और तुम उन्हें रोक रहे हो। छिः छिः कैसी छोटी बात है?" गोविन्द चाचा मुँह लटकाये चुप रह गये। मैं गया और उन लोगों को बुलाकर मैंने उन्हें बाबूजी के दर्शन कराये।

"नास्ति रागसमं दुःखं, नास्ति त्यागसमं सुखम्"।

× × ×

"परं भिक्षाशितं न च परधनास्वादनसुखम्"।

पूज्य चरण मालवीयजी के ज्येष्ठ पुत्र का स्वर्गवास हो चुका था। उनके बँगले पर कुछ ऋण था और इस कारण मालवीयजी के पौत्र बहुत चिन्तित रहा करते थे। पौत्र के दुःख से महाराज भी दुखी थे। कुल पन्द्रह-बीस हजार रुपयों की बात थी। मुझे मालूम हुआ तो मैंने इस बात की चर्चा मालवीयजी के भक्त एक महाराजा साहब से की। महाराजा साहब मालवीयजी से मिलने काशी आये और जब मिले तो पचास हजार रुपयों का एक चेक उन्हें देते हुए बोले, "महाराज यह रुपये आपके व्यक्तिगत कार्यों के लिए हैं। इसका उपयोग व्यक्तिगत कार्यों के लिए जैसा चाहें आप करें।" मालवीयजी की आँखों में आँसू छलछला आये और उन्होंने महाराजा साहब को धन्यवाद देते हुए उस चेक को व्यक्तिगत कार्यों के लिए लेना अस्वीकार कर दिया। महाराजा ने बहुत आग्रह किया पर मालवीयजी मानें नहीं। अन्त में महाराजा साहब ने कहा, "महाराज, आप तो विद्वान् शास्त्रज्ञ हैं। दिया हुआ दान कहीं वापस लिया जाता है? मैं यह चैक अब वापस कैसे ले सकता हूँ?" मालवीयजी ने अपने शिष्य गोस्वामी गणेशदत्तजी को बुलाया और चैक उन्हें देते हुए बोले "इसे सनातन धर्म महासभा के खाते में जमा करा दो। आधा सभा के लिए है और आधा धर्म ग्रन्थों का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित करने के लिए।" सब अवाक् रह गये। मालवीयजी ने मुस्कुराते हुए महाराजा साहब से कहा, "ददाति प्रतिगृह्णाति' यही ब्राह्मण का सच्चा धर्म है।"

*सर्वेषामेव शौचानाम् अर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।——मनुस्मृति

*पं० पद्मकान्तजी का घर का पुकारने का नाम।—सम्पादक।

*सब शुद्धियों में धन की पवित्रता ही श्रेष्ठ कही गयी है क्योंकि जो धन में शुद्ध है वही शुद्ध है। मिट्टी और जल द्वारा की गयी शुद्धि शुद्धि नहीं है।

बचपन की एक घटना बिजली की तरह कौंध गयी। १९२२-२३ में मैं हिन्दू स्कूल काशी में पढ़ता था और उन्हींके साथ रहता था। उनका भोजन अलग बनता था, हम लोगों का अलग। मैं उन दिनों काफी छोटा था सिद्धान्तों की बारीकी कम समझ में आती थी। मैं समझता था कि चूंकि बाबूजी के भोजन में मसाला इत्यादि नहीं पड़ता, बिलकुल सादा बनता है इसलिए ही उनका भोजन सबसे अलग बनाया जाता है। एक बार जब मेरे इम्तहान हो रहे थे, एक दिन इत्तफाक से हम लोगों का भोजन तैयार नहीं था और मुझे देर हो रही थी। बाबूजी (मालवीयजी) का भोजन तैयार था। रसोईदार ने कहा, "बाबू का भोजन तैयार है। आप लोगों के भोजन में देर है। आज बाबू का भोजन करके ही चले जाइए।"

बाबूजी सुन रहे थे। उन्होंने मुझे बुलाया और एक रुपया मेरे हाथ में रखते हुए बोले, "तुम्हारे स्कूल में फल और मिठाईवाले तो होंगे ही। यह रुपया लेते जाओ। आज वहीं फल और मिठाई लेकर खा लेना। हमारा भोजन करने की आवश्यकता नहीं।"

रुपया लेकर मैं चला आया और स्कूल चला गया। बात मेरी समझ में कुछ आयी नहीं। आखिर क्या बात है? बाबूजी ने तैयार होने पर भी अपना भोजन मुझे क्यों नहीं करने दिया? एक दिन बिना मसाले का ही भोजन कर लेता। मुझसे कोई अपराध बन पड़ा क्या, यह प्रश्न मुझे घंटों बेचैन किये रहा। दो बजे के करीब स्कूल से घर वापस लौटा। रसोईदार बैजनाथ ने मेरी आहट पाते ही आवाज दी और कहा, "बच्चा भैया, जल्दी आकर भोजन करो। देर हो रही है। बाबू ने अभी तक भोजन नहीं किया। आपके आसरे बैठे हुए हैं।"

मैं चकित रह गया। कुछ समझ में नहीं आया। इतने में ही बाबूजी ने आवाज दी। मैं उनके कमरे में पहुँचा। उनकी वह आँसुओं से छलकती हुई आँखें, वह तेजस्वी मुद्रा जैसे इस समय भी मेरी आँखों के सामने है। वह बोले, "तुमने मिठाई और फल खा लिये न?" मेरे "हाँ" करने पर कहने लगे, "देखो जानते हो मैंने तुम्हें अपना भोजन क्यों नहीं करने दिया था? तुम्हें यह मालूम है न कि मेरे भोजन की सामग्री शिवप्रसाद (देशभक्त स्वर्गीय बा० शिवप्रसादजी गुप्त) के यहाँ से आती है? वह सीधा मेरे लिए दान में आता है। बाबू (हमारे परबाबा अर्थात् मालवीयजी के पिता) कहा करते थे कि वही ब्राह्मण दान ले जिसमें दान को पचाने की शक्ति हो। इसीलिए हमारे यहाँ दान नहीं लिया जाता। दान एक प्रकार की भीख ही तो है। भिक्षा का अन्न खाना कोई अच्छी बात नहीं। ऐसा अन्न खाने से मनुष्य में आलस्य आता है। "आलस्याद् अन्नदोषाच्च" मैं थोड़ी-बहुत देश और समाज की जो सेवा कर देता हूँ, उसके बदले यह दान स्वीकार कर लेता हूँ। मजबूरी, क्या करूँ? उस जन्म में न जाने कौन सा पाप बन पड़ा था जो इस जीवन में दूसरों का आश्रित बनना पड़ा। मैं नहीं चाहता कि मेरे परिवार में अन्य कोई व्यक्ति दूसरों का आश्रित होकर भिक्षा पर जीवन-यापन करे। तुम्हारी आदत बिगड़ने न पावे इसलिए सुबह तुम्हें भोजन से मना किया था। अच्छा अब जाओ, जल्दी से भोजन कर लो।"

मैं रो पड़ा। बोला, "आपने अभी तक भोजन क्यों नहीं किया?" बोले, "वाह, तुम्हें भोजन नहीं करने दिया, भूखे रक्खा और मैं भोजन कर लेता? पहले बच्चे भोजन करते हैं तब बड़े। जाओ, देर न करो भूख लगी होगी।"
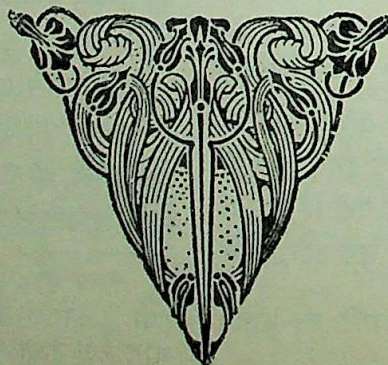
महामना मालवीयजी और पंजाब

(संस्मरण)

श्री चन्द्रबली त्रिपाठी

बस्ती (उत्तर प्रदेश) की एक महती सभा में १९२६ में भाषण देते हुए पंजाब केसरी लाला लाजपत राय ने यह सर्वथा सत्य विचार प्रकट किया था कि महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जैसे महान् पुरुष किसी देश में सैकड़ों वर्षों में ही उत्पन्न होते हैं। मालवीयजी का समस्त दीर्घ-जीवन त्याग, तपस्या, निर्हेतुक देशभक्ति और लोकसेवा का परमोच्च कोटि का उदाहरण है जिसकी तुलना बहुत कठिन है। भारतीय राष्ट्र के निर्माण में उनका जो योगदान है वह इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अमिट रहेगा और यह देश उनका सदैव ऋणी रहेगा।

यों तो महामना मालवीयजी को सारा देश सदैव कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करेगा, किंतु विशेषतया पंजाब उन्हें कभी नहीं भूल सकता। प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ था जिसमें धन और जन से भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की थी और हमारे नेताओं ने बड़ी आशा की थी कि कृत-ज्ञतास्वरूप ब्रिटिश सरकार भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए कोई बड़ा कदम उठाएगी। भारत-मंत्री मिस्टर मांटेग्यू का भारत भ्रमण भी हुआ जिसने इस आशा को बहुत कुछ बल प्रदान किया। परन्तु फलस्वरूप जो मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार योजना प्रकाशित हुई उसने उन आशाओं पर पानी फेर दिया। उदार दल के नेताओं ने इन सुधारों को कार्यान्वित करने का निश्चय किया। दिसम्बर १९१८ में कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में मालवीय-जी ने उन्हें 'असंतोषजनक' तथा 'निराशापूर्ण' घोषित किया। एक ओर नये सुधारों के नाम पर सरकार भारत-वासियों को सब्ज बाग दिखा रही थी और दूसरी ओर राष्ट्र-भावना के दमन के लिए कुचक्र भी रच रही थी जिसने कालान्तर से स्वातंत्र्य युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की।

जनवरी १९१९ में भारत सरकार ने रौलट कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित की जिसका देश के कोने-कोने में घोर विरोध हुआ, किन्तु लोकमत की अवहेलना कर के इस रिपोर्ट के अनुसार सरकार ने शीघ्रतापूर्वक भारतीय व्यवस्थापिका सभा में रौलट बिल, जिसे देश ने एक स्वर से काला कानून कहकर धिक्कारा, एक उपचार की पूर्ति के लिए उपस्थित कर दिया। यों तो यह कानून सारे देश पर लागू था, किंतु इसका प्रधान लक्ष्य पंजाब था। व्यव-स्थापिका सभा में महामना मालवीयजी ने लगातार साढ़े-चार घंटे तक भाषण कर के प्रस्तावित कानून के प्रत्येक अंश के अनौचित्य को खोल कर रख दिया। परन्तु सरकार तुली हुई थी और रौलट बिल कानून रूप में आ ही गया।

इसका परिणाम शीघ्र ही देश के सामने आया। १३ अप्रैल, १९१९ को अमृतसर में जलियाँवाला बाग का वह हत्याकांड हुआ जिसमें जनरल डायर की आज्ञा से सैकड़ों निरीह और निहत्थे बाल और वृद्ध, स्त्री और पुरुषों की निर्मम हत्या हुई और हिन्दू, सिक्ख और मुसलमानों के सम्मिलित रक्त ने उस नरपिशाच की हिंसावृत्ति को तृप्त कर के सारे देश को एक छोर से दूसरे छोर तक हिला दिया और असंतोष, क्षोभ और घृणा की भावनायें सर्वत्र व्याप्त हो गईं। सारे पंजाब में 'मार्शल लॉ' जारी किया गया, कितने ही भद्र पुरुषों को बेतों से पीटा गया और कितनों को कीड़ों की तरह पेट के बल रेंगना पड़ा। उस वीर-प्रसू भूमि के समस्त नेता जेलों में बंद कर दिये गये और पाशविक अत्याचारों की कोई सीमा न रह गयी।

देश भर में जलियाँवाला बाग तथा नृशंस अत्याचारों की निष्पक्ष जाँच के लिए एक स्वर से माँग हुई जिसकी प्रतिध्वनि इँगलैंड में भी हुई और अंत में एतदर्थ हंटर कमिटी की नियुक्ति हुई। किन्तु कांग्रेस के नेताओं को इस कमिटी की निष्पक्षता में विश्वास नहीं हुआ। देश में जहाँ कहीं जनता पीड़ित हो वहाँ पहुँचकर उसके दुःख-दर्द दूर करने का मालवीयजी का मानों स्वधर्म था और वह पंजाब में पहुँच गये थे। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज भी वहीं थे, और दोनों पृथक्-पृथक् रूप से महात्मा गांधी को वहाँ जाने के लिए बुला रहे थे। महात्माजी के पंजाब प्रवेश पर निषेध था परन्तु वाइसराय से अनुमति मिलने पर वह संभवतः १७ अक्तूबर को लाहौर पहुँच गये। उस समय गांधीजी के ही शब्दों में—"पंजाबी नेताओं के जेल में होने के कारण पंडित मालवीयजी, पंडित मोतीलालजी और स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी ने मुख्य नेताओं का स्थान ग्रहण कर लिया था।" इन नेताओं और महात्माजी ने एकमत होकर हंटर कमिटी के सामने गवाही न देने का निश्चय किया

और जनता की ओर से, अर्थात् कांग्रेस की ओर से, अलग जाँच कमिटी नियुक्त करने का गंभीर निर्णय लिया। तदनुसार महामना मालवीयजी ने महात्मा गांधी, त्याग-मूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चितरंजन दास, श्री अब्बास तैय्यबजी और बैरिस्टर एम० आर० जयकर की एक स्वतंत्र जाँच कमिटी नियुक्त की जिसके अध्यक्ष स्वयं गांधीजी थे। यह उल्लेखनीय है कि जैसा गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है "ज्यों-ज्यों मैं लोगों पर हुए जुल्मों की जाँच अधिकाधिक गहराई से करने लगा त्यों-त्यों मेरे अनुमान से परे सरकारी अराजकता, हाकिमों की नादिरशाही और उनकी मनमानी-अंधाधुंधी की बातें सुन-सुनकर आश्चर्य और दुःख हुआ करता।"

सितम्बर १९१९ में वाइसराय ने पंजाब के उपद्रवों की जाँच करने के लिए हंटर कमिटी की नियुक्ति की घोषणा की थी और साथ ही १८ सितम्बर को अधिकारियों को अपने दंडनीय बातों से दंड-मुक्त करने का (इंडेम्निटी) बिल भी व्यवस्थापिका सभा में पेश हो गया। रौलट बिल के विरोध में मालवीयजी का साढ़े चार घंटे का धाराप्रवाह भाषण असाधारण था ही, इस बिल के विरोध में उन्होंने अविच्छिन्न रूप से पाँच घंटे भाषण दिया और मार्शल लॉ के अंतर्गत अमृतसर, लाहौर तथा अन्य अनेक स्थानों में जो असम्मानपूर्ण एवं क्रूर अत्याचार हुए थे उनकी विस्तृत और तीव्र आलोचना की जो व्यवस्थापिका सभाओं के स्वतंत्र विचार के सदस्यों के लिए सर्वदा पथ-प्रदर्शन करेगी।

जब यह घटनायें हो रही थीं, लेखक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का एक छात्र था। परन्तु वहाँसे एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने के कुछ ही महीनों बाद उसे महामना मालवीयजी का वैयक्तिक मंत्री होकर उनके व्यक्तिगत और सार्वजनिक कार्यों को समीप से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। असहयोग आन्दोलन के उपक्रम में स्थापित तिलक विद्यालय, गोरखपुर और वहींसे प्रकाशित साप्ताहिक "स्वदेश" में वह कुछ दिनों से क्रमशः अध्यापन तथा सहकारी सम्पादन का कार्य कर रहा था। २ फरवरी, १९२२ को अपने श्वसुर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का तार पाकर कि 'मालवीयजी आपको बुला रहे हैं' उनकी सेवा में प्रयाग पहुँचा जहाँ वह काशी से बम्बई जाने के लिए जा चुके थे। उन दिनों लॉर्ड रीडिंग से मालवीयजी राष्ट्रीय आन्दोलन के विषय में मध्यस्थ के रूप में बातचीत कर रहे थे और उन्होंने भारत में औपनिवेशिक ढंग के स्वराज्य की स्थापना पर विचार करने के लिए एक गोलमेज कान्फरेंस करने पर उन्हें बहुत कुछ सहमत भी कर लिया था। परन्तु घटनाचक्र इस वेग से परिवर्तित होता गया कि शीघ्र ही वार्ता का अंत हो गया। मालवीयजी के बंबई प्रस्थान करने के पूर्व स्वर्गीय देवदास गांधी ने उनसे मिलकर सूचना दी कि महात्माजी ने वाइसराय को पत्र लिखकर एक सप्ताह का समय दिया है जिसे सुनकर मालवीयजी ने सखेद कहा था कि पत्र लिखते समय वह उपस्थित होते तो उस पत्र की भाषा 'अल्टिमेटम' समझी जाय, ऐसा न होता। उन्हें विश्वास था कि उनके सुझाव को मानकर गांधीजी अपने पत्र को दूसरा रूप दे सकते थे।

इधर गोरखपुर में चौरीचौरा सब किया-कराया मिट्टी में मिलाने जा रहा था। ४ अथवा ५ फरवरी को मालवीयजी ने बम्बई के लिए प्रस्थान किया और दूसरे दिन नरसिंहपुर स्टेशन पर उतरकर हाथ में 'पायोनियर' पत्र लिए लेखक के डिब्बे के सामने क्षुब्ध दिखते हुए पूछने लगे, "कुछ जानते हो?" मैं दंग रह गया और मैंने उत्तर दिया कि जब तक गोरखपुर में था इस दुर्घटना का कोई आभास नहीं था। महात्मा गांधी असहयोग आन्दोलन के आरंभ से ही शान्ति और अहिंसा पर बराबर बल देते आ रहे थे परन्तु इस उपदेश की जड़ जनता के हृदय पर जम नहीं पाई थी। चौरीचौरा के आसपास पुलिस ने बड़ा अंधेर मचा रखा था और कांग्रेस के दो वालंटियर मार भी डाले गये थे। ४ फरवरी, १९२२ को जनता के एक बड़े जुलूस ने उत्तेजित होकर रेलवे स्टेशन के समीप अवस्थित पुलिस थाने में थानेदार और २१ सिपाहियों को बंद कर के आग लगा दी जिससे सब के सब जल मरे। सरकार बौखला गयी और लंदन भी डगमगा गया। इस दुर्घटना की प्रतिक्रिया मालवीयजी पर और सबसे बढ़कर महात्मा गांधी पर पड़ी।

१२ फरवरी को बारडोली में कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक होनेवाली थी क्योंकि वहींसे महात्माजी अहिंसात्मक सत्याग्रह का आरंभ करनेवाले थे।

इस बीच बंबई के बिरला भवन में जहाँ पूज्य मालवीयजी का आवास था, नित्य ही सुनने को मिलता कि बम्बई का गवर्नर गांधीजी को गिरफ्तार करने जा रहा है। बारडोली में कार्य-समिति के कुछ सदस्यों के इस मत के

विपरीत कि किसी देशव्यापी आन्दोलन में छुट-पुट हिंसा का हो जाना अनिवार्य है और एक चौरीचौरा के कारण आन्दोलन को स्थगित करना भूल होगी, गांधीजी ने, जिनके लिए अहिंसा आंदोलन का प्राण तथा अनिवार्य अंग था, चौरीचौरा का दायित्व अपने कंधों पर लिया और सत्याग्रह को स्थगित कर दिया। मालवीयजी ने उनका पूरा समर्थन किया जिसकी उस समय यह बड़ी चर्चा थी कि गांधीजी मालवीयजी के कहने में आ गये, यद्यपि यह बात वे ही कह सकते थे जो गांधीजी के सत्य और अहिंसा व्रत से भली भांति परिचित न थे। २४-२५ फरवरी को कांग्रेस महा-समिति ने दिल्ली की बैठक में, जिसमें मालवीयजी उप-स्थित थे, बारडोलीवाले प्रस्ताव को, जिसके द्वारा सत्या-ग्रह स्थगित हुआ था, स्वीकार किया और १३ मार्च को सरकार ने गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया। यों तो सरकार का दमनचक्र पहले ही से चल रहा था जिसके फल-स्वरूप उत्तर प्रदेश (युक्त प्रदेश) की प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के समस्त ५५ सदस्य (जिनमें पंडित जवाहरलाल भी थे) प्रयाग में एक साथ ही पकड़े जा चुके थे, परन्तु गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद दमन ने बड़ा उग्र रूप धारण किया। समाचारपत्रों के कलेवर कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियों के समाचारों से रँगे होते। अनेक जेलों में राजभक्त बंदियों के दिल तोड़ने के लिए उनपर गर्हित पाशविक अत्याचार किये जाने लगे, तथा उच्च कोटि के प्रायः सभी नेता जेलों में बंद कर दिये गये। ऐसा लग रहा था कि सरकार राष्ट्रीय भावना को कुचल देगी। जनता त्रस्त थी और जो कार्यकर्ता बच रहे थे उनमें निराशा छा रही थी।

इस नैराश्य की अवस्था में अनेक प्रदेशों के लोगों की दृष्टि महामना मालवीयजी पर गई जो देश के सभी गाढ़े अवसरों पर काम आते थे। पंजाब, असम, कलकत्ता तथा अन्य स्थानों से उनके पास निमंत्रणों के ताँते लगने लगे। सबसे पहले उन्होंने पंजाब भ्रमण का निश्चय किया और दिल्ली से प्रयाग लौटने के दो-चार दिन बाद ही मार्च के अन्तिम दिनों में लाहौर के लिए चल पड़े। वह भारत सरकार की दमन नीति का एक नंगा चित्र ब्रिटिश जनता के सामने रखना चाहते थे; उनका विश्वास था कि जेलों के भीतर एवं बाहर कांग्रेस कार्यकर्ताओं पर सरकारी अधिकारी जो पशुतापूर्ण अत्याचार कर रहे थे उसका प्रामा-णिक विवरण पाकर ब्रिटिश पार्लमेन्ट भारत सरकार की दमन नीति को पलटने के लिए उसे बाध्य करेगी। एत-दर्थ वह स्मृति-पत्र तैयार कर रहे थे जिसके लिए पंजाब जाने के एक दिन पहले 'लीडर' के सम्पादक से उस पत्र की एक बड़ी फाइल उन्होंने इस लेखक के द्वारा मँगवा ली और इस संग्रह का कार्य पंजाब के समस्त भ्रमण में जारी रखा।

महामना मालवीयजी के आगमन से सारे पंजाब में आशा और उत्साह की एक लहर दौड़ गई। लाहौर स्टेशन पर उनका शानदार स्वागत हुआ और लाला लाजपत-राय की सर्वेन्ट्स आॅव पीपुल्स सोसाइटी का भवन उनका मुख्य कार्य-स्थल बनाया गया। उस समय स्वयं पंजाब केसरी लाहौर के सेन्ट्रल जेल में बंद थे जहाँ उनसे मालवीय-जी ने शीघ्र ही भेंट की। लाहौर ही से समस्त पंजाब का मालवीयजी का तूफानी दौरा आरंभ हुआ जिसके प्रबन्ध-कर्ता पंजाब कांग्रेस कमिटी के मंत्री डॉक्टर परशुराम और अमृतसर के नेता सरदार मेहताबसिंह सर्वत्र उनके साथ रहे।

इस राजनीतिक यात्रा में मालवीयजी पंजाब के प्रायः सभी प्रमुख स्थानों में और सुदूर पेशावर तक गये। उस समय उनकी अवस्था इकसठ-बासठ साल की थी पर उन्होंने विश्राम का नाम नहीं लिया। वस्तुतः उनके लिए आराम हराम था। एक ही धुन थी और एक ही लगन, अनुत्साह की जगह उत्साह भरना, गिरती हुई आत्मा को उठाना, देशभक्ति की भावना को जाग्रत रखना और नौकरशाही के अत्याचारों का तथ्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना। वह जहाँ कहीं जाते सार्वजनिक सभाओं में अपनी मधुर और आकर्षक वक्तृता से लोगों को कांग्रेस का मंतव्य समझाते और देशभक्ति के मार्ग पर दृढ़ रहने का उपदेश करते एवं कांग्रेस कार्य-कर्ताओं की निजी बैठकों में उन्हें शान्तिपूर्वक कांग्रेस के कामों को करते रहने के लिए प्रेरित करते। लाहौर से जो माल-वीयजी का केन्द्र स्थान था उन्होंने मोगा, कसूर, भिवानी, हिसार, जालंधर, रावलपिंडी, लुधियाना, अमृतसर, सियाल-कोट, अम्बाला, खरर, रूपर, बटाला और पेशावर आदि नगरों के दौरे कर के लोगों में एक स्फूर्ति पैदा कर दी। इस भ्रमण के मध्य में बटाला में प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ जिसके अध्यक्ष थे माननीय विट्ठलभाई पटेल, जिन्होंने व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष-पद को सुशोभित करते हुए

निर्भीकता, निष्पक्षता और दक्षता का वह महान् आदर्श स्थापित किया जो किसी भी अध्यक्ष के लिए सर्वदा के लिए एक स्पृहणीय तथा अनुकरणीय उदाहरण रहेगा। इस सम्मेलन में भी मालवीयजी ने भाग लिया और लोगों को अपने भाषण से प्रभावित किया।

जालंधर में रायजादा हंसराज के भवन में मालवीयजी के ठहरने का प्रबन्ध था; रायजादा हंसराज उस समय जेल में थे। यहाँ पर देखने में आया कि पंजाब की महिलायें कितना आगे बढ़ी हुई थीं। एक महती सभा हुई जिसके अध्यक्ष थे हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द। महिलाओं की खासी बड़ी उपस्थिति थी जिसमें जलंधर कन्या महाविद्यालय की छात्राओं का विशिष्ट स्थान था। जिस श्रद्धा और उत्साह के साथ उन्होंने मालवीयजी की आरती उतारी और देश-भक्ति का प्रदर्शन किया वह स्पष्टतया प्रकट कर रहा था कि वे भारतीय संस्कृति की मर्यादा की रक्षा करेंगी।

कई शहरों में महामना मालवीयजी के आगमन पर सार्वजनिक सभाओं पर भारतीय दण्ड विधान की धारा १४४ के द्वारा निषेध लगा दिया गया था। अम्बाला स्टेशन पर गाड़ी से उतरते ही उनके हाथ में किसी उच्च पुलिस कर्मचारी ने उर्दू में नोटिस रखी जिसमें उनके नाम के आगे मालवीय के स्थान में 'मौलवी' शब्द लिखा था जिस पर हँसी हुई। मालवीयजी चाहते तो इस आज्ञा को न मानते, परन्तु कानून तोड़कर जेल जाने का उनका उद्देश्य उस समय न था और अम्बाला में किसी सार्वजनिक सभा का आयोजन नहीं हुआ। किन्तु पंजाब के नेता लाला दुनीचंद के स्थान पर प्रमुख कार्यकर्ताओं की एक खासी अच्छी बैठक में मालवीय जी ने राजनीतिक स्थिति तथा आवश्यक कार्यक्रम के विषय पर कई घंटे विचार-विमर्श करके जो करना था उसे पूरा कर लिया। अम्बाले से ही मालवीयजी रूपर और खरर भी गए जहाँ नौकरशाही ने बहुत अत्याचार किया था। अप्रैल समाप्त होते-होते मालवीयजी पेशावर पहुँचे जहाँ अम्बाला की तरह उनके सार्वजनिक भाषण पर दफ़ा १४४ की निषेधाज्ञा लागू की गई थी। पेशावर निकट आने पर रेल से आप साँप की चाल चलती हुई काबुल नदी को देख सकते हैं जिसका उल्लेख वेद में आता है। यहाँ राधाकृष्ण संस्कृत पाठशाला में उनके ठहरने की व्यवस्था की गई थी और उसीमें उन्होंने स्थानीय तथा बाहर से आये हुए कार्यकर्ताओं से स्थिति का परिचय प्राप्त किया और उनको तत्कालीन कर्त्तव्यों का निर्देशन किया। पेशावर छोड़ने के पहले मालवीयजी ने इस्लामिया कॉलेज का निरीक्षण भी किया।

राधाकृष्ण पाठशाला में शुचि-व्रत मालवीयजी के व्यक्तिगत शुद्धता-सम्बन्धी जीवन की दृढ़ता को देखने का एक विशेष अवसर उपस्थित हुआ। यों तो वह साधारणतः बड़े प्रातः साधारण तौर पर स्नान कर के संध्या-वंदन करते ही थे। बाद को जल से स्नान करने के पूर्व सारे शरीर में देर तक चमेली के तेल की मालिश करते थे जिसे तेल-स्नान कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। इससे उनका शारीरिक व्यायाम हो जाता था। पेशावर में चमेली की बोतल रिक्त देखकर इस लेखक और मालवीयजी के रसोइए ने बाजार से नई बोतल मँगा ली। उनकी दृष्टि खाली बोतल पर पहले पड़ चुकी होगी, नई बोतल मँगाने की बात सुनकर उसे तेल सहित उन्होंने अपने सामने फेंकवा दिया क्योंकि संभवतः उस बोतल में कभी शराब रखी गई हो। यह था उनका मद्य-विषयक विचार और अखाद्य और अपेय वस्तुओं के परित्याग से शुद्धता का रक्षण।

अप्रैल-मई की पंजाब की भीषण गर्मी और उसमें लगभग दो महीने का निरन्तर भ्रमण। इसके कारण पूज्य मालवीयजी का शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया और मरी शैल पर कुछ दिन विश्राम कर लेना अत्यावश्यक हो गया। अतएव पेशावर से वह ४ मई को मरी के शीतल स्फूर्तिप्रद शिखर पर जा पहुँचे। पेशावर से इधर कुछ ही दूरी पर तक्षशिला के ध्वंसावशेष देख लेना उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ––वह तक्षशिला जहाँके विश्वविद्यालय में प्राचीन काल में चाणक्य कौटिल्य ने विद्याध्यन किया था। यद्यपि मरी में मालवीयजी का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और कांग्रेस-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार जारी था और दीवान चिम्मनलाल तथा अन्य लोग उनसे मिलने आया करते थे, तथापि उन्हें टहलने और विश्राम करने के लिए पर्याप्त समय मिल गया और दस ही दिनों में उनके शरीर में यथेष्ट स्फूर्ति आ गई।

सिक्ख गुरुओं की भक्ति

महामना मालवीयजी की जिह्वा पर मानों सरस्वती का वास था। जिसने उन्हें वह माधुर्यपूर्ण ओजस्विनी वाग्मिता दी थी कि सभाओं में धाराप्रवाह बोलते हुए जब चाहते श्रोताओं को हँसा अथवा रुला सकते थे। ऐसा एक भाषण उन्होंने मरी के सिक्ख गुरुद्वारा में किया और देश की गिरी

...दशा का वर्णन कर जब सिक्ख गुरुओं के नाम ले-लेकर उनका आह्वान करते हुए उनसे उन्होंने देशोत्थान के लिए श्रोताओं को प्रेरणा देने की माँग की तो स्वयं उनकी आँखों से अश्रु बह चले और उस बड़ी सभा में कदाचित् ही कोई श्रोता रहा जिसने आँसू न बहा दिये। उस समय 'सिर जाये तो जाय प्रभु मेरो धरम न जाय' तथा गुरुओं के इस प्रकार के दूसरे वचन सुनाते-समझाते वह किसी सिक्ख धर्मोपदेष्टा के प्रतीक से लग रहे थे। यही कारण है कि उनके प्रति सिक्खों की श्रद्धा असीम थी।

१५ मई को मालवीयजी मरी से रावलपिंडी उतर आये जहाँ सायंकाल एक विशाल सभा में उनका लम्बा भाषण हुआ जो, जहाँ तक स्मरण है, इस भ्रमण में उनका अन्तिम सार्वजनिक भाषण था। इस यात्रा के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि मार्ग के सभी स्टेशनों पर पूज्य पंडितजी के दर्शनार्थ लोगों की भीड़ लग जाती थी और उनके प्रति पंजाबियों की अटूट श्रद्धा का आभास मिलता था। मार्शल लॉ एवं जलियाँवाला बाग के नरसंहार से संतप्त पंजाबवासियों की मालवीयजी ने जो अमूल्य सेवायें की थीं उनसे उन्होंने उनके हृदय जीत लिये थे। सिक्खों का उत्साह सर्वोपरि लक्षित होता था और उनके सत्श्री अकाल के आकाशव्यापी नारे उनके अदम्य उत्साह की अभिव्यक्ति करते-से लगते थे।

लोकमान्य की सराहना

पंजाब का आवश्यक काम समाप्त हो चुका था। असम की यात्रा करने की तीव्रता थी और युक्त प्रदेश कांग्रेस कमिटी तथा प्रान्तीय खिलाफत कमिटी की बैठक आनन्द-भवन में २० या २१ मई को होने जा रही थी। उनमें सम्मिलित होने के लिए महामना मालवीयजी ने, जहाँ तक स्मरण है, १८ मई को लाहौर से प्रस्थान किया। उनकी बिदाई में भाई परमानन्द की अध्यक्षता में सर्वेन्ट्स ऑव पीपुल्स सोसाइटी के शिक्षणार्थियों ने एक साधारण जलपान का आयोजन किया था। जिसमें एक सामान्य पर महत्त्वपूर्ण बात हुई जिसका उल्लेख मालवीयजी के महान् हृदय का परिचय देने के लिए आवश्यक है। आयोजन एक पारिवारिक गोष्ठी के रूप में था जिसमें राजनीति पर वार्तालाप के बीच ब्रिटिश कूटनीति की चर्चा चल पड़ी। महामना मालवीयजी ने इस प्रसंग में यह कहकर कि अँगरेजों की चाल को जैसा लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने परख पाया था वैसा स्वयं उन्होंने अथवा गांधीजी ने पहले नहीं समझा था, तिलकजी की विलक्षण बुद्धि की सराहना की।

निराला का निर्वाण और एक प्रश्न

श्री सोहनलाल द्विवेदी

गया निराला, मौन मस्त सब
सूर्यकान्त हो गया अस्त अब।
दिन में ही छा गया अँधेरा
यह आई वह रात कि
जिसका नहीं सबेरा!

यह किसने संघात किया है?
क्या हमने ही नहीं विषम आघात किया है?
सोचो, क्या ये हाथ हमारे नहीं कलंकित?
सोचो क्या ये प्राण हमारे नहीं प्रकंपित?

हमने उसे उपेक्षा से क्यों
ऐसा हेरा?
उसने सदा सर्वदा को
हमसे मुँह फेरा।

हमने ही क्या उसे नहीं बलिदान किया है?
जिसने जीवन भर
जीवन का दान दिया है!
क्या अपराधी नहीं आज हम
उसकी बलि के?

प्राण दहक उठते हैं अपने
प्राण बहक उठते हैं अपने
क्या अधिकार हमें छूने का
उसकी पावन यशः काय को?
लगता ही हम अपराधी
असमय प्रयाण के
लगता ही हम योग्य नहीं हैं
महाप्राण के!

वह था स्नेह प्यार का भूखा,
बड़े प्रेम से खाया उसने रूखा सूखा,
किन्तु, उसे ही प्यार प्राण का दे न सके हम
कुछ दिन जीता और गर्व से
ऐसा भी वर ले न सके हम!

कौन गया अब?
आज रिक्तता से पूँछो सब!

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के संस्मरण (१०)

पंडित ब्रजमोहन व्यास

एक बहुत पुरानी बात याद आ गयी। लगभग साठ वर्ष पुरानी। अपनी लड़कियों के लिए योग्य वर, अनेक ठोकरों को बर्दाश्त करते हुए सभी ढूंढ़ते रहते हैं, परन्तु अपने पुत्र के लिए योग्य लड़की लाने के लिए विरले ही फटफटाते हैं। यह जानते हुए कि घर जितना गृहिणी से बनता-बिगड़ता है उतना लड़कों से नहीं, फिर भी अच्छी लड़की ढूंढ़ निकालने में इतनी उदासीनता! बात समझ में नहीं आती। मालवीयजी जानते थे कि लड़कियाँ रत्न होती हैं और वे यह भी जानते थे कि "न रत्नमन्विष्यति, मृग्यते हि तत्", रत्न स्वयं ढूंढ़ने नहीं निकलता वह ढूंढ़ा जाता है। वे अथर्ववेद के इस वाक्य के कि 'पुरन्धिर्योषा' स्त्रियाँ ही घर को सम्हालने वाली होती हैं, खूब जानते थे।

एक दिन की बात है। मालवीयजी मेरे पूज्य तातपाद स्वर्गीय डा० जयकृष्ण व्यास के पास गये और कहा "व्यासजी! मैं आपकी पुत्री, विद्या को अपने पुत्र मुकुन्द के लिए चाहता हूँ।" हमारे परिवार में और भी लड़कियाँ थीं परन्तु उन्होंने विद्या ही को चुना। यह भी उनकी, सब बातों को समझ-बूझकर चुनने की प्रतिभा, का परिचायक था। वह केवल भली लड़की की तलाश में नहीं थे, वे चाहते थे कि वह भले घर की भी हो, जहाँ की लड़कियाँ चाहे चुर जायँ मगर उफ् न करें। पूज्य पिताजी इस अनभ्रावृष्टि से प्रसन्न हो गये और उन्होंने तुरन्त मालवीयजी के उस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की। पिताजी, पण्डित बालकृष्ण भट्टजी के अनन्य मित्रों में थे और संस्कृत के प्रेमी थे। उन्होंने सोचा "देखो तो मालवीयजी ने कैसी उलटी गंगा बहा दी——

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्तं जनं
सम्बन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत् स्नेहसारे स्थितं
भद्रं प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येकेन तत्प्राप्यते॥"

——भवभूति
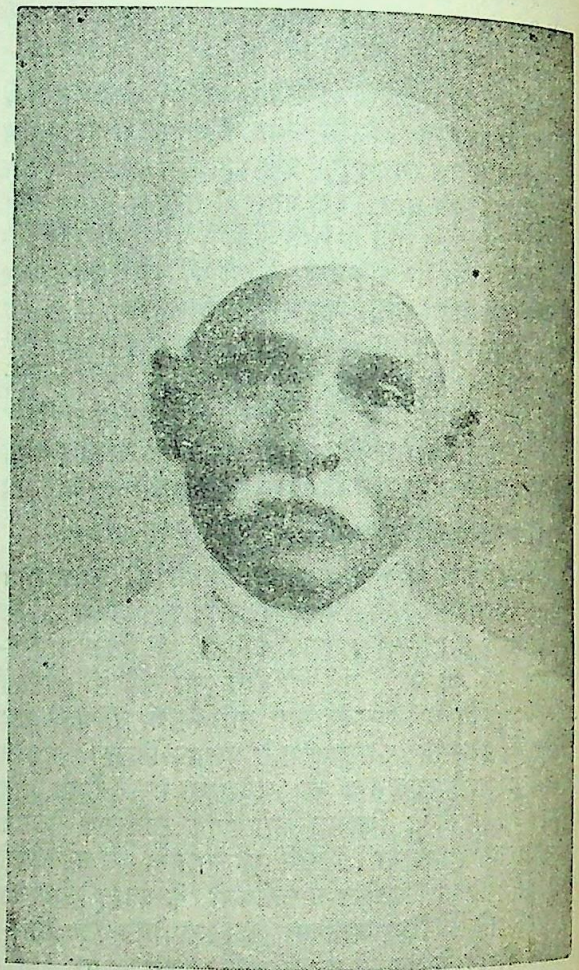
भिक्षुक
महामना पं० मदनमोहन मालवीय

(संसार का यह क्रम है कि कन्या-परिवार के लोग वर पक्षवालों के अनुनय-विनय में लगे रहते हैं पर आप तो उलटे कन्या-पक्ष का आराधन करते हैं। दूसरी एक विशेषता आप में यह है कि जितना आपके परिवार से सम्बन्ध बढ़ता जाता है उतना ही आपस में स्नेह घनिष्ठ होता जाता है।)

विवाह सम्पन्न हो गया। विद्या दान लेकर बहू को वे हमारे घर से लिवा ले गये। मालवीयजी का प्रिय

'motto' 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' (विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है) सार्थक हुआ। समय से मालवीयजी के, इस सम्बन्ध से, एक पौत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चि० लक्ष्मीधर मालवीय है, वह हिन्दी में एम० ए० पास करके 'देवकवि' पर परिशोध कार्य कर प्रयाग विश्वविद्यालय में 'थीसिस' दिया है। भगवत्कृपा हुई तो निकट भविष्य में पी-एच० डी० हो जायगा। मालवीयजी यदि इस समय होते तो अपने पौत्र की प्रतिभा और हिन्दी का अनुराग देखकर फूले न समाते—परन्तु यह सौदा मालवीयजी को बहुत महँगा पड़ा। एक विद्या का दान लेकर उन्हें जीवन भर विद्यादान करना पड़ा।

इस प्रसंग में एक और घटना याद आ गयी। सन् संवत् मुझे याद नहीं है और न मैं उसके याद करने में माथापच्ची किया चाहता हूँ। No-Rent Campaign (लगान विरोध आन्दोलन) में मालवीयजी के परिवार ने बड़ा ज़ोरदार भाग लिया। सौभाग्यवती विद्या तत्सम्बन्धी एक मीटिंग में सभानेत्री थी। शासन का दमन-चक्र चल ही रहा था। सौभाग्यवती विद्या 'अरेस्ट' कर ली गयी और उसे नौ महीने की सजा हुई। उस समय मालवीयजी के सुपुत्र पं० गोविन्द मालवीय ने मुझे काशी से टेलीफोन किया कि मैं तत्कालीन कमिश्नर मिस्टर वाम्फर्ड से अनुरोध करूँ कि सौभाग्यवती विद्या जेल में 'ए' क्लास में रखी जाय। उन दिनों मैं प्रयाग म्युनिसिपैलिटी का एकजीक्युटिव अफसर था और कमिश्नर वाम्फर्ड पर मेरा सिक्का जमा था। हम दोनों 'हम प्याले' थे। मेरे पास मनों ताँबे के सिक्के थे और उन्हें सिक्कों का रोग था। वे मेरे मकान पर आते थे और थैलियों में सिक्के भरकर ले जाते थे और उन्हें (decihper) पढ़कर लौटा जाते थे। वे 'Numismatic Society of India '(भारतीय मुद्रा-तत्त्व समिति) के सभापति भी थे। वे कहा करते थे कि 'I hate to be baffled by coins' (मुझे सिक्कों से परास्त होने से घृणा है)। मैं उनके पास गया और जैसे ही मैंने उनसे कहा कि मेरी बहिन को लगान-विरोधी सभा के नेतृत्व करने के अपराध में नौ महीने की सजा हो गयी है तो वे चौंके और आश्चर्यान्वित होकर बोले, "तुम्हारी बहिन"! मैंने कहा कि "वह महामना मालवीयजी की पुत्रवधू है" तो वे तुरन्त बोल उठे, "That explains it"

दाता
स्वर्गीय डाक्टर जयकृष्ण व्यास सौ० विद्या के पिता

(तो बात समझ में आती है।) मेरे अनुरोध करने पर कि सौ० विद्या को 'ए' क्लास में रखा जाय, वे बोले कि यह बात कलेक्टर के हाथ में है, तुम उनसे कहो। मैंने कहा कि 'डोनाल्डसन' साहब (तत्कालीन कलेक्टर) को आये बहुत दिन हो गये। मैं उनसे एक बार भी नहीं मिला। वे तो मुझे सत्याग्रही समझते होंगे। भला वे मेरी बात कब सुनने लगे! बाम्फर्ड साहब मुस्कराये और बोले, "स्थानीय अफसर जनता के विशिष्ट व्यक्तियों की राजनीतिक विचारधारा से पूर्ण रीति से परिचित रहता है।

दूसरे दिन मैं कलक्टर से मिला। अजब आदमी था और अजीब थी उसकी व्यवहार-प्रणाली। जैसे ही मैं सामने कुर्सी पर बैठा वैसे ही उसने एक मोटा-सा रजिस्टर उठाया और लगा मुझसे प्रश्न पूछने और मेरा उत्तर संक्षेप में लिखने। मेरा नाम क्या है, मैं कितने दिनों से एक्जी-

भिक्षा
सौभाग्यवती विद्या

क्युटिव आफिसर हूँ, मैं किन-किन संस्थाओं से सम्बद्ध हूँ, इत्यादि इत्यादि। मुझे ऐसा लगा जैसे इजलास पर 'खुदा को 'हाज़िर-नाज़िर जानकर', मेरा बयान क़लम-बन्द किया जा रहा हो, और मैं कोई 'हिस्टरी-शीटर' हूँ। जब यह अग्नि-परीक्षा समाप्त हुई तो उन्होंने रजिस्टर को बन्दकर बगल में रख दिया और पहिला सवाल जो उन्होंने पूछा वह यह था "मिस्टर व्यास ! मैं इतने काल से यहाँ हूँ, तुम एक बार भी मुझसे मिलने नहीं आये। इसका क्या कारण है ?" मुझे इतना साहस न था कि मैं कह दूँ कि मुझे तुम्हारे शासन से कुढ़न है, इसलिए नहीं आया। मैंने केवल इतना कहा कि म्युनिसिपैलिटी के काम में इतना व्यस्त रहता हूँ कि नहीं आ सका। तब उन्होंने मुझसे आने का प्रयोजन पूछा। मैंने उनसे कहा कि मेरी बहिन को 'लगान-विरोध' के अपराध में सज़ा हो गयी है। उसके 'ए' क्लास के लिए में अनुरोध करने आया हूँ। इस पर फिर वे उस मोटे रजिस्टर को खोलकर फिर लिखने लगे। जिस प्रकार कत्ल के मुकदमे में, तलाशी में कोई सबूत न मिलने पर, यदि घर में पाव भर भाँग निकल आवे तो पुलिस उसको ही कब्जे में कर उसका इन्दराज करती है, कुछ उसी प्रकार मेरे खिलाफ कुछ न निकलने पर मेरी बहिन को सजा होना और वह भी ऐसे गुनाह पर जिससे शासन का आसन डाँवा-डोल होता है, मुझे जहन्नुम में भेजने के लिए पर्याप्त था। उसे कलक्टर साहब ने मेरी हिस्ट्री शीट में दर्ज कर लिया ताकि वह सनद रहे और वक्त ज़रूरत पर काम आवे। मुझे कलेक्टर साहब की एहतियात पर मन ही मन हँसी आयी। रजिस्टर फिर बन्दकर कलेक्टर साहब बोले, "मिस्टर व्यास! मुझे खेद है कि मैं आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि मालवीयजी का पूरा परिवार बाग़ी है। मेरी तो धारणा है कि कुल राजनीतिक कैदियों को 'सी' क्लास देना चाहिए सिवाय इने-गिने चोटी के नेताओं के जैसे गांधीजी, मालवीयजी, मोतीलालजी और ऐसे ही दो-एक और। बाकी सबको 'सी'-क्लास। जो लोग कानून तोड़ते हैं उन्हें शासन का दिया हुआ दंड बिना चीं-चपड़ किये भुगतना चाहिए। मैं जानता हूँ कि अँगरेजी शासन की नीति इसके विरुद्ध है पर जब तक मुझे ऊपर से कोई आदेश न मिले तब तक मैं तो अपने ही मत के अनुसार अपना सुझाव दूँगा। मैं तो आपकी बहिन के लिए 'सी' क्लास की सिफारिश कर चुका हूँ।" इतना सुनकर मैं यह कहकर चला आया कि इसके आगे मुझे कुछ नहीं कहना है। दो ही तीन दिन बाद यह पता चल गया कि सरकार ने कलेक्टर साहब की सिफारिश नहीं मानी और मेरी बहिन को 'ए' क्लास दिया गया है जैसा कि मालवीयजी के परिवार के अन्य लोगों को दिया गया था।

सौभाग्यवती विद्या ने जेल में रहकर किन-किन कठिनाइयों से मालवीयजी के यहाँ प्रचलित खान-पान, पूजा-पाठ इत्यादि को निवाहा, उसे लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वहाँ उसके व्यवहार और आचरण से किसी भी पिता और श्वसुर को गर्व होगा।

मालवीयजी का हृदय स्नेह से कितना ओत-प्रोत था, उसके दो-एक उदाहरण देता हूँ। मालवीयजी मध्याह्न में

स्नानादिक नित्य कर्म से निवृत्त होकर अपने शहरवाले घर की अटारी पर भोजन करने जाते थे। प्राय: मेरी बहिन सौभाग्यवती विद्या ही रसोई बनाती थी। मालवीयजी रेशमी वस्त्र पहिने सीढ़ी पर चढ़ते हुए यह पद गुनगुनाते जाते थे--

नंद-भवन को भूषन भाई
यशोदा को लाल बीर हलधर को
राधारमन चरण सुखदाई।

अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचकर वे बड़े ही स्निग्ध स्वर में कहते थे "अन्नपूर्णे! भिक्षुक आ गया। भिक्षा देगी?" उनकी सहधर्मिणी कुन्दनदेवी तुरन्त आ जातीं और उनके लिए आसन बिछा देतीं। यद्यपि मेरी बहिन बहुत अच्छी रसोई बनाती है परन्तु एक दिन दाल में निमक थोड़ा अधिक हो गया। वे कुछ नहीं बोले। कुन्दनदेवी तो वहाँ बैठी ही थीं। मालवीयजी मौक़े की ताक़ में थे। जैसे ही कुन्दनदेवी की आँख दूसरी ओर फिरी, मालवीयजी ने थोड़ा सा जल, दाल में मिला दिया। सिर्फ मेरी बहिन ने देख लिया। उसके नेत्रों से अपनी त्रुटि और श्वसुर के स्नेह पर, आँसू बहने लगे। कुन्दनदेवी का स्वभाव मार्दव और तिग्मता का विचित्र सम्मिश्रण था। मालवीयजी की सेवा में तनिक भी त्रुटि उन्हें असह्य थी। यदि उन्हें पता चल जाता कि दाल में नमक अधिक पड़ जाने के कारण मालवीयजी को दाल में जल मिलाना पड़ा तो वे मेरी बहिन के छट्ठी का दूध याद करा देतीं।

एक बार मालवीयजी और उनके पुत्र पं० राधाकान्त मालवीय साथ-साथ रसोंई में भोजन करने के लिए गये। लकड़ी खराब थी। चूल्हा ठीक नहीं जल रहा था। बहुत धौंकने पर भी लकड़ी से कोयला कम टूटा। अतः रोटी कम फूलती थी और उसमें बहुत-सी चित्ती पड़ जाती थी। राधाकान्त स्वभाव के उग्र हैं और भोजन में क्या, सभी बातों में बहुत टिन-फिन करते हैं। मालवीयजी मौजूद थे इसलिए कुछ बोल तो न सके पर लगे रोटी पर से चित्तियों को तोड़ने और इस प्रकार उन्होंने थाली के नीचे रोटी के टुकड़ों का एक ढेर लगा दिया। मालवीयजी से न रहा गया। बोले 'राधा! इतना क्रोध न करना चाहिए। अन्न का अनादर अनुचित है।' जब लकड़ी ही खराब है तो बहू बेचारी क्या करे। रोज तो ऐसा नहीं होता।

करुणावतार मालवीयजी।

शास्त्र कहता है कि केवल एक रस है और वह है करुण रस। अन्य जितने रस हैं वे इस रस के रूपान्तर हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्॥

--भवभूति

(रस केवल एक है और वह करुण है। निमित्तभेद के कारण उसके अनेक रूपान्तर होते हैं। जैसे भँवर, बुद्बुद, तरङ्ग ये सब जल ही के रूपान्तर हैं।)

मालवीयजी का करुण रस बड़ा प्रबल था। वे दुखियों को देखकर उद्विग्न हो जाते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की बात है, जब वे वहाँ के वाइस-चांसलर थे। उसी समय मेरे परम मित्र, भाई श्रीकृष्णदास विश्वविद्यालय में छात्र थे। दासजी उग्र विचारों के एक क्रान्तिकारी थे। मालवीयजी उनकी प्रतिभा एवं उत्साह के क़ायल थे। और मालवीयजी ने दासजी के हृदय में घर कर लिया क्योंकि दासजी उनके अतिनिकट सम्पर्क में आ चुके थे। एक बार मालवीयजी ने एक राजनीतिक विद्वान् अँगरेज को विश्वविद्यालय में निमंत्रित किया। विद्वान् महोदय ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। परन्तु दासजी की पार्टी ने मालवीयजी से स्पष्ट कह दिया कि वह व्यक्ति निमंत्रण के योग्य नहीं है और उनकी पार्टी उन्हें विश्वविद्यालय में घुसने न देगी। मालवीयजी ने कहा कि सन्ध्या समय विश्वविद्यालय के सब छात्रों की एक वृहत् सभा करो और जैसा वह निश्चित करेगी उसका वे पालन करेंगे। दासजी ने स्वीकार कर लिया। सन्ध्या समय एक बड़ी मीटिंग हुई। मालवीयजी ने उसमें जोरदार व्याख्यान दिया। इसके बाद श्रीकृष्णदासजी बोले। परिणाम यह हुआ कि विपक्षियों की जीत हुई। मालवीयजी तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुए और वहीं पर कहा कि वे बहुमत का आदर करेंगे। तदनन्तर मालवीयजी ने निमंत्रित महोदय से क्षमा माँगी और उन्हें आने से रोक दिया। दूसरे दिन मालवीयजी ने दासजी को बुलवाया और पीठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और कहा, "तुमने हमसे मोर्चा लेकर हमें हराया, हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। तुम जीवन में बहुत कुछ काम कर सकोगे। तुम लोग शायद मुझे 'माडरेट' समझते हो। तुम्हें एक बात बताऊँ। १८९२ में 'अजमेर कान्सपिरेसी केस' में मेरे ऊपर वारंट निकल चुका है।" दासजी

का कण्ठ अवरुद्ध हो गया और आँखों से अश्रु बहाते हुए वे मालवीयजी के चरणों में नत-मस्तक हो गये।

इसके कुछ समय बाद एक विचित्र घटना घटी। दासजी स्वयं क्रान्तिकारी विचारों के तो थे ही, उनके कई मित्र, भयंकर क्रान्तिकारी थे। उनके नाम वारंट था और वे प्रच्छन्न (Underground) रहते थे। ऐसा एक मित्र अपनी पत्नी के साथ बनारस आ रहा था। पत्नी आसन्नप्रसवा थी। रास्ते में उसके पेट में दर्द हुआ और वह पैदल चलने में असमर्थ हो गयी। मित्र महोदय ने अपनी पत्नी को बनारस से ४५ मील दूर पर एक वृक्ष के झुरमुट में छिपा दिया और दासजी को खबर भेजी कि वे मोटर का प्रबन्ध कर उनकी पत्नी को लिवा जायँ और किसी औरतों के अस्पताल में प्रसव के हेतु तुरन्त भरती करा दें। दासजी ने जब यह सुना तो उनके होश उड़ गये। भागे-गये मालवीयजी के सेक्रेटरी, पंतजी के पास गये और उपकुलपति की मोटर माँगी। पंतजी ने देने से इन्कार कर दिया और कहा कि बिना मालवीयजी की आज्ञा के मोटर नहीं मिल सकती। दासजी दौड़े-दौड़े मालवीयजी के निवास-स्थान पर गये। उनके पुत्र वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा मालवीयजी विश्राम कर रहे हैं, अभी भेंट नहीं हो सकती। दासजी ने आव देखा न ताव, दरवाजा ढकेलकर भीतर घुस गये। मालवीयजी लेटे थे। दासजी को देखकर बड़ी स्निग्धता से बोले, "कहो दासजी! इतना घबराये हुए क्यों मालूम होते हो! आओ बैठो।" दासजी ने खड़े ही खड़े थोड़े में सब वृत्तान्त कह डाला। उसे सुनते मालवीयजी उठ बैठे और क्रोध में आकर बोले, "तुमको शरम नहीं आती। तुम बड़े क्रान्तिकारी बनते हो। वहाँ पर बहू आसन्नप्रसवा है और पीड़ा में पेड़ के नीचे पड़ी है और तुम पंतजी से और हमसे मोटर माँगते फिर रहे हो। क्यों नहीं तुमने मोटर जबर्दस्ती छीन लिया और खुद ड्राइव कर बहू को क्यों अब तक अस्पताल नहीं ले गये! हमारी मोटर जल्दी लेकर जाओ और उसे अस्पताल में भर्ती कराओ। जब तक शान्तिपूर्वक उसे प्रसव न हो जाय, तुम अस्पताल ही में रहना। खर्च के लिए ये ४००) रु० लेते जाओ। और जो कुछ खर्च लगेगा हम देंगे। और हम स्वयं उसकी देखरेख के लिए आवेंगे।" दासजी फौरन मोटर लेकर गये और बहू को अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में भरती करा दिया। वहाँ उसका शान्तिपूर्वक प्रसव हुआ। जब तक वह अस्पताल से 'डिसचार्ज' नहीं हुई, प्रतिदिन मालवीयजी उसका हाल-चाल लेने जाते थे। और कुल खर्च उन्होंने अपने पास से दिया।

हम मालवीयजी को 'माडरेट' कहें या महामानव?

—क्रमशः

किताबे नौरस के ध्रुपदों की भाषा

श्री झाबरमल शर्मा

पिछले दिनों अचानक हिन्दी की गौरवमयी मासिक पत्रिका 'सरस्वती' की सन् १९५९ के अगस्त मास की पुरानी संख्या मेरे हाथ में आ गयी थी। उसके पन्ने उलटने पर सर्वप्रथम डाक्टर उदयनारायण तिवारीजी का 'इब्राहीम आदिल शाह के ध्रुपद' शीर्षक लेख सामने आया और मैं आद्योपान्त उसको पढ़ गया। अपने लेख में विद्वान् लेखक ने 'किताबे नौरस' में प्रकाशित कतिपय ध्रुपद उद्धृत करने के साथ उनका अर्थ देकर पदों की भाषा दक्खिनी भाषा की—आधारभूता भाषा—'बांगरू' बतलायी है। श्री तिवारीजी की इस राय को मैं तो 'मुनीनां च मतिभ्रमः' ही मानता हूँ। मेरे विचार में दक्खिनी भाषा मराठी का सम्बन्ध राजस्थानी के साथ अधिक है। तिवारीजी के निर्देशित शब्द—'निकल्या', 'ल्याया', 'ल्याई', 'सँवारना', 'देख्या', 'रह्या', 'सह्या' 'छोडता' आदि—भी राजस्थानी के ही हैं और साधारण बोलचाल में प्रयुक्त होते हैं। लेख में जो पद उद्धृत किये गये हैं, उनपर न केवल राजस्थानी भाषा की छाया प्रतिबिंबित है, बल्कि स्पष्टतया वे राजस्थानी के हैं। उदाहरण देख लीजिए :—

'उपमा सुन्दरी सोहे सुद सदा बरसांत
विजल्यां झमके जगाजोत सो बतीसो

बैन

किसवत रंग रंग दिसे ज्यों बादल
छाये, बरसे मेघ सो खोये जल
सब तन केस रूँख परकार
सरस जानी सत आई बार।

अभोग

गरजे सो तू कहे राग मलार
इब्राहीम मोर रीझत नाचे पुकार।'

और हाँ, 'दर मुकाम, कनड़ा नौरस' वाले पद की अन्तिम कड़ी—"इबराहीम सर्व देवदेवी थाडे भगत करत नगरकोट राणी सीस छतर" का अर्थ समझने में भी श्रीमान् डाक्टर तिवारी गड़बड़ा गये हैं। उन्होंने लिखा है :— "इब्राहीम कहता है कि सभी देवी-देवता उनकी भक्ति करते हैं। वह करोड़ों नगरों की रानी है तथा उनके सिर पर छत्र है।" पर यह अर्थ ठीक नहीं है। 'नगरकोट राणी' का अभिप्राय "करोड़ों नगरों की (देवी) राणी" नहीं—प्रत्युत 'नगरकोट की ज्वाला (देवी) छत्रधारिणी है, जिसके आगे देव-देवी खड़े भक्ति करते हैं।

निरालाजी और श्रीविनोद शर्मा

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी

निरालाजी और श्रीविनोद शर्मा में गाढ़ी मित्रता थी। शर्माजी साहित्यिक तो नहीं, पर साहित्य-रसिक अवश्य हैं। वे कभी-कभी कवि मित्रों के 'कुसंग' के कारण व्यंग्य और हास्य की रचनाएँ भी लिख डालते हैं, पर मान्य कवि नहीं हैं। उनकी कविताएँ मित्र-मण्डली तक सीमित रहती हैं। इसलिए हिन्दी जगत् उनसे परिचित भी नहीं है। अवसर मिलने पर वे हर किसी पर व्यंग्य कर सकते हैं। उनका कोई भी मित्र उनके व्यंग्यवाणों से नहीं बचता—यदि वह उन्हें व्यंग्य करने का अवसर दे। निरालाजी उनकी इस प्रकृति को जानते थे और उनके व्यंग्यों में रस भी लेते थे। शर्माजी के घर पर बहुधा कवियों और साहित्यिकों का जमाव हो जाया करता था। उन अवसरों पर विशुद्ध साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी, और उपस्थित तथा अनुपस्थित लोगों के कृतित्व की आलोचना भी जब कभी हो जाया करती थी। आलोच्य कृति का जनक चाहे सामने ही बैठा हो, आलोचना बड़ी बेमुरव्वती से होती थी। इनमें कभी-कभी ऐसे उग्र स्वभाव के लोग भी होते थे जैसे निरालाजी और हितैषीजी। दोनों ही स्पष्टवक्ता, 'खरे कहवैया', जो ब्रह्मा की भी पर्वाह नहीं करते थे। ये दोनों एक दूसरे के बड़े प्रशंसक थे। दोनों ही अनन्य हिन्दीनिष्ठ, किन्तु छोटी-मोटी बातों पर मतभेद होने पर परशुराम-लक्ष्मण संघर्ष की पुनरुक्ति कर दिया करते थे। दोनों ही जोर से बोलनेवाले, दोनों ही अपनी बात के आग्रही, दोनों ही का 'बैसवारी बोली' पर आश्चर्यजनक अधिकार, दोनों ही दूसरों की बात न मानने की टेक किये। कभी-कभी तो भय होता था कि मामला बढ़ न जाय। किन्तु थोड़ी देर बाद दोनों ही अपने आप शांत हो जाते थे। इन विवादों से किसीके मन में कभी कोई मैल नहीं आता था।

निरालाजी को कभी-कभी किसी बात की धुन सवार हो जाती थी जो कुछ दिनों चलती थी। एक बार उन्हें 'हिन्दुस्तानी' लिखने की धुन सवार हुई तो कई महीने 'हिन्दुस्तानी' ही लिखते रहे। 'कुकुरमुत्ता' उसी अवधि की कृति है। एक बार उन्हें यह धुन सवार हुई कि हस्ताक्षर नहीं करेंगे। यह धुन प्रायः एक वर्ष चली। जिन दिनों उन्हें इस धुन का दौरा हुआ, उन दिनों श्रीविनोद शर्मा के किसी परिचित ने उन्हें पत्र लिखा कि मैं प्रसिद्ध पुरुषों के हस्ताक्षर एकत्र कर रहा हूँ। साथ में दो कार्ड भेज रहा हूँ। उनपर निरालाजी के हस्ताक्षर करा कर भेज दीजिए। श्रीविनोद शर्मा जानते थे कि उन दिनों निरालाजी हस्ताक्षर नहीं करेंगे, किन्तु कर्त्तव्यपालन के रूप में उन्होंने, उनसे स्वयं बात न करके, अपने एक भतीजे को निरालाजी के पास इस अनुरोध के साथ भेजा कि उन कार्डों पर हस्ताक्षर कर दें। निरालाजी ने उत्तर भिजवाया—'जाइ कै कहि देउ कि हम हस्ताक्षर तौ न करब, ऊ कहें तो अँगूठा की छाप लगाइ देई।' हमारी समझ से शर्माजी ने बड़ी भूल की कि उनके अँगूठे की छाप नहीं ले ली। आज वह एक महत्त्वपूर्ण वस्तु होती। इसी प्रकार उन्हें एक बार अँगरेजी बोलने की 'जुंग' सवार हुई। यह 'जुंग' कई वर्ष चली, यहाँ तक कि उन दिनों वे हस्ताक्षर भी अँगरेजी ही में करते थे। उन्हीं दिनों उन्होंने शर्माजी को एक पुस्तक भेंट की। उसमें भी उनका नाम अँगरेजी में ही लिखा। किन्तु यह 'जुंग' माने हुए अर्थ में जुंग न थी। इसका एक ठोस मनोवैज्ञानिक कारण था। वे अनन्य हिन्दी-भक्त और हिन्दी-निष्ठ ही नहीं थे, किन्तु हिन्दी के कर्मठ और क्रियाशील प्रचारक भी थे। जब शर्माजी ने उत्तर प्रदेश में हिन्दी-प्रचार और हिन्दी सम्बन्धी जागृति के लिए कवि-सम्मेलनों का अभियान किया तब वे उनके साथ बीसों कवि-सम्मेलनों में गये, और अर्थ-कष्ट में होते हुए भी उन्होंने सिवाय ड्योढ़े दर्जे के किराये के कभी कोई फ़ीस या पारिश्रमिक नहीं लिया। उन्हें हिन्दी को उचित स्थान दिलाने की उत्कट अभिलाषा थी। इधर हमारे राजनीतिक नेताओं ने अँगरेजी का इतना गुणगान किया, और प्रकारान्तर से हिन्दी का इतना विरोध किया कि हिन्दी के अनन्य भक्त निरालाजी के हृदय को बड़ी चोट पहुँची। वे इन नेताओं के बड़े प्रशंसक थे, किन्तु उनकी हिन्दी-विरोधी नीति के कारण वे उनसे बहुत अप्रसन्न हो गये थे। वे कहा करते थे कि जब हिन्दी की क़द्र नहीं, उसका सम्मान नहीं, जब नेताओं और सत्ताधीशों द्वारा उसके राजभाषा स्वीकार हो जाने पर भी उसका तरह तरह से विरोध हो रहा है और उसके प्रसार-प्रचार में अड़ंगे लगाये जा रहे हैं, तब हिन्दी को

उसका उचित स्थान कैसे मिल सकता है? हिन्दी में संस्कृत के या संस्कृत-मूलक शब्दों के प्रयोग की कटु आलोचना से भी वे बहुत उद्विग्न हो जाते थे। 'राम की शक्ति-पूजा' तथा 'तुलसीदास' के कवि को ऐसी भाषा का विरोध कैसे सह्य हो सकता था? इस सब की उन पर यह प्रतिक्रिया हुई कि जब देश के कर्णधार देश में हिन्दी चलाना ही नहीं चाहते तो हिन्दी किसके लिए लिखी जाय? इस परिस्थिति का विरोध उन्होंने बड़े मौलिक ढंग से व्यक्त किया। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि ने हिन्दी में बोलना तक छोड़ दिया। वे अँगरेजी बोलने लगे। यह 'जुंग' काफी दिनों प्रायः अंत तक बनी रही। उनकी तीव्र व्यथा की वह सार्वजनिक अभिव्यक्ति थी। उन दिनों जो उनसे मिलने जाता उससे वे अँगरेजी में ही बोलते थे। जो लोग इसका वास्तविक कारण नहीं जानते थे—विशेषकर विदेशी विद्वान्—उन्हें उनके सम्बन्ध में बड़ी ग़लतफ़हमी हो जाती थी क्योंकि उन्हें उनका अँगरेजी बोलना बड़ा विचित्र लगता था।

श्रीविनोद शर्मा ने उन्हीं दिनों अपने अभिनन्दन-ग्रन्थ का आयोजन किया। यह ग्रन्थ हिन्दी में है। निरालाजी से भी संदेश मांगा। किन्तु निरालाजी ने उन्हें अँगरेजी ही में अपना संदेश दिया जिसे उन्होंने अपने अभिनंदन-ग्रन्थ में ब्लाक बनवाकर उन्हींकी लिखावट में छाप दिया—

> I appreciate cordially
> Vinodeji in Hindi as
> the 'Punch' in English.
> He is the most idiomatic
> not idiotic humour writer.
>
> Surya Kant Tripathy 'Nirala'

इन्हीं दिनों एक बड़ी मजेदार घटना हुई जिससे निरालाजी की अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है। इसी अँगरेजी की 'जुंग' के दिनों में प्रयाग में कालिदास-दिवस का आयोजन हुआ। यह समारोह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पुस्तकालय में होने को था। प्रमुख वक्ता महामहोपाध्याय पं० उमेश मिश्र और डा० उदयनारायण तिवारी थे। आयोजकों ने शर्माजी से उसकी अध्यक्षता करने का आग्रह किया। शर्माजी ने स्वीकृति दे दी। निरालाजी ने सभा-समाजों में जाना छोड़ दिया था। उनकी अँगरेजी की जुंग के कारण लोग उन दिनों उन्हें बुलाने में घबड़ाते भी थे। संयोग से शर्माजी सभा में जाने से पहिले निरालाजी से मिलने चले गये। निरालाजी ने अँगरेजी में पूछा—'आप कहाँ जा रहे हैं?' शर्माजी ने कहा—'आज सम्मेलन में कालिदास-दिवस का उत्सव है उसीमें जा रहे हैं।' निरालाजी ने फिर अँगरेजी ही में पूछा—'अध्यक्षता कौन करेगा?' शर्माजी ने कहा—'मैं।' निरालाजी तुरन्त बोल उठे—'तब मैं भी चलूँगा।' और इतना कहकर कुर्ता पहिना और अपनी छड़ी लेकर तैयार हो गये। शर्माजी परेशान कि यदि ये सभा में बोलने को तैयार हो गये तो अँगरेजी में ही बोलेंगे, और न मालूम क्या कह बैठें। वे बड़े धर्मसंकट में पड़ गये। निरालाजी जब स्वयं चलने को तैयार हो गये थे तो उन्हें रोका भी नहीं जा सकता था, और यदि वहाँ वे अँगरेजी में बोलने का आग्रह कर बैठे (जैसा कि उस समय प्रायः निश्चित ही था) तो बड़ा अशोभन मालूम होगा। दारागंज से सम्मेलन तक दोनों एक रिक्शे में आये। रास्ते भर शर्माजी इसी उधेड़बुन में रहे कि निरालाजी को कैसे अँगरेजी में बोलने से रोका जाय। सभा आरम्भ हुई। दो तीन वक्ताओं के बाद निरालाजी ने शर्माजी से अँगरेजी में कहा कि 'अब मैं अधिक नहीं रुक सकता। अब मुझे बोलने दीजिए।' शर्माजी ने उनसे बड़ी नम्रता से अँगरेजी में कहा—'आप कालिदास और तुलसीदास को अपना गुरु मानते हैं। आज कालिदास-दिवस है। वे संस्कृत के कवि थे। बेहतर हो कि उनको आप अपनी श्रद्धांजलि (ट्रिब्यूट) संस्कृत में ही दें। इस अवसर पर यह बड़ा उपयुक्त भी होगा।' यह सुनकर निरालाजी बोले—"इन संस्कृत! आल राइट। आई शैल पे माई ट्रिब्यूट इन संस्कृत।" (संस्कृत में! बहुत ठीक! मैं अपनी श्रद्धांजलि संस्कृत में दूँगा।) वे खड़े हुए, और उन्होंने अपना भाषण प्राञ्जल और सरल संस्कृत में आरम्भ किया। कालिदास की प्रशंसा करते हुए उनके काव्य-सौन्दर्य का विश्लेषण किया और उनके दो श्लोकों की बड़ी सुन्दर तथा मौलिक व्याख्या की। प्रायः आध घंटे वे संस्कृत में धाराप्रवाह बोलते रहे। इस बीच उन्होंने अँगरेजी के एक शब्द को भी अपने भाषण में नहीं आने दिया। भाषण समाप्त करते ही वहीं खड़े-खड़े उन्होंने शर्माजी को दाहिना हाथ उठाकर फौजी सैल्यूट किया, और अँगरेजी में बोले—'शर्माजी, आई हेव फिनिश्ड एण्ड एम नाऊ

...टेंग। इट इज सो लेट।' (शर्माजी, मैंने अपना भाषण समाप्त कर दिया। अब मैं जाता हूँ। बहुत विलम्ब हो गया है।) और इतना कहकर, बिना और किसी बात की प्रतीक्षा किये, एकदम वे चल दिये। उस दिन निरालाजी का संस्कृत में इतना लम्बा, सुन्दर, सारगर्भित और धाराप्रवाह भाषण सुनकर सारे श्रोता मुग्ध ही नहीं हुए, आश्चर्यचकित भी रह गये। हम लोग यह नहीं जानते थे कि संस्कृत पर उनका इतना अधिकार है।

अब उन दिनों की भी एक घटना सुना देना अनुपयुक्त न होगा जिन दिनों उनपर हिन्दुस्तानी का भूत सवार था। उस बीच वे 'कुकुरमुत्ता' की कविताएँ लिख रहे थे। जब कोई कविता लिख लेते तब शर्माजी को उसे जाकर सुनाते। वहाँ शर्माजी के अतिरिक्त दो चार साहित्यिक भी उपस्थित रहा करते थे। यद्यपि शर्माजी और उनके यहाँ आनेवाले प्रायः सभी साहित्यिक हिन्दुस्तानी के विरोधी थे (क्योंकि उन दिनों हिन्दी-हिंदुस्तानी का तीव्र विवाद छिड़ा हुआ था), तथापि कुछ तो शिष्टाचारवश, कुछ कविताओं की उत्कृष्टता के कारण, उन्हें खुलकर दाद दी जाती थी। संयोग की बात कि एक दिन जब वे उस माला की एक नयी कविता लेकर आये तब कानपुर के हितैषीजी भी वहाँ उपस्थित थे। वे हिन्दी और उर्दू दोनों ही में कविता करते थे, पर हिन्दी आन्दोलन के एक प्रमुख नेता होने के कारण हिन्दुस्तानी के बड़े विरोधी थे। उस दिन निरालाजी ने जो नयी कविता सुनाई उसका शीर्षक 'खजोहरा' था। कविता-पाठ समाप्त हो जाने पर और लोग तो वाह-वाह करके चुप हो गये, पर हितैषीजी कब चुप रहनेवाले थे? उन्होंने अपने उग्र और असहिष्णु स्वभाव के अनुसार कविता और उसकी भाषा की कड़ी आलोचना आरम्भ कर दी। दोनों में बहुत देर तक विवाद होता रहा। 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' उपस्थित मण्डली इस वाक्युद्ध का आनन्द लेती रही। अन्त में हितैषीजी ने कहा 'अस कविता तो हम रस्ता चलत बनाइ देई।' और यह कह कर उन्होंने 'खजोहरा' की आरम्भिक पंक्तियों की आशु-पैरोडी बना डाली जिसकी अब केवल पाँच पंक्तियाँ हमें याद रह गयी हैं––

निराला की थी एक निराली बुआ
कि डरता था जिससे हरएक मरदुआ
वो बोलें कि जैसे हो काकातुआ
बुआ के आने का अच्छा नतीजा हुआ
कि आते ही आते भतीजा हुआ––

और इतना कहकर बोले––'तबहीं तो निराला जनमे रहे।' निरालाजी ने छूटते ही कहा––"मामा का पुरानी बातें खूबै याद हैं।" इस पर ऐसा अट्टहास हुआ कि सारा विवाद और गम्भीरता उसमें बह गयी।

शर्माजी निरालाजी के अन्यतम प्रशंसकों में थे, किन्तु हिन्दुस्तानी के घोर विरोधी होने के कारण उन्हें कुकुरमुत्ता की भाषा पसन्द नहीं आयी। निरालाजी के समान प्रतिभाशाली और टकसाली हिन्दी कवि को अपनी प्रकृत भाषा छोड़कर 'हिन्दुस्तानी' में लिखना उन्हें बड़ा असंगत और हिन्दी की शान के विरुद्ध मालूम हुआ। हिन्दी के अन्यतम कवि का हिन्दुस्तानी में लिखना––उस समय की हिन्दी-हिन्दुस्तानी विवाद की पृष्ठ-भूमि में उन्हें हिन्दी की पराजय-सी मालूम पड़ी––मानों एक दल के एक प्रमुख नेता ने आत्मसमर्पण कर दिया हो। अतएव उन्होंने निरालाजी पर एक कविता लिखी जिसमें उनके कृतित्व की प्रशंसात्मक आलोचना की, किन्तु अन्त में एक व्यंग्य बाण उनके कुकुरमुत्ता की 'हिन्दुस्तानी' पर भी छोड़ दिया। शर्माजी जिस कवि पर कविता लिखते हैं, उसमें उसी कवि की भाषा, शैली और छंद का प्रयोग करते हैं। इस कविता में भी निरालाजी के छंद, शैली और भाषा का अनुकरण किया गया है। शर्माजी की मान्यता थी कि निरालाजी की मुख्य मौलिक देन हिन्दी कविता को छन्द और तुक के बन्धनों से मुक्त कर देना है। उनकी यह भी मान्यता थी कि निरालाजी का दृष्टिकोण विशुद्ध भारतीय है, वे भारतीय संस्कृति के संदेशवाहक हैं और उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है। ('जल भी पुनीत वही, संस्कृत शिव-शैल की हिम की चट्टानों के गलने से बना है') उसमें सनातन-संदेश और उत्थान की प्रेरणा है। यह कविता इस प्रकार है:

हे मुक्तकेशी
हे अस्तव्यस्त-वेशी!
वज्रघोष से हे प्रचण्ड
आतंक जमानेवाले!
कविता-कामिनि को
कठपुतली का-सा नाच नचानेवाले!

हे निर्बन्ध !
छन्द स्वच्छन्द,
भाव की गुडी की डोर है तुमने दी ढील
हे कलाकार !
फिर भी तुम्हारी कृति के हैं दुरुस्त
सब काँटे और कील।

हे उद्दाम !
जब चली वेगवती धार
कविता की तुम्हारी,
तब
छन्दों के किनारों को
तुकों की कगारों को
प्लावित कर,
तोड़ कर
फोड़ कर
पर्वत छन्दशास्त्र के
निकली कविता की प्रचण्ड धार
नये नये प्रान्त में।

तब नवीन दृश्य
और नूतन वनस्पति,
नये नये पुष्प
और नयी नयी लतिकाएँ
चित्रित लगी करने
वह तूलिका तुम्हारी
जो आके पाणिपल्लव में
कुशल कलाकार के
हो गयी धन्य,
पा तुम सा न अन्य !

चकित रह गया
स्तम्भित रह गया
अवाक् रह गया
स्तब्ध रह गया—
सारा साहित्यलोक,
यद्यपि कठिन था
उसके लिए
सँभालना वह झोंक—
मौलिकता की,
प्रतिभा की,
कलाकार की कुशलता की।

कह उठी जनता
आ रोब में तुम्हारे, तब,
'हिन्दी का यही
युग प्रवर्तक एक कवि है!'

छोड़ दी कगार
और छोड़ा था किनारा भी,
किन्तु धरती तो वही थी न बूढ़े भारत की?
जल भी पुनीत वही—
जो कि
संस्कृत शिव-शैल की—
हिम की चट्टानों के गलने से बना था।
इससे ही, काव्य के भगीरथ !
तुम हिन्दी को दे सके—
'राम की शक्ति पूजा'
'यमुना के प्रति'
और अनुपम वह 'तुलसीदास',
तथा
अन्य कितने गीत भी !

किन्तु निर्बन्ध !
जब हुई तुम्हारी स्वच्छन्दता और भी स्वच्छन्द,
और पुण्यतोया धार में—
तुमने मिलाया गंदा नाला हिन्दुस्तानी का,
तब से तुम हुए हो महान्—
'कुकुरमुत्ता' समान !

यह शर्माजी का अपने ढंग से किया हुआ निरालाजी के कृतित्व का मूल्यांकन है। उन्होंने एक दिन एकान्त में यह कविता निरालाजी को सुनायी। अपनी प्रशंसा का अंश उन्होंने अपने स्वाभाविक शील के कारण आँखें नीची करके सुना। अन्तिम अंश सुनकर उन्होंने आँखें उठायीं, और केवल मुस्कुरा दिये। कुछ बोले नहीं। शर्माजी ने भी कोई बात नहीं की। यह कहना तो गलत होगा कि अपने सुहृद मित्र की इस आलोचनात्मक कविता के कारण ही उनकी हिन्दुस्तानी की धुन समाप्त हो गयी, किन्तु यह निःसंदेह है कि इसके कुछ ही दिनों बाद उनका हिन्दुस्तानी का जोश जाता रहा और वे अपनी ओजपूर्ण, स्वाभाविक हिन्दी में पूर्ववत् लिखने लगे। शायद तब तक उनकी हिन्दुस्तानी की 'धुन' की अवधि समाप्त हो चुकी थी। यह दूसरी बात है कि इस कविता ने उसकी शीघ्र-समाप्ति में कुछ योगदान किया हो।
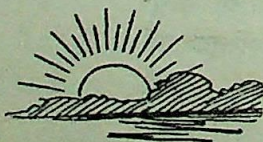
भारतेन्दु का हिन्दी पत्रकारिता को योग

श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन के पैंतीस वर्षों में हिन्दी के लिए जो काम किया उसका उदाहरण कठिन है। हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार के लिए शंकराचार्य ने, या भारत की राजनीतिक चेतना के विकास में चन्द्रशेखर आजाद और सरदार भगतसिंह जैसे क्रांतिकारियों ने अपनी छोटी अवस्था में जो कार्य किये उनसे भी भारतेन्दु के कार्य की तुलना नहीं हो सकती। उनके कार्यों में धर्म या देशभक्ति की चमकती सेवा में जीवनदान करने से अपने यश-शरीर को स्थायी बनाने की आकांक्षा भी नहीं थी। राष्ट्र भारती की उन्होंने हर प्रकार की ठोस सेवा की और इस छोटे समय में साहित्य को इतना दिया कि उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी भाषा एकाएक ठोस आधार पर प्रतिष्ठित हो गयी। उनकी सबसे बड़ी सेवा तो यह है कि उन्होंने हिन्दी को वह नेतृत्व दिया, ऐसे समर्थवान लेखकों की टोली दी कि जो हिन्दी के यशःशरीर को भारतेन्दु के बाद भी पल्लवित करते रहे।

भारतेन्दु ने यह सारा कार्य हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से किया। वह इतने बड़े लेखक, कवि, आलोचक, नाटककार तथा साहित्य संरक्षक थे कि पत्रकार भारतेन्दु को याद तक नहीं किया जाता। परन्तु उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता की ऐसी मर्यादा स्थापित की, ऐसे ऊँचे कीर्तिमान प्रतिष्ठित किये, पत्रकारिता को देश-सेवा, साहित्य-सेवा तथा लोकरंजन का ऐसा प्रबल और मौलिक अस्त्र बनाया कि हिन्दी पत्रकारिता पर उनका जादू उनके मृत्यु के बाद तक चलता रहा।

हिन्दी पत्रकारिता का भारतेन्दु युग साधारणतः सन् १९०३ तक माना जाता है जब कि श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक हुए। परन्तु हम भारतेन्दु युग को १९०७ तक मानते हैं क्योंकि सन् १९०७ हिन्दी पत्रकारिता में एक नये मोड़ का समय है। इस समय भारतेन्दु युग के सबसे तेजस्वी पत्रकार श्री बालमुकुन्द गुप्त का देहावसान हुआ, प्रयाग में मालवीयजी ने 'अभ्युदय' पत्र की स्थापना की और सरस्वती-संपादक श्री द्विवेदीजी का भी हिन्दी-पत्र-जगत् में अखण्ड प्रभुत्व स्थापित हुआ।

सन् १८६८ में ही भारतेन्दुजी ने काशी से 'कवि-वचन-सुधा' नाम से एक मासिक पत्रिका निकाली जो शीघ्र ही पाक्षिक हो गयी। सात साल में यह साप्ताहिक भी हो गयी। कहने को यह कविता की पत्रिका थी परन्तु इसमें गद्य-पद्य सब कुछ छपता था। उस समय जबकि हिन्दी-जगत् में पुस्तक प्रकाशकों का जन्म भी नहीं हुआ था, "कवि-वचन-सुधा" में चन्द, जायसी, कबीर, गिरधर राय, देव, तथा दीनदयाल गिरि जैसे कवियों की रचनाएँ निकलीं। फारसी कविता संग्रह "गुलिस्ताँ" का भी अनुवाद निकला। "कविवचन-सुधा" ने उस समय भी, जबकि लार्ड लिटन ने समस्त देशी भाषा के पत्रों को भारतीय भाषा पत्र कानून द्वारा अपने शिकंजे में जकड़ लिया था, अपने आदर्श वाक्य के रूप में भारत की स्वाधीनता तथा समस्त नर-नारियों की समानता की माँग की थी। वह आदर्श वाक्य इस प्रकार था—

खल जनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मत रहे।
अपधर्म छूटें, स्वत्व निज भारत गहे, कर दुख बें।
बुध तजहिं मत्सर, नारिनर सम होंहि, जग आमद लहें
तजि ग्राम कविता सुकविजन की अमृतबानी सब कहें।

कविवचन-सुधा ने इस आदर्श वाक्य के लिए ही कार्य किया। इस पत्र में भारत की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक अवनति पर बड़े जोरदार लेख लिखे गये जिसका परिणाम यह हुआ कि लेफ्टिनेंट गवर्नर सर विलियम म्योर ने आदेश दिया कि "कविवचन-सुधा" तथा भारतेन्दु द्वारा स्थापित "हरिश्चन्द्र चंद्रिका" व "बालबोधनी" की जो भी प्रतियाँ सरकार खरीदती थी उनकी खरीद बंद कर दी जाय। स्वाधीनता संग्राम में लगे पत्रों को जो दंड दिये गये उसकी पहली बानगी भारतेन्दुजी को ही दी गयी।

भारतेन्दुजी ने उस समय अपने तीक्ष्ण विरोध को प्रकट करने के लिए कविता व व्यंग्य का सहारा लिया। भारतेन्दुजी की यह परिपाटी उन तक ही सीमित नहीं रही बल्कि उनके युग में खूब चली। श्री प्रतापनारायण मिश्र, श्री बालमुकुन्द गुप्त तथा श्री माधवप्रसाद मिश्र ने भी कविता को ज्वलंत पत्रकारिता का एक बड़ा प्रभावशाली माध्यम बनाया।

उस समय कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था, देश के

नामधारी नेता या बड़े-बड़े पत्रों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था और भारतेन्दुजी बड़े रईस थे जो दिल्ली-दरबार में बुलाये गये थे। वह आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे जो उस समय किसी भारतीय नागरिक को दिया जानेवाला सबसे बड़ा पद था, लेकिन बिना असहयोग आंदोलन की प्रतीक्षा किये उन्होंने वह पद छोड़ दिया ताकि वह अँगरेजों की आलोचना कर सकें। उन्होंने एक अँगरेज स्तोत्र लिखा, जो उस समय अत्यन्त साहस का काम था। उस स्तोत्र का एक अंग है—

"हे भगवन, हम अकिंचन हैं और तुम्हारे द्वार पर खड़े रहेंगे। तुम हमको अपने चित्त में रक्खो, हम तुमको डाली भेजेंगे। तुम अपने मन में थोड़ा-सा स्थान मेरी ओर से भी दो। हे अँगरेज, हम तुमको कोटि कोटि साष्टांग प्रणाम करते हैं।

तुम देशावतारधारी हो। तुम मत्स्य हो क्योंकि समुद्रचारी हो और पुस्तक छाप-छापकर वेद का उद्धार करते हो, तुम कच्छ हो क्योंकि मदिरा, हलाहल, वारांगना, धन्वन्तरि, लक्ष्मी इत्यादि रत्न तुमने निकाले हैं, परन्तु वहाँ भी विष्णुत्व नहीं त्यागा है, अर्थात् लक्ष्मी उन रत्नों में से तुमने अपना लिया है। तुम श्वेतवाराह हो क्योंकि गौर हो और पृथ्वी के पति हो, अतएव हे अवतारिन! हम तुमको नमस्कार करते हैं।"

अंत में उन्होंने लिखा—

"चुंगी व पुलिस तुम्हारी दोनों भुजाएँ हैं। अमले तुम्हारे नख हैं। अँधेर तुम्हारा पृष्ठ है और आमदनी तुम्हारा हृदय है। अतएव हे अँगरेज! हम तुमको प्रणाम करते हैं। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराट् रूप अँगरेज! हम तुमको प्रणाम करते हैं।"

उस समय भारतेन्दु ने अँगरेजी शासन और अँगरेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण की कितनी कड़ी टीका की इसका सानी नहीं है। भारतेन्दुजी की इस परंपरा के ही दर्शन हमें श्री बालमुकुन्द गुप्त के "शिवशंभु" के चिट्ठे में मिलते हैं जिसने भारतमित्र में प्रकाशित होकर लार्ड कर्जन की सरकार के कान खड़े कर दिये। हो सकता है कि "कविवचन-सुधा" जैसे कलकत्ते से दूर, हिन्दी के एक जिले से प्रकाशित पत्र में लिखे इस स्तोत्र का एकदम बड़ा राजनीतिक प्रभाव न दिखाई दे। लेकिन भारतेन्दु ने एक बड़ी पीढ़ी को दिशा-निर्देश किया जो भाषा तथा भारत की सेवा भारतेन्दु की परंपरा में करते रहे। श्री प्रतापनारायण मिश्र, श्री बालकृष्ण भट्ट, श्री आचार्य बदरीनारायण प्रेमघन, श्री राधाचरण गोस्वामी तथा उनके अनेक शिष्य इसी परंपरा में थे।

हिंदी पत्रकारिता की सामग्री पक्ष में—छपाई की मैं बात नहीं करता—जो जो विशेषताएं आईं प्रायः सभी का उदय भारतेन्दु की कलम से हो गया। उन्होंने कविवचन-सुधा के अतिरिक्त हरिश्चन्द्र चन्द्रिका व बालाबोधनी का भी प्रकाशन किया। चंद्रिका में साहित्यिक, ऐतिहासिक, पुरातत्व संबंधी, राजनीतिक, लेख, व्यंग्य, प्रहसन, नाटक, उपन्यास, कविता, आलोचना सब विषय छपते थे। और आश्चर्य की बात है कि इतने विविध विषयों पर जानकारी देने का सबसे बड़ा दायित्व हरिश्चन्द्रजी पर ही रहता था। वह संस्कृत, बंगला, फ़ारसी व अँगरेजी के विद्वान् थे। खूब घूमे-फिरे थे और अपने उस ज्ञान को उन्होंने हिंदी पाठकों को दिया। उन्होंने दिल्ली-दरबार की जो विस्तृत व सरस रिपोर्ट लिखी उससे पता चलता है कि वह पत्रकार कला के आधुनिक रूप को ही हिंदी में ढालना चाहते थे। उन्होंने आज से बहुत पहले उद्योग की शिक्षा पर बार-बार जोर दिया। सन् १४ के दुर्भिक्ष के अवसर पर उन्होंने लिखा—"जाने को तो यहाँसे तत्व खिंचकर जाता है और आने को शीशा कागज और कलम पिंसल आता है। बड़े-बड़े एम० ए० और बी० ए० अब इस दुर्भिक्ष में किस काम आवेंगे... ये विद्या कुछ काम न आवेगी। यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा नहीं तो अंत में यहाँका सब धन विलायत चला जायगा, तुम मुँह बाये रह जाओगे।"

लेकिन भारतेन्दु का इससे भी बड़ा दान यह है कि उन्होंने देश के कोने-कोने में हिंदी पत्रों के प्रकाशन को प्रोत्साहन व प्रेरणा दी। स्वयं काशी में "काशी पत्रिका" उनकी प्रेरणा से निकली। कश्मीरी पंडित मुकन्दराम ने लाहौर से "मित्र विलास" प्रकाशित किया, वह भारतेन्दुजी की प्रेरणा से। इसी प्रकार लाहौर में एक बंगाली लेखक श्री नवीनचंद्र राय ने भी भारतेन्दुजी के प्रेम के कारण हिंदी में ज्ञान-प्रदायिनी पत्रिका निकाली। उनकी पुत्री ने आसाम से एक हिन्दी पत्रिका निकाली।

भारतेन्दु युग के हिन्दी पत्रों की एक और भी बड़ी उदार परंपरा रही है। हिंदी के उस समय के अनेक बड़े पत्रों के प्रकाशक व संपादक अहिंदी-भाषी लोग थे। सन् १८७६ में कलकत्ते से "भारतमित्र" पत्र निकला जिसने ५७ वर्ष तक हिंदी की सेवा की। इसके प्रकाशक श्री दुर्गाप्रसाद मिश्र व संपादक श्री छोटूलाल मिश्र जम्मू के डोगरे सारस्वत थे। श्री दुर्गाप्रसाद ने "भारतमित्र" ही नहीं, दो अन्य बड़े पत्र "उचित वक्ता" तथा "सार सुधानिधि" निकाले। "सार सुधानिधि" में उनके तीन अन्य सहयोगी श्री सदानन्द, श्री शंभुनाथ व श्री गोविंद नारायण पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण थे। कलकत्ते से हिंदी का एक तीसरा पत्र निकला जिसका प्रचार उस समय तक के हिंदी पत्रों में सबसे अधिक यानी दो हजार प्रतियाँ तक हो गया था। वह था हिंदी बङ्गवासी। इसके प्रकाशक श्री योगेन्द्रचन्द्र वसु तथा संपादक श्री अमृतलाल चक्रवर्ती, दोनों, बंगाली थे। बंगला "हितवादी" के प्रकाशक बाबू कालीप्रसन्न ने हितवार्ता नाम से हिंदी पत्रिका निकाली जिसके संपादक श्री रुद्रदत्त संपादकाचार्य, श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी व श्री बाबूरावविष्णु पराड़कर हुए। ईसाई धर्म, थियोसफी, वैद्यक, संगीत आदि विविध विषयों पर हिंदी में पत्र निकले।

श्री विष्णु दिगम्बर पुलस्कर ने लाहौर से संगीत का हिंदी पत्र निकाला और नागपुर से गोरक्षा का पत्र निकला। कलकत्ते में हिंदी के पत्र निकल ही चुके थे, बंबई में भी राजस्थानी व्यापारी श्री खेमराज श्रीकृष्ण ने वेंकटेश्वर समाचार निकाला जो अभी तक निकल रहा है। श्री अमृतलाल चक्रवर्ती ने इसका भी संपादन किया।

इस युग में एक हिंदी का प्रसिद्ध दैनिक "हिन्दुस्थान" भी निकला जिसकी कई विशेषताएँ थीं। यह पत्र लंदन से प्रारंभ हुआ और भारत में आकर कालाकाँकर के देहात से उसका प्रकाशन-संपादन प्रारंभ हुआ। कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह ने इसका प्रकाशन किया था। उन्होंने इस पत्र के संपादन के लिए महामना मालवीयजी को चुना और उन्हें साठ रुपये की मास्टरी छुड़ाकर दो सौ रुपया वेतन तथा कानून पढ़ने की सुविधा दी। श्री प्रतापनारायण मिश्र व श्री बालमुकुन्द गुप्त जैसे पत्रकारों ने "हिन्दुस्थान" में काम किया। इस पत्र में भी हिन्दी के चोटी के लेखकों की रचनाएँ छपीं।

भारतेन्दु युग की पत्रकारिता की आज से हम तुलना करें तो पता लगेगा कि हम न जाने किस युग में गिर पड़े हैं। जब राजा रामपाल सिंह ने मालवीयजी से हिन्दुस्थान का संपादक होने का अनुरोध किया तो मालवीयजी ने एक शर्त रखखी। वह यह थी कि जब आप शराब पिये हों तो मुझे न बुलावें। राजा साहब विलायत से अँगरेज महिला से विवाह कर आये थे। उन्होंने यह शर्त मान ली और चली भी। एक दिन राजा साहब ने एक जरूरी बातचीत के लिए मालवीयजी को बुला भेजा यद्यपि वह नशा किये थे। मालवीयजी गये, बात की और फिर नौकरी छोड़ दी क्योंकि शर्त भंग हो गयी। राजा साहब पछताते रह गये।

पर यह बात, यह तेजस्विता और त्याग उस समय के प्रमुख हिंदी पत्रकारों का स्वभाव हो गया था। श्री अमृत लाल चक्रवर्ती बेकार हो गये थे और ऋण में उन्हें क़ैद भी हो गयी थी। वह वेंकटेश्वर समाचार में संपादक होकर गये थे। एक दिन सेठजी के प्राइवेट सेक्रेटरी ने एक पत्र लिख दिया "आज्ञा श्रीमान् छापो।" इस पर श्री चक्रवर्ती ने लिख दिया—"आज्ञा होने के कारण संपादकीय स्वातंत्र्य पर आघात होता है, अतएव यह नहीं छापा जायगा।" जब यह मामला बढ़ा तो एक और नोट गया "जब तक भविष्य में आज्ञा न देने का वचन नहीं दिया जायगा तब तक हम लोग काम न करेंगे।" और अंत में चक्रवर्तीजी चले ही गये। आदेश वापस लिया गया व आश्वासन दिया गया। फिर भी उस समय पत्रकार बंधु भी बेजोड़ होते थे। सेठ जी ने श्री बालमुकुन्द गुप्त को संपादक बनने के लिए बुलाया परन्तु स्थिति जानकर गुप्तजी ने आने से इन्कार कर दिया।

स्वयं बालमुकुन्दजी का जीवन ऐसी कई घटनाओं से भरा था। जब वह हिन्दुस्थान में थे तो उनको काम से इसलिए अलग कर दिया गया कि वह अँगरेजों के विरुद्ध जरा कड़ा लिखते थे। जब वह बङ्गवासी में थे तो उनसे कहा गया कि वह श्री दीनदयाल शर्मा के विरुद्ध लेख लिखें क्योंकि शर्माजी बङ्गवासी संचालकों द्वारा धर्म भवन के नाम पर बङ्गवासी भवन बनवाने की योजना में रोड़ा डाल रहे थे। गुप्ताजी ने यह अनुचित समझा और बङ्गवासी की नौकरी छोड़ दी। और यह उन्होंने तब किया जब हिन्दुस्थान से पृथक् होने पर उन्हें दस रुपया माहवार की भी नौकरी नहीं मिल सकी थी।

उस समय हिन्दी पत्रकारों की हालत कितनी फ़ाकेमस्त थी इसका पता इस बात से चलेगा कि श्री रुद्रदत्त संपादकाचार्य पचास वर्ष की पत्रकारिता तथा हिन्दी लेखन के बाद भी अक्षरशः भूखों मर गये और हिंदी प्रदीप जैसे यशस्वी पत्र के सम्पादक श्री बालकृष्ण भट्ट का हाल यह था कि जब उनके यहाँ "प्रदीप" का कहीं से चन्दा आता था तो घर में घी आता था। फिर भी श्री माधवप्रसादजी मिश्र की एक कविता "जरा सोचो तो यारो, यह बम क्या है" प्रकाशित करने पर युक्त प्रांत की सरकार ने पत्र बंद करा दिया।

उस समय हिंदी के सैकड़ों पत्र निकले परन्तु अधिकांश ग्राहकों द्वारा चन्दा न देने के कारण बंद हो गये। "हिंदी हिन्दू हिन्दुस्तान" मंत्रदाता ब्राह्मण पत्र को संपादक श्री प्रतापनारायण मिश्र को, जो बड़े निर्भीक व सशक्त पत्रकार थे यही शिकायत अंत तक रही। पत्र का नाम ब्राह्मण था इसलिए उन्होंने माँगने के तमाम उपक्रम किये। पहले दक्षिणा माँगी। लिखा "बहुत दिना बीते जिजमान अब कुछ करौ दच्छिना दान" फिर लिखा—"सबकी देख ली।" यह धमकी भी दी कि 'ब्रह्मघातियों' का, यानी जिन्होंने ब्राह्मण का चंदा नहीं दिया है उनका, नाम छाप देंगे पर कुछ असर नहीं हुआ। अकेले "उचित वक्ता" के डेढ़ हजार व बङ्गवासी के दो हजार ग्राहक हुए, वरना डेढ़-दो सौ ग्राहक भी मुश्किल से हो पाते थे। लेकिन फिर भी उस काल में जातीय, जनपदीय, धार्मिक, कला-कौशल यहाँ तक कि नृत्य पर भी पत्र निकले। आज उन्हीं पराक्रमी पत्रकारों का यह पुण्य प्रसाद है कि हिंदी पत्रों-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या लाख-पचहत्तर हजार होने लगी है यद्यपि तेजस्विता, निर्भीकता, भाषा की मौलिकता, आत्माभिमान तथा मर्यादा-पालन में हमें अपने भारतेन्दु युग के मार्ग-प्रदर्शकों से अब भी बहुत कुछ सीखना है। भारतेन्दु ने यद्यपि १८८५ में अपना शरीर छोड़ा तथापि हिंदी पत्रकारिता को जो ठोस आधारशिला दी उसपर ही हिंदी पत्रकारिता अपने गौरव को प्राप्त हुई है।

———

चन्द्रलोक की यात्रा की वास्तविकता

डॉ० अरविंद मोहन

अब मानव की अंतरिक्ष यात्रा स्वप्न न रहकर सत्य में परिणित हो चुकी है। गैगारिन, शैफर्ड, ग्रिसम तथा टूटोव इस पृथ्वी को छोड़कर आकाश में बहुत दूर तक गये तथा जीवित वापस लौट आये हैं। इनमें से अंतिम यात्री ने तो पृथ्वी की १७ परिक्रमायें भी कीं, और अपनी ५ मील प्रति सैकंड की गति को धीमा करके पृथ्वी पर पैराशूट के सहारे सफलतापूर्वक उतर आया।

इन यात्राओं का प्रारम्भ ४ अक्तुबर १९५७ को स्पुतनिक नामक सवा मन का कृत्रिम उपग्रह छोड़कर रूस ने किया था, और वहीं से गत वर्ष (१९६०) के २० अगस्त को सवा सौ मन का उपग्रह छोड़ा गया था। इस प्रगति की पर्याप्त सराहना करना संभव नहीं है। आज उपग्रहों की आकाश में इतनी भरमार है कि उनके द्वारा प्राप्त सूचनाओं को भलीभाँति अध्ययन करने का कार्य पिछड़ता जा रहा है।

यंत्रों से सुसज्जित उपग्रहों को भेजना सरल है क्योंकि उनकी सफल वापसी का प्रश्न नहीं उठता। मनुष्य यात्री को जीवित लौटाने की समस्या इतनी सरल नहीं है। अतः मानव यात्री को अंतरिक्ष में भेजना तभी संभव होता है जब कि उनके लौट आने की व्यवस्थाओं की पूरी-पूरी पड़ताल तथा जाँच की जा चुकी हो। फिर यात्री के जीवन के लिए अनिवार्य पदार्थों को उपलब्ध करना इसलिए भी कठिन पाया गया है कि उनको रखने के लिए अधिक स्थान चाहिए। और, यात्रा के आरम्भ में, तथा उतरते या यान को रोकते समय धक्का लगने पर शरीर के ऊपर काफी ताकत या जोर का पड़ना भी एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न करता है। किन्तु इन समस्याओं का हल अब ढूँढ़ा जा चुका है।

कठिनाइयाँ और व्यय

लम्बी अंतरिक्ष यात्राओं के लिए प्रति यात्री के पीछे आधा मन भोजन सामग्री तथा चौथाई मन तक आक्सीजन एक सप्ताह के लिए आवश्यक होती है। इस समय अंतरिक्ष यात्रा के लिए जो यान बनाये गये हैं उनका आकार उस बोझ के अनुपात में होता है जो उसे ले जाना होता है। प्रत्येक एक सेर सामग्री ले जाने के लिए यान का वजन (स्थान ईंधन मिलाकर) तीन मन बढ़ जाता है। अतः अंतरिक्ष यात्रियों के लिए बनाये जानेवाले राकेट इंजिनों का व्यय तथा आकार दोनों ही बहुत बढ़ जाते हैं।

आज तक अमरीका ने लगभग (सब मिलाकर) साठ मन वजन के अंतरिक्ष यान छोड़े हैं जिनमें विशुद्ध राकेट आदि सम्मिलित नहीं हैं, केवल अंतरिक्ष में यंत्रों के साथ यात्रा करनेवाले उपग्रह आदि ही सम्मिलित हैं। आँकड़ों से विदित होता है कि इन अंतरिक्ष यंत्रों में प्रति सेर के पीछे ढाई लाख रुपयों का व्यय बैठा है। और यह तो तब है जब कि अधिकांश यान पृथ्वी के अपेक्षाकृत निकट ही चक्कर लगाते हैं। सुदूर अंतरिक्ष की यात्राओं का व्यय और अधिक बैठेगा।

इस समस्या को हल करने के हेतु यंत्रों को सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बनाया गया—ट्रांसिस्टरों तथा अनेक नवीन युक्तियों द्वारा, सूर्य की गरमी से विद्युत् पैदा करनेवाली बैटरियाँ आविष्कृत हुईं ताकि बड़ी भारी बैटरियों को ऊपर भेजना न पड़े, सेर भर का टेलीविजन यंत्र बनाया गया और रेडियो द्वारा संदेश भेजनेवाले ट्रांसमिटर बने जिनका वजन केवल एक छटाँक (माफ कीजिए ५६ ग्राम) है, इत्यादि।

फिर भी चन्द्रमा पर मानव यात्री को उतारना अभी कुछ वर्षों तक संभव न हो सकेगा। पहिले पहल तो चन्द्रमा का चक्कर लगानेवाले यात्री रूस द्वारा भेजे जावेंगे। अमरीका इस दौड़ में पीछे है। अगले ५ वर्षों के बाद ही वह ऐसी यात्रा करने की आशा कर सकता है। रूसी कदाचित् १९६३ में चन्द्रमा पर उपनिवेश बना सकेंगे, ऐसी मेरी धारणा है।

मानव की चन्द्रयात्रा के पूर्व अनेक यांत्रिक विधियों द्वारा चंद्रमा की जानकारी पाने का कार्य किया जावेगा। यंत्रों द्वारा चंद्रमा का जलवायु, वातावरण, भूमि के भीतर का हाल तथा मार्ग की जानकारी प्राप्त की जावेगी। बहुत जानकारी पाकर ही यात्रा का स्वप्न साकार हो सकेगा। पृथ्वी से चलकर चन्द्रमा पर सही सलामत उतरना, वहाँ ठहरना, और फिर वापसी यात्रा आरम्भ करना, तथा पृथ्वी पर पहुँचना अत्यन्त जटिल कार्य हैं। पृथ्वी से तो यात्रा का आरम्भ करते समय सैकड़ों वैज्ञानिकों का सहयोग, सूझ-बूझ तथा यांत्रिक सुविधायें प्राप्त रहेंगी। चन्द्रमा से लौटते समय तो यान के यात्री को केवल स्वयं अपनी बुद्धि और सूझ-बूझ पर ही निर्भर रहना पड़ेगा।

यंत्र या मानव ?

चन्द्रमा के संबंध की जानकारी प्राप्त करने में सबसे अधिक कार्य ल्यूनिक तृतीय ने किया। इस उपग्रह ने सर्व-

प्रथम चंद्रमा की पीठ (जिसको हम पृथ्वी पर से कभी नहीं देख पाते हैं) की ओर जाकर अच्छे-अच्छे चित्र खींचे, और पृथ्वी तक उनको यंत्रों द्वारा भेजा। इस कार्य के लिए एक द्विलेंसीय कैमरा ३५ मिलीमीटर की फिल्म या तस्वीर खींचता था जिसको यंत्र ठीक फोटो क्रिया से तैयार करता था। इस फिल्म पर खिंचे चित्रों को टेलीविजन प्रणाली का कैमरा "देख" कर अपने मस्तिष्क में सुरक्षित रखता था। जब ल्यूनिक पृथ्वी से लगभग बारह लाख मील की दूरी पर ही था, तभी ये चित्र पृथ्वी की ओर रेडियो तरंगों द्वारा प्रसारित किये गये तथा इन चित्रों को रूसी वैज्ञानिकों ने प्राप्त कर लिया।

उपग्रहों द्वारा लिये गये चित्रों से भूमि की बनावट की छोटी-छोटी बातों को जाँचना कठिन हो जाता है क्योंकि उपग्रह एक स्थान पर ठहरकर तो फोटो लेते नहीं, और यह भी है कि ये जिस समय किसी वस्तु की फोटो लेते हैं, उस समय उस वस्तु से सैकड़ों मील दूर होते हैं। "सैमोस" नामक उपग्रह पृथ्वी से २०० मील ऊपर रह कर चित्रण करता है, परन्तु टेलीविजन या रेडियो द्वारा भेजे गये चित्रों से अधिक उपयोगी वह चित्र होते हैं जो उपग्रह किसी पेटी में बन्द करके पृथ्वी तक भेजता है।

तनिक सोचें तो पृथ्वी से २०० मील ऊपर तीव्रतर गति (१८,००० मील प्रति घंटे) से उड़ते उपग्रह में बैठा मानव यात्रा का क्या हाल बतला सकेगा? हाँ, वह कैमरे द्वारा कौन फोटो खींचे यह तो निश्चित कर सकेगा, परन्तु स्वयं वह कुछ देखकर बता सके, यह संभव नहीं। ऐसी हालत में मानव का चंन्द्रमा या कहीं की भी यात्रा कर लेना क्यों आवश्यक है जब कि उसके लिए इतनी सावधानी, व्यय तथा आडंबर चाहिए जो कि यंत्रों को नहीं चाहिये? इन अंतरिक्ष-यानों में इतना व्यय होता है कि यदि समृद्ध से समृद्ध देश उन्हें बनावें तो उनके पास देश के दूसरे कामों के लिए बहुत कम धन बच रहेगा, और इससे उसके जीवन-स्तर पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा। तो फिर क्यों चन्द्रमा पर मनुष्य जा रहा है?

क्या मानव-यात्रा बेकार है?

अंतरिक्ष में मानव-यात्रा का वैज्ञानिक दृष्टि से क्या महत्व है, इस पर विशेषज्ञों की अलग-अलग धारणाए हैं। कुछ लोगों का मत है कि अंतरिक्ष यात्राओं में मनुष्य का स्थान होना अनिवार्य है। वे कहते हैं कि मनुष्य का स्थान ले सकने की सामर्थ्य यंत्रों में कहाँ हो सकेगी? कुशल यात्री, खगोल शास्त्री, भूगर्भवेत्ता, रसायन शास्त्री, जीव शास्त्र विशेषज्ञ, फोटोग्राफर तथा अनेक अन्य बातों का विशेषज्ञ मनुष्य ही हो सकता है, मशीनें नहीं। मनुष्य की बुद्धि, जानकारी, सूझ-बूझ तत्कालीन परिस्थिति समझकर कार्य करने की क्षमता इत्यादि गुणों की सूची उसको यंत्रों से कहीं बढ़-चढ़कर यात्रा के लिए उपयुक्त बनाती है। अप्रत्याशित, अनजान तथा विचित्र परिस्थितियों में मानव ही ठीक उपाय सोच सकता है।

यह सच है कि मानव मस्तिष्क की क्रिया को ठीक-ठीक करनेवाला विद्वन्मय यंत्र अभी बना नहीं है। पर, फिर भी अनेक क्रियाओं में यंत्र हमारे मस्तिष्क को मात देते जा रहे हैं। और संभवतः एक से अधिक यंत्र मिलकर जो यंत्र समुच्चय बनाया जाय वह मस्तिष्क के प्रायः प्रत्येक कार्य को अधिक कुशलता से कर सकेगा। जब पृथ्वी पर ही हम जानकारी के लिए यंत्रों पर निर्भर हैं तो अंतरिक्ष में ही क्यों यंत्र पर्याप्त न हो सकेंगे?

चंद्रमा तक जाकर वापस लौटने में कम से कम सात दिन का समय लगेगा। अमरीका १९७० तक, तथा रूस उसके पूर्व ही यह करके रहेंगे। परन्तु मनुष्य, कुत्ता, या बिल्ली तो है नहीं। माना कि उसके मस्तिष्क को विधाता ने ऐसी देन दी जैसी किसी और को नहीं, फिर भी आज के विज्ञान को देखकर मानव की चन्द्र-यात्रा तब तक कठिन है जब तक कि राकेट यानों के ईंधन में कोई पूर्णतः नवीन खोज न हो सके। आनेवाले कई वर्षों तक मानव की अपेक्षा यंत्रों से सुसज्जित राकेट यानों को ही यात्रा पर भेजना युक्तिसंगत होगा।

विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य की चंद्रलोक की यात्रा बेकार ही है। उसका खाना, वायु, रहन-सहन सभी इस कार्य के लिए प्रतिकूल हैं। ऐसी मशीनें बनती जा रही हैं जो सोचने विचारने की शक्ति रखती हों। पर मानव की साहसिक तथा नवीन कार्य करने की दुर्दमनीय और प्रबल इच्छा, चन्द्रमा का आकर्षण और मानव की न मिट सकनेवाली जिज्ञासा उसको इन कठिनाइयों के बावजूद भी यह यात्रा करने में सफल बना दें तो क्या आश्चर्य?

अंगारों के बीच —

घर-गृहस्थी

माँ की डायरी के पन्ने (१)

मेरी माँ जब अपने शैशव काल ही में थीं उस समय स्त्रियों में पहली जाग्रति की लहर फैली थी। मुझे सम्वत् और सन् का तो ज्ञान नहीं—मेरा तात्पर्य यह है, कि उस समय जाग्रति की यह लहर मेरे ननसाल के कहीं आस-पास तक आ पहुँची थीं। उससे प्रभावित होकर मेरी नानी ने यह निश्चित किया था कि वे अपनी 'रज्जन' को दुनिया में किसीसे पीछे नहीं रखेंगीं। अतः घर में वे काम भी होने लगे जो अभी तक नहीं होते थे। उस समय जितना ही अधिक सम्पन्न घर होता था उतने ही अधिक प्रतिबंध उस घर की लड़कियों पर लगते थे—इस कारण मेरी माँ को प्रतिबंधों की कितनी लम्बी सूची निभानी पड़ती थी इसका मैं अनुमान ही नहीं कर सकती हूँ, क्योंकि उस घर की सम्पन्नता आज भी उस ओर अद्वितीय ही मानी जाती है। और प्रतिबंध तो अलग रहे, वस्त्रों पर भी प्रतिबंध था। चाहे जो भी पहनने को मन चाहे पर माँ को पहनना मखमल ही पड़ती थी जिस पर चार इंच का मोटा तार-चोभी का काम हो।

उस समय यह विश्वास चला आता था कि, जिसने कन्यादान नहीं दिया उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा। अन्य सब दान दे लेने के पश्चात् जब नानी को यह ध्यान आया कि स्वर्ग के रास्ते की चाभी तब तक पूरी नहीं घूमेगी जब तक यह विघ्न भी दूर न हो जाय। इस कारण वह गंगा जी के पास गयीं और वहाँ एक कन्या की मनौती मान आयीं कि 'गंगा मैया अगर मैं कन्यादान दूँगी तो तुम्हें चुनरी चढ़ाऊँगी।' अभी तक उनके चार पुत्र ही थे।

माँ अगर गंगा मइया से माँगी पुत्री न होती तो सम्भव है कि इतने प्रतिबंध उनके लिए न टूटते—पर लाड़ों ने प्रतिबंध पर विजय पायी और जैसा मैं कह रही थी वह काम भी होने लगे जो अभी तक नहीं होते थे। जिनकी छाया से भी दूर भागा जाता था वह अब घर में ही आने

गयी। जैसे कढ़ाई और बिनाई में चतुराई सिखाने के लिए एक इसाई महिला आने लगी, अँगरेजी पढ़ाने के लिए एक अँगरेज मेम, और हिंदी पढ़ाने के लिए एक शास्त्री पंडित। लड़कियाँ स्कूल जायें, ऐसी बात उस समय सोची भी नहीं जाती थी। इन शास्त्री पंडित से ही माँ बहुत घबड़ाती थीं, क्योंकि वे ही पहाड़े भी रटाते थे। उनके इस पहाड़े रटने के साथ एक इतनी मनोरंजक घटना घटी थी कि मुझे उसकी मनोरंजकता ही वह घटना लिखने पर विवश कर रही है। वरना यहाँ उसका विशेष अभिप्राय नहीं था।

उन शास्त्रीजी को देखते ही माँ के पेट में दर्द हो जाता था, क्योंकि वे पहाड़ों में गलती होने पर वे घूरते बहुत जोर से थे। शास्त्रीजी के ठीक आने के समय माँ के पेट में दर्द होने लगा इस पेट के दर्द ने कुछ स्वामिभक्त नौकरों और नानीजी के सम्मुख एक अजीब समस्या पैदा कर दी। समस्या यह थी, कि यह दर्द दिन में एक ही समय क्यों होता है——भूख ठीक लगती है पर दर्द की तीव्रता शास्त्रीजी को देखते ही इतनी अधिक क्यों बढ़ जाती है कि माँ छटपटाने लग जाती हैं। एक आध बार तो छुट्टी से काम बन गया और शास्त्रीजी जैसे आये थे वैसे ही बैरंग लौट गये। पर बाद में शास्त्रीजी को दो भयों ने सताया, एक तो यह कि अगर रोज छुट्टी हुई तो पहाड़े जो कुछ भी थोड़े बहुत जीभ पर चढ़े हैं सफाचट हो जायेंगे और दूसरे शायद अपनी रोजी का डर——की उन्होंने तेजी पकड़ी और इस पर आग्रह करने लगे कि पेट में दर्द है तो क्या 'लल्ली' को तो मैं पढ़ाऊँगा ही। समस्या का यह बेढब तूल देखते हुए एक स्वामिभक्त नौकर ने यह सुझाव पेश किया कि आजकल एक आधा मील दूर बरगद तले एक ओझा बाबा आये हुए हैं। मंगल-शनीचर उन पर संझा समय भवानी उतरती है, बड़ी भीड़ रहती है लल्ली कूं मैं काल मंगलवार है 'वहीं ले जाऊंगो' शास्त्रीजी विदा हो गये। और माँ मंगलवार की शाम को नानाजी की आँखें बचाकर चुपके से घर के बाहर भेज दी गयीं। वहाँ जाकर माँ ने देखा कि ओझा बाबा के सिर पर सच में भवानी आयी हुई है। पहले वे दो-चार मिनट शान्त बैठे रहते——(हो सकता है नगाड़े वाले भवानी को साँस लेने के लिए कुछ मिनटों की छूट देते हों) फिर एक साथ नगाड़े बजने लगते, और नगाड़ा बजते ही थोड़ी देर तो ओझा बाबा इधर-उधर झूमते, सिर हिलाते और फिर जैसे जैसे नगाड़ा तेजी पकड़ता वो भी अपने झूमने में तेजी पकड़ते जाते, और जब नगाड़ेवाले अपना बदन दुहरा कर कर के नगाड़ा पीटते, उस समय ओझा बाबा भाँति-भाँति की कलाबाजियाँ दिखाने लगते। कभी उछलकर एक हाथ पर खड़े हो जाते, तो कभी ऐसी छलांग लगाते कि शंका होती कि कहीं किसी बरगद की डाली से ही न अटक जायँ। उनकी छलाँगों का और नगाड़ों की आवाजों का इकट्ठे हुए लोगों पर अजीब आतंक छाया हुआ था। धीरे-धीरे नगाड़े धीमे पड़ने लगते और ओझा बाबा भी शान्त पड़ने लगते और वो फिर लाल-लाल आँखें करके धीरे-धीरे झूमने लगते। उस समय लोग अपना चढ़ावा ओझा बाबा के सामने रखकर विनम्रता से हाथ जोड़कर फरियाद करते और ओझा बाबा एक साथ कभी गर्जकर, और कभी मानों नशे में से चौंककर भर्रायी आवाज में कहते ——'हाँ! जानता हूँ! एक बकरा चढ़ाओ या किसी बीमार का कोई हल्का सा नुस्खा बताते जैसे 'मिट्टी में लोटो।' जब माँ को लेकर 'धनिया' आगे बढ़ा तो उस समय ओझा बाबा झूमते-झूमते थक गये थे, और केवल अपनी गर्दन झटके से कभी इधर, और कभी उधर हिला रहे थे, फलस्वरूप उनके बालों के लम्बे-लम्बे गप्फे, कभी इधर झूम जाते थे और कभी उधर, और बीच से लाल-लाल आँखें चमक उठती थीं। यह सब देखकर माँ काफी सहम गयी थीं और बुरी तरह से 'धनिया' को भींचे थीं। मौका पाते ही 'धनिया' ने फौरन् उनके आगे वो रेशमी चादर फैला दी जो नानी ने दी थी और माँ को आगे करके कहा कि 'बाबा' ना जाने काहे लल्ली के पेट माँ....' ओझा बाबा इतनी जोर से कड़के की माँ आँखों में हाथ करके रो पड़ीं। "हाँ! जानता हूँ! जाओ गोमूत्र पिलाओ।' धनिया ने झुक-झुककर कई बार प्रणाम किया और घर की राह ली। सब को वापिस देख नानी ने चैन की साँस ली।

रात में ही माँ ने निश्चय कर लिया था कि अब उनके पेट में दर्द न होगा। अब प्रातः और संध्या एक बड़े ग्लास में घर की सबसे अच्छी गाय के गोरस के स्थान पर जब गोमूत्र उनके सम्मुख आने लगा और तीनों नानी, धनिया और सुमारी उनको घेरकर यह गो अमृत पिलाने लगे तब तो यदि शास्त्रीजी को पाँच बजे आना होता तो माँ चार

ही बजे से उनके आने की तैयारी करती दिखाई पड़तीं। दर्द के इस प्रकार एक ही दिन में गायब हो जाने से ओझा बाबा की आस्था घर पर बहुत बढ़ गयी थी। माँ कहती है, इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मुझे कभी जीवन भर किसी पीर और ओझे पर विश्वास नहीं हुआ।

माँ का शैशव काल बहुत जल्दी बीत गया——लड़कियों का शैशव काल वैसे ही बहुत जल्दी बीता करता है और फिर उस समय की लड़कियों का तो शैशव काल और भी जल्दी बीता करता था। अभी वो पूर्णतः संधि-काल में भी न आई थीं कि उन्हें पता चला कि गृहस्थ आश्रम का बोझा उनपर पड़ने ही वाला है। स्त्रियाँ कहतीं, 'यह कढ़ाई पढ़ाई से कैसे काम चलेगा, कुछ घर का काम भी तो सिखाओ' और नानी कहती हैं, 'मेरी रज्जन को घर का कौन-सा काम करना होगा? क्या मैं नौकर चाकर न दूंगी?' पर माँ पर जीवन की वास्तविकता प्रगट होने लगी थी। वो इधर से उधर से, किसी स्त्री के मुँह से कंठस्थ, किसी पुरानी विशालाक्षरी पुस्तक (जैसे पहले हुआ करती थीं) में लिखे, कभी नानी, मामी के मुँह से झड़े गृहस्थी के दोहे और चुटकुले नोट करने लग गयी थीं। एक दिन देखा कि माँ उस कापी को खोज रही है। सब ने उसे खोजने में मदद की पर वह कापी न मिली। अब वर्षों बाद एक दिन एक बक्स के नीचे बिछे पुराने कागज निकाल कर नौकर को दिये तो वह यह कहता हुआ उसको ले आया कि 'बहूजी का इहौ कागद फेंक देई?' देखा तो पीली, मुर्झाई रोशनाई में माँ की यह वही पुरानी कापी थी।

ये सभी दोहे बड़े ही सरस हैं। सरस ही नहीं मनोरंजक भी हैं। उनको वैसे का वैसा ही लिख रही हूँ, कुछ की औषधि भी अपना चुकी हूँ पर सब की नहीं। अब ध्यान आता है कि जब स्त्रियों में अविद्या और अशिक्षिता फैली हुई थी जब वे घोर पर्दे में रहती थीं और डाक्टरों का मुँह भी नहीं देख सकती थीं उस समय उनको इन दोहों का कितना सहारा होगा। अब चाहे हम उन पर हँस ही लें।

पेट चलना——

नाभी में बट दूध धरि, जड़ सरफों की खाइ।
ये दोनों औषधि करे, चलत पेट रुकि जाय॥

दाद——

इमली छाल जराय के, अरसी तेल मिलाय।
दाद होय तहँ लेपिये, रोग पुरानो जाय।

लेप——

पान संभाल काटि के, कीजै भुंजिया तात,
कुन कुन गिल्टी बाँधिये, लोप होय सो जात।

दाद की दूसरी दवा——

आफू बीज पंवार के, नौसादर अरु खैर,
नीबू के रस सानि के, करो दाद सो बैर।

चीटियों को दूर करना——

चींटी काहू चीज में लिपटि बहुत ही जायँ,
भुरकत पिसे कपूर के, तुरत भागि सब जायँ।

स्वास्थ्य को——

दूध बियारी जो करै, नित उठि हर्रे खाय,
मोटी दातुन जो करे, ता घर वैद्य न जाय।

स्वास्थ्य को——

हर्र बहेरा आंवला, चौथी डाल गिलोय,
पंचम जीरा डाल के, निर्मल काया होय।

स्वास्थ्य को——

दोनों बेर जो चल फिरे, तीन काल जो खाय,
सदा स्वस्थ सुन्दर रहे, जो प्रातहि उठि न्हाय।

स्वास्थ्य को निषेध——

सावन साग, न भादों दही,
क्वार करेला न कातिक मही।
क्वार करेला चैत्र गुड़, भादों मूली खाय,
पैसा जावे गाँठ का, रोग गले पड़ जाय।

स्वास्थ्य को——

आँखिन त्रिफला दांतन नौन, पेट के भरिये तीनिय कौन।
शीत बचाय सदा जो सोवे, ताके वैद्य पिछारी रोवे।

स्वांस रोग——

अदरक रस गोली करै, भस्मी सीप मिलाय,
चना बराबर खाय नित, स्वांस रोग दबि जाय।

द्वितीय——

जड़ करील की बारि कै, इक माशा नित खाय,
कछुक दिनन सेवन करै, स्वांस रोग दबि जाय।

आँख दुखने पर——

बन तुलसी की लाय जड़, पानी में घिसि लेय,
तनिक लगावे आँख में, लाली सब हर लेय।

का बहना या घाव——

मोटी सीपहिं पीस के, करुए तेल मिलाय,
तेल छानि कै डारिये, व्रण कान को जाय।

पर——

मिट्टी पीस के भुरकिये, सूखे पात कनेर,
पीव परे हूँ घाव को, सूखत लगे न बेर॥

दाग——

स्वेत गोंगची पीस जल, लेप करें जो कोय।
स्वेत दाग तिनके मिटैं, निर्मल काया होय।

बाल——

पात भांगरे लाय के, कारे तिल सों खाय।
कच कारे ह्वै जात हैं, पकित रोग मिटि जाय।

होने को——

भस्मी हाथी दाँत की, मलिये काहू ठौर,
केश तहाँ उपजत अहैं, औषधि नाहिंन और।

दूर करना——

शंख भस्म हरताल अरु, मनसिल जल सों पीस,
लेप कचनि पर कीजिये, उखरैं बिस्वे तीस।

अधिक करने के लिये——

फूल तिली के लाय के, घी अरु शहद मिलाय,
केशन सों मर्दन करे, केश पुँज अधिकाय।

ठ रोग——

कड़ू तेल अरु मोम गुड़, लीजै गरम मिलाय।
वा मरहम को लेपिए, ओंठ रोग मिटि जाय।

क बन्द होने को——

छींक बन्द नहिं होय जो, सैंधव जल धुर बाय।
नास लेव जल तासु को, छींक बन्द ह्वै जाय।

के बैठ जाने पर——

मुख में पुष्करमूल कों, धरि चूसै जो कोय।
शब्द उच्च निकरन लगै, गर बैठो जो होय।

रुचि होने पर——

अदरक रस सँग शहत को, चाटत है जो कोय।
अरुचि नष्ट ह्वै जात है, भोजन बर रुचि होय।

हासों पर——

पीरी सरसों लोध को, महीं लेय पिसवाय।
जल सों मुँह पै लेपिये, रोग मुँहासो जाय।

का पाक दूर करना——

पात चमेली लाय के, थूकै तिन्हे चबाय,
चारि बेर दिन में करै, मुख को पाक नसाय।

खांसी——

[1]अररूसा पंचांग[2] कौ, काढ़ो पीवै जोय।
सात दिना में जात है, खांसी कैसिउ होय।

[1]अररूसा——अदूसा, रूस। [2]पंचांग——पत्ती, फूल, फल, छाल, जड़।

आँख की लाली——

रस सहजन के पात को, तामें शहत मिलाय।
उठी आँख में आंजिये, दुःख ललाई जाय।

कान की टीस——

पीरी कौड़ी बारि कै, निबुआ रस में पीस।
डारै करि के गुनगुनो, जाय कान की टीस।

आँख पर छर और फूली——

सोनामक्खी शहत में, घिस कै आंजै जोय।
या अंजन को आंजि कै, छर और फूली खोय।

ज्वर चिकित्सा १——

काढ़ौ पीवें सोंठ को, जो कोइ शहद मिलाय।
तीन दिना सेवन करै, बातज्वर मिटि जाय।

२——पित्तज्वर की वेदना, तीन दिवस में जाय।
काढ़ो करि पीवै कोऊ, पित्तपापड़ो लाय।

३——औटि बहेड़े लीजिये, ता पानी सो खाइ।
छोटी पिपरि पीस के, ज्वर कफ को मिटि जाय।

४——बड़ी कटेरी गुरिच को, काढ़ो पीवौ जोय।
ज्वर त्रिदोष को जात है, अचरज गनो न कोय।

साँप का भगाना——

यदि सर्प भगाना चाहो, तो 'कारबोलिक' मँगवाओ
यदि घर में रक्खा जाता, तहँ सर्प कभी नहीं आता
यदि सर्प के मुँह में जाता, वह तुरतहिं प्रान गँवाता

चूहों से वस्तु बचाना——

चूहों से वस्तु बचा लो, यदि पिपिरमिन्ट मँगवा लो।

(मुझको उन दोहों के बीच में ये दो खड़ी बोली के दोहे पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ। और उनके बीच ये दोनों ही बड़े रसहीन लगे)

मोटी रस्सी तोड़ने की विधि——

ढिग-ढिग गाँठ लगाय के, पकरि तिन्हें जो लेइ,
बरतहु टूटे सहज में, उलटे मेठा देइ।

चींटियों से रक्षा करने की विधि——

कपड़ा धज्जी बाँधिये, रेंडी तेल भिगोय,
ता ऊपर नहिं चढ़त है, चैंटी कैसेउ होय।

खटमल से त्राण पाने की विधि——

कोइला राखि बिछाइये, बिस्तर के चहुँ ओर,
अति प्रचंड खटमल तऊ, चढ़ै न बाकी कोर।

(परन्तु बिस्तर व सोने वाले का क्या हाल होगा!)

घर से चूहे भगाने की विधि——

मूस पकड़ रंग दीजिये, गाढ़ी नील सु एक,
बाकों घर में छोड़िये, चूहो रहै न एकि।

अच्छे वक्ता होने की विधि——

ब्राम्ही, मुंड़ी, सोंठि, बच, पीपर, शहत, मिलाय,
तोला भर नित खाय जो, वाचस्पति ह्वै जाय।

(आजकल के हिसाब से यही दोहा सबसे अधिक काम का लगता है——स्त्रियाँ भी लगता है भली प्रकार इसका सेवन करती थीं।)

पुराने टुकड़े और नयी फ्रॉकें

इधर उधर के बचे बहुत से छोटे-छोटे टुकड़े इकट्ठे हो गये हैं क्या? ये लीजिए—उनको मिलाकर ये सुन्दर फ़्रॉकें बनाइए। इस फ़्रॉक का ऊपर का भाग सादे कपड़े का है और नीचे का फूलदार—ऊपर का कालर भी इसी फूलदार कपड़े का बना है। ऊपर का भाग बड़े कालर की तरह अलग है और केवल बटन के सहारे 'स्कर्ट' में जोड़ा गया है।
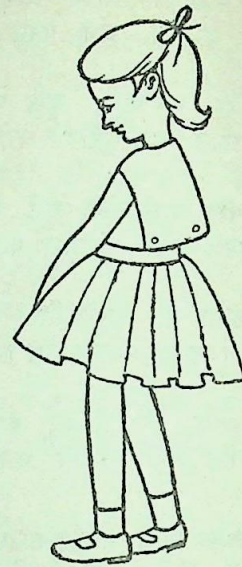
इस फ़्रॉक का स्कर्ट भाग व बड़ा कालर दोनों दो भिन्न-भिन्न रंगों के हैं। कालर बटनों से स्कर्ट में जुड़ जाता है।
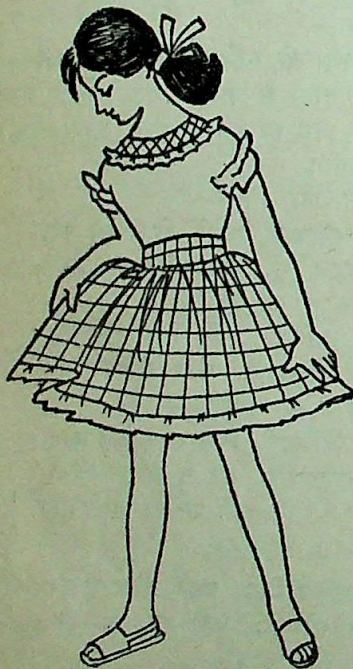
इस फ़्रॉक की शोभा स्कर्ट से मिलती हुई ऊपर गले की चौड़ी पाइपिंग में तथा गले, आस्तीन और नीचे की झालर में है।
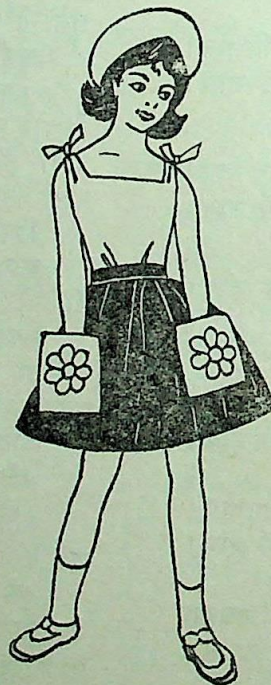
इस फ़्रॉक में ऊपर का भाग, स्कर्ट का भाग तथा जेब का भाग तीनों तीन भिन्न-भिन्न टुकड़ों से बने हैं। फिर भी फ़्रॉक सुन्दर और सुडौल दिखती है।

दो मिलते हुये छापों के टुकड़े और एक सादे टुकड़े को मिलाकर यह फ़्रॉक बनाइए।

शतरंज की गोटी

श्रीमती शीला शर्मा

टेलीफोन की घंटी बजी। अपने लिपिस्टिक से दबे ओंठ रिसीवर के पास ले जाती हुई लता बोली—'हैलो!' उधर से भारी भरकम आवाज से उत्तर आया—'मैं सुधीर बोल रहा हूँ।'

'सुधीर? हैलो! सुधीर! कब आये?' लता के सारे बदन में एक सिहरन-सी दौड़ गयी। सुधीर दूर था पर लता की अभ्यस्त आँखों ने रिसीवर पर ही एक चितवन खींच कर मारी।

सुधीर को आये हफ्ता तो हो ही गया था पर टेलीफोन की आवाज में सच्चाई की खनक के साथ जवाब आया—'कल ही तो आया हूँ। रात की ट्रेन थी, सोचा, अब तो तुम सो ही गयी होगी, और नहीं तो तुम्हें तो पूछने वाले बहुतेरे हैं, किसी के साथ डान्स पर गयी होगी। तभी आज सबेरे फोन किया।'

'कितने दिन हो गए तुमसे मिले?'—एक हल्की-सी आह से लता ने कहा—'तुमने एक चिट्ठी भी न डाली।' वाणी में मिश्री घोलती हुई वह बोली—'मैं कितनी उतावली हो रही हूँ तुमसे मिलने को।'

'सच! तो सुनो आज शाम ही को आऊँगा। तभी मिलेंगे अच्छा। प्रतीक्षा करना! ओ० के०'—और सुधीर इस तपाक से रिसीवर रख कर भागा मानो टेलीफोन के जरिए लता ही आकर उससे चिपक जायगी।

लता टेलीफोन के चोंगे में 'हलो!' ही करती रह गयी। 'ओफ़, रख कर भाग गया। बड़ा नॉटी है।' लता मुस्करा कर अपने ही से कहने लगी। खुशी उसके अंग-अंग से फूटने लगी और मारे आह्लाद के उसने अपना सिर कुर्सी के सिरहाने से टिका दिया पर खुशी कब तक रहती? थोड़ी देर के बाद चिन्ता ने घेर लिया और वह दोनों हाथों से सिर पकड़ कर सोचने लगी—'कौन से कपड़े पहनूं?' पहले तो आलमारी के दो चार ही कपड़े सरकाए और फिर सब नीचे खींच डाले, पर कपड़े थे कि उसके मन पसन्द कोई जोड़ा बैठ ही नहीं रहा था। किसीमें बटन ठीक करना था, तो किसी का शेड था कि चोली की रंग से ठीक नहीं बैठता था। खीज कर उसने अपना 'बैंकलेस' ब्लाउज उठाया और उससे मैच खाने वाली साड़ी में झांका और नाक सिकोड़कर उसको एक किनारे फेंक दिया। कपड़ों में उलझे-उलझे लता कुछ अपने पर झल्ला-सी गयी मानों फिर उसे एक साथ श्रृंगार प्रसाधनों का ध्यान आया और कुछ उतावली-सी होकर उसने अपनी श्रृंगार-मेज की ड्रार खींची। उसने उन सभी शीशियों के मुँह खोल डाले जिनमें उसकी सुन्दरता भरी थी। फाउन्डेशन क्रीम की डिबिया का पेट खाली था। लता के मुँह से हल्की-सी चीख निकल गयी।—"और ये लो! आज रविवार है। दूकानें भी बंद होंगी।" और वह धप्प से कुर्सी पर आ गिरी।

पास के शीशे में बैठकर लता अपने मुँह का निरीक्षण करने लगी। आँखों के नीचे देखा, गालों के नीचे देखा,—चेहरा है कि खिंचता ही चला जा रहा है। रोज एक नयी शिकन पड़ जाती है। आखिर कैसे छिपेगी?

फिर एक साथ जैसे कोई दिमाग में बिजली-सी दौड़ जाय,—उसने खुशी से चुटकी बजायी और रिसीवर उठाकर नम्बर मिलाने लगी। हल्लो! उधर से आवाज आयी। 'हल्लो, राधिका। मैं बोल रही हूँ लता। क्या कर रही हो?'

राधिका का उत्तर मिला, 'कुछ भी नहीं। करना क्या है? फिर वही कल सोने को आधी रात हो गयी।—योंहीं बैठी अलसा रही हूँ। अब तो सच में, इनसे इतना तंग आ गयी हूँ कि क्या करूँ।'

'कल रमेश इतना पीछे पड़ा।' राधिका ने जहर उगला। उसे पता था कि इधर कुछ दिनों से लता की पूँछ कुछ कम थी।

'सुनो। मैं यह कह रही थी'—छिड़के हुए नमक पर मिश्री घोलते हुए लता बोली।—'क्या मैं जरा-सी तुम्हारी फाउन्डेशन क्रीम उधार ले सकती हूँ? कल वापिस कर दूँगी। मुझे तो पता है कि तुम मना नहीं करोगी। फिर भी मैंने सोचा कि मैं फोन से पूछ लूं।"

राधिका ने और भी मिठास भरते हुए कहा—"तुम लता, हमेशा चीज को देर से क्यों माँगा करती हो? ये लो। बिल्कुल अभी-अभी अन्तिम बूंदें मुंह पर लगायी हीं थीं कि तुम्हारा फोन आ गया। क्या बताऊँ, जरा जल्दी फोन करती। मुझे तो 'फाउंडेशन' की इतनी जरूरत भी नहीं, बस यों ही बोतल खाली करने को—'

लता को इस बार का छिड़का नमक जरा तेज लगा। खिसियाकर बोली—"अभी सबेरे-सबेरे ही।"

बीच में लता कोई जहरीली बात न कह दे, इस कारण बात काटकर राधिका बोली—'हूँ, क्या करूँ? रमेश को तो जानती हो, कैसा है। माना ही नहीं, बोला, आज सन्डे के दिन जिमखाना लंच पर चलना ही पड़ेगा—बड़ा आनन्द आएगा। फिर वह ऐसा है कि एक बजे जाना होगा तो दस बजे ही घर आ पहुँचेगा।

'उसको इंतजार कराकर मैं श्रृंगार करूँ यह? अच्छा नहीं लगता।' दाँव पकड़ने के पहले बिल्ली-सी आँखें समेटकर राधिका ने पूछा—'आज कहाँ जा रही हो?'

लता ने सोच तो रखा था कि सुधीर के आने का भेद राधिका से न खोलूंगी। जानने पर वह किसी न किसी चाल से बीच में आ टपकती है, पर राधिका के कटाक्षों में वह अपना संतुलन खो बैठी। कह ही तो दिया—'सुधीर आया हुआ है। आज इतने ज्यादा पीछे पड़ा मेरे, आते ही तो फोन किया, कह रहा था तुम्हारे लिए ही तो आया हूँ वरना आफिस में कहीं छुट्टी मिलती है?'

राधिका ने फिर मीठी चुटकी ली। हाँ। हाँ। मुझे क्या नहीं मालूम? कल ही तो शशी के साथ मीट्रो में बैठा चाय पी रहा था। मैं तो तुम्हें फोन करने को थी कि आ गया तुम्हारा सुधीर, पर इसी बीच तुम्हारा ही फोन आ गया।' कभी और होता तो लता ने इतने व्यंग्यों पर रिसीवर फोन से दे मारा होता, परन्तु शशि का नाम सुधीर के साथ सुनते ही एक साथ उसकी नसें फड़क उठीं—यह शशी ही थी जिसने बीच में आकर सारा मामला किरकिरा कर दिया था। 'कौन-सी शशी?' आवेश और अचरज को रोकते हुए लता बोली।

'वो ही शशी—और कौन-सी शशी—जिसे जाने किस अंधे कुएँ में से खोज कर आप बिना बुलाए उस दिन सुधीर की पिकनिक में ले आयी थीं। वह ही शशी, जिसने सुधीर के यह कहने पर, कि तुम भी लता और राधिका की तरह बाल क्यों नहीं कटवा लेतीं, यह कहकर हमारे मुँह पर चपत मारी थी कि मैं बाल कटवा कर क्यों "मुंडी गौरैया" बनूँ? हर वक्त बालों में ही उलझे रहो। मुझे दिन में बहुत काम करने हैं। क्या एक यही काम रह गया है कि निकालो कंघा और बनाओ बाल, और बाल ... आँखों में गिरा करें? यहाँ तो सब लगाया, चुटिया गूंथी और कल तक को छुट्टी—वैसे हेयरड्रैसर का बिल देते समय मुझको उसकी बात याद जरूर आ जाती है। लगती थी कैसी बुद्धू, और सुनाया कैसा?'

'ओ! बड़ी छटी हुई थी।' लता ने पुट दिया—'तुम्हारी चोली पर कैसी फबती कसी थी! पहले तो घूरती रही, फिर कहती है ऐसा भी क्या टोटा कि उसी कपड़े में से बटुआ निकालने को चोली ही बीता भर की कर दी। अरे! बदन चोली से ढकता है कि बटुए से? बटुआ तो गज भर का और चोली बित्ता भर की! 'अब बताओ ऐसे गँवार से कोई क्या कहे?'

राधिका ने बात को और तूल दिया, 'मैं पूछती हूँ आप उसे कौन से चूहे के बिल में से खोजकर लाई थीं?' लता ने जवाब दिया—"अरे भाई, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीता है। उस दिन पिकनिक की याद है न? क्या बीती थी? और इस बार भी सामान में क्या निकला था? न आलू निकले और न अंडे, और ऊपर से अँगीठी में पत्थर के कोयले, स्टोव भी गायब था। न जाने शशी ने कोयले किस तरह जला लिए? पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि खाना बढ़िया बनाया था।"

'तुम इस बात को मानों या न मानों, मैं तो कहती हूँ कि यह सब सुधीर ही की शरारत थी। वह जानता था कि तुम आँमलेट बना लेती हो और मैं आलू उबाल लेती हूँ। बस इसी लिए दोनों चीजें गायब थीं और स्टोव भी गायब था क्योंकि स्टोव जलाना हम दोनों जानते हैं। तभी कह रहा था कि सामान मेरा बैरा रख देगा, फिकर मत करो। तुम शशी को गँवार भले ही कहा करो, पर वह कैसा चकमा दे गयी! कल तो उसके साथ उसकी माँ भी थी। मुझे तो कुछ दाल में काला लगता है।"

लता ने शंकित हृदय से पूछा—'क्या? यही कि सुधीर और शशी शादी करने जा रहे हैं?" शादी? लता ने पूछा—उसको लगा, जैसे उसे कोई काट गया। 'हाँ, 'राधा बोली—'मैंने सोचा, मीट्रो में जरा उसकी खाने की मेज पर जाकर बैठ भर जाऊँ। और पूछ आऊँ कि कहाँ चले गये थे? कितने दिन बाद आये? फिर तो इसकी अम्मा कभी भी शशी से उसका ब्याह करने को राजी न होती।'

'फिर चली क्यों न गयी?' लता ने पूछा।

'बस तुम्हारा ही ख्याल आ गया।' राधिका ने उत्तर दिया।

लता यों तिलमिलाकर बोली मानों किसी मित्र ने इसके साथ घोर विश्वासघात किया हो। 'मेरा ख्याल तो भला क्या आया होगा? तुम्हारे साथ ही कोई रहा होगा, सो तुमने अपनी खैर मनायी होगी कि कहीं उसके सामने ही तुमसे सुधीर ही अपना पुराना परिचय प्रकट न कर दे! ओह। मुझे तो फोन पर बात करते-करते ही एक घंटा हो गया। क्या तुम मुझे आज शाम के लिए अपनी वो फालसई साड़ी दे दोगी? कल लौटा दूंगी।'

लता के कटाक्ष रूपी तीर से बिंधे हुए मछली की तरह तड़पकर राधिका ने कहा—'मैं देती तो अवश्य। पर कल वो ही साड़ी पहनकर गयी थी और सुधीर उसे घूर-घूर कर देख रहा था। फौरन जान जायेगा। तुम सोच लो।'

लता ने एक साथ फोन काट दिया और बड़बड़ाने लगी—'मैं भी सबेरे-सबेरे किसको फोन कर बैठी! फोन में ही दोपहर हो गयी।' सुधीर-शशि मिलन समाचार उसके हृदय में शूल की तरह चुभता रहा। आशा बहुत बलवती होती है। मिले हुए अवसर को यों ही इर्ष्या में खो देना लता ने नहीं सीखा था। कुछ भी हो, दाँव पड़ा है, बाजी पूरी खेली जायगी।

वह उठी। बाल शैम्पू किये। धुलते ही आधे बालों ने अपनी सफेद बत्तीसी खोल दी, और लता उसमें से एक-एक को पकड़कर रँगने लगी। फिर नाखूनों में चमक भरी। वे गुलाबी मोती की तरह चमकने लगे।

अब मुँह सँवारने का काम शुरू हुआ। न सही फाउन्डेशन क्रीम, दो बूंद आँखों के नीचे की कालिख मिटाने को मिल जाय, बस बहुत है। आँखों के नीचे की कालिख मिटी। पलकों में मैसकरा ने जान डाल दी। वे काली और सुदृढ़ हो गयीं। भौंहों की चितवन काली पेंसिल से सँवारी, और मुरझाए गालों पर डिबिया की बन्द लाली ने मुस्कराकर जीवन भरा। ओंठ लिपिस्टिक के बोझ से दबने लगे।

यूडीकलोन की बोतल में कुछ अंतिम बूंदें इधर चिरकाल से उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। 'जब उसकी मोटर की आवाज सुनायी देगी तब इन्हें उसी वक्त उड़ेल दूंगी। खुशबू बासी न पड़ जाय।' यूडीकलोन की बोतल से उसे एक साथ सुधीर की याद आ गयी। यह शीशी वह ही लाया था, और कान के यह बूंदे भी। उदास मन से कान के उन बुंदों को शीशे में हिलाती रही। नाहक ही राकेश के चक्कर में पड़ी। सुधीर सीधा और भला है। क्या पता? शायद बिगड़ी फिर बन जाय? उसने एक आह भर के सोचा और बुंदे पहन लिए, माला से गला सुसज्जित किया। वस्त्र उठाकर एक किनारे रख दिए गए कि जब कार की आवाज आएगी तभी पहने जायँगे। कहीं सिलवट न पड़ जाय।

लता की आँखें घड़ी पर जम गयीं। घंटा-आध-घंटा—। पर कार के हार्न ने बजने का नाम न लिया।

ओह! कहीं पहले की तरह उतावली में ही वह न आ जाय। यह विचार आते ही बैकलेस ब्लाउज और साड़ी भी उसके शरीर पर आ गयी। पर धीरे धीरे प्रतीक्षा की घड़ियाँ निराशा में बदलने लगीं—मन को भुलावे दे देकर संध्या बिता दी। पर अब रात आ गयी, और वह भी चढ़ने लगी तो लता का सारे दिन का उद्विग्न शरीर भी शिथिल पड़ने लगा। गालों में डिबिया की मुस्कुराहट धीमी पड़ने लगी, आँखों के नीचे की कालिख फिर झाँकने लगी, आँखें पलकों में तीखे प्रहरी लिए भी थकी और उदास हो गयीं, और लता ने अपना शरीर शिथिल करके सोफे पर ढलका दिया।

× × ×

रात काफी बीत चुकी थी जब सुधीर सीढ़ियों पर चढ़ा। उसके पीछे शशि थी।

'यहाँ क्यों? यह तो लता का मकान है।' शशि ने दबी आवाज से पूछा।

'जिसने हमें मिलाया उसीके पास मँगनी के बाद सबसे पहले जाना चाहिए।' सुधीर बोला। सुधीर अन्दर घुसा। लता सोफे पर पड़ी थी। लता का थका मन नींद के एक झोंके में खो गया था।

सोफे पर पड़ी लता सुधीर को शतरंज की उस गोटी की तरह लगी जो चारों ओर से घिरकर बुरी तरह मात खा गयी हो।

निराला सूर्यकुमार !

पं० शिवाधार पाण्डेय

आज शारद पै हेर प्रहार, हृदय में थका मसोस मसोस।
हिमालय सा जो शिखर किरीट, आज उड़ गया अखिल हो ओस।।
उठूं में किसको पल पल कोस? भाग्य का दोष! काल का रोष!
यही है भारत की सरकार! यही कल्याणों की आधार!
यही जनता की अन्तिम-बन्धु! यही प्रतिभापोषक आदित्य!
यही कविता की दारमदार! यही आर्यों का नव-संस्कार!

आज पक पक वह प्राण-शरीर, उड़ा है लोक लोक के यान।
वीर जो था अडिग्ग रणधीर, धुरन्धर कृती भारती-प्राण!
शूर! बेधो तुम सूर्यद्वार, गगन नापो अमरावति पार।
खोल उर-उर के कपट-कपाट, दरश कर पूरणपुरुष विराट।
अजय उन्मुक्त विश्व की वाट, विजय का लो अब जगमग हार।
अमर सरिता के सिरजनहार! विश्वकविता के प्राणाधार!

तुम्हारी यह रोगों की खाट, सकैगा भारत कैसे भूल?
रही बस यह चरणों की धूल! चढ़ाये हमने बस यह फूल!
इसी सूली पर कटा जनम, जले इस ज्वालामुखी विषम।
यही तो था उन्मद उन्माद, यही औघड़ अब दिया प्रसाद।

यही भोगे विष बम बम बम!

तुम्हें क्या कोई देता कुछ? तुम्हीं दे गये अमर मर प्राण।
समर में जीवन के अनिरुद्ध, अरे! कँप कँप तप तप हो सिद्ध।
सिखाया आत्मा का सम्मान, दिखाया नव भारत को त्राण!

प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू नवंबर में अमरीका गये थे। अमरीका के राष्ट्रपति भवन (ह्वाइट हाउस) में राष्ट्रपति कैनडी के साथ प्रधान मंत्री।

उपराष्ट्रपति डॉ० एस० राधाकृष्णन पोलैण्ड के राष्ट्र[illegible]
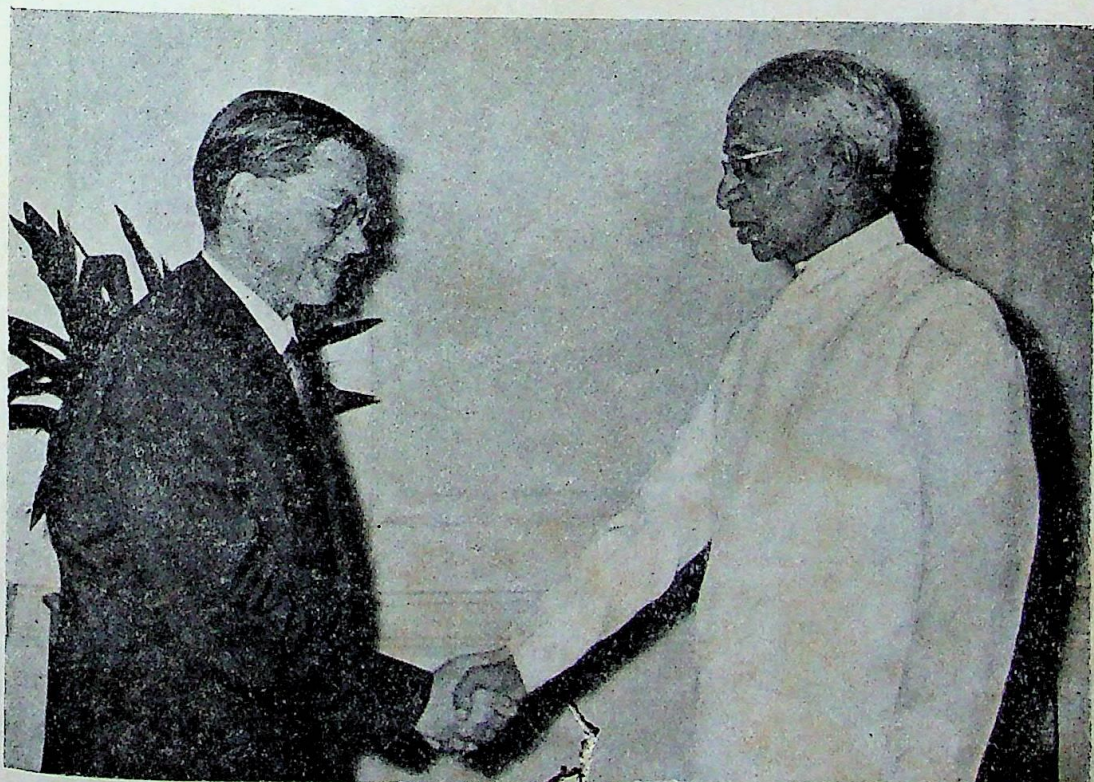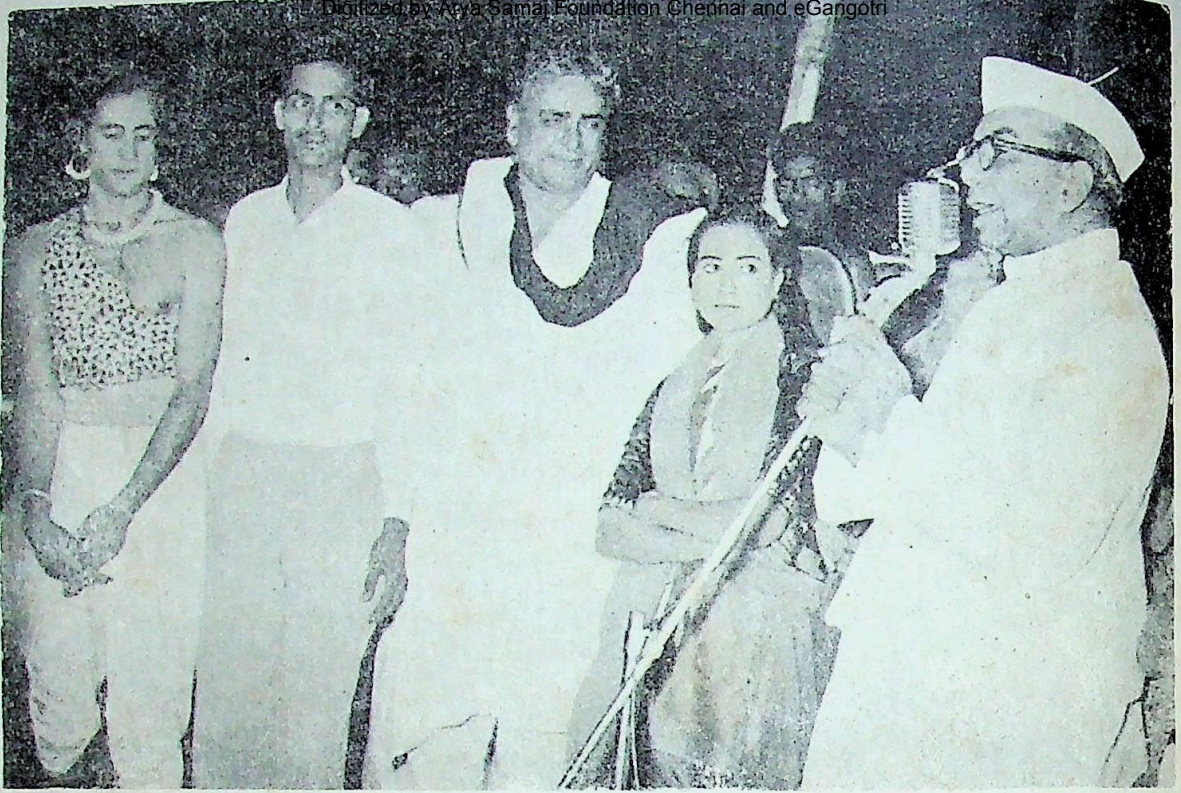
जबलपुर में नये रंगमंच के उद्घाटन के अवसर पर कलाकारों के बीच प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर। दाईं ओर माननीय सेठ गोविन्ददास भाषण कर रहे हैं।
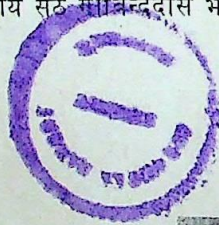
नयी दिल्ली में होनेवाले इंडियन इन्डस्ट्रीज फेयर के उद्घाटन के अवसर पर प्रसारित टिकट

वन-विभाग की शती पर प्रसारित टिकट

बीसलदेवरास की भाषा

श्री इन्द्रदेव उपाध्याय एम० ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्यशास्त्री

यद्यपि पुराने भाषाशास्त्रियों ने परवर्ती म० भा० आ० के काल में नागर अपभ्रंश को समस्त मध्यदेश की भाषा मान लिया है जिसका रूप हमें 'हेमचन्द्र' के व्याकरण में उद्धृत दोहे से उपलब्ध होता है; तथापि वैज्ञानिक दृष्टि से यह मानना अधिक ठीक होगा कि मध्यदेश की भाषा इस काल में एक न होकर अनेक विभाषाओं में विभक्त रही होगी। यह दूसरी बात है कि साहित्यिक दृष्टि से परिनिष्ठित अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश ने उन समस्त विभाषाओं को आक्रान्त कर रखा था और वे केवल 'लोकल पेटवा' बनी हुई थीं। अपभ्रंश की जैन रचनाओं में परिनिष्ठित भाषाशैली की पाबन्दी करने पर भी यत्र-तत्र कुछ वैभाषिक तत्त्व मिल ही जाते हैं। डॉ० याकोबी ने पश्चिमी प्रदेश से मिले अपभ्रंश शब्दों की भाषाओं को स्पष्टत: दो वर्गों में विभक्त किया है——

(१) उत्तरी अपभ्रंश

(२) गुर्जर या श्वेताम्बर अपभ्रंश।

अन्य विद्वानों ने भी याकोबी के इस वर्गीकरण को स्वीकार किया है तथा भायाणी ने 'संदेशरासक' की भाषा को गुर्जर अपभ्रंश या श्वेताम्बर अपभ्रंश घोषित किया है। इन शब्दों की भाषा को बोलचाल की भाषा समझना खतरे से खाली नहीं। वैसे कथ्य भाषा की अनेक विशेषताएँ इनमें मिल जाती हैं। गुर्जर अपभ्रंश की समानान्तर कथ्य भाषा का परवर्ती विकास यदि हमें कहीं उपलब्ध है तो वह पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के उन ग्रंथों में है जिनकी भाषा का विश्लेषण डॉ० तेस्सितोरी ने किया है। यही भाषा आगे चलकर दो शाखाओं में विभक्त हो गयी। तथा सोलहवीं शती के बाद से गुजराती तथा पश्चिमी राज० (मारवाड़ी) स्वतंत्र भाषाएँ बन बैठी हैं।

यद्यपि खड़ी बोली, ब्रज तथा पूर्वी राजस्थानी के प्राचीन रूपों की साहित्यिक सामग्री पूरी तरह नहीं मिलती फिर भी यह निश्चित है कि अरावली पर्वत-माला के पश्चिमी प्रदेश की भाषा गुजरात और पश्चिमी राजस्थान-की भाषा से स्पष्टतया भिन्न थी। ह[illegible] भाषा के गद्यबद्ध साहित्य का सर्वथा अभाव है और 'प्राकृत पैंगलं' के पुरानी पश्चिमी हिन्दीवाले पद्य ही इसका कुछ संकेत देने में समर्थ हैं। वैसे 'प्राकृत पैंगलं' के पद्यों की भाषा भी कृत्रिम साहित्यिक शैली से समन्वित है और वह कथ्य रूप का पूरा-पूरा परिचय देने में असमर्थ जान पड़ती है। फिर भी यह निश्चित है कि ११वीं १२वीं शती के लगभग ही खड़ी बोली, ब्रज और पूर्वी राज० के तत्तत् प्रदेशों की कथ्य भाषा में बीज रूप में वे विशेषताएँ उत्पन्न हो चुकी थीं जो बाद में चलकर इन भाषाओं की भेदक विशेषताएँ बन बैठीं। डॉ० तेस्सितोरी ने संकेत किया है कि पूर्वी राजस्थान की कथ्य भाषा ब्रज और दोआब की कथ्य भाषा के विशेष नजदीक थी। और आज भी जयपुरी, हाड़ौती जैसी राजस्थानी विभाषाओं में ऐसे लक्षण मिलते हैं जो उन्हें पश्चिमी राजस्थान की मारवाड़ी से भिन्न सिद्ध करती हैं। यह दूसरी बात है कि पिछले दिनों ये विभाषाएँ पश्चिमी राजस्थानी से अत्यधिक प्रभावित हुई हैं। इसी संबंध में डॉ० तेस्सितोरी ने यह भी संकेत किया है कि पुरानी पश्चिमी राजस्थानी और पुरानी पश्चिमी हिन्दी के सीमाप्रदेश में कोई ऐसी मिश्रित विभाषा बोली जाती थी जिसमें पुरानी पश्चिमी राजस्थानी तथा पुरानी पश्चिमी हिन्दी दोनों के तत्त्व मौजूद थे। आज भी मेवाड़ में बोली जानेवाली मेवाड़ी तथा अजमेर के आस-पास की कथ्य पूर्वी राजस्थानी में ये लक्षण देखे जा सकते हैं। इस मिश्रित विभाषा के अति प्राचीन साहित्य का अभाव है, लोक साहित्य के रूप में अवश्य कुछ साहित्य रहा होगा और इस मिश्रित विभाषा का यदि कोई मध्ययुगीन काव्य उपलब्ध होता है तो वह 'बीसलदेवरास' है। 'बीसलदेवरास' की भाषा उस काल का संकेत करती है, जब पूर्वी राजस्थान की कथ्य विभाषाओं पर पश्चिमी राजस्थानी अधिक हावी हो गयी थी और यह स्थिति इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि 'बीसलदेवरास' की रचना १६वीं शताब्दी के आसपास हुई होगी, साथ ही 'बीसलदेवरास' का प्रचार भी पूर्वी राजस्थान की अपेक्षा पश्चिमी राजस्थान में अधिक होने से उसकी भाषा में रद्दोबदल जरूर हुआ होगा। यह तो निश्चित है कि बीसलदेवरास गेय काव्य होने पर भी राजस्थान में कहीं भी 'जला' जैसे लोक काव्यों की तरह नहीं गाया जाता रहा है, और इसलिए इसकी भाषा में मौलिक परंपराजनित परिवर्तन

नहीं माना जा सकता। 'बीसलदेवरास' के उपलब्ध सभी हस्तलेख १७वीं शताब्दी से पुराने नहीं हैं और इसे बहुत पुरानी रचना मानने में कोई अवान्तर प्रमाण नहीं मिलता। जहाँ तक इस भाषा में प्रयुक्त प्राचीन तत्त्वों का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि गुजराती और राजस्थानी में ऐसे अनेक तत्त्व आज भी कथ्य रूप में सुरक्षित हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसी बात का संकेत करते हुए कहा था—'बीसलदेवरासो' में प्रयुक्त भाषा राजस्थानी और गुजराती की उन सर्वमान्य विशेषताओं से युक्त है जो उनमें अभी तक किसी न किसी रूप में पायी जाती हैं।

'बीसलदेवरास' की भाषा का खड़ी बोली या ब्रज-भाषा से साक्षात् संबंध न होकर केवल गौण संबंध है। यह केवल उन तत्त्वों का संकेत कर सकती है जो खड़ी बोली तथा ब्रज के अलावा पूर्वी राजस्थान में भी प्रचलित थे। इसलिए जो लोग 'बीसलदेवरास' की भाषा को खड़ी बोली या ब्रज का पूर्ण रूप मानकर चलते हों उन्हें आचार्य मिश्र के शब्दों में यही चेतावनी देनी पड़ेगी—'जो लोग इसकी भाषा को खड़ी बोली की नानी दादी मान बैठे हैं उनको जानना चाहिए कि खड़ी बोली भी बहुत प्राचीन भाषा है और ब्रज और अवधी से किसी प्रकार अर्वाचीन नहीं है। यदि 'बीसलदेवरासो' की रचना १२१२ की भी मानी जाय तो भी खड़ी बोली की नानी या माता होने का गौरव उसकी भाषा को नहीं मिल सकता, क्योंकि देशी भाषाओं के उद्भव का समय १०वीं शती है। 'बीसलदेवरास' की भाषा में अरबी, फारसी के शब्दों की बहुतायत इस बात का संकेत करती है कि यह काव्य तेरहवीं शती का नहीं हो सकता, साथ ही 'मीर कबीर जेसलमेर बूंदी' आदि का संकेत भी इसकी प्राचीनता में बाधक है। इसी तरह अंगुली के लिए मूंगफली के उपमान का प्रयोग भी इसको परवर्ती सिद्ध करता है क्योंकि मूंगफली की उपज यहाँ फिरंगियों की देन है। यदि कहीं मूंगफली का अर्थ मूंग की फली लिया जाय तो शायद समस्या सुलझ सकती है किंतु हमारी समझ में उक्त प्रसंग में इस शब्द का अर्थ चीनिया बादाम ही है।'

'बीसलदेवरास' में निस्संदेह थारइ, तपइ, तणह, तणउ, छइ, घरह, बोलावइ, दाइजउ जैसे अनेकानेक प्राचीन रूप पाये जाते हैं किंतु ये रूप आज भी कई राजस्थानी लोकगीतों में देखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त बीसल-देवरास की भाषा में जहाँ एक ओर छइ जैसे गुजराती या पूर्वी राजस्थानी के सहायक क्रियापद का प्रयोग मिलता है वहाँ हो, होइ जैसे पश्चिमी राजस्थानी तथा हिन्दी सहायक क्रियापद भी मिलते हैं। इसमें एक साथ कौ, कइ जैसे पूर्वी राजस्थानी हिन्दी के संबंधबोधक पर-सर्गों के साथ-साथ ही री, तणा, तणौनी, जैसे पश्चिमी राजस्थानी गुजराती के संबंधबोधक परसर्ग भी मिलते हैं। इसी तरह कचोड, कुं कुं, मेल्ह, पुग आदि।

ऐसे राजस्थानी शब्दों के मिलने से सिद्ध होता है कि 'बीसलदेवरास' की भाषा मध्यकालीन राजस्थानी के आरम्भिक रूप का संकेत करती है किंतु यह किसी खास विभाषा का समूचा प्रतिनिधित्व न कर राजस्थानी की पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों प्रवृत्तियों की खिचड़ी जान पड़ती है जिसमें ब्रज तथा खड़ी बोली के भी छिटपुट तत्त्व मिल जाते हैं।

माली की नजर

श्री गोविन्द 'अनिल'

गजरे, गुलदस्ते बना, बेचता फूल खिले
माली सूखे फूलों को रखता जाता है
होते हैं, दूध सरीखे यदि उत्फुल्ल कुसुम
तो शुष्क फूल की हर पँखुरी गौ माता है।

विकसित फूलों की किस्मत में है खाक, मगर
इन सूखे फूलों का भवितव्य बगीचा है
मिट्टी में मिलकर भी न मिले जो मिट्टी में
जिनको माली ने धैर्य, लगन से सींचा है।

आमों से चुसे हुए, क्यों होते हैं निराश
रे! इन्हीं गुठलियों में ही तो है अमराई
उजड़े भारत की दीन दशा पर वह रोये
जिस कामचोर ने नजर न माली की पाई।

—————

चामर-ग्राहिणी

मूल लेखकः विश्वनाथ सत्यनारायण एम० ए०
अनुवादकः अं, हनुमय्या "हिन्दी पारंगत"

वह शालिवाहन शक का १०२रा साल था। रोम नगर में एक घर के सामने बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। वहाँ बड़ा कोलाहल था। कारण यहँ था कि हेलीना सुन्दरी दो महीनें तक बहुत से मरुस्थलों तथा देशों से सफर कर के रोम नगर लौटी थी। चार साल पहले वह 'आंध्र-सम्राट् गौतमी पुत्र यज्ञश्री शातकर्णी' की चामर-ग्राहिणी बनकर गयी थी। आज उसका लौट आना ही इस कोलाहल का कारण था।

जब वह चार साल पहले गयी थी तब रोम नगर में बड़ी-बड़ी सभाएँ की गयीं। उनमें उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। उसे उपहार दिये गये। साधारणतया जो सुन्दरियाँ चामर-ग्राहिणी बनकर जाती थीं वे पंद्रह साल तक लौटती नहीं थीं। यह चार साल के अंदर ही लौट आयी। यह बात किसीकी समझ में नहीं आयी कि यह इतनी जल्दी क्यों लौट आयी? फिर भी लोग इस उत्सुकता से उसके घर के चारों तरफ इकट्ठे हुए थे कि सुदूर भारत की तथा आंध्र देश की खबरें समझनी चाहिए। वह बड़ी धनाढ्य हो गयी होगी। आंध्र देश से रत्न, मोतियाँ, रेशमी चादरों, दाँतों की वस्तुएँ, जावित्री, कस्तूरी, इलायचियाँ, लौंग आदि अपूर्व वस्तुएँ लायी होगी। ये महान् वस्तुएँ साल में एक बार आंध्र देश के व्यापारी लाकर बेचते थे। लेकिन उनका दाम अधिक था। अतः केवल बड़े-बड़े रईस ही खरीद सकते थे। मामूली जनता उनका नाम भी नहीं जानती थी। प्राचीन काल में सभी रईस, राजा और महाराजा उन्हें खरीदकर इस्तेमाल करते थे। रोम नगर की मामूली जनता ने केवल उनके बारे में सुना था। नगर कभी देखा नहीं था।

हेलीना मामूली खानदान में पैदा हुई थी। वह गुदड़ी में छिपा हुआ माणिक्य थी। रोम नगर के बहुत से धनवानों की उस पर निगाह थी। लेकिन चार साल पहले आंध्र सम्राट् के अधिकारी रोम नगर आये। उन लोगों ने पूछा:—हमें चामर-ग्राहिणी चाहिये। साधारणतया चामर-ग्राहिणियों के लिए जमींदारों और राजवंशियों की बेटियों को ही वे ले जाया करते थे। उन्होंने कहा कि हेलीना मामूली खानदान में पैदा हुई है। फिर भी वह अनुपम सुन्दरी है। अधिकारी उसे ले जाने के लिए तैयार हुए। लेकिन उन लोगों ने यह शर्त रक्खी:—यह राजवंश में तो पैदा नहीं हुई है। यदि सम्राट् ने इसे अस्वीकार कर दिया तो दूसरे साल आने-वाले काफिले के साथ लौटा देंगे। (साल में एक बार यह काफिला आंध्र देश से रोम नगर जाता था।)

आंध्र सम्राट् किसीको चामर-ग्राहिणी बना लेता तो उसके खानदान को बीस मन रत्न, माणिक और मोती भेजता था। बाकी सुगंधित द्रव्य चालीस मन देता था। साधारणतया वह सत्रह साल तक सम्राट् की चामर-ग्राहिणी रहती थी। जब सम्राट् उसे अपने दरबार में लेता था तब उसकी उमर सोलह साल से अधिक नहीं होती थी।

सम्राट् ने हेलीना को अपने दरबार में ले लिया था। कारण उसकी सुन्दरता थी। उसकी देह-कांति केवल सफेद ही नहीं थी। यदि उसमें चाँद की श्वेत कांति थी तो शहद का माधुर्य भी था। सिर के बाल भ्रमर जैसे थे। पूरी सुन्दरता उसके विशाल नेत्रों में थी। उसकी पुतलियों की चमक अनुपम थी। उसके शरीर के अवयवों की बनावट, चमक और स्निग्धता संगमरमर की मूर्ति सी थी। उसे देखते ही सम्राट् ने उसे प्रधान चामर-ग्राहिणी बना दिया।

चामर-ग्राहिणियाँ अंतःपुर की स्त्रियाँ थीं। उनके भोग राजभोग थे। वे बाहर जातीं, तो पालकी पर जाती थीं। उनकी तरफ आँख उठाकर कोई देख नहीं सकता था। अनजान लोग उन्हें राजकन्याएँ समझते थे। उनके शरीर के आभूषण रत्नों से बने हुए थे। उनकी साड़ियाँ सोने के धागे मिलाकर बुनी जाती थीं। वह एक महान् भोगमय जीवन था। सम्राट् ही उनका पालन-पोषण करता था। उस जमाने में स्त्री होकर पैदा होना ही दो रूप से सार्थक होता था। पहली सार्थकता थी आंध्र-सम्राट् की सम्राज्ञी होना और दूसरी उनकी चामर-ग्राहिणी होना।

चार साल तक हेलीना के माता-पिता को कीमती रत्न, कस्तूरी, लौंग, इलायची, जावित्री, जायफल, सुपारी और पान भेजे गये थे। वे ये चीजें अड़ोस-पड़ोस के लोगों को भी थोड़ी-थोड़ी देते थे। नगर के

बहुत कम लोग लौंग और इलायची का स्वाद जानते थे। कस्तूरी का परिमल जानते थे। रत्नों के नमूने जानते थे। वे लोग दूसरों को इनका स्वाद बतलाते थे। बाकी लोग उन चीजों को चाहते थे। चार साल से रोम नगर की मामूली जनता हेलीना के माता-पिता की तकदीर पर रीझ गयी थी। उन्हें भी यह अनुभूति पाने की अभिलाषा थी।

ऐसी परिस्थितियों में हेलीना लौट आयी। उसके साथ दो ऊँटों पर लादकर बहुत कीमती चीजें भेजी गयी थीं। नगर भर में यह खबर फैल गयी कि ये चीजें सब को बाँटी जायँगी। फिर जनता इकट्ठी क्यों नहीं होती ?

दस दिन के बाद सन्नाटा छा गया।

दसों दिन डार्टिमो उनके घर आता-जाता रहा। डार्टिमो एक जमींदार का बेटा था। हेलीना के चामर-ग्राहिणी होकर जाने से पहले डार्टिमो हेलीना का प्रेमी था। उसका प्रेम पाने के लिए उसने बहुत प्रयत्न किया। वह मामूली खानदान की लड़की थी। एक जमींदार के बेटे ने उससे विवाह करना चाहा तो माँ-बाप को भी बड़ी खुशी हुई। फिर भी हेलीना ने अपनी राय प्रकट नहीं की। वह महान् सुन्दरी थी। वह सोचती थी कि मेरे समान सुन्दरी भूमंडल पर नहीं है।

सौंदर्य में अहंकार अधिक रहता है। आत्माभिमान भी अधिक होता होगा! हेलीना चाहती थी कि मैं सम्राट् की स्त्री बनूँगी। जब वह चामर-ग्राहिणी बनाकर ले जायी जा रही थी तब उसके मन में यह कामना पैदा हुई कि मैं सम्राट् की स्त्री बनूँगी। उसके माता-पिता तो धन चाहते थे, फिर भी हेलीना को भेजते समय हिचकिचाने लगे थे क्योंकि अपनी पुत्री को सत्रह साल तक दूर देश भेजना था। वे समझते थे कि चामर-ग्राहिणियाँ सम्राट् की पत्नियाँ होंगी। फिर अपनी बेटी अपने वतन लौटकर आ भी सकेगी कि नहीं। कई चामर-ग्राहिणियाँ तो छत्तीसवें या सैंतीसवें साल में शादी करके आंध्र देश में ही रह गयी थीं। नृत्य तथा गीतों को सीखकर उस धंधे में लग जाती थीं। फिर वे अपने वतन जाना नहीं चाहती थीं क्योंकि उम्र ढल जाती थी। वहाँ शादी नहीं हो सकती थी। फिर वे उसी सुख-संपत्ति में अपना जीवन बिता सकतीं थीं।

उस देश में डेलाफ नामक गाँव था। वहाँ ज्योतिषाचार्य रहते थे। हेलीना वहाँ गयी। पंद्रह साल की उम्र में भविष्य पढ़कर सुनाया गया कि तुम किसी सम्राट् के अंतःपुर में रहोगी। हेलीना ने उसका अर्थ यों लगा लिया कि मैं सम्राट् की स्त्री बनूँगी। सभी बातें मिल गयीं थीं।

हेलीना लौट आयी तो केवल डार्टिमो खुश हुआ। उसके माता-पिता को इसलिए खेद हुआ कि आनेवाली संपत्ति बन्द हो गयी। फिर भी वे खुश हुए थे कि आते समय हेलीना बहुत से रत्न लायी। उनसे वे लोग जमींदारों से भी अधिक रईस हो सकते हैं। एक जमींदारी खरीद सकते हैं। पर पुत्री की तकदीर तो फूट गयी! डार्टिमो ने सोचा कि मेरी तकदीर सीधी हो गयी।

डार्टिमो के माता-पिता को यह पसंद नहीं था। पहले हेलीना की सुन्दरता पर वे मुग्ध थे। अतः अपने बेटे को उस किशोरी से शादी करने की अनुमति दे दी थी। अब उन्हें यह बात पसंद नहीं थी। चामर-ग्राहिणी का अर्थ उन्हें मालूम नहीं था। उनकी राय थी कि चामर-ग्राहिणी सम्राट् की स्त्री होगी। कानूनी ढंग पर तो पत्नी नहीं होगी। फिर भी स्त्री की तरह रहेगी। सच्ची बात यह है कि चामर-ग्राहिणी स्त्री नहीं थी। भारत में चमरी नामक सुरागाय होती है। उसकी गुच्छेदार पूंछ होती हैं। इन गुच्छों को लेकर स्त्रियाँ सम्राट् के दोनों ओर खड़ी होती थीं और झलती थीं। जब सम्राट् सिंहासन पर बैठता था तभी उन्हें यह नौकरी करनी पड़ती थी। बाकी समय उनका कोई काम नहीं होता था। सम्राट् से इसके अलावा उनका कोई नाता नहीं था। जब चामर-ग्राहिणियों को चुनने के लिए अधिकारी आये थे तब उन लोगों ने ये बातें बतायी थीं। मामूली जनता ने इन बातों पर विश्वास नहीं किया। उनके माता-पिता का ख्याल था कि वह सम्राट् की स्त्री हुई होगी। अतः उससे डार्टिमो का विवाह उन्हें पसंद नहीं था।

हेलीना चली गयी तो डार्टिमो ने और किसी स्त्री से अपना विवाह करना पसंद नहीं किया। उसने निश्चय कर लिया कि मैं आजीवन और किसी स्त्री से प्रेम नहीं करूँगा। फिर भी उसने अपना निर्णय किसीसे नहीं बताया। उसने भी यकीन कर लिया कि हेलीना आंध्र सम्राट् की स्त्री हुई होगी। सम्राट् से आपस का सम्बन्ध बिगड़ गया

तो वह लौट आयी है। अब हेलीना को सम्राट् पर प्रेम नहीं होगा। उसका विचार था कि अपना प्रेम सफल होगा।

इन दस दिन से डार्टिमों हेलीना के घर आने लगा। दिन भर वहीं रहता था। उन्हींके घर में वह भोजन करता था। हेलीना सैकड़ों-हजारों आंध्र देश की खबरें सुनाती थी। बहुत लोग कान खड़े करके सुनते थे। डार्टिमो भी चाव से सुनता था। हेलीना डार्टिमो को दोस्त की तरह देखती थी। डार्टिमो को अकेले उससे बातें करने के लिए मौका नहीं मिला। हेलीना ने मौका नहीं दिया।

सब लोग हेलीना से पूछने लगे कि तुम क्यों लौट आयीं? कइयों की बात उसने सुनी अनसुनी कर दी। फिर कुछ से कहा कि क्या हमारे लिए यह संपत्ति काफी नहीं है? मुझे वहाँ रहना पसंद नहीं था! जब उसकी सहेलियों ने पूछा तो आँखों में दीनता भर लायी। इसके बाद वह खीझकर कहने लगी कि क्या मैंने इसका जवाब दे नहीं दिया? उन लोगों ने भी पूछना बंद कर दिया। बहुत सी जायदाद मिल गयी। वह सारी जायदाद की मालकिन है! अतः माता-पिता भी चुप रह गये।

दिन गुजर रहे थे। हेलीना की आँखों में खेद की भावना दिखाई पड़ने लगी। कभी-कभी सारी दीनता उसकी आँखों में आ जमती। उस समय वह अपने कमरे में अकेले बैठती थी। किसीसे नहीं बोलती थी। कमरे के किवाड़ बंद कर लेती थी।

कई महीने बीत गये। डार्टिमो रोज आता पर पराये घर की तरह, अपनी प्रिया के यहाँ जाने की भाँति नहीं। प्रणय की आशा से भी नहीं!

एक साल गुजर गया। धीरे-धीरे हेलीना के दुख भोगने के दिन दूर होने लगे। हेलीना के बारे में शहर में तरह-तरह की बातें होने लगीं। जब तक हेलीना का विवाह नहीं होगा तब तक किंवदंतियाँ दूर नहीं होंगी। डरते-डरते उसके माता-पिता ने चार-छः बार विवाह की प्रस्तावना की।

कहा गया है कि डार्टिमो तैयार है। अब तुम विवाह करना चाहती तो उसके माता-पिता मना नहीं करते। आजकल हम भी उन्हींके समान रईस हैं। फिर अब तुम्हें आंध्र देश जाना नहीं है। अभी तुम्हारा बीसवाँ साल भी पूरा नहीं हुआ। अभी तो तुम्हारा बहुत जीवन पड़ा है। तुम डार्टिमों से बिलकुल नहीं बोलतीं। वह छः साल से तुमसे प्रेम कर रहा है। वह तुम्हारे अलावा और किसीसे प्रेम नहीं करता। तुम दोनों का जीवन ही व्यर्थ हो रहा है।

फिर हेलीना डार्टिमो से बातचीत करने लगी। उसके माता-पिता बहुत खुश हुए।

हफ्ते में एक बार हेलीना और डार्टिमो सैर करने जाते। डार्टिमो ने उससे प्रेम का प्रसंग नहीं उठाया। चार-छः बार जाने के बाद एक दिन उसने यह प्रस्ताव किया। झट वहाँसे निकल गयी। फिर कई महीने बीत गये। जब वे दोनों सैर करने जाते तब वह यह प्रस्ताव करता। वह सुनकर चुप रहती।

लगभग दो साल गुजर गये। डार्टिमो को यह मालूम नहीं है कि हेलीना के हृदय में उसके लिए प्रेम है कि नहीं। फिर भी दोनों की मित्रता बढ़ने लगी। वह हेलीना के कंधे पर हाथ रखने लगा। उसका हाथ भी पकड़ता है। पर वह पीछे नहीं हटती। उसके पास बैठता है तो वह उससे दूर नहीं हटती। सभी जान-पहचान के लोग समझते हैं कि वे दोनों पति-पत्नी हैं। इसलिए कइयों को अचंभा होता है कि उन दोनों ने शादी क्यों नहीं कर ली? फिर इतने दिन क्यों लगे!

एक दिन शाम के वक्त, उस शहर के गिरि-शिखर पर वे दोनों बैठ गये। डार्टिमो ने उसका हाथ अपने हाथ में लिया। उसने कहा—"हेलीना, मैंने अपना जीवन तुम्हें अर्पित किया। मैं तुमसे प्रेम कर रहा हूँ। फिर भी मुझे यह बात मालूम नहीं है कि तुम मुझसे प्रेम करती हो या नहीं? तुम मुझे परम मित्र समझती हो। तुम्हारे मन में जो खेद है उसका कारण मुझे मालूम नहीं है। वही खेद तुम्हारी जिन्दगी को सुखा रहा है। अगर मैं तुम्हारा अनन्य मित्र हूँ तो तुम मुझसे यह भेद बताओ। तुम्हारी मनोभावना मैं समझना चाहता हूँ।" बहुत देर तक वह गिड़गिड़ाता रहा।

हेलीना बोली—तुमसे बढ़कर मेरा और कोई अनन्य मित्र नहीं है। मुझ पर तुम्हारा जो प्रेम है वह नैसर्गिक है। फिर भी मैं तुमसे प्रेम नहीं कर सकती। इसके लिए मैं लाचार हूँ। मैंने निश्चय कर लिया है कि अपनी कहानी किसीसे नहीं कहनी चाहिए। फिर भी तुमसे कहूँगी। इसलिए तुमसे प्रेम न कर सकने का जो पाप है वह धुल जायगा।

"तुम्हें मालूम है कि मैं बड़ी सुन्दरी हूँ। इसपर मेरा जो नाज है उसका कोई आर-पार नहीं है। अतः भगवान् ने मुझे यह सजा दी है। जबसे दुनियादारी की बातें मुझे मालूम हुईं तब से मैंने निश्चय कर लिया कि मैं किसी दिन सम्राट् की पत्नी बनूँगी। जब अधिकारियों ने बताया है कि चामर-ग्राहिणी का धर्म इतना ही है तो मैंने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। मैंने समझा कि सम्राट् के हृदय में स्थान प्राप्त कर सकूँगी। जब तक मैं आंध्र देश नहीं पहुँची तब तक डरती रही कि वहाँ मुझसे बढ़कर सुन्दरियाँ होंगी। पर सम्राट् ही इसका साक्षी है। उसने मेरी सुन्दरता का अधिक आदर किया। सम्राज्ञी से बढ़कर मेरा आदर हुआ। प्राकृत के कवियों ने मेरी सुन्दरता पर पद्य लिखे। चित्रकारों ने मेरे चित्र खींचे। शिल्पियों ने मूर्तियाँ बनायीं। वसंत ऋतु में राजमहल में सौंदर्योत्सव मनाये जाते हैं। उनकी मैं रानी थी। मेरी आरती उतारी गयी थी। मुझे देखने के लिए बड़े-बड़े महाराजा सम्राट् के दरबार में आते थे।

"मेरा मन सम्राट् पर आसक्त हो गया था। भैया, डार्टिमो वह केवल अधिकार मात्र से सम्राट् नहीं था। समझो--उसके सामने मेरी सुन्दरता की कुछ गिनती ही नहीं हो सकती। सभी पुरुषों की सुन्दरता उसमें मूर्तिभूत है। डार्टिमो! मैं अपनी बदनसीबी के लिए क्या कहूँ? वह एकपत्नी-व्रत है। हम समझते हैं कि प्राच्य देशों के राजाओं के बहुत स्त्रियाँ होंगी। यह सच्ची बात नहीं है। हाँ, किसी-किसी के दो-चार स्त्रियाँ होंगी। उनकी कामवासना इससे दूर नहीं होती। वे नीति से अपना जीवन बिताते हैं। उन देशों के बारे में हमारी जो धारणाएँ हैं वे कल्पित हैं। वह एक दिव्य जाति है।

"आश्चर्य है। सम्राट् मेरी सुन्दरता की आराधना करता था। मगर मुझसे प्रेम नहीं करता। मैं मानती हूँ कि सम्राज्ञी भी सुन्दरी है। सम्राट् कहता है कि मेरे सामने उसकी गिनती नहीं हो सकती। वह खुद भी यही कहती है। लेकिन सम्राट् कभी मुझे प्रणय की भावना से नहीं देखता। वह मुझसे दूर चलता है। कभी मेरा हाथ पकड़ने की कोशिश नहीं करता। उसे मेरे पास बैठने की अभिलाषा ही नहीं होती।

"मेरा मन सम्राट्मय हो गया था। मुझे नींद नहीं आती थी। खाने की भी चाह नहीं थी। मेरे जीवन में अंधकार ही अंधकार था। मैं चाहती थी कि सम्राट् हमेशा दरबार में रहे। केवल उसी वक्त मुझे उसका दर्शन मिलता था। साल में एक बार वसंतोत्सव में भली भाँति उसका दर्शन प्राप्त हो सकता था।

"भैया, डार्टिमो! मुझे मर जाना चाहिये था। मुझे न नींद थी और न भोजन। मेरा शरीर बहुत दुबला-पतला हो गया। फिर भी कभी दरबार में उन्हें देखते ही मेरे वदन में ताकत आ जाती थी। उनकी आँखें अमृत के कुएँ थीं।

"चार साल बीत गये। फिर मैं सहन न कर सकी! डार्टिमो, तुम्हारी सहनशीलता के लिए प्रणाम करती हूँ। तुमने मुझसे प्रेम किया है। आठ साल तक सह सके। आजीवन सह सकते हो। अतः तुम्हारे प्रेम में और मेरे प्रेम में जमीन-आसमान का फरक है। भैया, तुम प्रेमी हो मुझमें सहन-शक्ति नहीं है।"

हेलीना थोड़ी देर तक कुछ नहीं बोल सकी। फिर धीरे-धीरे कहने लगी--"एक दिन मैं सम्राट् के शयन-मंदिर के पास गयी। राजमहल की स्त्रियाँ उस दिन कोई उत्सव मना रही थीं। सम्राट् ने सोचा--महाराज्ञी आज मेरे पास आयेंगी। महाराज्ञी ने कहला भेजा कि आज मैं आऊँगी। बहुत रात गुजरने के बाद भी उसे जाने के लिए मौका नहीं मिला। उसने मुझे आज्ञा दी कि तुम महाराज से कहो कि मैं नहीं आ सकती। उसी वक्त मैं सम्राट् के कमरे के पास गयी। सम्राट् सो रहा था। मेरे मन में एक कामना पैदा हुई। मैंने मणिदीप पर छोटा-सा कपड़ा ओढ़ा दिया। कमरे भर में अँधियारी फैल गयी। मेरे आलिंगन के दबाव में और मेरे चुंबनों की गर्मी में सम्राट् जाग पड़ा। उसने समझ लिया कि मैं सम्राज्ञी नहीं हूँ।

"दूसरे ही क्षण मैं दीप के उजेले में खड़ी थी। सम्राट् को मुझ पर प्रेम नहीं था फिर भी वह दयालु हैं। मैंने जो कसूर किया है उसकी सजा फाँसी है; डार्टिमो! सम्राट् छोड़ सकता है; मगर सम्राज्ञी नहीं छोड़ सकती।

"मेरी नौकरी गयी। एक हफ्ते में अपनी पुत्री को ससुराल भेजने की तरह सम्राट् और सम्राज्ञी ने मुझे विदा कर दिया। मेरे साथ सैनिक भी भेजे गये। दो ऊँटों पर बहुत सा धन भी भेजा गया।"

अँधेरा फैल गया; गिरि के शिखर से सुदूर एक छोटे से पेड़ पर उल्लू बोल पड़ा।

देखा-सुना (७)

श्री मनमोहन गुप्त

हरेन दादा के हथकण्डे

बाबा स्मशाननाथ की बात तथा उनकी महिमा ने गौड़जी के ऊपर भी कम प्रभाव नहीं किया। शाम को गौड़जी मुझको साथ लेकर हरेन दादा के पास पहुँचे। हरेन दादा के लिए कोई नई बात नहीं थी। यथायोग्य प्रारम्भिक बातें समाप्त होने के बाद बाबा स्मशाननाथ पर जाकर बात अटकी। उनके विषय में ही अनेक बातें हुईं। भक्ति-गद्‌गद चित्त से गौड़जी सुनते जाते थे एवम् हरेन दादा सुनाते जाते थे कि बाबा स्मशाननाथ की महिमा से कैसे-कैसे संकटों से लोगों को राहत मिली। गौड़जी बार-बार सिर हिलाते जाते थे। दीर्घ साँस लेकर कभी कहते 'क्यों नहीं', और कभी 'अवश्य! अवश्य हुआ होगा!' कह कहकर हरेन दादा की एक-एक बात पर विश्वास प्रगट करते जाते थे।

गौड़जी के सामने भी एक समस्या है; इसका आभास जरा-सा हरेन दादा को होते ही इन्होंने और भी अनेक गुण बाबा स्मशाननाथ के बताये। साथ-साथ बाबा स्मशाननाथ की प्राप्ति का इतिहास जब बताने लगे तो मुझसे भी अधिक तन्मयता से गौड़जी सुनने लगे। हरेन दादा ने सिर पर हाथ लगाकर भक्ति-गद्‌गद कंठ से प्रणाम करते हुए कहा—"यह तो कहिए कि बचपन से मैं बड़ा साहसी था। इसीसे इन्हें प्राप्त कर पाया, अन्यथा भला इन्हें कौन पा सकता था। जिन औघड़ बाबा ने इनका पता बताया था उनकी अवस्था दो सौ तिहत्तर साल की थी। वे एक बार किसी अज्ञात स्थान से दण्डकारण्य में प्रगट हुए। उन दिनों मैं मध्यभारत में पिल्ले नामक एक जादूगर की खोज में गया हुआ था। पिल्ले तो नहीं मिला। पता नहीं कि कहाँ चला गया था। मारे दुःख के मैं शहर से बाहर, घोर जंगल में चला गया। फल-मूल खाता और जंगलों में ही घूमता रहता। रात को वन्य पशुओं के भय से पेड़ों पर चढ़कर रात काटता। इसी प्रकार से प्रायः सोलह-सत्रह दिन घूमता रहा। एक रात की बात है। मैं पेड़ पर बैठा हुआ था। कुछ ही दूर पर मुझे ऐसा लगा कि जैसे कैम्प-फायर की तरह आग जल रही है एवम् कोई कुछ मंत्र पढ़ पढ़कर कुछ कर रहा है। पेड़ पर से उतरा। आहिस्ते-आहिस्ते उधर बढ़ा। देखा कि कोई विशालकाय औघड़ हवन कर रहा है। मैं छिपकर बैठा रहा। बड़ी देर तक हवन चलता रहा। इतने में चारों ओर से ऐसा लगा कि जंगली जानवर भागते हुए आ रहे हैं। मैं पेड़ पर चढ़ गया। बस मैं चढ़ा ही था कि उस हवन-स्थल के पास चारों ओर से आकर शेर, सियार, भालू, जंगली सुअर, बड़े-बड़े नाग; और भी न जाने कौन-कौन आ गये। सब लोग, हवन-कुण्ड की ओर मुँह किये बैठ गये। तब भी औघड़ बाबा मंत्र उच्चारण करते ही रहे। काफी समय तक यही चलता रहा। बाद में औघड़ बाबा ने बगल में ऊँचे पर रक्खे हुए बाबा स्मशाननाथ को प्रणाम किया। फिर अपने कमण्डल से पानी लेकर सब पर छिड़का। साथ-साथ सबकी मुक्ति हो गयी। यानी सब को बात करने की शक्ति प्राप्त हुई। फिर स्मशाननाथ ने पूछना आरम्भ किया कि कौन क्या चाहता है? सुनकर आश्चर्य होगा कि जिसकी जो बनने की इच्छा होती थी वह वही बनता जाता था और चला जाता था।"

बीच में ही गौड़जी ने पूछा—"कोई आदमी भी बना?"

बिना किसी हिचकिचाहट के हरेन दादा ने कहा—"भला, इतनी सुविधा में कौन आदमी बनना चाहता? सब देव-देवी बनकर चल दिये।"

गौड़जी पूर्ण विश्वास के साथ सब सुन रहे थे और मैं दादी की कहानी से भी अधिक रुचि के साथ सुन रहा था। मेरे लिए विश्वास अविश्वास का प्रश्न ही नहीं था; कारण दादी की इससे भी अधिक अनहोनी बातों को सत्य मानता था। धीरे-धीरे गौड़जी को बाबा स्मशाननाथ अत्यन्त जाग्रत देवता हैं, इसका विश्वास तब हो गया जब हरेन दादा ने कहा—"होम आदि खतम करके वह औघड़ उन जानवरों के मृत देह, यानी छोड़े हुए कलेवरों को उसी होमाग्नि में जला जलाकर देखते-देखते चट कर गया। फिर इसी बाबा स्मशाननाथ की खोपड़ी में सुरा डाल डालकर पी। खूब नशे में जब चूर हो गया तो सो गया। ज्यों ही उस औघड़ की जंगल को कँपानेवाली नाक की आवाज होने लगी, त्यों ही म उतरकर बाबा स्मशान-

नाथ को लेकर चम्पत हो गया। जब कुछ दूर भागा तो मैंने बाबा स्मशाननाथ से प्रश्न किया 'कोई अन्याय तो नहीं किया ?' आशीर्वचन देते हुए बाबा स्मशाननाथ ने कहा, 'मुझे तूने उस औघड़ के हाथ से छुड़ाया, इससे बढ़कर मेरा कोई उपकार नहीं हो सकता है। अब तू मुझसे जितना चाहे जन-कल्याण कार्य करा सकता है। अभी ब्रह्मा के एक वर्ष तक मुझे जन-कल्याण कार्य करना है। तब मुझे देवताओं के बीच, देवलोक में स्थान मिलेगा।' इतना कहना था कि मैंने प्रतिज्ञा की कि आपको मैं उसी काम में लगा रखूँगा। अपनी स्वार्थ-सिद्धि में न लगाऊँगा। बस, तब से मैं उन्हें जनकल्याण कार्य में ही लगाता हूँ। अन्यथा जो चाहूँ वही करा सकता हूँ। कहावत है न 'गँगुआ तेली और राजा भोज'; उसी गँगुआ तेली की ही यह खोपड़ी है। यह तो सभी जानते हैं कि गँगुआ राजा भोज जैसे बड़े जादूगर के साथ होड़ में ही मुर्दे की खोपड़ी बनकर स्मशान जगाने लगा। जादू के कई नाम हैं। इन्द्रजाल, भोजबाजी, भोज-विद्या आदि। राजा भोज ने गँगुआ तेली को परास्त किया तभी से जादूगरी का नाम भोज-विद्या हो गया। उसी गँगुआ तेली की खोपड़ी को मैंने 'बाबा स्मशाननाथ' नाम देकर रक्खा है। मेरे सब कामों में वे ही सहायक हैं।"

इसी प्रकार से जब हरेन दादा ने बाबा स्मशाननाथ की रामकहानी को समाप्त किया तब गौड़जी ने कहा--"तो बेटा मेरा भी एक काम बना दो।"

हरेन दादा ने कहा--"कोई बात नहीं। आप स्वयं आकर उनसे बातें कर लें। आज तो रविवार है। शनिवार तथा मंगलवार को मैं विशेष रूप से बाबा को जगाता हूँ। आप मंगल को आधी रात बीते, यानी तृतीय प्रहर में आइयेगा। हाँ, घर से ही घी के प्रदीप तथा धूप जला कर चलियेगा। यों तो उल्टे पाँव आने का नियम है। आपके लिए विशेष प्रार्थना करूँगा। आप सीधे पाँव ही आवें। औरतों के लिए, कैसे भी आवें बाधा नहीं।"

मंगल की रात को गौड़जी आयेंगे, ठीक करके, चल दिये। मैं वहीं रह गया। कुछ समय के उपरान्त मैं भी घर चला गया। दूसरे दिन लालपरी भाभी को एक-एक बात सुनाई। सब बातों को सुनकर उन्होंने कहा--"तो क्या सचमुच ससुरजी जायेंगे ?"

कहने सुनने की क्या बात थी; बुधवार को स्वयम् भाभी ने ही गौड़जी के जाने की तथा चुपचाप वापस होकर सोने की बात सुनाई। उसी दिन से गौड़जी के घर में नियमित रूप से बच्चों में सवा पाव गुड़, कभी चीनी का बताशा बँटने लगा। बाँटनेवाले स्वयम् साहब दादा, यानी गौड़जी के पुत्र होते थे। पिता-पुत्र में क्या बातें हुईं या कब हुईं इसे किसीने न जाना। यहाँ तक भाभी भी न जान पाई थी। कम से कम मुझसे तो यही कहा।

ऐसे भी प्रायः दस पन्द्रह-दिन बीत गये। भाभी इन दिनों बहुत अन्यमनस्क रहा करती थी। एवम् जब कभी बातें करती थीं तो बाबा स्मशाननाथ के विषय में ही किया करतीं। इसी प्रकार से और भी कई दिन बीते। एक दिन भाभी ने आहिस्ते से, जब कोई घर में नहीं था तो पूछा--मेरा एक काम करेगा ?

भला मेरे वश का कोई काम हो, और मैं न करूँ? तुरन्त राजी हो गया। इधर-उधर देखकर और आहिस्ते से पूछा--तू किसी से कहेगा तो नहीं ?

सर हिलाकर मैंने कहा--ऊँ हूँ !

तब भाभी ने हाथ बढ़ा दिया। कहा--अच्छा मेरा सीना छूकर कह।

मैंने सौगन्ध खाते हुए कहा--मेरी अम्मा की कसम .... किसी से न कहूँगा।

यद्यपि उन बातों को आज पाठकों को सुना ही रहा हूँ। किन्तु कसम धराई हुई बातें अब तक बँधी थोड़े ही रहती हैं ? फिर जब कि अम्मा को मरे चालीस वर्ष के करीब हो गये।

हाँ, भाभी ने तब कहा--तू अपने हरेन दादा से पूछ सकता है कि एक औरत है .... जिसकी अवस्था तेईस-चौबीस वर्ष की है ... अभी तक कोई बच्चा नहीं हुआ .... इसमें बाबा स्मशाननाथ कुछ कर सकते हैं कि नहीं ? .... हाँ, मगर उनसे यह नहीं कहना कि किसने पुछवाया है। .... बिल्कुल इशारा भी न करना कि मैंने पुछवाया है। .... समझा ?

खूब समझ गया था। मैंने कहा--पूछ आऊँ ?

--अभी कोई जल्दी नहीं है। फिर पूछ लेना .... और अभी तो वे पढ़ने गये होंगे।

मैं तो भूल ही गया था कि आज रविवार नहीं है और न तो कोई छुट्टी। किन्तु भाभी की बात गठिया ली।

न को प्रथम अवसर में ही जाकर हरेन दादा से मिला। न बातों को कहा। सुनकर हरेन दादा ने न मालूम तनी बन्ध्या औरतों की कहानी सुनाई एवम् बाबा शाननाथ ने उन्हें राजपुत्र जैसे सुन्दर-सुन्दर वीर्यवान प्रदान किये, खूब बढ़ा-चढ़ाकर सुनाया। भाभी से कर मैंने अपनी योग्यतानुसार और बढ़ा-चढ़ाकर ाया। भाभी ने खूब ध्यान से सुना। दो-तीन दिनों क बराबर भाभी यही चर्चा करती थीं। साथ-साथ मुझे ना प्रकार से जि़रह करके जान लेती थी कि मैं और किसी से इन बातों की चर्चा तो नहीं करता? इधर मुझसे कुछ अधिक प्रेम भी करने लग गयी थीं। यानी, कारण-अकारण कचालू, दही-बड़े आदि खाने के लिए पैसे आदि देना। एक दिन तो एक चवन्नी ही हाथ में धर दी, ब कि होली-दीवाली जैसे बड़े त्योहारों में भी घर से भी दुअन्नी से अधिक न मिली हो। अवश्य उन दिनों वन्नी में सोलह प्रकार की मिठाई खा सकता था। मिठाई ा अर्थ मलाई की गिलहरियाँ नहीं, तथापि पेड़े आदि तो से के दो वाले बनते ही थे। दूध दो आने सेर हलवाई ते थे। चवन्नी का अर्थ आजकल के डेढ़ रुपये से कम था। एक छोटे से साधारण गृहस्थ के बच्चे को एक मूचे रुपये से अधिक देकर कुछ बातों को दफनाने में लाल-री जैसी भाभी, शायद अब भी समर्थ हों। फिर, ऊपर भाभी के प्रति मेरा आकर्षण भी कम न था। किसी कार से भाभी का नुकसान हो, मेरे लिए असह्य था।

चार-छः दिनों में जब भाभी को विश्वास हो गया कि मुझसे उन्हें कोई खतरा नहीं, तब उन्होंने कहा--अपने रेन दादा से पूछ सकता है कि यदि कोई औरत, बच्चा चाहे तो उसे क्या करना चाहिए?

--हाँ, हाँ, आज ही पूछ आऊँगा।....और बिल्कुल ता भी न चलने दूँगा कि तुमने कहा।

विश्वास दिलाकर हरेन दादा के पास गया। बिल्कुल भाभी ने जो पूछा था, उसी प्रश्न को उगल दिया। रेन दादा ने प्रश्नकर्त्ता को जानने की चेष्टा नहीं की, मुझसे कुछ भी न पूछा। आँखें मूँदकर थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर वैसे ही आँख मूँदे तर्जनी हिलाते हुए कहा--बच्चा; यह बात है! ....तुम जानना चाहती हो? ...हाँ, हाँ, तुम्हारे लिए तो बच्चा लिखा ही हुआ है.. मगर हाँ....तुमने जो पूर्वजन्म में कर्म किया उसके प्रायश्चित्त में इस जन्म में कुछ कर्म करने पड़ेंगे। पूछो बाबा स्मशाननाथ से। वे तुम्हारे ही कान में कहना चाहते हैं....हाँ...हाँ....हिम्मत करो...बस बस.. जरा-सी हिम्मत करके आओ....और बाबा से पूछो.."

कहते कहते कुछ देर तक और मौन रहे। फिर नशीली आँखें बनाकर कहा--"जा। उनसे कह दे कि अवश्य होंगे....बाबा स्मशाननाथ से उन्हें बातें करने के लिए कह।"

जिसे कि मैंने पहले ही जान लिया था। मैंने भाभी से जाकर, अपनी ओर से और इतना नमक-मिर्च मिला कर कहा कि मेरे सामने बाबा स्मशाननाथ ने हरेन दादा से बातें कीं एवम् उसका सारांश यही है कि जिसे बच्चा चाहिए वह स्वयम् जाकर बाबा स्मशाननाथ से बातें कर ले।

घुमा-फिराकर ज्यों-ज्यों भाभी प्रश्न करने लगीं त्यों-त्यों नमक-मिर्च की मात्रा और बढ़ने लगी। यह तो मानी हुई बात है ही कि एक झूठ को छिपाने के हेतु और दस झूठ कहने ही पड़ते हैं। अन्त तक मैं भी यहाँ तक पहुँच गया कि बाबा स्मशाननाथ की बातें मैंने अपने कानों से सुनीं। केवल यही नहीं, बल्कि यह भी जोड़ दिया कि हरेन दादा ने प्रश्नकर्ता को देख भी लिया। फलतः भाभी ने भी आहिस्ते-आहिस्ते कहना आरम्भ किया--"हाँ, ऐसे लोगों से कोई बात छिपी थोड़े ही रहती है। ये लोग तो सिद्ध हैं न? ये आँखें बन्द करके त्रिभुवन की बात जान लेते हैं।"

लालपरी भाभी का प्रायश्चित

दूसरे दिन जब भाभी के यहाँ पहुँचा तो देखा कि भाभी का चेहरा एकदम उतरा हुआ है। वह लेटी हुई थी। आँखें लाल लाल। बिल्कुल थकी-सी लग रही थीं। मैंने कहा--भाभी, तुम तो कैसी-कैसी लग रही हो।

भाभी चुप रही। मैंने बड़ी आतुरता से फिर कहा--क्या हो गया भाभी...कुछ बीमार हो क्या?

आहिस्ते से हाथ बढ़ा दिया। मैं पास खिसक गया। मुझे छाती से लिपटा लिया एवम् फूट-फूट कर रोने लगी। मैं चुपचाप उनकी गोद से सटा हुआ बैठा रहा। बहुत देर तक रोई। फिर भी चुप नहीं हो रही है, देखकर मैंने उन्हींके आँचल से उनकी आँखें पोंछते हुए पूछा--क्या हो गया भाभी....क्या हो गया?

आज यह पहला दिन था जब कि मैंने जीवन में प्रथम बार अनुभव किया कि अम्मा की गोद की-सी शीतलता अन्य नारी की गोद में भी है। बैठे-बैठे भाभी के बगल में ही लेट-सा गया। दोनों हाथों से भाभी को अपने छोटे से वक्ष से लगाते हुए एक दीर्घ साँस ली। मेरी भी आँखें गीली हो उठीं। भरी हुई आवाज़ से पूछा--भाभी ! .....बड़ा कष्ट ?

--हाँ भइया ....ऊह !

दबी हुई, लड़खड़ाती ज़ुबान से भाभी ने उच्चारा। मैं और पास खिसक गया। भय के मारे या अपने को छिपाने के लिए जिस प्रकार से बच्चे माता की कमर से लिपटकर उनकी साड़ी के अन्दर अपना सारा शरीर, समेटकर छिपाने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार से मैंने भी अपने को भाभी के शरीर में छिपा-सा लिया। भाभी ने भी मुझे और पास सरका लिया। बहुत देर तक दोनों उसी प्रकार से पड़े रहे। पड़े ही पड़े कब मेरी आँखें लग गयीं एवम् कब मैं सो गया इसका पता नहीं। जब जगा तो देखा कि अम्मा की जगह भाभी के स्तनों पर मैं हाथ धरे लेटा हूँ और भाभी भी घोर निद्रा में निमग्न होते हुए भी मुझे छाती के पास, करवट लेकर समेट रक्खा है।

जगते ही, हाथ तो हटा लिया किन्तु चुपचाप पड़ा रहा। मन ही मन कुछ झेंप भी आ गयी थी; कारण सोते सोते में अम्मा के स्तन टटोलने की आदत इस अवस्था तक नहीं गई थी। देखकर स्वयं अम्मा ने भी कितनी ही बार झेंपाया था। किन्तु करता भी तो क्या करता। कोई जगने के बाद थोड़े ही वैसा करता था ! यानी स्वभाव से मजबूर था। साथ-साथ, बात यह भी थी कि अम्मा का भी मैं ही अन्तिम बच्चा था जिस कारण से मेरे जन्मसिद्ध अधिकार को छीननेवाला भी कोई न था।

हम दोनों, यानी भाभी और मैं, उसी प्रकार से पड़े ही रहे कि खुले दरवाजे का लाभ लेकर पता नहीं कि कहाँ से शिबू की दादी आ धमकी। एकदम हम लोगों के सर पर आ पड़ी थी। यह शिबू की दादी मुहल्ले की उन औरतों में थीं कि जिनका काम ही होता है मुँह पर खुशामद एवम् पीठ पीछे बुराई। भाभी की नींद की जरा भी परवाह किये बिना बोली--"अरे बाप रे तीन-साढ़े तीन बजनेवाला है....अभी लड़का मेरा थका-मांदा दफ्तर से आनेवाला है...क्या हो गया बहू...अभी चूल्हा तक नहीं सुलगा !"

धड़-फड़ाकर भाभी उठ बैठीं। आँखें मलती हुई बोली--"हाँ...देर तो हो गयी...कल रात को ज़रा नींद नहीं आई थी....उसी से सो गयी थी।"

सुनकर शिबू की दादी ने कहा--"अच्छा...तबीयत खराब है।....तो यह बात थी तो मुझे क्यों नहीं खबर कर दी ? मैं ही आकर सब कर देती। और तबीयत अब भी ठीक न हो तो लेटी रहो। मैं सब किये देती हूँ।"

तब तक भाभी स्वयम् ही पलंग से नीचे उतर चुकी थीं। रसोईं की ओर बढ़ती हुई बोलीं--नहीं ...नहीं... ठीक है।

शिबू की दादी ने मेरी ओर आँखें बड़ी-बड़ी करके देखा। फिर पूछा--"तू यहाँ क्यों सो रहा था? अपने घर में क्या जगह नहीं है? और जब सब लोग सोते हों तो तू धप् से किसीके घर घुस क्यों जाता है ?"

मेरा पारा चढ़ गया। मैंने कहा--"भग! तेरे बाप का घर है ?"

कहते ही कहते एकदम चम्पत। करकराकर वह चिल्ला पड़ी। कहने लगी--"देखा बहू ? जितना बड़ा मुँह नहीं उतनी बड़ी बातें ! मुझे 'बाप' दादों का उलहना देते हुए भागा ? मैं कहती हूँ कि सावधान ! कहीं बकस-ओकस खुला मत छोड़ना। नहीं तो एक दिन रोना पड़ेगा।"

आगे कुछ कहने से पहले ही भाभी रसोईं की ओर जाती हुई बोलीं--छी छी...यह क्या कहती...

तब तक मैं घर पहुँच गया था। पता नहीं कि आगे क्या बातें हुईं। कोई घण्टे भर के बाद, जब कि मैं लिखाई में व्यस्त था, शिबू की दादी के गले की आवाज़ हम लोगों के कमरे के दरवाजे के पास सुनायी पड़ी। मेरे कान खड़े हो गये। यों उनकी शिकायत या प्रशंसा की, मोहल्ले की कोई भी परवाह नहीं करता था, कारण सभी उन्हें जानते थे। फिर भी मेरे कान खड़े हो गये। अम्मा उस समय रसोईं के दरवाजे के पास बैठीं तरकारी काट रही थीं, शिबू की दादी ने पूछा--अच्छी तो हो बहू ?

अम्मा ने कहा--आओ बुआ। बैठो।

—"क्या बैठूँ बहू ! अभी बहुत काम पड़े हैं। घर जाता है। मगर मैंने कहा कि . . . क्या बताऊँ कहे बिना रहा नहीं जाता . . . यही . . ."

कहते-कहते आवाज़ बिल्कुल धीमी पड़ गयी। उधर शिबू की दादी की आवाज़ धीमी पड़ गयी और इधर मैं खड़ा। दरवाजे की आड़ से कान लगाकर सुनने लगा। वह कहने लगी—"यही डाक्टर के घर की बहू की बात . . . अरे भगवान सबकी गोद भरने लगे तो बन्ध्या शब्द दुनिया से उठ न जाता . . . मैंने कहा कि जब भगवान् ने ही तेरी गोद न भरी तो दूसरों के बच्चों से तेरी गोद थोड़े ही भर जायेगी ! . . . नहीं बाबा . . . मैंने बहुत औरतें देखीं मगर दूसरों के भाग्य पर ईर्ष्या करनेवाली ऐसी औरत मैंने कभी नहीं देखी . . . यह तो कहो कि आज मेरी आँखें पड़ गयीं। तुम्हारे लड़के को बिलकुल अपने बच्चे का-सा लिपटाये पड़ी रही।. . .अरे ! अनेक जनम की तपस्या से एक लड़का जनमता है . . . तो तू, जीवन भर की बन्ध्या . . . तू क्यों उनके बच्चे को छाती से लगाये सोती रहती है ? . . . मैं सच कहती हूँ बहू . . . अब भी अपने बच्चे को खींच ले . . . नहीं तो फिर रोना पड़ेगा . . . तारबाबू की बहू को समय रहते मैंने मना किया था . . . सुना नहीं . . . अब छाती कूटती फिर रही है।"

आगे कुछ कहने का मौका न देकर अम्मा ने कहा—"जानती ही हो बुआ, कैसा दुर्दान्त है छोटका ? ऐसे दो घड़ी किसीके घर में घुसा तो रहता है। मैं निश्चिन्त रहती हूँ। नहीं तो पीछे-पीछे भागना पड़ता है। पता नहीं कि किस दिन हाथ-पाँव तोड़ बैठे। या तो पेड़ पर या छत की दीवार के अलावा उसके लिए बैठने की कोई जगह ही नहीं है। जब तक उनके डर से पढ़ता-लिखता तब तक ठीक है नहीं तो 'अरे उतर ! अरे न चढ़ !' करते ही मेरा दिन बीतता है। उनसे कहती हूँ कि ढेर ढेर पढ़ने और लिखने को दे जाया करो तो वे कहते हैं कि आखिर एक ही दिन में क्या पंडित बनाना है ? यों ही उसे उसकी उमर के अनुपात से चौगुना पढ़ने और लिखने को दे जाते हैं। कहते थे कि मैं पढ़ाते अघाता हूँ, वह पढ़ते नहीं अघाता। कह रहे थे कि मैंने सत्रह साल की अवस्था में दसवाँ किया और यह लगता है कि तेरहवें साल में दसवाँ करेगा और सत्रहवें में तो बी० ए० पास कर लेगा।"

भला, इन सब बातों से शिबू की दादी को क्या करना था। वह और डटकर बैठती हुई बोलीं—"मेरा क्या ? मैंने अपना कर्तव समझकर तुमसे कहा। अब जैसा चाहो वैसा करो। . . . कहती हो कि सम्हाल नहीं पाती हो ! तो गिरधर गोपाल की पाठशाला में भर्ती क्यों नहीं कर देती हो। उसकी बेंत के भय से एक-एक लड़का सीधे चलता है। मज़ाल है कि किसीको कोई कुछ कह भी देवे ? एक दिन चरना, . . . वही दामोदर का लड़का मुझे मुँह बिचकाकर भागा तो गिरधर गोपाल ने ईगारह बेंत लगाये। तब से उस पाठशाला का एक भी लड़का मुझसे कभी कुछ नहीं कहता और न तो मेरी ओर ताकने की हिम्मत करता है। ऐसे बज्जात लौंडों को तो गिरधर गोपाल के हाथों में ही सौंपना चाहिए। अच्छा आने दो मास्टर को। देखूँ कैसे नहीं मानता ! राजी करके, मनवा कर, तब मैं घर जाऊँगी। . . . जहाँ तक फीस से सम्बन्ध है . . . वह भी नाममात्र की। मैंने मना किया, नहीं तो शिबू के बाप तो शिबू को ही भर्ती करा देते। सो भी . . . केवल मैं डर गयी . . . । यों शिबू मेरा बड़ा अच्छा है . . . फिर भी गिरधर गोपाल के यहाँ रहकर कहीं कोई शैतानी की तो। . . . बाप रे ! गिरधर गोपाल कैसे बेंत चलाता है !"

कहते-कहते वह सिहर उठी। इसी प्रकार के नाटकीय ढंग से अनेक बातें सुनाती जाती थीं एवं घूम-फिरकर मेरे भविष्य की चिन्ता में कह उठतीं—"नहीं तो इसकी कोई व्यवस्था करो।"

यानी अम्मा को विश्वास दिलाना चाहती थीं कि यदि अभी से तुम अपने लड़के की भलाई न सोचोगी तो तुम्हारा लड़का बह जायगा। इतने में उसके 'मास्टर', यानी बाबू भी आ गये। बाबू को देखते ही रुआँसा चेहरा बनाकर बोल उठीं—"आओ मास्टर ! . . .मैं कब से तुम्हारा रास्ता देख रही थी। आखिर तुम लोगों ने मन में क्या सोच रक्खा है ?

अवाक् होकर बाबू ने कहा—"क्यों खैरियत तो ? क्या हो गया बुआ ?"

—"होगा क्या ! मेरे लिए होने में बाकी ही क्या रह गया ? जब छोटे-छोटे लड़के मुझसे बाप उठाकर बातें करने लगे तो फिर इस जीवन में बाकी ही क्या रह गया।"

कहते-कहते आँखें दबाकर फूट-फटकर रोने लगीं। किसीको समझने में बाकी नहीं रहा कि इस अपराध को करनेवाला वह नराधम लड़का कौन होगा। मैं तो झटपट जाकर अपनी लिखाई में लग गया। बाबू ने आवाज लगाई—छोटका !

मैं लिखने के काम में इतना व्यस्त सा हो गया कि जैसे बाबू की आवाज सुनी ही नहीं। किन्तु मेरा नाम लेकर उस प्रकार से पुकारते सुनकर ही उधर की कोठरी में बैठी माला जपती हुई मेरी अपनी दादी के हाथ से माला छूट गयी। वह जल्दी से बाहर निकल आईं। अम्मा का भी चेहरा उतर गया। वह बोल उठीं—"आखिर अभी तो वे स्कूल से थकेमाँदे घर आये। तुम कैसी हो बुआ ? थोड़ी देर में शिकायत करती तो क्या होता !"

"हाँ, हाँ, तुम लोग मुझे मार डालो। सड़क की कुतिया की जितनी इज्ज़त है, उस भर की भी तो मैं नहीं रह गयी। अरे मेरा क्या होगा रे !"

कहते ही कहते शिबू की दादी छाती कूटने लगी। बाबू भी बड़े असमंजस में पड़ गये। आहिस्ते-आहिस्ते अपने कमरे की ओर चले गये। मेरी दादी तब तक हाथ में माला लिये मेरे पास पहुँच गयी थीं। मुझे लिखने में तन्मय देखकर घोषणा के रूप में कहने लगी—"यह तो यहाँ बैठा लिख रहा है। आज तो जब से मास्टर स्कूल गया तब से लगता है कि यह अपनी जगह से उठा भी नहीं . . . तुम बेकार की शिकायत करती हो।"

घोषणा समाप्त करके दादी बाहर निकल आई एवं शिबू की दादी के उद्देश्य से कहा—"आदमी आदमी के घर आता है; दो घड़ी सुख-दुख की बातें करने कि लड़कों को मार खिलवाने ? जब देखो तब वही बच्चों की शिकायत ? जैसे कि दुनिया में और कोई बात ही न हो। अरे बाबा, न हो तो उमर बीती जाती है। ठाकुरजी का नाम ही लो !"

जैसे गरम तवे पर पानी की बूंद पड़ी हो। शिबू की दादी ने करकराकर कहा—"अच्छी बात है. . .लो मैं चली। तुम सबको मेरा आना-जाना पसन्द नहीं है तो यह मैं कान पकड़ती हूँ कि कभी इस घर में पैर रक्खूँ तो अपने मरे पति का ख़ून पिऊँ !"

बाबू उधर से निकल आये, साथ-साथ घर भर के अन्य किरायेदारों की औरतें भी पहुँच गयीं। बाबू ने फिर पुकारा—छोटका !

भला मैं पूर्ण मनोनिवेश करके लिखाई में लगनेवाला सुनूँ तब न ! मेरी दादी ने उत्तर दिया—"क्या है ? उसे बार-बार क्यों पुकार रहा है ? वह बेचारा तो तन्मय होकर पढ़ने-लिखने में लगा है। आखिर हुआ क्या ?"

मेरे कमरे की ओर बढ़ते हुए बाबू ने कहा—"क्या हुआ बताता हूँ . . ."

बस बाबू का मेरे कमरे की ओर बढ़ना था कि अम्मा की हँसिया वहीं पड़ी रही। बाबू के बगल से झपटती हुई आकर मुझे गोद में उठा लिया एवम् तेज कदम बाबू के बगल से बाहर निकलने लगी। झट बाबू ने मेरा हाथ पकड़ लिया। अम्मा को कड़कते हुए बोले—"छोड़ो . . . तुम इसे जहन्नुम में पहुँचा कर तब छोड़ोगी। . . . आज मैं इसे ठीक करके छोड़ूँगा . . ."

इधर बाबू का कथन अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि बाबू के हाथ एकदम मेरे कानों पर पड़ गये। मैं अम्मा की गोद से छूट गया। मूक अम्मा; अभी अभी बन्द कमरे में पकड़ी हुई कबूतरी जैसी इधर-उधर यों ही झपटने लगीं। दादी के साथ तो तब तक शिबू की दादी का सम्मुख समर छिड़ चुका था। किराये-दारों की औरतों में कुछ आँखों में आँखें मिलाकर, दूसरों की आँखें बचाकर, आँखों से ही, दादी के समर्थन में तो कुछ शिबू की दादी के समर्थन में, जुट गई थीं। झगड़ा बढ़ गया। तक तब दादा, यानी बड़े भाई भी स्कूल से आ गये थे। अभी, बात क्या है, समझने की चेष्टा कर ही रहे थे कि बाहर के दरवाजे से उन्हें लालपरी भाभी आती हुई दिखाई पड़ीं। वे उधर इशारा करते हुए बोले—अरे डाक्टर साहब की बहू !

सबकी निगाह उधर गईं। डाक्टर साहब की बहू का अर्थ, उन दिनों, उस इलाके में, किसी छत्रपति राजा की रानी से कम न था। आज तक वह कभी किसीके घर नहीं गई थीं। सब उन्हींके पास जाकर उनकी खुशामद में तथा प्रशंसा में कुछ न कुछ कह आती थीं। सब लोग सन्न रह गयीं। वह सीधे, मेरे कमरे की ओर बढ़ीं। अभी बाबू की 'स्टील की सँड़सी' जैसी उँगलियाँ मेरे कानों को पकड़े ही हुए थीं। जरा-सा सर का कपड़ा ठीक करके वह दनदनाती हुई मेरे पास चली आयीं। देखकर बाबू की भी नसें ढीली पड़ गयीं। उन्हें भागने का पथ नहीं मिल रहा था। वे मुझे छोड़कर बगल हो गये। भाभी ने मुझे गोद में उठा लिया। बनरिया के बच्चे की तरह मैं भाभी की छाती से चिपक गया। सप्रशंस दृष्टि से अम्मा ने भाभी की ओर देखा। भरी हुई आवाज़, उनके अन्तर्कण्ठ से निकली—"ले जा बहन ! . . . इसकी तू ही रक्षा कर !"

भाभी, जैसे आई थीं, वैसे ही स्थिर, किन्तु कठिन कदम से सब की आँखों के सामने से मुझे छीनकर बाहर निकल गयीं। केवल अम्मा पीछे-पीछे उन्हें ड्योढ़ी नँघाने आईं। जब अम्मा ने समझ लिया कि मेरा बच्चा निरापद स्थान में पहुँच गया, तो वापस आकर अपने हँसिये को सम्हाल लिया। मुहूर्त्त में सब इधर-उधर हो गये। किसीमें शक्ति नहीं थी कि कोई किसी की ओर ताके। सब जैसे हारकर झेंप गये थे। बिल्कुल शान्त। शिबू की दादी का पता भी न चला कि वह किधर अंतर्ध्यान हो गयी।

क्रमशः

दीपार्णव––गुजराती अनुवादक, स्वपति श्री प्रभाशंकर ओघड़भाई सोमपुरा। कपड़े की जिल्द, बड़ा आकार। पृष्ठ संख्या ७६+४८८। कई सौ चित्र। मूल्य, २५) : प्राप्तिस्थान, श्री भारतीय विद्याभवन, चौपाटी रोड, बंबई ७। (लेखक. गोरावाडी, पालीताना, सौराष्ट्र से भी मिल सकता है।)

भारत के स्थापत्य की परम्परा प्रायः ५००० वर्ष पुरानी है। संस्कृत में भवन-निर्माण कला के अनेक प्राचीन ग्रंथ हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध मानसार है जिसका अँगरेजी अनुवाद डा० प्रसन्नकुमार आचार्य ने किया था। इस विषय की प्रमुख महत्त्वपूर्ण प्राचीन पुस्तकों में विश्वकर्माकृत 'दीपार्णव' भी है। पुराणों के अनुसार विश्वकर्मा प्रभास के पुत्र और भृगुऋषि के भागिनेय थे। श्री सोमपुरा जिस वंश में उत्पन्न हुए थे, उसके मूल पुरुष विश्वकर्मा माने जाते हैं। उनके वंश में शतियों से स्थापत्य की विद्या सुरक्षित है। वे स्वयं भी उत्कृष्ट स्थपति हैं, और प्राचीन शिल्प शास्त्र के सिद्धान्तों के ज्ञान के साथ-साथ उन्हें प्राचीन स्थापत्य के भवनों के निर्माण का व्यावहारिक अनुभव भी है। राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में उन्होंने प्राचीन शैली के कितने ही मंदिर बनवाये हैं। सोमनाथजी का नवीन मंदिर उन्हींके नकशे के अनुसार उन्हींकी देख-रेख में बना है। ऐसे व्यावहारिक विद्वान् कदाचित् ही मिलते हैं। अतएव यह बहुत ही उचित हुआ कि उन्होंने विश्वकर्मा विरचित इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का संपादन और गुजराती में अनुवाद किया। यह अनुवाद मात्र नहीं है। यह सुसंपादित है। इसमें स्थापत्य संबंधी पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या कर दी गयी है जिससे पाठकों को इसके समझने में बड़ी सुविधा होती है। ५६० नकशों, फोटोग्राफों और रेखाचित्रों की सहायता से भवनों, मंदिरों, मूर्तियों, मुद्राओं, आयुधों तथा अन्य पारिभाषिक शब्दों के रूपों को समझाया गया है। जो बातें केवल श्लोकों के वर्णनों से समझ में नहीं आतीं, वे इन चित्रों की सहायता से तुरंत स्पष्ट हो जाती हैं। अनुवाद बहुत सरल भाषा में है और मूल श्लोक के नीचे छापा गया है। इस महत्वपूर्ण पुस्तक की प्रशंसनीय विशेषताएं इसका पांडित्यपूर्ण सम्पादन और इसके स्पष्ट और सुंदर चित्र हैं। स्थान-स्थान में पाद टिप्पणियों में उपयोगी तथ्य दे दिये गये हैं। आरंभ में एक पांडित्यपूर्ण भूमिका में विद्वान् सम्पादक ने भारतीय स्थापत्य की एक विहंगम आलोचना प्रस्तुत की है जिसमें इस देश की विभिन्न शैलियों पर ही नहीं, वृहत्तर भारत (जावा, सुमात्रा, चंपा आदि) के भारतीय स्थापत्य पर भी विचार प्रकट किये गये हैं। परिशिष्ट में जैन प्रासादों का भी वर्णन है।

भारतीय संस्कृति, विशेषकर भारतीय कला का, यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण और गौरव ग्रंथ है। भारतीय शिल्पशास्त्र का यह अपूर्व ग्रंथ सभी के लिए संग्रहणीय है, किंतु विश्वविद्यालयों, बड़े पुस्तकालयों में तो इसका होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यह अपने विषय के लिए संदर्भ ग्रंथ का भी काम दे सकता है। जो लोग प्राचीन भारत के शिल्प, कला, स्थापत्य, मूर्तिकला का अध्ययन करना चाहते हों, उनके लिए यह अत्यंत उपयोगी है।

सहकारी खेती :––आचार्य जी० एस० पथिक; प्रकाशक, अशोक पुस्तक मंदिर १६३ महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता ७, सजिल्द; बड़ा आकार। मूल्य, साढ़े चार रुपये।

इस पुस्तक की भूमिका पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है। सहकारी खेती के ऊपर इस समय-भारत सरकार बहुत जोर दे रही है। प्रधान मंत्री को इसमें विशेष रुचि है। किन्तु इस देश में इसका विरोध भी काफी है। स्वतंत्र दल इसका मुख्य विरोधी है। वैसे भी इस देश के किसानों को अपनी भूमि के टुकड़े से परम्परागत मोह है और वे उस पर अपना अधिकार छोड़ने को सहज ही तैयार नहीं हैं। उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री श्री चरणसिंह ने इस विषय पर जो पुस्तक लिखी है उसमें प्रकारान्तर से सहकारी खेती का विरोध है। लोगों को भय है कि सहकारी खेती के अर्थ गाँवों में कम्यूनिज्म–साम्यवाद–का प्रवेश कराना है। इसलिए साम्यवाद के विरोधी इसका विरोध करते हैं। रूस में जब इस प्रकार की सहयोगी खेती आरंभ की गयी तो किसानों ने कड़ा विरोध किया था, और रूस की सरकार बड़े हिंसक दमन के बाद उसे चला सकी। इस दमन में कई लाख किसान मारे गये थे। अतएव सहकारी खेती काफी बदनाम है और लोग उसे शंका की दृष्टि से देखते हैं। आचार्य पथिक की यह पुस्तक सहकारी खेती के पक्ष में है और इसमें उन्होंने उसके विरुद्ध जो तर्क और शंकाएँ हैं, उनका निराकरण करने का प्रयास किया है। आचार्य पथिक मान्य अर्थशास्त्री हैं, और उन्होंने इस विषय का विशेष अध्ययन किया है। अतएव यह पुस्तक प्रामाणिक है और इसमें जो बातें दी गयी हैं उनसे

बहुत-सी बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। उन्होंने उसकी उपयोगिता को इस ढंग से बतलाया है कि उसमें संदेह नहीं रह जाता। रूसी ढंग की सहकारी खेती. और भारत-सरकार द्वारा चलाई जानेवाली सहकारी खेती का अन्तर भी स्पष्ट कर दिया गया है। रूस में वह सरकार के जोर से, किसानों की इच्छा और सहमति के बिना, जबर्दस्ती चलाई गई थी किन्तु विद्वान् लेखक के शब्दों में भारत के "ग्रामों में सहकारी खेती का प्रसार किसानों की स्वीकृति से अभीष्ट है। उसे थोपने का कोई प्रयत्न नहीं है। यह किसानों की स्वेच्छा पर निर्भर है कि वे सहकारी खेती के किसी भी रूप को अपनाएँ।" इसके लिए आवश्यक है कि लगातार कई वर्षों इसके लिए गाँवों में प्रचार किया जाय जिससे किसानों का मत परिवर्तन हो। सैकड़ों और हजारों वर्षों की भावना बदलने में कुछ समय लगेगा। किन्तु सरकार उतावली मालूम होती है और हमने सुना है कि विकास-क्षेत्रों में अधिकारी उसके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। भारत के आफिसर्स को जनता 'हुक्काम' कहती है। वे 'हुक्म' देने के आदी हैं। वे जन-तंत्रात्मक विधि का उपयोग कर ही नहीं सकते। अतएव अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए वे जो 'सहकारी खेती' अपने क्षेत्रों में करेंगे वह "किसानों की स्वेच्छा" से न होगी। वह प्रत्यक्ष या परोक्ष दबाव से होगी क्योंकि इन हुक्कामों के पास किसानों को दबाने, उन्हें आवश्यक चीजों और सुविधाओं को देने या न देने के अपार अधिकार हैं। किन्तु यह तो व्यावहारिक क्षेत्र की बात हुई। जहाँ तक सहकारी खेती का सिद्धान्त और उसकी उपयोगिता तथा उसका शास्त्रीय विवेचन है, वहाँ तक वह इस पुस्तक में बड़ी सावधानी और स्पष्टता से किया गया है। इसके पढ़ने से सहकारी खेती का रूप स्पष्ट हो जाता है और यदि वह उसी ढंग से की जाय जैसे इस पुस्तक में बतलाया गया है तो उससे देश को लाभ ही होगा।

व्रतोत्सव संहिता—लेखक पंडित रामगोपाल मिश्र (अवकाश प्राप्त डिप्टी कलेक्टर), प्रकाशक, राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ; बड़ा आकार सजिल्द; आवरण पर भगवान् वेदव्यास का सुन्दर तिरंगा चित्र; कागज और छपाई अच्छी; मूल्य, आठ रुपये।

यह पुस्तक इस विषय की अन्य पुस्तकों से भिन्न है। इसमें केवल व्रतों और उत्सवों की सूची और वर्णन ही नहीं दिया गया, उनका प्रयोजन भी समझाया गया है। आज का अँगरेजी-शिक्षित हिन्दू प्रायः आस्थाहीन है। वह विज्ञान का पुजारी है। वह पुरानी भाषा को समझ ही नहीं सकता क्योंकि उसके संस्कार बदल गये हैं। उसे आधुनिक भाषा ही में—जिसमें वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या की गयी हों—बात समझ में आती है। इस पुस्तक की यही विशेषता है कि यह इस ढंग से लिखी गयी है कि वह श्रद्धालु लोगों के अतिरिक्त शिक्षित लोगों के भी काम की है। इसमें आरंभ में भूमिका के रूप में दो शब्द, रूपकों का स्पष्टीकरण, अवतार और जीवनधारा, चारों मुख्य उत्सवों का आरंभ, पूजन और व्रत नियम, दैनिक जीवन और नियम तथा परिभाषा नामक अध्याय अत्यन्त उपयोगी, मौलिक और ज्ञानवर्द्धक हैं। इसके बाद प्रत्येक मास में होनेवाले व्रतों और उत्सवों की कथाएँ तथा उनके मनाने के विधान दिये गये हैं। पुस्तक विशाल दृष्टिकोण से लिखी गयी है और इसमें सनातन-धर्मियों के सभी छोटे-बड़े व्रतों और उत्सवों के अतिरिक्त बौद्धों, जैनों और सिखों के व्रतों और उत्सवों का भी वर्णन है। यह अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। इसे भारतीय व्रतों और उत्सवों का छोटा-मोटा विश्व-कोश कह सकते हैं। इसे प्रत्येक पुस्तकालय में होना चाहिए और जो श्रद्धालु व्यक्ति आठ रुपये खर्च कर सकते हों, उन्हें इसे अवश्य लेना चाहिए। हमारी सम्मति में ऐसी पुस्तकों के प्रचार की आवश्यकता है। इसकी छपाई के व्यय में कुछ कमी करके इसका मूल्य कम कर देना चाहिए था। इसका वर्तमान मूल्य (आठ रुपये) बहुत से लोगों को इस आर्थिक संकट-युग में बहुत अधिक मालूम होगा।

मेरी तीस कहानियाँ:—लेखक श्री शैलेश मटियानी; प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली; सजिल्द बड़ा आकार; मूल्य, ६ रुपये।

श्री शैलेश मटियानी नयी पीढ़ी के सफल लेखकों में हैं। उनमें कहानी कहने की नैसर्गिक प्रतिभा है। अध्यवसाय और प्रतिभा के संयोग से उन्होंने एक दशक ही में हिंदी कथा-जगत् में अपना निश्चित स्थान बना लिया है। उनकी विशेषता यह है कि वे पृथ्वी छोड़कर कल्पना लोक में बहुत नहीं उड़े, इसलिए उनकी कहानियों में मिट्टी की सौंधी सुगन्ध है। यह सत्य है कि जब वे कभी किसी कूड़े के ढेर पर पहुँच जाते हैं तब सौंधी सुगन्ध के स्थान पर कूड़ेखाने की दूसरी प्रकार की गंध निकलने लगती है। किन्तु यथार्थ चित्रण में यह अनिवार्य है और किसी सीमा तक आवश्यक भी है। इस संग्रह में उनकी अब तक की प्रायः सभी कहानियाँ संग्रहीत हैं। इनसे मालूम पड़ता है कि आरंभ ही से वे उत्कृष्ट कलाकार हैं। प्रौढ़ता के साथ अवश्य ही उनकी कला का निखार होगा—इसमें हमें संदेह नहीं। सभी कहानियाँ अपने ढंग से मनोरंजक हैं, किंतु हमें सर्वोत्तम उनकी अपनी कहानी लगी जो उन्होंने भूमिका में दी है। उसमें उन्होंने अपने अब तक के जीवन का हाल बताया है जो स्वयं में एक अत्यंत मनोरंजक और प्रेरक कहानी है। पुस्तक कहानी-प्रेमियों को अवश्य पढ़नी चाहिए। हम इस युवक कहानीकार से भविष्य में बड़ी आशा करते हैं।

मेघदूत : एक अनुचिंतन—लेखक, श्री श्रीरंजन सूरि;

प्रकाशक नागरी प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पटना—४, सजिल्द और सचित्र, बड़ा आकार; मूल्य, नौ रुपये।

हिंदी में कालिदास के मेघदूत पर कई विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ निकल चुके हैं। इनमें श्री कन्हैयालाल पोद्दार और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं और दोनों ही अपने ढंग से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत ग्रंथ की यह विशेषता है कि इसमें प्रसिद्ध टीकाकार वल्लभदेव की टीका दी गयी है और मल्लिनाथ का पाठ रखा गया है। आरंभ में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा के अप्रकाशित अँगरेजी निबंध 'कालिदास-परिचय और काल-निर्णय' का अनुवाद भी दे दिया गया है जिससे इन महा-पंडित का यह बहुमूल्य निबंध पाठकों को सुलभ हो गया है। आधी पुस्तक में मेघदूत का मूल पाठ, वल्लभीय टीका, और हिंदी अनुवाद है। शेष में कालिदास के समय और इस काव्य के संबंध में विवेचनात्मक समीक्षा है। उसके सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। भाषा और शैली, रस और अलंकार, ध्वनि और छाया की वक्रता, प्रकृति-चित्रण, विचार-सौंदर्य, नारी और काम, विरह और प्रेम, नायिका भेद, वेदान्त तत्व, मनोवैज्ञानिक तत्व, विज्ञान तत्व, गीत और संगीत तत्व आदि सभी विषयों पर अलग-अलग विचार किया गया है। विचार तर्कपूर्ण और सप्रमाण है। कालिदास के समय के संबंध में बड़ा मतभेद है किंतु लेखक इस मत से सहमत मालूम होता है कि वे ईसा पूर्व प्रथम शती में हुए। अंत में मेघदूत की प्रतियों, पाठांतरों, प्रक्षिप्त श्लोकों, दूत काव्य की तालिकाओं, जैन टीकाओं पर भी अलग-अलग अध्याय हैं। जैन टीकाओं के संबंध में जो जानकारी इस पुस्तक में है वह अन्यत्र सुलभ नहीं है। वैसे तो अनुवादों की सूची लंबी है, पर हिंदी के अनुवादों की सूची अपूर्ण है। ठा० जगमोहनसिंह और पं० केशव-प्रसाद के अनुवादों का नाम हमें नहीं मिला। पुस्तक पांडित्यपूर्ण और पठनीय है। इस प्रकार के विवेचन और पांडित्यपूर्ण अध्ययन की पुस्तकें हिंदी में कम ही देखने को मिलती हैं।

आधुनिक हिंदी कविता में श्रृंगार—डा० रांगेय राघव, प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली; सजिल्द, बड़ा आकार; मूल्य, छः रुपये।

इस देश में—और शायद सारे संसार में— कविता की मुख्य प्रेरणा प्रेम और श्रृंगार है। रससिक्त कविता में ८० प्रतिशत शायद ये ही विषय हैं। कभी संयोग और कभी वियोग श्रृंगार हो, किंतु है श्रृंगार ही। इसी लिए श्रृंगार को रसराज की उपाधि दी गयी है। आधुनिक हिंदी काव्य भी इससे ओत-प्रोत है, किंतु अभी तक उसका अध्ययन नहीं किया गया था। डा० रांगेय राघव ने यह अध्ययन प्रस्तुत कर एक उपयोगी और आवश्यक कार्य किया है। पुस्तक पाँच भागों में विभाजित है—वासना : पुरुष, वासना : नारी, रूप का उफान, भोर से सांझ तक और फागुन से पावस। यह पुस्तक एक वामपंथी की लिखी हुई है जो मार्क्स से प्रभावित हैं, किंतु इस देश के बहुसंख्यक मार्क्सवादियों की तरह वे इस देश की साहित्यिक सम्पत्ति से कोरे नहीं हैं, इसलिए मार्क्स को मानते हुए भी उन्होंने भारतीय साहित्य और साहित्यिक सिद्धान्तों को समझने की चेष्टा की, और उनमें सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। वास्तव में काव्य में यदि 'आनंद' देने और रस उत्पन्न करने का गुण नहीं है तो वह और सब कुछ हो सकता है, काव्य नहीं रह जाता। लेखक का कहना है, "मैंने इसीलिए वर्तमानकालीन वाद-दृष्टि को छोड़कर काव्य को पहिले देखने की चेष्टा की है। काव्य के अनेक पहलू होते हैं, किंतु जो उसके राग-पक्ष को प्रस्तुत करते हैं वे उसके अन्तर्तम से बाहर आये हुए भाव होते हैं। आज उस पक्ष पर आलोचकों की दृष्टि नहीं है। वे उसके बाह्य का अधिक परीक्षण करते हैं।" इस भूमिका में कई महत्त्वपूर्ण बातें कही गयी हैं जिन पर बहुत कुछ कहा जा सकता है, किंतु इस संक्षिप्त आलोचना में उसके लिए स्थान नहीं है। लेखक ने उपर्युक्त पाँच भागों में आधुनिक (मुख्यतः पिछले प्रायः बीस-पचीस वर्षों के) कवियों की कविता का अध्ययन किया है। अध्ययन शास्त्रीय तो है ही, साथ ही सहानुभूतिपूर्ण भी है। कविताओं का चयन विशाल दृष्टिकोण से किया गया है—छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं किया गया। लेखक को जो कविताएँ सुन्दर मालूम हुईं, उन्हें ग्रहण कर लिया। यह अध्ययन अपने ढंग का बड़ा महत्त्वपूर्ण है, और आधुनिक कवियों और उनकी कविताओं के रागात्मक पक्ष को समझने में पाठकों की बड़ी सहायता करेगा।

श्रीयुक्त सत्यव्रत सामश्रमी

श्री जगन्नाथप्रसाद वर्मा

इसमें सन्देह नहीं है कि पृथ्वी का नाम वसुन्धरा ठीक ही रक्खा गया है। भारतवर्ष की इस गिरी हुई दशा में भी इस पुण्यभूमि में कितने ऐसे अमूल्य रत्न पड़े हैं जिनसे उपर्युक्त नाम अन्वर्थ या सार्थक है। आज जिस महामहिम का चरितगान मैं आपको सुनाना चाहता हूँ वह श्रीयुक्त प्रातस्मरणीयचरित श्री सत्यव्रत सामश्रमीजी हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन विद्योपार्जन तथा अन्यान्य अत्यंत गूढ़-गूढ़ विषयों के पता लगाने में बीता है और अद्यावधि इसी में बीत रहा है। मैं इसे अपना पूरा कर्त्तव्य समझता हूँ कि इनकी सुन्दर जीवनी को छिपाकर न रक्खूँ।

देखने में आता है, और संसार की गति भी विचित्र है, कि अनेक गुणों के आधार महात्माजन, अपनी जिन्दगी में अपने अर्जित यश का सुख अनुभव नहीं कर सकते हैं। यह अवश्य बड़े दुःख की बात है इसी आपत्ति में पड़कर महाकवि श्रीभवभूति कहता है :—

> "ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
> जानन्तु ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
> उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
> कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

हाँ, ऐसे भी कई बड़े आदमी हुए हैं जिन्होंने अपने जीवनकाल ही में अपनी कीर्त्ति देख ली है। परन्तु अधिकांश ऐसे ही महात्मा हुए हैं जिनके विषय में हम कम जानते हैं। प्रोफ़ेसर जे० एस० ब्लाकी कहते हैं :—"Great men are amongst those of whom the world hears least." फिर भी, काल के निरवधि होने से इनका यश प्रकट होता ही है। और मृत्यु का भी यह गुण ही है कि वह इसे यथायथ प्रकट करे, जैसा कि एक कवि कहता है :—

> "स दोषैर्मुक्तो वा भवतु कलुषी कोऽपि पुरुषः
> सदा कान्तैः पुण्यैर्वितरतु गुणैः प्रीतिमथवा।
> अकीर्तिर्वा तस्य प्रकटिततदशास्त्वेव किमिति
> तव श्लाघा मृत्यो! यदिह महिमानं वितनुषे॥"

अस्तु। यह आपत्ति किसी अंश में श्रीयुक्त सामश्रमीजी को स्पर्श न करे, इसी लिए यह मेरा लघु यत्न है। मैं इसे प्रथम ही स्वीकार कर लेता हूँ कि इन महात्मा के विद्यादि गुणों की समीक्षा करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। मैं इनका जीवनचरित थोड़े में सुनाऊँगा।

श्रीमान् सामश्रमीजी का जन्म संवत् १८८८, ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी तिथि को पटने में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीरामदास वाचस्पति और पितामह का नाम श्रीरामकान्त विद्यालंकार था। श्रीरामकान्त विद्यालंकार कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट के जज थे। श्री रामदास वाचस्पति ने भी गवर्नमेन्ट के अधीन कई प्रतिष्ठित पद पाये थे और बड़ी योग्यता से कार्य किया था। विद्या इनके घर में मानो अनादिकाल से चली आती है। घर में सभी विद्वान् होते आये हैं। और किसी ने एक न एक अद्भुत कार्य किया है। श्री रामदास वाचस्पति एक अच्छी जमींदारी के मालिक थे और सम्पत्तिमान भी थे।

श्रीमान् सामश्रमीजी का पहला नाम श्रीकालिदास है। परन्तु यह नाम बहुत दिनों तक न रह सका। ये लड़कपन ही से सत्यशील और तेजस्वी थे। एक समय की बात है, कि जब यह ४, ५ वर्ष के थे, तब इन्होंने अपने पिता के बाग़ में, एक गुलाब का फूल, जिसे इनके पिता ने, एक शोभा की वस्तु जानकर, रक्षित रक्खा था, तोड़ लिया। पिता को यह बात मालूम न थी कि कालिदास ने ह्रीइ से तोड़ा है। अतः वे अपने नौकरों पर क्रोधित हुए। पर बालक कालिदास ने झट अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इस पर पिता ने प्रसन्न होकर इनके गुणानुरूप इनका सत्यव्रत नाम रक्खा।

वंगदेश में वैदिक पाठशाला का नाम-निशान पहले न था। बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर, तथा वर्द्धमान के राजा ने, और, और भी कई मनुष्यों ने, बहुत यत्न किये कि श्रीकाशी से वंगदेशीय पण्डितों को वेद पढ़ाकर तैयार करें, और उन्हें वंगदेश में अध्यापक नियुक्त करके, वहाँ वेद की शिक्षा का विस्तार करें। परन्तु उनका यत्न व्यर्थ हुआ। सभी हताश हुए। श्रीरामदास वाचस्पति को, अपने प्रियपुत्र को वेद शिक्षा देने की, अत्यन्त उत्कट इच्छा थी। प्रारम्भ ही से वह इस यत्न में थे कि किसी प्रकार से सत्यव्रत वेद का भारी पण्डित हो। जिस जमाने की बात मैं लिखता हूँ, उस जमाने में काशी की पण्डितमण्डली वंगदेशीयों को वेदशिक्षा देना बुरा समझती थी। अतः प्राथमिक शिक्षा देकर श्री रामदास वाचस्पति ने अपने पुत्र को वेद पढ़ाने का विचार किया। जब सत्यव्रतजी ७ वर्ष के थे, तब इनके पिता पटने से काशी चले आये। विद्यारम्भ इनका पाँचवें वर्ष में हुआ। इनके पिता ने पण्डित मथुरानाथ शिरोमणि नामक एक अच्छे विद्वान् को, इनको पढ़ाने के लिए, नियुक्त किया। ८ वर्ष की अवस्था में सत्यव्रतजी ने साहित्य, गणित और भूगोल की छात्रवृत्ति-परीक्षा पास की। इसके बीच में चाणक्यनीति और अमरकोष हो गये थे। आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत हुआ। और सिद्धान्त कौमुदी का प्रारम्भ भी हुआ। ९॥ वर्ष के वय में सिद्धान्त कौमुदी समाप्त हो गई। ये सिद्धान्त कौमुदी, श्री गौड़स्वामी के यहाँ, अहल्याबाई के घाट पर, और सामवेद पण्डित नन्दराम त्रिपाठी के यहाँ पढ़ते थे। ये दोनों विद्वान् उस समय के अद्वितीय पण्डित थे। श्री गौड़स्वामी, स्वर्गवासी श्री विशुद्धानन्द सरस्वती के गुरु भी थे। १०॥ वर्ष के वयः के भीतर ही इनके मनोरमा और शेखर भी, कारकान्त हो गये। इसके बाद पातजल महाभाष्य, वैयाकरणभूषण, मंजूषा, शक्तिवाद, आदि सभी व्याकरण-

और पुराण, साहित्य आदि भी, तेरहवें वर्ष से सोलहवें तक हो गये। सोलहवें से बीसवें वर्ष तक छः आस्तिक-दर्शन, छः नास्तिकदर्शन और चार नवीनदर्शन इन्होंने पढ़े। ग्रन्थों के साथ-साथ वेद और तत्सम्बन्धी अन्यान्य ग्रन्थ ये पढ़ते थे। बीसवें से तेईसवें वर्ष तक इन्होंने वेदभाष्य आदि समाप्तकर पाठशाला जाना बन्द किया।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि इतने कम वय में इतने कठिन कठिन ग्रन्थ इन्होंने कैसे पढ़े। इस पर मेरा उत्तर यह कि असाधारण प्रतिभा के अतिरिक्त सामश्रमीजी परिश्रम अलौकिक करते थे। आज, ७२ वर्ष की अवस्था होने पर, प्रतिदिन, ३ घन्टे से अधिक ये कभी नहीं सोये। इनका सब समय पढ़ने-पढ़ाने की चर्चा ही में बीता है। सच है, जिसे विद्यासुख मिल जाता है उसे उसके साथ ही इस मन्त्र का उपदेश भी हो जाता है कि :—

"न तदस्ति न यत्राहन्न तदस्ति न तन्मयम्।
किमन्यदभिवाञ्छामि यन्मे नास्ति सखीहितम्॥

वेदभाष्य की समाप्ति हो जाने के बाद सामश्रमीजी देशाटन को निकले और जयपुर आदि राजस्थानों में परिभ्रमण करते हुए जहाँ जहाँ गये, वहाँ वहाँ इन्होंने आदर पाया। जयपुर महाराज के दर्बार में जो इनका सत्कार हुआ वह वर्णनयोग्य है। और, पिशुन लोगों की चालबाज़ी का वृत्तान्त भी सुनने लायक है। परन्तु स्थानाभाव से मैं उसे यहाँ न लिखूँगा क्योंकि ऐसी-ऐसी बातें इनके शुभ जीवन में इतनी हुई हैं कि संक्षेपतः भी उनका वर्णन करना मानो एक बड़ी-सी पुस्तक लिखना है।

जब सामश्रमीजी २० वर्ष के थे, तब वे बूँदी महाराज के यहाँ गये। बूँदी महाराज के यहाँ पण्डितों की एक अतीव कठिन परीक्षा होती है। इस छोटी उम्र में भी श्री सत्यव्रत सामश्रमीजी उसमें पास हुए और उन्होंने सभी को आश्चर्ययुक्त कर दिया। यहीं उनको बड़े-बड़े पण्डितों ने "सामश्रमी" की उपाधि दी।

इसके उपरान्त सामश्रमीजी को फिर उत्तर की तरफ यात्रा करने की इच्छा हुई। इस यात्रा का अभिप्राय यह था कि अन्यान्य वैदिक पण्डितों से परिचय हो, और, जो जो बातें काशी के वैदिक पण्डित न समझा सके थे, उन्हें वे समझें और साथ ही साथ तीर्थ-दर्शन भी हो। अतः २४ वर्ष की अवस्था में आपने काशी से पैदल यात्रा की। यह आजकल के ऐसे पण्डित नहीं हैं जो मसनद लगाये बैठे रहते हैं। इनके मन में स्फूर्ति, साहस, और बल सदा ही बना रहा। इसीसे इन्होंने हजारों कोस पैदल चलना स्वीकार किया। सच है, ऐसे ही मनुष्यों का जीवन जीवन है। इस यात्रा में जौनपुर, नैमिषारण्य, हरिद्वार गंगोत्री आदि स्थानों को देखते वे बदरिकाश्रम गये। लौटती बार, चण्डी पहाड़, रुड़की, कुरुक्षेत्र, दिल्ली विन्ध्याचल, आत्रेयाश्रम, अनुसूयाश्रम, अमरकण्टकादि घूमते घामते वे प्रयाग लौट आये। फिर वहाँ से काशी आये। इस यात्रा में दो वर्ष लगे और कई बड़े-बड़े महात्माओं से भेंट हुई। जिस समय यह हरिद्वार गये, उस समय वहाँ कुम्भ का मेला था। बहुत से राजा-महाराजा और पण्डित एकत्रित थे। कश्मीर के भूतपूर्व महाराजा रणवीरसिंहजी ने एक बड़ी सभा की थी। उसमें कोई ५०० प्रसिद्ध पण्डित, पश्चिमोत्तर प्रदेश और पंजाब के निमन्त्रित थे। सभा का विषय यह था कि गोसाईं लोग ठीक संन्यासी हैं या नहीं। पं० सत्यव्रतजी भी बुलाये गये। इनके साथ ४ विद्यार्थी भी थे। अधिक पण्डित गोसाइयों की तरफ थे। परन्तु जो विचार सामश्रमीजी का था, वही सर्वमान्य ठहरा। सच है, विचार के आगे वितण्डा क्यों कर रह सकती है? यहाँ गोसाइयों के दुराक्रमण से सामश्रमीजी बड़ी कठिनता से बचे। किस-किस अवस्था में मनुष्य अपने को किस-किस प्रकार आपत्तियों से बचा सकता है, इस बात को सीखने के लिए भी सामश्रमीजी की जीवनी उपयुक्त है। मैं चाहता हूँ कि उन उन बातों को भी लिखूँ। पर इस छोटे से लेख में नहीं लिख सकता। कुम्भ मेला के शास्त्रार्थ के बाद महाराजा काश्मीर इन्हें बहुत प्यार करने लगे। परन्तु परोन्नति दुर्दर्शक पिशुन पण्डितों ने अपना दुराशय प्रकट किया। इससे सामश्रमी को निराश होकर वहाँ से चलना पड़ा।

वहाँ से, फिर भी एक बार उत्तर दिशा को गमन करना इन्हें पसन्द हुआ। अतः दो विद्यार्थियों के साथ सप्तस्रोत, रम्भा-संगम, वीरभद्र और कई पुण्य स्थानों को देखते-भालते ये हृषीकेश पहुँचे। सामश्रमीजी कहते हैं कि उन्होंने फिर वैसा सुन्दर स्थान कहीं नहीं देखा। यहाँ इन्होंने एक महामहिम वृद्ध संन्यासी का पता लगाया जिनकी जाति आदि का कोई निश्चय न था। यह कौन थे, कौन जान सकता था? ये अत्यन्त छिपे हुए एक पाषाण मन्दिर में रहते थे और केवल संस्कृत बोलते थे। इन्हीं महात्मा से सामश्रमीजी को वे सब बातें मालूम हुईं जिनकी खोज में वे निकले थे।

काशीजी लौट आने पर इन्होंने प्रत्नकम्रनन्दिनी (The Hindu Commentator) नामक पत्रिका निकालना प्रारम्भ किया। यह पत्रिका संस्कृत भाषा में थी। इसमें इनके रचित अनेक उत्तमोत्तम लेख, आदि छपते थे। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि इनके पिता की इच्छा बंगाल में वेद की शिक्षा फैलाने की थी। अतः इन्हें और देशाटन करने की आज्ञा न मिली बंगाल ही में चला आना पड़ा। जब ये काशी में थे और प्रत्नकम्रनन्दिनी को निकालते थे, तब ये काशिराज के यहाँ द्वारपण्डित भी थे। काशिराज इन्हें बहुत मानते थे। जैसे-जैसे इनकी विचक्षणता और बुद्धि की चमत्कृति का यश फैला, तैसे-तैसे बंगवासियों को इनकी चाह हुई। और प्रसिद्ध विद्वान्, डाक्टर राजा राजेन्द्रलाल मित्र एल० एल० डी० ने जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, ऐशियाटिक सोसायटी के लिए, सामवेद संहिता का संस्कार कराना चाहा। यह काम सामश्रमीजी के कलकत्ते आने पर ही हो सकता था। अतः ये काशी से कलकत्ते आये।

१८६९ के नवम्बर में जब बनारस के महाराज के आज्ञानुसार आनन्दबाग में स्वामी दयानन्दजी का प्रसिद्ध

शास्त्रार्थ हुआ था, तब यही मध्यस्थ चुने गये थे और काशी बुलाये गये थे।

१८६८ में इनके गुणों पर मुग्ध होकर, नवद्वीप के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित व्रजनाथ विद्यारत्न ने, जिन्हें वंगदेशीय ब्राह्मण गुरु मानते थे, अपने पुत्र पण्डित मथुरानाथ भट्टरत्न की कन्या का इनसे विवाह कर देना निश्चित किया और तदनुरूप विवाह हुआ। इतने दिनों तक सामश्रमीजी ने विवाह इसलिये नहीं किया था कि ब्रह्मचर्य का पालन हो। आजकल ब्रह्मचर्य पालन न करने ही से नवयुवक प्रतिभा-शून्य होते हैं। इनकी तरह ब्रह्मचर्यनिष्ठ पुरुष विरला ही कोई होगा। ब्रह्मचर्य, के गुणों में इनको पूरा विश्वास है। बाल-विवाह के ये पूरे विरोधी हैं।

१८७३ में, जब पण्डित सत्यव्रतजी कलकत्ते ही में थे, वहुविवाहवाद में ये विचारक बनाये गये। स्वर्गवासी पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस पर शास्त्रार्थ कराने को पहले-पहल विचार किया था। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने वहुविवाह को शास्त्र-विरुद्ध सिद्ध करके सरकारी कानून द्वारा उसे उठाने का प्रबन्ध किया था। इसमें सत्यव्रतजी का मत यह था कि शास्त्र में वहुविवाह की मुमानियत नहीं है, परन्तु बुरे समय में यह रीति चली है और कालक्रम से पुरानी रीतियों का ह्रास होता ही है। अतः इसमें सरकारी दस्तन्दाजी की आवश्यकता नहीं। अन्ततः जो सत्यव्रतजी का विचार था वही सर्वमान्य समझा गया।

इसी प्रकार महाराजा रीवा के यहाँ भी चक्रांकन के विचार में ये बुलाये गये और इन्हींका विचार प्रशस्त समझा गया। इनके प्रतिद्वन्दी श्री रंगाचार्य और श्री हरिश्चन्द्र थे।

फिर, कुछ दिन बाद एशियाटिक सोसायटी बंगाल के ये असोशिएट मेम्बर मुकर्रर किये गये। गवर्नमेन्ट ने भी वेद और दर्शन की परीक्षा में इनको परीक्षक नियुक्त करके इनका आदर किया। १२ वर्ष तक ये वेद और दर्शन की उपाधि परीक्षा के परीक्षक रहे, और अद्यावधि पंजाब की शास्त्रिपरीक्षा के परीक्षक हैं।

सत्यव्रत सामश्रीमीजी ने कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिख कर संस्कृत विद्यागार को पूरा किया है। इन्होंने निरुक्तालोचन नामक एक उत्तम ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ पर पाश्चात्य विद्वानों की जो सम्मतियाँ हैं वे देखने लायक हैं। सन् १८८९ ई० में सामश्रमीजी ने वैदिक पत्र 'उषा' को प्रकाशित किया। यह ३ वर्ष तक निकला। यह परमोत्तम पत्र था, परन्तु न जाने क्यों, इसका प्रकाश धीमा पड़ गया और अन्ततः बुझ गया। मेरी प्रार्थना है कि सामश्रमीजी उस पत्र को निकालना न बन्द करें, क्योंकि उनके छोड़े हुए विषयों का फिर पूरा होना असम्भव-सा है। कालक्रम आजकल ऐसा ही है। पण्डित जी का औदार्य भी सराहने योग्य है। किस सचाई से आपने बौद्धधर्म-ग्रन्थ काण्डव्यूह का संस्कार और उसका अनुवाद प्रकाशित किया है कि वह साधारण जन का काम नहीं कहना चाहिये।

पंडित जी के ग्रन्थों के विषय में और और विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख मैं पीछे करूँगा। यहाँ पर पण्डित जी के धार्मिक विचारों के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। जब आप १९-२० वर्ष के थे और आपकी विद्योपार्जन की इच्छा अत्यन्त उच्च शिखर पर चढ़ी थी, तब आपने तन्त्र का अभ्यास किया था। आपने सुना था कि श्री महाकवि कालिदास ने तन्त्र के बल से ही सरस्वतीदेवी को प्रसन्न करके सहसा विद्या प्राप्त कर ली थी यही इच्छा इनकी भी हुई। अतः उस समय के महातान्त्रिक पूर्णानन्दस्वामी से आपने तन्त्रविधान सीखा और तन्त्र के सब ग्रन्थ पढ़ डाले। तन्त्र में शवसाधन की क्रिया सबसे विकट है, और, कहा जाता है, कि तत्क्षण फलप्रद भी है। इससे इन्होंने गुरूपदेशानुसार तन्त्रसाधन प्रारम्भ किया। कुछ दिनों तक ये पूरे तान्त्रिक रहे। फिर इसकी असारता देख इन्होंने इसे त्याग दिया। जिन जिन क्रियाओं को इन्होंने आरम्भ किया, उन्हें बड़े मनोयोग से इन्होंने पूर्ण किया। इसके उपरांत ये वैष्णव धर्म में गये और यथायथ वैष्णव हुये। सभी तत्वों को इन्होंने जान लिया। ब्राह्मधर्म में भी इन्होंने प्रवेश किया इसके ये उपदेष्टा रहे। इसके कई ग्रन्थ इन्होंने संस्कृत में लिखे। ब्राह्मधर्म को भी इन्होंने खूब देखा। तब ये थियोसॉफिस्ट (Theosophist) हुए। उसकी भी बातें इन्होंने मालूम कीं। परन्तु पाठकों को यह सन्देह न करना चाहिये कि यह धर्म बदलते रहे। इनका एक धर्म जिसे ये वैदिक धर्म कहते हैं, सदा ही एक-सा रहा है। परन्तु और धर्मों के गूढ़ तत्वों को जानने के लिए अपनी वृत्ति इन्होंने तद्नुरूप की क्योंकि यह इनका खयाल है, कि जब तक आदमी दूसरे के साथ अपनी पूरी सहानुभूति करके उसका मन अपनी तरफ नहीं खींच सकता,

तक उसकी असली बात उसको कभी नहीं मालूम होतीं। मश्रमीजी का खयाल है कि संसार भर के धर्मों में यदि ई सच्चा और निर्दोष धर्म है तो वह वैदिकधर्म है। ण आदि को ये कुछ गल्प, कुछ इतिहास मानते हैं। न इसलिए कि अपढ़ अधपढ़ों की मोटी बुद्धि में धर्म-र जमाने के लिए इनकी रचना है। इसका यह निरुत्तर माण देते हैं। अस्तु, जो हो, मेरा तो जितना समय नके साथ बीतता है, उतना परमकल्याणकारी समय लूम होता है। इतनी विद्या-बुद्धि रहने पर भी इनको र्व लेशमात्र नहीं है। मिलनसार तो ये इतने हैं कि नसे मिलकर जी आनन्द से भर जाता है।

विलायत के डाक्टर रोस्ट (Dr. R. Rost, ndia office, London) ने सामश्रमीजी की एक क्षिप्त जीवनी लिखी है। उसमें वे कहते हैं :—

It would have been strange, if a life of uch incessant literary activity, preceded by ears of such severe and almost ascetic tudy, had not left its mark on the Pandit's onstitution. A tedius illness of three ears' duration and harassing domestic ifficulties, happily now passed, have some hat crippled his naturally strong powers. But it may be hoped that he may yet long pared both to his country and to philologi-al science, which can ill-afford to lose men f his stamp, of whom no country possesses oo many."

बार्थ (M. A. Barth) साहब ने फ्रेंच भाषा के क लेख में लिखा है :—

"His (Samasramin's) training is found-d, at least in the first instance, on the native tradition, and among living scholars he is certainly one of the best specimens that the native system of education has produced. But at the same time he has a very open mind, in no way inaccessible to influences from without....There is in him no trace of blind hostility, or of a gloomy and stern orthodoxy, even in face of those solutions which shock his most cherished convictions."

इसी प्रकार उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा है। आर० सी० दत्त के हिन्दूशास्त्र पर कलकत्ता रिव्यू में प्रकाशित हुई सामश्रमीजी के विषय में कुछ बातें सुनिये :—

"The first collaborateur of Mr. R. C. Dutta to take the field is the old veteran Pandit Satyavrat Samasrami, at this moment the best Vedic scholar in India.'

इसी प्रकार अध्यापक मोक्षमूलर, बंगाल तथा जर्मनी और फ़्रांस आदि देशों के पण्डित इन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखकर मान्य समझते हैं।

पण्डितजी आजकल भी ऐशियाटिक सोसायटी के सभासद् हैं और कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिख रहे हैं। आपके तीन लड़के हैं। वे सब वेद के पण्डित हैं और अँगरेजी भी पढ़े हैं।

मेरी भी डाक्टर रोस्ट के इच्छानुरूप इच्छा है कि ईश्वर पण्डितजी को दीर्घजीवी बनावे जिसमें संस्कृत विद्या की उन्नति होती रहे। पण्डितजी ने आज तक कोई ८० ग्रन्थ लिखे हैं जिन्हें देखते ही बन पड़ता है। जिन्हें उनको देखना हो वे हितव्रत शर्मा, १६/१ घोष की गली, मानिकतल्ला, कलकत्ता, के पते से पत्र-व्यवहार करें।

मनोरंजक संस्मरण

महामना मालवीयजी और अकबर इलाहाबादी

प्रयाग के प्रसिद्ध उर्दू कवि श्री अकबर इलाहाबादी मालवीयजी के बड़े प्रशंसक थे। यह सर्वविदित है कि उनके समान व्यंग्य लिखनेवाला उस युग में और कोई नहीं हुआ, और उनकी पैनी दृष्टि, एक्स-रे की तरह, लोगों के व्यक्तित्व और चरित्र की गहन बातों की तह तक पहुँच जाती थी। मालवीयजी को वे अच्छी तरह जानते थे, और उन पर उनके चरित्र, व्यक्तित्व और साधु-उद्देश्य का सिक्का जम गया था। कवि अकबर इलाहाबादी ने अपने समय के दूसरे बड़े आदमियों को भी परखा, किंतु वे उन्हें मालवीयजी की तुलना में कम मालूम पड़े। इसलिए वे मालवीयजी की प्रशंसा और दूसरों की आलोचना किया करते थे। उन्होंने सर सैयद को लक्ष्य करके एक बार लिखा था :

हज़ार शेख ने दाढ़ी बढ़ायी सन-की सी
मगर वह बात कहाँ मालवी मदन की सी!

इस पर सर सैयद के बहुत से प्रशंसक उनसे असंतुष्ट हो गये थे। वह गांधीजी का आरंभिक काल था, और नरम दल के कांग्रेसी नेताओं का भी बड़ा जोर था। ये नरम दल के 'माडरेट' नेता (साहब लोग) पाश्चात्य सभ्यता में रँगे थे और बड़ी शान से रहते थे, किंतु बड़े वाग्मी थे। अकबर साहब पर इनका बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने मालवीयजी से उनकी तुलना करते हुए लिखा :

भाई गाँधी ख़ुदसरी की आरज़ू के साथ हैं,
और साहब लोग ग़रबी रंगे-बू के साथ हैं।
मालवीजी सबसे बेहतर हैं मेरी दानिश्त में,
यानी, मंदिर में हैं, औ अपनी गऊ के साथ हैं।

इस पर बहुत से लोगों ने अकबर साहब की कटु आलोचना की और कहा कि वे तो न मालूम क्यों मालवीयजी की खुशामद पर उतारू हैं। उन्हें यह विश्वास नहीं था कि अकबर साहब अपने हृदय के सच्चे उद्गार प्रकट कर रहे हैं। जब उन्हें मालूम हुआ कि लोग उनकी की हुई मालवीयजी की प्रशंसा को बनावटी खुशामद समझते हैं, तब उन्होंने मालवीयजी को संबोधन करके यह लिखा :

तेरे कदम से रौनक़े शहरे प्रयाग है,
यानी, तेरे ही दम से बुतों का सुहाग है।
भड़की है दिल में आग गुआलिन के, इश्क़ की,
अहबाब कह रहे हैं कि कंडे की-आग है!

"तेरे ही दम से बुतों का सुहाग है!" इससे बढ़कर मालवीयजी के लिए कोई क्या कह सकता है? अपने को ग्वालिन बनाकर मदनमोहन (श्रीकृष्ण) का प्रेमी घोषित करते हुए उन्होंने अपने आलोचकों को बतलाया कि उनके हृदय में मालवीयजी के लिए कितना गहरा प्रेम है।

इस महीने में मालवीयजी की जन्म-शती है। इस अवसर पर प्रयाग के इन दो महान् सपूतों के प्रेम का—सच्चे हिंदू-मुस्लिम प्रेम का—यह संस्मरण पाठकों की सेवा में हम अर्पित करते हैं।

मालवीयजी और 'नाइटहुड'

बहुत कम लोग जानते हैं कि अँगरेज सरकार ने एक बार मालवीयजी को 'सर' (नाइटहुड) का खिताब देना चाहा था, पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। यह बात बहुत कम लोगों को मालूम थी। यद्यपि मालवीयजी सारे भारत के नेता थे, तथापि बहुत से मुसलमान उन्हें 'हिंदू-नेता' ही समझते थे, और कभी-कभी उनकी आलोचना किया करते, या उनकी हँसी उड़ाया करते थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि और पाकिस्तान की कल्पना के जनक, डॉ॰ मुहम्मद इक़बाल पंजाबी थे, और बहुत दिनों तक 'शायरे पंजाब' कहे जाते थे। उनका दृष्टिकोण भी मालवीयजी के संबंध में साधारण मुसलमानों के समान ही था। मालवीयजी की देश-सेवा का कारण वे शायद यह समझते थे कि वे सरकार से खिताब पाने के उत्सुक हैं। अतएव एक बार उन्होंने यह शेर कहा :

कर चुके ख़िदमत बहुत कुछ क़ौम की,
देखिए, कब होते हैं 'सर' मालवी!

मालवीयजी के लिए यह कहना कि वे देश की सेवा सरकार से खिताब पाने के लिए करते हैं, उनका सरासर अपमान था। इस पर पंजाब के ही एक शायर सरदार अमरसिंह ने यह उत्तर दिया था :

मालवीजी की हजो से, शायरे-पंजाब अब,
जो न हो सकते थे 'सर', वह जल्द सर हो जायँगे!

कहा जाता है कि संयोग ऐसा हुआ कि इसके कुछ ही दिनों बाद सचमुच उन्हें 'सर' का खिताब मिल गया, और वे "सर मुहम्मद इक़बाल" हो गये। "सर हो जायँगे" में जो श्लेष है उसमें बड़ी मीठी चुटकी है।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका--**शीला शर्मा**

वर्ष ६२ — जुलाई से दिसम्बर १९६१ — खण्ड २

विषय	लेखक	पृष्ठ

प्रकाशक—बी० एन० माथुर, सुपरिटेंडेंट इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट-लिमिटेड, प्रयाग

पाँच संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओत प्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्योरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आचार्य सद्‌गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला, गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएं संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २॥) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झांकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानियाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १॥) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

राष्ट्रचेता कवि सोहनलाल द्विवेदी

जिसकी कविता जीवन, उत्साह, वेग और बलपूर्ण हैं और जो लोक शिराओं में नव-जीवन का संचार करती हैं—जिसकी वाणी बिजली सी हृदय में उतरती है—जिसने राष्ट्रीय चेतना को काव्य का सच्चा रूप दिया है—और जिसमें बालकों की सी मृदुता और बच्चों की सी सरलता है निम्न कविता पुस्तकें लिख चुके हैं :—

राष्ट्रीय चेतना और बाल मनोरंजन की कविता पुस्तकें

जय गांधी—लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सजधज से प्रकाशित संग्रह	१५·००
गांधी अभिनन्दन ग्रंथ—गाँधीजी के संबंध में विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट कवितायें एकत्र संग्रहीत	७·५०
कुणाल—राजकुमार कुणाल की कारुणिक कथा पर शान्त रस सफल खंड काव्य	३·००
भैरवी—राष्ट्रीय जागरण के गीत जिनमें जनता रसमग्न हो उठती है। चार संस्करण हो चुके हैं	२·७५
पूजागीत—जीवन में स्फूर्ति का संचार करनेवाली राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह	२·५०
वासवदत्ता—प्रेम, कर्तव्य तथा आदर्शों के द्वन्द्वयुक्त बौद्ध आख्यान पर आधारित खंड काव्य	२·००
विषपान—समुद्रमंथन की पौराणिक कथा के आधार पर प्रवाह और ओजपूर्ण खंड काव्य	१·००
शिशु भारती—बालकों के लिए सरस और शिक्षाप्रद गीतों की रोचक पुस्तक	१·००
झरना—इस पुस्तक की कवितायें पढ़ते ही बच्चे उछल पड़ते हैं	१·००
बाँसुरी—नन्हें पाठकों के लिए लिखी मनोहर विचित्र कवितायें	२·७५
युगाधार—चुनी हुई कवितायें स्वतन्त्रता की प्रेरणा और स्फूर्ति देनेवाली	३·५०
चित्रा—ग्रामीण और प्राकृतिक चित्रण युक्त कविताओं और भावपूर्ण गीतों का संग्रह	२·३१
बासन्ती—स्फुट कविताओं का सुन्दर और सरस संग्रह	२·३१
बच्चों के बापू—गाँधीजी और सब नेताओं का परिचय करानेवाली बहुरंगी छपी कविता पुस्तक	२·००
बाल भारती—बच्चों में नवीन उत्साह उत्पन्न करनेवाली सरल मनोरंजक कवितायें	१·२५
चेतना—गांधीजी को आराध्यदेव मानकर रची हुई उत्प्रेरक कविताओं का संग्रह	२·००
दूध बताशा—दो रंगों में छपे बालकों के लिए मधुर कविता गीत	१·२५
हँसो हँसाओ—बच्चों को गुदगुदी और हँसी पैदा करनेवाली कवितायें	१·५०

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

बाल कवि श्री निरंकारदेव सेवक के अपूर्व प्रकाशन

फूलों के गीत

बच्चे यदि बगिया में खिले नये नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। मूल्य १ रुपया ७५ नये पैसे।

रिमझिम

रिमझिम में निरंकार जी के वे अनमोल बालगीत संगृहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य २) रुपये।

माखन-मिसरी

इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और माखन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। मूल्य २) रुपये।

पंचतन्त्री

पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वे कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मूल्य ३) रुपये।

मुन्ना के गीत

बच्चों के सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गए हैं। मूल्य २) रुपये ५० नये पैसे।

धूपछाया

बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम झूम उठते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

दूध जलेबी

बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत दस खण्ड	८०·००
हिन्दी महाभारत : महावीरप्रसाद द्विवेदी	६·००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १, २	१३·००
श्रीरामचरितमानस	१२·००
विनयपत्रिका	४·००
कवितावली	२·७५
कुण्डलिया रामायण	४·००
तुलसी रत्नावली	१·५०
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	·७५
बाल-रामायण	१·००
रामचरितमानस अयोध्याकांड : श्यामसुन्दरदास	३·५०
रामचरितमानस, सटीक : पं० रामेश्वर भट्ट	६·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)	·५०
तुलसी के चार दल : प्र० भाग ३) द्वि० भाग	२·७५
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् : डा० मङ्गलदेव शास्त्री	८·७५
वेदान्त दर्शन	५·००
हिन्दी ऋग्वेद	१२·००
दुर्गापाठ	२·००
श्रीमद्भागवत १, २	१६·००
श्रीभगवत्तत्व	३·००

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

अधूरा आविष्कार

लेखक, डाक्टर नवलबिहारी मिश्र

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियां हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

पूर्व का पंडित

लेखिका विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचि-पूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहां ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लंछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती हैं। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने ३ सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल तीन रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है। नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० ३·००

यंत्रस्थ

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा की विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसी मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य ३) रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टाल्सटाय के प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४, मू० २ रुपये २५ नये पैसे। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य २ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद